कविता-कौमुदी

[पहला भाग—हिन्दी]

सम्पादक

पंडित रामनरेश त्रिपाठी

प्रधान विक्रेता—

हिन्दी मन्दिर, प्रयाग

प्रकाशक—

सुबुद्धिनाथ, अध्यक्ष

नार्दर्न इंडिया पब्लिशिंग हाउस

दिल्ली

सातवीं बार : १९४६

मूल्य : पांच रुपया

मुद्रक

अमरचन्द्र

राजहंस प्रेस,

दिल्ली

विषय-सूची

कौमुदी-कुञ्ज

कविता-कौमुदी

पहला भाग

भूमिका

काव्य साहित्य का उत्तम अंग है। काव्य से मनुष्य को जैसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है वैसा और किसी प्रकार के साहित्य से नहीं। काव्य का एक छोटा-सा पद श्रोताओं में इतना अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, जितना किसी वाग्मीवर का लम्बा-चौड़ा व्याख्यान नहीं। काव्य से आनन्द और उपदेश दोनों प्राप्त होते हैं। काव्य के रूप में नीति के वचन जितना आकर्षण उत्पन्न करते हैं, उतना तत्वज्ञान के रूप मे नहीं। आख्यायिकाओं द्वारा दिये गए उपदेश मे भी वह माधुर्य नहीं जो काव्य के उपदेश में है। काव्य कवि के हृदय का गान है, उसकी बुद्धि का सौन्दर्य है। जिस कवि का हृदय जितना सुन्दर होता है, वह उतना ही मधुर गान कर सकता है। वह गान भक्तों के मुख से सुनकर भगवान् रीझ जाते हैं। भगवान् कहते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद! श्रीमद्भागवत।

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य के भिन्न-भिन्न लक्षण बतलाये हैं। किसी ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है; किसी ने चमत्कारयुक्त उक्ति को काव्य माना है; किसी ने मनोहर अर्थ उत्पन्न करनेवाले शब्दों को काव्य कहा है; और किसी ने शब्द और अर्थ दोनों को काव्य कहा है। यह तो ठीक है कि शब्द और अर्थ परस्पर अभिन्न हैं, इसलिए शब्द और अर्थ दोनों मिलकर ही काव्य कहलाता है। पर शब्द और अर्थ काव्य का शरीर मात्र है, काव्य की आत्मा तो रस है। चाहे गद्य हो या पद्य, जिस संदर्भ मे रस प्रवाहित हो, वर्णन इतना सुन्दर हो कि पढ़ते ही मन उसमे तल्लीन होकर एक प्रकार के अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगे, वह काव्य है। काव्य में शब्द-चमत्कार और अर्थ-चमत्कार

दोनों होने चाहिये। किन्तु अर्थ-चमत्कार प्रधान है, शब्द-चमत्कार गौण। केवल शब्द के आडम्बर से काव्य नही बन सकता। छंद उत्तम हो, शब्द-संगठन ललित हो, अनुप्रास कर्णप्रिय हों, पर रस का अभाव हो, तो वह रचना काव्य नहीं केवल पद्य है। वह कान को प्रिय लग सकती है, हृदय को नहीं; काव्य तो हृदय की वस्तु है।

रस क्या वस्तु है ? रस का साधारण अर्थ है स्वाद। पाठक या श्रोता के हृदय में वासना रूप से स्थित हर्ष, शोक, भय, विस्मय, हास आदि जब कवि की चमत्कारयुक्त वाणी से जागृत होते है, तब उसे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह आनन्द ऐसा अद्भुत होता है कि मन उस समय उसी में लीन हो जाता है, उसे अपने अन्य सब व्यापार भूल जाते हैं। जैसे योगी समाधि में ब्रह्मानन्द-सुधा के पान में तन्मय हो जाता है, और अन्य विषय-व्यापार भूल जाता है, वैसा ही आनन्द काव्य से सहृदय मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है। उसी अलौकिक आनन्द को रस कहते हैं। जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से स्थायीभाव व्यक्त होता है, तब रस की उत्पत्ति होती है।

जिससे भावना स्पष्ट हो वह विभाव कहलाता है। विभाव दो प्रकार का होता है, आलम्बन और उद्दीपन। जिसके आश्रय से रस की स्थिति हो, उसे आलम्बन, और जिससे रस का उद्दीपन होता है उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। जिन चिह्नों के द्वारा रस का अनुभव होता है, उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव भाव का कार्यरूप है। हास्य, मधुर संभाषण और स्नेहयुक्त दृष्टिनिक्षेप आदि अनुभाव कहलाते है। जो भाव रसों में संचार करते हैं, वे संचारी भाव कहलाते हैं; और जो भाव रसोंमें स्थिर रहते हैं, स्थायी वे भाव कहलाते हैं। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, आश्चर्य और निर्वेद ये नौ स्थायी भाव हैं। इन्हीं से क्रमशः शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक रस के उत्पन्न होने में विभाव, अनुभाव और संचारी का स्थायीभाव के साथ रहना

आवश्यक है। संचारी भाव को व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। व्यभिचारी भाव के ३३ भेद है। यथा—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, घृति, आलस्य, विषाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता, और वितर्क। ये स्थायीभाव रूपी समुद्र में छोटी-बड़ी लहरों के समान उठते और नष्ट होते रहते हैं। इनका प्रभाव चिरस्थायी नहीं होता। हृदय-हीन जड़ पुरुष के हृदय में काव्य से रस उत्पन्न नहीं होता।

रस के साथ ही काव्य में गुण की भी आवश्यकता है। शब्द और अर्थ गुणयुक्त होने चाहिये। गुण रस से पृथक् नहीं रह सकता। गुण रस का धर्म है। गुण के तीन भेद है—माधुर्य, ओज और प्रसाद। अनुस्वारयुक्त वर्णो का अधिक प्रयोग, टवर्ग का बिल्कुल अभाव और समास की न्यूनता कविता का माधुर्यगुण है। संयुक्ताक्षर, रेफ और टवर्ग का अधिक प्रयोग, दीर्घ समासयुक्त उद्धत रचना में कविता का ओजगुण कहा जाता है। और जो शब्द-योजना और समास मनोहर हों और सुनते ही जिनका अर्थ समझ में आ जाय, उनमें प्रसादगुण कहा जाता है।

काव्य की भाषा सदा अर्थ का अनुसरण करती हुई होनी चाहिये। श्रृङ्गार, करुण, हास्य और शांत रस के वर्णन में माधुर्य-गुण-युक्त भाषा का और अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रस में ओज गुण-युक्त भाषा का प्रयोग करना चाहिये। चन्द और भूषण की कविता में ओज गुण की अच्छी बहार देखने को मिल सकती है। प्रसाद की आवश्यकता तो सब रसों में रहती है। प्रसाद-गुण से रहित काव्य को तो काव्य कहना ही न चाहिये।

काव्य का माधुर्य देखना हो तो जयदेव-रचित गीत-गोविन्द में देखिये—

उन्मदमदनमनोरथ पथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे ॥

* * *

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शङ्कित भवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकित नयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥

कितनी मधुर शब्द-योजना है ! कितना सरल प्रवाह है । हिन्दी-कविता में भी माधुर्य गुण खूब है । देखिये—

कङ्कन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥

* * *

कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान सम सीतल मन परगुन अवगुन न कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौंगो ॥

* * *

यह तो गुणों की बात हुई । काव्य में दोष का भी विचार बहुत आवश्यक है । शब्द-दोष, अर्थ-दोष, रस-दोष आदि कई प्रकार के दोष हैं । श्रुतिकटुत्व, अश्लीलता, ग्राम्यता, अप्रसिद्धता, संदिग्धता, क्लिष्टता, पुनरुक्ति, छंदोभंग, यतिभंग आदि दोषों से बचना चाहिये ।

काव्य में अलङ्कार की भी आवश्यकता है । केशवदास ने कहा है—

भूषण बिना न सोहई, कविता बनिता मित्र ।

गुण और अलङ्कार में भेद है । गुण रस के बिना नहीं रहते, पर अलङ्कार रस के बिना भी रह सकते हैं । अलङ्कार रस के सहायक होते हैं । शब्द और अर्थ में उत्कर्ष प्रदान कर वे रस की वृद्धि करते हैं । पर जहां रस नहीं, वहां केवल अलङ्कार भी उक्ति में वैचित्र्य उत्पन्न कर देते हे ।

*

रस के सहायक छंद भी है। मंदाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी और मालिनी छंद में शृङ्गार, शांत और करुण रस अधिक मनोहर हो जाते हैं। भुजङ्गप्रयात, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीड़ित में वीर, रौद्र और भयानक रस विशेष प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। हिन्दी छन्दों में सवैया और बरवै में शृङ्गार, करुण और शांत रस; छप्पय में वीर, रौद्र और भयानक रस; घनाक्षरी, दोहा, चौपाई और सोरठा में प्रायः सभी रस उद्दीप्त होते हैं। सवैया और बरवैं में वीररस का काव्य नीरस हो जायगा। काव्य में विरोधी और सहायक रसों का भी ध्यान रखना चाहिये। वीर या रौद्ररस के वर्णन में शृङ्गार, हास्य और करुण रस की उपस्थिति से रस की सिद्धि नहीं हो सकती। हास्यरस से शृङ्गाररस वृद्धि पाता है, पर वीभत्स, भयानक और करुण रस से उसकी सिद्धि में बाधा पहुंचती है। हास्यरस करुणरस का घातक है। कवि ही नहीं, अच्छे वक्ता भी रसों के शत्रुओं और मित्रों की जानकारी से अपने विषय को बहुत प्रभावोत्पादक बना लेते हैं।

आगे के कोष्ठक में यह विषय अधिक स्पष्ट कर दिया जाता है—

संख्या	रस	रस के मित्र	रस के शत्रु
१	शृङ्गार,	हास्य, अद्भुत।	करुणि, वीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक।
२	हास्य,	शृङ्गार, अद्भुत।	भयानक, करुण, वीर।
३	अद्भुत,	भयानक।	रौद्र।
४	शांत,	करुण।	वीर, शृङ्गार, रौद्र, हास्य, भयानक।
५	रौद्र,	भयानक।	हास्य, शृङ्गार, अद्भुत।
६	वीर,	रौद्र।	शांत, शृङ्गार।
७	करुण,	शांत।	हास्य, शृङ्गार।
८	भयानक,	अद्भुत, रौद्र, वीर।	शृङ्गार, हास्य, शांत।
९	वीभत्स।	+	शृङ्गार।

कवि कौन है? कवि सृष्टि के सौन्दर्य का मर्मज्ञ है। वह एक ऐसा यन्त्र है; जिसके द्वारा सृष्टि का सौन्दर्य देखा जाता है। कवि सौन्दर्य

का उपभोग करता है, और जब उन्मत्त होजाता है, तब उसके प्रलाप रूप में उसकी उन्मत्तता का कुल प्रसाद सहृदय-जनों को मिल जाता है। वह प्रलाप ही काव्य है। तत्ववेत्ता और कवि में अन्तर है। तत्ववेत्ता मस्तिष्क का निवासी है और कवि हृदय का। हृदय त्रिगुणात्मक सृष्टि का केन्द्र है। कवि उसी केन्द्र में स्थित होकर सृष्टि का निरीक्षण करता है। हृदय मनुष्य मात्र के हैं। पर कुछ तो हृदय के मर्म समझते ही नहीं; कुछ समझते तो हैं, पर उनकी वाणी में इतनी शक्ति नहीं होती कि वे उसे प्रकट कर सकें। कवि हृदय की बातें समझता भी है और उसे कह भी सकता है। साधारण जन और कवि में यही अन्तर है।

कवीनां मानसं नौमि तरन्ति प्रतिभाम्भसि।
यत्र हंसवयांसीव भुवनानि चतुर्दश ॥

अर्थात् कवि के हृदयरूपी मानसरोवर को मैं नमस्कार करता हूं; जिसके प्रतिभारूपी जल में चौदहों भुवन हंस की तरह तैरा करते है।

अंग्रेज कवि शेक्सपियर ने कहा है—

The lunatic, the lover and the poet,
Are of imagination all compact.

अर्थात् पागल, प्रेमी और कवि, इनकी कल्पनाएं एक-सी होती हैं।

कवि जब एक अलौकिक आनन्द की दशा में जागृत होता है, तब लोग उसे पागल कहते हैं। प्रेमी की भी ऐसी ही दशा होती है। पर प्रेमी अपने आनन्द को प्रकट नहीं कर सकता; वह एकान्त में अकेले आनन्द का अनुभव करना पसन्द करता है। और कवि स्वयं अनुभव करके दूसरों को बाँटता भी है। दोनों में यही अन्तर है। दोनों का अन्तर इस शेर से और भी साफ हो जाता है—

इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है ॥

प्रेमी इश्क का उपासक होता है और कवि हुस्न का।

कवि की कोई बात सौन्दर्यहीन नहीं होती, सब में कुछ-न-कुछ

चमत्कार होता है। उसकी दृष्टि साधारण लोगों की दृष्टि से भिन्न होती है। उसका कथन निराले ढंग का होता है। संसार की तुच्छ-से-तुच्छ बातों में भी वह सौन्दर्य ढूँढ निकालता है। गढ़ों में बरसात का पानी जमा होकर जब सूख जाता है तब उसमें कीचड़ शेष रह जाती है। जब कीचड़ का पानी भी सूख जाता है तब उसमें दरारें पड़ जाती हैं। यह संसार की ऐसी साधारण-सी घटना है कि गढ़े के पास से आने-जाने वाले लोग कभी इस घटना पर ध्यान भी नहीं देते। किन्तु कवि की दृष्टि से वह कहाँ छूट सकता है ? तुलसीदास ने कीचड़ ऐसे तुच्छ पदार्थ को और उस पर बीती हुई प्रकृति की एक अत्यन्त साधारण घटना को सौन्दर्य से चमत्कृत कर दिया। वे कहते हैं—

हृदय न विदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह विधि, यह जातना-सरीर॥

अर्थात्, प्रियतम जल के बिछुड़ते ही कीचड़ का हृदय फट गया; किन्तु मेरा नहीं फटा। इससे जान पड़ता है कि विधाता ने मुझे यातना भोगने के लिए ही यह शरीर दिया है।

कीचड़ के मन की वेदना कवि के सिवा साधारण जन कैसे समझ सकते हैं ?

संसार में कौन मनुष्य नही रोया ? मनुष्य-जीवन में रोना सब से पहला काम है। रोने के साथ आँखों से आँसुओं की धारा बहती है। आँसू किसने नहीं देखा ? पर कवि की दृष्टि से सब नहीं देखते। आँसुओं के साथ रहीम ने एक अद्‌भुत रहस्य खोज निकाला है।

"रहिमन" अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय॥

जिसे हम घर से निकाल देंगे, वह घर का भेद अवश्य प्रकट कर देगा। जैसे आँसुओं ने निकल कर हृदय का दुःख बता दिया।

कवि सौन्दर्य देखता है। चाहे वह सौन्दर्य बहिर्जगत् का हो, चाहे अन्तर्जगत् का। जो केवल बाहरी सौन्दर्य का ही वर्णन करता है, वह

कवि है; पर जो मनुष्य के मन के सौन्दर्य का भी वर्णन करता है वह महाकवि है। भीतरी सौन्दर्य के वर्णन करने में ही कवि की कवित्व-शक्ति का पता चल सकता है। देखिये तुलसीदास ने बाहरी और भीतरी दोनों सौन्दर्यों का एक साथ कितना सुन्दर वर्णन कर दिया है—

बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल द्विजराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहउ परपुर जाई॥
बिष्णु बचन सुनि सुर मुसकाने। निजनिज सेन सहित बिलगाने॥
मन ही मन महेस मुसुकाहीं। हरि के ब्यङ्ग बचन नहिं जाहीं॥

"मन ही मन महेस मुसुकाहीं" लिखकर तुलसीदास ने कवित्वशक्ति का अद्भुत परिचय दिया है। शंकर के मन में विष्णु के लिए अगाध प्रेम है। उस प्रेम के समुद्र को तुलसीदास ने इस चौपाई के एक चरण रूपी नन्हें से बूँद में भर कर रख दिया है।

बाहरी सौन्दर्य तो सुचतुर चित्रकार के चित्र में भी देखने को मिल सकता है, पर मन का सौन्दर्य महाकवि की वाणी ही में मिलता है। चित्रकार विम्बोष्ठी, चारुनेत्रा, हिमकरवदना, कान्तकुन्तला, पृथुलजघना कामिनी का ऐसा मनोहर चित्र बना सकता है कि संभव है वैसा चित्र कवि अपनी कविता में न खींच सके। पर चित्रकार उस रमणी के हृदय को कैसे दिखला सकता है? वह सेनापति के इस छंद का भाव कैसे चित्रित कर सकता है?

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल
भाल दीन्हीं बेंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू
बीरी निज कर तें खवाई अति हित है॥
ह्वै कै रसबस जब दीबे को महावर के
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है॥

चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आंखिन सों
कही, प्रानपति ! यह अति अनुचित है ॥

"यह अति अनुचित है" बताकर कवि ने जो स्त्री के हृदय की छटा दिखलाई है, वह चित्रकार नहीं दिखला सकता।

कवि की कविता का प्रभाव स्वयं कवि के हृदय पर नहीं पड़ता। वह शृगार रस की मनोहर कविता लिखता है। कितने ही युवक-युवती उसकी कविता पढ़कर प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं। पर स्वयं कवि उस कविता के लिख चुकने पर निश्चिन्त-सा होकर अपने मामूली काम में लग जाता है। वह वीर-रस की कविता लिखता है। संभव है, उसकी कविता पढ़कर कोई व्यक्ति युद्ध में निर्भयता से प्राण दे दे। पर कवि महाशय तो उस कविता की रचना करने के बाद शायद नहाने-धोने और खाने-पीने में लग जाया करते हैं। वे कविता पढ़ते-पढते युद्ध-क्षेत्र की ओर दौड़ते हुए नहीं दिखाई पड़ेंगे। उनकी करुण और शांतिरस की कविता पढ़कर कोई सहृदय चाहे संसार से विरक्त, राग-द्वेष से रहित हो जाय। पर कवि महाराज अपना शरीर सजाने में शायद ही कभी त्रुटि करें। इन बातों के लिखने का अभिप्राय यह है कि कवि का हृदय जल में कमलपत्र की तरह निर्लेप होता है। उसपर उसकी ही कल्पना या रचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। संस्कृत के एक पंडित ने इस पर कवि का गूढ़ परिहास करते हुए यह लिखा है—

कविः करोति काव्यानि स्वादु जानन्ति पण्डिताः।
सुन्दर्या अपि लावण्यं पतिर्जानाति नो पिता ॥

कवि काव्य रचता है, पर स्वाद पण्डित जानते हैं। जैसे, सुन्दरी स्त्री के लावण्य को उसका पति जानता है, (उत्पन्न करनेवाला) पिता नहीं।

कवि अपने लिए कविता नहीं रचता, दूसरों के लिए रचता है। एकान्त स्थान में बैठकर, इन्द्रियासक्ति परित्याग करके वह सहृदय रसिकजनों के लिए काव्य रचता है। कवि के समान परोपकारी कौन है?

कवि कैसी ही हीन-दशा में क्यों न हो, वह स्वभाव में राजा और उदारता में हरिश्चन्द्र से कम नहीं होता। किसी राजा को एक बड़ा देश विजय करने में उतना आनन्द नहीं होता, जितना कवि को एक शब्द किसी स्थान पर ठीक बैठा देने में होता है। शब्द ही उसकी सम्पत्ति है, वही उसकी सेना है। शब्दों से वह विश्व का हृदय जीतने की शक्ति रखता है। जब वह काव्य रचने बैठता है, तब उसके ब्रह्मांड में शब्दों के समूह-के-समूह चक्कर लगाते हैं। कवि उनमें से पकड़-पकड़कर उन्हें उपयुक्त स्थानों पर सजा देता है। कभी-कभी कौड़ी के मोल के शब्द को वह ऐसे स्थान पर जड़ देता है, जहां वह हीरे की तरह चमक उठता है। "कहु" (कहीं) एक साधारण शब्द है। पर श्रीधर पाठक ने उसके हाथ में सुधा-भवन की चाबी ही सौंप दी है।

यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन को ओक यहीं कहुं बसत पुरन्दर॥ 'काश्मीर सुखमा'

"यही कहुं बसत पुरन्दर" में "कहुं" पुरन्दर से भी अधिक प्रभावशाली बन गया है। काश्मीर में पाठकजी को पुरन्दर के मिलने से कितना आनन्द होता, इसका अनुभव अकेले पाठकजी ही कर सकते हैं। पर "कहुं" सहृदय रसिक पाठकों को घर बैठे इन्द्र-मिलन से भी अधिक आनन्द प्रदान कर रहा है। कवि और शब्द की विचित्र महिमा है। शब्द, कवि को अमर बना देते हैं और कवि शब्द को भाग्यवान्।

कवि दो प्रकार के होते हैं। एक कवि केवल अपनी कथा कहता है। अर्थात् अपनी प्रतिभा द्वारा केवल अपने हृदय के सुख-दुःख, कल्पना और अनुभव को कविता रूप में प्रकट करता है। वर्तमान काल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसी श्रेणी के कवि हैं। दूसरे प्रकार का कवि समस्त देश, समग्र जाति या युग की कथा कहता है। वह कवि केवल निमित्त मात्र होता है, उसके द्वारा समग्र जाति की सरस्वती बोलती है। उसकी रचना किसी व्यक्ति विशेष की रचना नहीं रह जाती। उसकी रचना सम्पूर्ण समाज की मिलकियत हो जाती है। तुलसीदास एक व्यक्ति का नाम था।

एक जनसमूह की सरस्वती उनके द्वारा प्रकट हुई। उन्होंने उस जनसमूह के हृदय की बात कही। वह जनसमूह तुलसीदास के कथन को अपनी सम्पत्ति समझता है। इसीसे वह कथन अजर और अमर होगया : कितने ही ऐसे अपढ़ और ग्रामीण मनुष्यों के मुख से भी कभी-कभी—

होइ है वहि जो राम रचि राखा।

* * *

जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सदेहू ॥

आदि सुन पड़ता है, जो तुलसीदास को जानते भी नहीं। इसका कारण यह है कि वे अपनी वस्तु का उपयोग करते हैं। तुलसीदास के लिए उनको केवल इसीलिए कृतज्ञ होना चाहिये कि तुलसीदास ने उनके हृदय की बातों को पद्य-रूप में करके बोलने में आसान बना दिया। तुलसीदास अपनी रचना में व्याप्त होकर अदृष्य हो गये। लोग उनके वचन को अपना-सा मानकर बोलते हैं। यही कवि की व्यापकता है। जो कवि व्यापक नहीं, उसकी कविता जब कभी उदाहरण रूप में उपस्थित होती है, तब उसके साथ उसका नाम भी लगा रहता है। पर तुलसीदास के बचनों के साथ उनके नाम की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि तुलसीदास दूध और शक्कर की तरह समाज में घुल-मिल गये हैं। यही उनका अमरत्व है; यही उनका महा-कवित्व है। आज उनकी अमर-वाणी से धार्मिक हिन्दुओं के मन्दिर, घर, मुख और श्रवण गूंज रहे हैं। इसीप्रकार हिन्दी के और भी कितने ही अमर कवि हैं, जैसे कबीर, सूर, मीराबाई आदि; जो हिन्दू-समाज में अपने लिए खास स्थान रखते हैं। वह कैसी शुभ घड़ी थी, जब उनकी वाणी से या लेखनी से एक वाक्य निकल गया और वह हजारों मुखों से प्रतिध्वनित हो उठा। न जाने उनकी किस तपस्या के फल से, किस मंत्र की साधना से उनकी वाणी रूपी तागे का अन्त नहीं आता और अब तक उसमें सहस्रों हृदय-सुमन पिरोये जा रहे हैं।

कवि की योग्यता के सम्बन्ध में नारद ने "संगीत-मकरन्द" में यह श्लोक लिखा है—

शुचिर्दक्षः शान्तः सुजनविनतः सूनृततरः
कलावेदी विद्वानतिमृदुपदः काव्यचतुरः
रसज्ञो दैवज्ञः सरस हृदयः सत्कुलभवः
शुभाकारश्छन्दोगुणगणविवेकी स च कविः

इतने गुण जिस पुरुष में हों, वह संसार में कितना भाग्यशाला होगा ! कवि होना कैसे सौभाग्य की बात है !!

आजकल की हिन्दी-कविता की ओर जब हम ध्यान देते हैं, तब बहुत निराश होना पड़ता है । कोरी तुकबन्दी को कविता का नाम दिया जारहा है; बक को हंस और कौवे को मोर बताया जारहा है । जिस पद्य में न रस है, न माधुर्य, न प्रसाद और न अलङ्कार, उसे कविता की उपाधि से विभूषित किया जा रहा है। और उसके रचयिता को समाचार पत्रों के चाटुकार सम्पादक कविवर, कवि-केसरी, कवि सम्राट्,कवि-कुंजर कवि-पुङ्गव, कवीन्द्र आदि कहकर उसकी रचना के द्वारा अपने पत्र की ग्राहक-संख्या बढ़ाने के प्रयत्न में हैं । यह कितने खेद की बात है ! कवि की जिम्मेदारी इतनी बड़ी है कि तुलसीदास भी कवि होने का दावा नहीं करते थे । किन्तु आजकल नीरस तुकबन्दी करने वाला भी कवि-सम्राट् कहकर आघोषित किया जाता है । ऐसा करके प्रशंसक लोग अपनी काव्य-शास्त्र सम्बन्धी अनभिज्ञता की घोषणा करते है या पद्य-रचयिता की प्रशंसा ! यह सोचने की बात है । प्रशंसा तो वह है जो यथार्थ हो । असत्य प्रशंसा तो निन्दा ही का एक रूप है ।

लिखते-लिखते अन्त में मैं कुछ कड़ी बातें लिख गया । इसके लिए मुझे खेद है; पर मेरा उद्देश्य यह नहीं कि इससे किसी सम्पादक या कवि का जी दुखे । मैं तो सिर्फ यह चाहता हूँ कि काव्य-शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन कर लेने के बाद लोग कविता रचने का श्रम करें । आज-कल की खड़ी बोली की कविता में काव्य के गुण न होने से पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो जीभ के मैदान पर अक्षर लट्ठ चला रहे हैं । ऊपर काव्य और कवि के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह उत्ते-

जित करने के लिए एक संकेत मात्र है । हमारे युवक कविगण इधर ध्यान देंगे तो उनके द्वारा हिन्दी में उत्तम कविता की सृष्टि होने की पूर्ण सम्भावना है । कविता-कौमुदी में जो कवितायें संग्रह की गई हैं, उनमें काव्य के सभी गुण मिलेंगे। काव्यशास्त्र का थोड़ा-बहुत भी ज्ञान रखने वाले को इन कविताओं में अन्य पाठकों की अपेक्षा अधिक आनंद प्राप्त होगा। इसलिए मैंने यह विषय कुछ विस्तार से लिख दिया है।

यहाँ तक तो काव्य और कवि सम्बन्धी बातें हुईं । अब कविता-कौमुदी की चर्चा और रह गई। कविता-कौमुदी के चौथे संस्करण तक इसके प्रत्येक संस्करण में कुछ न कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन होते आये हैं। जबतक मेरी तृप्ति नहीं हो गई, तब तक मैं परिवर्तन को रोक नहीं सका। अब कविता-कौमुदी का यह रूप सदा के लिए निश्चित हो गया है। अब परिवर्तन की गुंजाइश, मेरी राय में, नहीं रह गई।

हिन्दी-संसार ने इस पुस्तक का बड़ा आदर किया। जहाँ इसे कलकत्ता, पटना और काशी के विश्वविद्यालयों ने एम० ए०, बी० ए० और एफ० ए० के कोर्स मे स्थान दिया, वहाँ हिन्दी-साहित्यिकों ने इस ढंग की पुस्तकों में इसे सर्वोच्च स्थान देकर आदर किया है । मैं इसे अपनी आशातीत सफलता समझ कर उत्साहित होता हूँ।

इस पुस्तक के कवियों की कविताएँ चुनने में मैंने किसी खास विषय को लक्ष्य में नहीं रखा। जिस कविता में मुझे कवि की प्रतिभा दिखाई पड़ी, मैंने उसे ही चुन लिया। कवि के हृदय को असली रूप में पाठकों के सामने लाने में मैंने कोई बाधा नहीं पहुँचाई। इस कारण कुछ कविताएँ ऐसी भी आ गई हैं, जो अश्लील कही जा सकती हैं। किन्तु उनमें कवि का चमत्कार है, इससे विवश होकर उन्हें चुनना ही पड़ा। जो कवि जिस रस के लिए प्रसिद्ध है उसकी उसी रस की कविता अधिक संख्या में दी गई है। इस कारण से यह पुस्तक साधु-सन्त, साहित्य-रसिक, हास्य-प्रिय, प्रेमी, श्रृंगारी और नीति जानने की इच्छा वाले सभी श्रेणी के लोगों के लिए उपयोगी हो गई है । मुझे कितनी ही बार यात्रा में

यह देखकर सुख हुआ है कि बहुत से पढ़े-लिखे यात्री इस पुस्तक को एक मित्र की भाँति यात्रा में साथ रखते हैं।

जहाँ तक मिल सके, कवियों के ग्रन्थों को मैंने स्वयं अध्ययन करके यह पुस्तक लिखी है। फिर भी शिवसिंहसरोज, मिश्रबन्धुविनोद, संत-बानी पुस्तकमाला, नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्टें और लेख-मालायें तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की लेख-मालायें और अंग्रेजी में सर जॉर्ज ग्रियर्सन और श्री विंसेन्ट स्मिथ की हिन्दी-साहित्य और भारतीय इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों से सहायता लेनी पड़ी है। मैं हृदय से इन सब पुस्तकों के लेखकों का कृतज्ञ हूँ।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।
श्रावण कृष्ण ५, १९८०

—रामनरेश त्रिपाठी

प्रस्तावना

कविता सृष्टि का सौन्दर्य है, कविता ही सृष्टि का सुख है, और कविता ही सृष्टि का जीवन-प्राण है। परमाणु में कविता है, विराट् रूप में कविता है, विन्दु में कविता है, सागर में कविता है, रेणु में कविता है, पर्वत में कविता है, वायु और अग्नि में कविता है, जल और थल में कविता है, आकाश में कविता है, प्रकाश में कविता है, अन्धकार में भी कविता है, सूर्य, चन्द्र और तारागण में कविता है, किरण और कौमुदी में कविता है, मनुष्य में कविता है, पशु में कविता है, पक्षी में कविता है, वृक्ष में कविता है; जिधर देखो कविता ही का साम्राज्य है। प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्माण्ड एक अद्‌भुत महाकाव्य है। जिस मनुष्य ने इस सारगर्भित रसमयी कविता के आनन्द का स्वाद चखा, वह भाग्यवान् है। जिसने इस सरस्वती-मन्दिर में कुछ शिक्षा ग्रहण की और मनन किया वही पण्डित है। जिसने इस पवित्र प्रवाह में अपने को बहा दिया, वही विरक्त है। जिसने इस अमृत-प्रवाह में डूबकर, दो-चार कलश भरकर, प्यासे थके हुए रोगी वा मृतप्राय यात्रियों को कुछ बूंदें पिलाकर उन्हें शक्ति दी और पुनर्जीवित किया, वही कवि है।

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्त्तव्य है। जितना गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस-सौन्दर्य-सागर में डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य में सफल होता है। संसार के पदार्थों और घटनाओं को सभी देखते हैं, परन्तु जिन आँखों से उन्हें कवि देखता है वे निराली ही होती हैं। गँवार के लिए पहाड़ों के भीतर से आती हुई नदी एक नदी मा है; कवि के लिए उस श्वेतवस्त्रा शोभायुक्त लाजवती का नाचता हुआ

शरीर श्रृङ्गार की रङ्गभूमि है। आँख वही, पर चितवन में भेद है। बिहारी ने यह तो सच कहा है—

अनियारे दीरघ नयन, किती न तरुनि समान ।
वह चितवन कछु और है, जिहि बस होत सुजान ।।

किन्तु बिहारी ने इस रसीले दोहे में केवल बाहरी आँखों ही के रस का वर्णन किया—और वह भी अधूरा। वास्तव में वश करनेवाली आँखों में इतना भेद नहीं होता, जितना वश होनेवाली आँखों में। हीरे की परख जौहरी की आँखें करती हैं, कुब्जा के सौन्दर्य्य की पहचान रस-प्रवीण कृष्ण ही को होती है; पदार्थ रूपी चित्रों में चितेरे के हाथ की महिमा कवि की ही आँखें पहचानती हैं, प्राकृतिक दैवी सङ्गीत उसी के कान सुनते हैं। विज्ञानवेत्ता पदार्थों के बाहरी अङ्गों की छानबीन करता है, और उनके अवयवों का सम्बन्ध ढूँढ़ता है, नीतिज्ञ उनसे मनुष्य-समाज के लिए परिणाम निकालता है; किन्तु उनके आन्तरिक सौन्दर्य्य की ओर कवि ही का लक्ष्य रहता है। वैज्ञानिक और नीतिज्ञ भी जैसे-जैसे अपने लक्ष्य की खोज में गहरे डूबते हैं, वैसे-वैसे कवि के समीप पहुँचते जाते हैं। सभी विद्याओं और शास्त्रों का अन्त और उनकी सफलता कविता में लीन होने ही में है। कवि के सम्बन्धमें कहा है—

जानाते यन्न चन्द्रार्कौ जानन्ते यन्न योगिनः ।
जानीते यन्न भर्गोपि तज्जानाति कविःस्वयम् ।।

यह कवि और कविता का आदर्श है, इसी आदर्श की ओर सच्चा कवि जाता है। जितना ही वह उसके समीप पहुँचता है, उतना ही वह प्रभावशाली और उसकी कविता स्थायी होती है। भाषा तो केवल एक पहनावा मात्र है। उसकी कविता वास्तव में संसार के लाभ के लिए होती है; क्योंकि कवि की सृष्टि में सम्पूर्ण प्रजातन्त्र है, समष्टिवाद का शुद्ध व्यवहार है। यहाँ स्वतंत्रता है, स्वच्छन्दता है, अपरिमित सम्पत्ति है। कोई रोकनेवाला नहीं, जितना चाहो उसमें से लेते जाओ, वह घटती नहीं। तुममें केवल इच्छा और शक्ति की आवश्यकता है।

हिन्दी बोलनेवालों का यह सौभाग्य है कि कविता के ऊंचे आदर्श के समीप तक पहुंचने वाले कई कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा द्वारा अपनी अमूल्य वाणी से संसार का उपकार किया है। मनुष्य-जाति सदा उनकी ऋणी रहेगी। कबीर, सूर और तुलसी—अहा! इनके नामों का स्मरण करते ही किस दीप्यमान सौन्दर्य और पवित्र आनन्द की सृष्टि के द्वार खुल जाते हैं—इनके भावों को जिसने समझा, वह सच्चा पण्डित है; इनके मर्म को जिसने पाया, वह स्वयं महात्मा है। संसार साहित्य की चर्चा करता है; कांच को हीरा जानकर उसके पीछे दौड़ता है; खेल के गुड्डे को बालक समझकर उसका विवाह करता है; और अपनी करतूत पर अभिमानी बनता है। अनेक भाषाएं अपने-अपने कांच के टुकड़ों को सामने रख हीरे का दम भरती हैं, किन्तु जैसा कबीर जी ने कहा है--

सिहन के लंहड़े नहीं, हंसन की नहिं पांत।
लालन की नहिं बोरियां, साधु न चलें जमात॥

कवियों के भी लंहड़े नहीं होते। वह काल, वह देश भाग्यवान् है जहां एक भी कवि उत्पन्न हो जाय। कबीर, सूर और तुलसी यह हिन्दी भाषा ही के नहीं, संसार-साहित्य के लाल हैं, परखनेवाले की आवश्यकता है। कवीर के दोहों और शब्दों की परख कौन करता है? सूर के पदो और तुलसी की चौपाइयों को कौन तोलता है? मात्रा और अक्षरों के गिननेवाले समालोचक? छिः। परखने के लिए कुछ हृदय की सामग्री चाहिए, पुस्तकों के आडम्बर की आवश्यकता नहीं। इन कवियों के हँसने और रोने का अर्थ कौन समझता है? इनके वाक्यों के मर्म तक कौन पहुचता है? स्वयं कोई मस्त प्रेमी, कोई कविता का मतवाला, जो शुद्ध हृदय से, अभिमान छोड़, इस सृष्टि के भीतर नम्रता-पूर्वक शिष्य बनकर आता है।

"ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।"

कुछ कांच पहचाननेवाले समालोचक हिन्दी-भाषा में साहित्य की

कमी देखते हैं। गांव का रहनेवाला, जिसने अपनी गांव की दुकान में रंग-बिरंग के कांच के टुकड़े देखे हैं, नगर में आकर जब एक बड़े जौहरी की दुकान में जाता है तो अपने गांव की दुकान के समान रंगीले कांचों को न देखकर बहुमूल्य मणियों का तिरस्कार करता है, और कहता है— हमारे गांव की दुकान के समान यहां मणियां तो हैं ही नहीं। ठीक यही दशा इन समालोचकों की है। "यह गाहक करबीन के, तुम लीनी कर बीन।" यदि मणि की परख न हो तो मणि का दोष नहीं, परखनेवाले का दोष है। किन्तु कांच का भी संसार में काम है, ये भी चमकीले होते हैं, देखने में अच्छे लगते हैं। कांच के टुकड़े भी धन्य हैं, उनमें भी सौन्दर्य है, वे आनन्द बढ़ाते हैं—किन्तु हीरों और लालों की बात कुछ और ही है।

इस "कविता-कौमुदी" की छटा, संग्रह होने के कारण बादलों से छनकर आती है, तो भी अंधकार दूर करने के लिए पर्याप्त है। इसमें अमूल्य मणियों की लड़ियां हैं, साथ-साथ रंगीले कांच के टुकड़ों की बन्दनवारें भी हैं। बहुत से कांच के टुकड़े बहुमूल्य हैं, इनका भी शृंगार शोभायमान है; और अपने-अपने स्थान पर सभी आदरणीय हैं।

प्रयाग,
मार्गशीर्ष शुक्ल ३, संवत् १९७४

पुरुषोत्तमदास टण्डन

हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास

भाषा

हृदय एक पुष्प है, भाषा उसका विकास है और भाव गन्ध है।

हृदय एक वाद्य-यन्त्र है, रसना रीड है, इच्छा उंगली है और भाषा झंकार है।

भाषा विचार का साकार रूप है।

भाषा से देश जाना जाता है। हम देश के जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश के संक्षिप्त रूप हैं। हम स्वयं देश हैं। भाषा हमारी कीर्ति है।

विचार भाषा का पुत्र है, कार्य पौत्र है, और सम्मति कन्या है, जो प्रदान की जाती है, और दूसरे घर में जाकर वृद्धि पाती है।

प्रत्येक पूरी बात को वाक्य कहते हैं। प्रत्येक वाक्य शब्दों का समूह है। प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि है। भाषा वाक्यों का समूह है।

चार पैर, पूंछ, सींग आदि अंगों से युक्त एक पशु विशेष का नाम हमने गाय रख लिया है। गाय शब्द और गाय पशु से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं; परन्तु गाय शब्द के उच्चारण से गाय पशु का बोध तत्काल हो जाता है।

यदि हमने सब वस्तुओं और सब क्रियाओं का नाम रख लिया होता तो अपने मनोगत भावों के प्रकट करने में हमें बड़ी ही कठिनता पड़ती। हाथ मुंह आदि के संकेतों से हम अपने मनोभाव पूर्ण रूप से प्रकट ही न कर सकते। संसार के व्यवहार में कभी उन्नति न होती।

साधारण रूप से भाषा के दो भेद किये जा सकते हैं। एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त। विचारों को पूर्ण रूप से प्रकट करनेवाली मनुष्य की भाषा

व्यक्त कहलाती है, और पशु-पक्षी की बोली अव्यक्त । पशु-पक्षी अपनी बोली से दुःख, सुख, भय आदि मनोविकारों को प्रकट करने के सिवाय कोई नई बात नहीं बतला सकते । जब हम सोचते हैं तब भीतर ही भीतर मन से हम एक प्रकार की बातचीत करते रहते हैं। यदि हम चाहें तो उसी बातचीत को एकत्र करके लिख ले सकते हैं। बहुत समय बीत जाने पर भी हम उस लेख को देखकर यह स्मरण कर सकते हैं कि किसी दिन हमने अपने मन से इस विषय पर बातचीत की थी। भाषा बिना यह सुगमता कैसे हो सकती है ?

व्यक्त भाषा के दो भाग हैं—कथित और लिखित। जब कोई मनुष्य हमारे सामने होता है, तब उसके लिए अपने विचार प्रकट करने में हम कथित भाषा काम में लाते हैं। और जब हमें अपने विचार किसी दूर वाले मनुष्य के पास भेजने पड़ते हैं, या भविष्य के लिए चिरस्थायी रखने पड़ते है, तब हम लिखित भाषा का उपयोग करते हैं।

हमारे पूर्वजों ने लिखित भाषा के लिए शब्द की एक-एक मूल ध्वनि का एक-एक चिन्ह नियत कर लिया है, जिन्हें अक्षर या वर्ण कहते हैं। पहले भाषा में केवल कान ही काम देता था, वर्णों की रचना से आंख भी भाषा के लिए उपयोगी हो गई।

पहले लोग कथित भाषा से ही काम लेते थे। बड़े-छोटे सब प्रकार के विचार केवल कथन द्वारा प्रकट किये जाते थे। जो विचार सुननेवाले को प्रिय लगते थे, उन्हें वह स्मरण रखता था; और अप्रिय विचारों को चाहे वे भविष्य में उसके लिए लाभदायक ही हों, वह उपेक्षा के भाव से देखता था। इसका परिणाम यह होता था कि आगे चलकर उसे यदि पूर्वकाल के अप्रिय विचारों की ही आवश्यकता पड़ती थी तो फिर उसे सोचना पड़ता था। परन्तु अक्षर-लिपि की उत्पत्ति से यह असुविधा दूर हो गई। अब विचार चिरस्थायी किये जा सकते हैं। आज जो कुछ हम सोचते हैं उसे लिखित भाषा के रूप में रख सकते हैं और हजारों वर्ष बीत जाने पर भी वे देखे जा सकते हैं। अक्षर-लिपि की ही सहायता से

तो हम आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसीदास के विचारों को इस प्रकार जान सकते हैं, मानों वे स्वयं हमारे सामने आकर कर रहे हों।

भाषा सदा स्थिर नहीं रहती। उसमें परिवर्तन होता रहता है। हजारों वर्ष पहले जो भाषा बोली वा लिखी जाती थी, आज उसका वह रूप नहीं है। भाषा का नया और पुराना रूप मिलान कर देखने से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि परिवर्तन किस प्रकार से हुआ है। भाषा-तत्व के पंडितों का कथन है कि जब भाषा में परिवर्तन रुक जाता है तब उसकी उन्नति भी रुक जाती है। सभ्यता के साथ भाषा का घनिष्ट सम्बन्ध है। सभ्यता की वृद्धि के साथ भाषा की भी वृद्धि होती है। उसमें नये विचार और उन विचारों के द्योतक नये शब्द मिलते रहते हैं, और भाषा का भण्डार बढ़ता रहता है। भाषा में परिवर्तन कैसे होता है? विचार करने से इसके ये कारण जान पड़ते हैं—स्थान, जल-वायु और सभ्यता का प्रभाव और उच्चारण का भेद। बहुत से शब्द जो एक देश के लोग बोल सकते हैं, दूसरे देश के लोग नहीं बोल सकते। शीत-प्रधान देशों में ऐसे शब्दों का बहुत प्रयोग होता है, जिनसे मुख को अधिक खोलना न पड़े; जैसे अंग्रेजी भाषा के अधि-कांश शब्द। उष्ण प्रधान देशों में ऐसे शब्द अधिक बोले जाते हैं जिनसे मुख का अधिक भाग खोलना पड़ता है; जैसे भारतीय भाषाओं के शब्द। एक ही देश में भी भिन्न-भिन्न जलवायु के कारण एक ही शब्द के उच्चारण में कभी-कभी बड़ा अन्तर पाया जाता है। मरुस्थलों के निवासी कण्ठ से बोले जानेवाले शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं। बंगाल के निवासी संस्कृत-शब्दों का भी विचित्र उच्चारण करते हैं।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सृष्टि के आरम्भ काल में सब मनुष्य एक ही स्थान—मध्य एशिया में रहते थे और उस समय उनकी भाषा एक थी। कुछ विद्वानों का कथन है कि आर्य लोग पहले-पहल तिब्बत से भारतवर्ष में उतरे। वहीं से वे काबुल होकर पश्चिम की ओर फैल गये। जो हो; जीविका की खोज में या अन्य किसी कारण से वे

भिन्न-भिन्न देशों में जा बसे। गंगा के किनारे से लेकर आइसलैंड तक, स्वीडन से क्रीट तक, आर्यों की शाखायें फैल गई थी। भारत का अधिकांश भाग, अफगानिस्तान, ईरान और आर्मिनिया इतना एशिया का भाग और तीन चौथाई भाग रूस का स्वीडन और नारवे का अधिकांश भाग और बास्क, हंगरी और तुर्किस्तान के अतिरिक्त यूरोप के अधिकांश भागों में आर्यों की भिन्न-भिन्न टोलियां जा बसी थीं।

जो लोग यह मानते हैं कि आर्य लोग मध्य एशिया से भारत में आये, उनके कथनानुसार आर्यावर्त्तमें पहले पहल आर्य लोग सिन्धु नदी के किनारे पर बसे। धीरे-धीरे वे सारे देश में लंका, ब्रह्मा, कम्बोडिया और मलाया तक फैल गये। आर्यों की खास बस्ती होने के कारण विन्ध्याचल और हिमालय के बीच के प्रदेश का नाम आर्यावर्त पड़ गया। भिन्न-भिन्न देशों के जलवायु की भिन्नता के प्रभाव से आर्यों की आदिम एक भाषा के उच्चारण में अन्तर पड़ता गया। नवीन देश में आकर नवीन वस्तुओं के लिए और स्थिति के अनुसार नवीन प्रारम्भ किये हुए कार्यों के लिए उन्हें नवीन शब्दों की कल्पना करनी पड़ी, जिनसे उनकी आदिम भाषा को नवीन शब्दों से अलंकृत नवीन रूप धारण करना पड़ा। परन्तु जब सब मनुष्य साथ ही रहते थे और उनकी भाषा भी एक थी, उस समय बोलचाल में जो शब्द प्रचलित थे, उनमें से अधिकांश शब्द नवीन देश की नवीन भाषा में भी थोड़े परिवर्तन के साथ ज्यों के त्यों रह गये। यहां हम भिन्न-भिन्न भाषाओं के कुछ समानार्थ शब्दों का संग्रह करके अपने कथन का खुलासा किये देते हैं—

संस्कृत	मीडी	यूनानी	लैटिन	अंग्रेजी	फारसी	हिन्दी
पितृ	पतर	पाटेर	पेटर	फादर	पिदर	पिता
मातृ	मतर	माटेर	मेटर	मदर	मादर	माता
भातृ	ब्रतर	फ्राटेर	फ्रेटर	ब्रदर	बिरादर	भ्राता
नाम	नाम	ओनोमा	नामेन	नेम	नाम	नाम
अस्मि	अह्मि	ऐमी	एम	ऐम	अम	हूं

इत्यादि; इन शब्दों की समानता से यह प्रमाणित किया जाता है कि हम सब के पूर्वज कभी एक ही भाषा बोलते थे। आदिम स्थान से, जहां पर सब साथ ही साथ रहते थे, जो लोग पश्चिम को गये, उनसे ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी आदि भाषा बोलनेवाली जातियों की उत्पत्ति हुई। और जो लोग पूर्व को गये, उनके दो भाग हो गये। एक भाग फारस को गया और दूसरा काबुल होता हुआ भारतवर्ष पहुंचा। पहले दल ने ईरान में मीडी भाषा के द्वारा फारसी भाषा की सृष्टि की, और दूसरे दल ने संस्कृत का प्रचार किया। संस्कृत का अर्थ है सुधरी हुई भाषा। संस्कृत के पहले जो भाषा बोली जाती थी, इसका नाम प्राकृत था। वेदों मे कुछ मंत्र पहली प्राकृत म पाये जाते हैं। व्याकरण बन जाने पर उसी पहली प्राकृत का सुसंस्कृत रूप "संस्कृत" नाम से प्रसिद्ध हुआ। संस्कृत को नियमित करने में पाणिनि का व्याकरण सब से प्रसिद्ध है। संस्कृत से दूसरी प्राकृत का जन्म हुआ। और इसी दूसरी प्राकृत से ही हिन्दी आदि भाषाएं निकली हैं।

आर्य भाषा के मुख्य दो विभाग हैं, एशिया खंड की भाषाएं और युरोप खंड की भाषाएं। यहां संक्षेप से आर्य, भाषा, उसकी शाखा-प्रशाखाओं और अन्य स्वतन्त्र भाषाओं का विवरण दिया जाता है—

एशिया-खड की भाषायें—

(१) **हिन्दुस्तान की भाषाएं**—सस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश।

देशी भाषाएं—हिन्दी, बङ्गला, उड़िया; मराठी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी, जिप्सी लोगों की भाषा। जिप्सी लोग हिन्दुस्तान के मूल निवासी थे। उनका कोई खास निवास-स्थान नहीं, वे सदा भटकते फिरते हैं। बारहवी शताब्दी में वे ईरान, आर्मिनिया, ग्रीस, रोमानिया, हंगरी और बोहेमिया के मार्ग से युरोप में घुसे।

(२) **ईरान की भाषाएं**—जेन्द-जरदस्त के अनुयायियो की प्राचीन भाषा। जेन्द-अवस्था नामक प्राचीन ग्रन्थ इसी भाषा में है। दारा, जरक्सस और उसके वंशजों के समय के लेखों की भाषा, (ई० पू० ५ वीं शताब्दी)

पहलवी—ई० सन् २२६ से ६५१ तक।

फारसी—ईरान के पूर्वी भाग में अधिकतर बोली जाती हुई भाषा, जब मुसलमानों ने ईरान पर विजय पाई, उस समय की भाषा।

आधुनिक फारसी—फिरदौसी के "शाहनामे" की भाषा। पुरानी और नई फारसी में विशेष अन्तर नहीं है। आर्मीनियन, पश्तो, काकेशश, बुखार, ईरान, तुर्किस्तान और रूस की सरहद के पहाड़ी लोगों की भाषायें, जो संस्कृत या फारसी से मिलती हैं।

(३) युरोप-खंड की भाषाएं——

१—टयूटानिक भाषायें—इसके तीन रूप हैं—

(१) लो जर्मन—अंग्रेजी, डच, फ्लेमिश।

(२) हाई जर्मन—जर्मन।

(३) स्कैंडिनेवियन—आइस्लैंडिक, स्वीडिश, डेनिश, नार्वीजियन।

२—कैल्टिक भाषायें—ब्रिटेन, वेल्श, आयरिश, गेलिक (स्काटलैंड के पहाड़ी देश की भाषा), मैंक्स (मेन द्वीप की भाषा)।

३—इटैलिक भाषायें— लेटिन, अस्कन, (दक्षिण इटली की प्राचीन भाषा), अंब्रियन (इटली के ईशान कोण की प्राचीन भाषा), सेबाइन।

लेटिन से निकली हुई भाषायें—इटेलियन, फ्रेंच, प्रोवेन्कल, स्पेनिश, पोर्चुगीज, रीटोरोमेनिक (दक्षिण स्विट्जरलैंड की भाषा), बोलेचियन (तुर्किस्तान के उत्तरी प्रान्तवाले और मोल्डेविया की भाषा)।

४—हेलेनिक भाषायें—प्राचीन ग्रीक (इसमें अटिक, आयोनिक, डोरिक और इओलिक, बोलियां समाविष्ट हैं), आधुनिक ग्रीक।

५—स्लेवोनिक भाषायें—अग्निकोण की स्लेवोनिक—रशियन, इलिरिक (सर्वियन, क्रोयेटियन, करिन्थिया और स्टिरिआ की भाषायें)

पश्चिम की स्लेवोनिक—पोलिश, बोहोमियन, पोलेबियन, स्लेवेकियन और सर्वियन (ल्युसेटिअन बोलियां)।

६—लेटिक भाषायें—प्राचीन प्रशियन, लेटिशया लेवोनियन (कुरलंड और लिवोनिया की भाषा)

लिथुएनियन (पूर्व प्रशिया और रूस के कोवनो और विलना प्रान्त की बोलियां)।

युरोप निवासियों में यहूदी, फिन, लेप, हंगेरियन और तुर्क लोग आर्य-भाषा नहीं बोलते।

७—सेमेटिक भाषायें—आर्य-भाषाओं के सिवाय संसार में और जो भाषायें बोली जाती हैं, वे सेमेटिक भाषायें कहलाती हैं। इनके ये भेद हैं—

(१) सिरिया की भाषा।

(२) असीरिया और बैबिलन की भाषा।

(३) हिब्रू, फिनिशियन, समेरिटन, प्यूनिक।

(४) अरबी, माल्टा और अबिसिनिया की भाषायें।

८—अन्य भाषायें—आर्य-भाषाओं और सेमेटिक-भाषाओं के अतिरिक्त पृथ्वी पर नीचे लिखी अन्य भाषायें भी बोली जाती हैं—

(१) यूराल और अलाई की भाषायें।

हंगेरियन, फिनिश और लंपिश, सोमाय की प्रान्तिक भाषायें, तुर्की, मंगोलियन बोलियां, तुंगुशियन बोलियां।

(२) द्रविड़—तामिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़।

कोरिया, कमसकटका, क्यूराइल की भाषायें।

जापानी और लु-चु की बोली।

मलाया, मलक्का, जावा, सुमात्रा, मेलनीशिया की भाषायें।

काकेशिया की बोलियां।

(३) दक्षिण अफ्रिका की बोलियां।

(४) चीनी भाषा।

इण्डोचाइनीज भाषा (स्यामी, ब्रह्मी, आनामीज और कम्बोडियन भाषायें, तिब्बती।)

(५) बास्क।

उत्तर और दक्षिण अमेरिका के असली निवासियों की भाषा।

अब हम यह दिखलाना चाहते है कि उच्चारण-भद से भाषाओं में भिन्नता कैसे हो जाती है। प्रत्येक भाषा को विद्वान् और ग्रामीण मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार से बोलते हैं। विद्वान् लोग शब्दों का शुद्ध उच्चारण करते हैं, ग्रामीण लोग उसे अपनी इच्छानुसार सुगम बना लेते हैं। इससे किसी प्रधान भाषा की बिगड़ते-बिगड़ते कई नई बोलियां बन जाती हैं। यहां हम कुछ ऐसे शब्द उपस्थित करते हैं, जिनका अर्थ एक है, परन्तु विद्वानों और ग्रामीणों के उच्चारण में अन्तर है। जैसे—

शुद्ध शब्द	उच्चारण-भेद	शुद्ध शब्द	उच्चारण भेद
भूमि	भूईं	आकाश	अकास, आकास
पानीय	पानी	सूर्य	सूरज
शरीर	सरीर	श्वास	सांस

विद्वानों और ग्रामीणों का यह उच्चारण-भेद नया नहीं है। रामायण के समय में भी शिष्ट-समाज में बोली जानेवाली भाषा भिन्न थी, और सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा भिन्न। वाल्मीकि-रामायण सुन्दर काण्ड, सर्ग ३०, श्लोक १७, १९ में अशोकवृक्ष पर हनुमानजी चिन्ता करते हैं—

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।

अर्थात्, मैं तो लघु शरीरी और बानर हूं। पर यहां मनुष्यों की वाणी संस्कृत बोलूंगा। यदि द्विजाति के समान संस्कृत बोलूंगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायगी। इसलिए मुझे अर्थयुक्त साधारण मनुष्यों की बोलचाल की भाषा बोलनी चाहिये।

इससे प्रकट होता है कि रामायण के समय में साधारण मनुष्यों की भाषा देववाणी संस्कृत से भिन्न थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य संस्कृत

बोलते थे और शूद्र संस्कृत शब्दों के अशुद्ध उच्चारणवाली कोई अन्य भाषा। अशोक के शिला-लेखों और पातञ्जलि के ग्रन्थों से भी पता चलता है कि आज से कोई बाईस सौ बरस पहले उत्तर भारत में एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जो कई बोलियों से मिलकर बनी थी। संस्कृत-भाषा व्याकरण के नियमों से ऐसी जकड़ी हुई है कि उसके विकार-ग्रस्त होने की कोई सम्भावना नहीं है। स्त्री, बालक और शूद्र से संस्कृत भाषा का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं बन सकने के कारण संस्कृत में जब कुछ अशुद्ध शब्दों का प्रयोग होने लगा, तब उससे एक नवीन भाषा पाली का प्रादुर्भाव हुआ। पाली बौद्ध-धर्म की पवित्र भाषा है। बौद्ध-साहित्य प्रायः इसी भाषा में है। लंका, श्याम और ब्रह्मदेश में यह भाषा बोली जाती है। पाली मे $\frac{२}{५}$ शुद्ध संस्कृत शब्द है और $\frac{३}{५}$ संस्कृत शब्दों के विकृत रूप। इसके बाद प्राकृत का नम्बर है। यह संस्कृत के विकृत शब्दों से लदी हुई भाषा है। प्राकृत शब्द "प्रकृत" से बना है, और उसका अर्थ है स्वाभाविक। सर्व-साधारण लोग अपने अशुद्ध उच्चारण के कारण कही संस्कृत भाषा का रूप बिगाड़ न दें, इसलिए विद्वानों ने प्राकृत-भाषा का एक नया रूप स्वीकार किया और उसका व्याकरण बनाकर उसे एक स्वतन्त्र भाषा बनादी। प्राकृत का सबसे पुराना व्याकरण वररुचि का बनाया हुआ मिलता है। पाली की अपेक्षा प्राकृत में संस्कृत के विकृत शब्द बहुत अधिक हैं। कालिदास ने शकुन्तला नाटक में स्त्री और सेवकवर्ग के मुंह से प्रायः प्राकृत भाषा का ही प्रयोग कराया है। इससे अनुमान होता है कि कालिदास के समय में स्त्रियों और साधारण श्रेणी के लोगों में प्राकृत भाषा का ही विशेष प्रचार था। प्राकृत में कई स्वतन्त्र काव्य भी लिखे गये है।

संस्कृत शब्दों का प्राकृत और हिन्दी में कैसा रूप बन गया है इसे दिखाने के लिए कुछ शब्द प्रस्तुत किये जाते हैं—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
विद्युत	बिज्जु	बिजली

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
श्मश्रु	मस्सू	मूछ
शय्या	सेज्जा	सेज्ज
कुष्ठ	कोट्ठ	कोढ़
तैलम्	तेल्ल	तेल
कृष्ण	कन्हो	कान्ह (ब्रजभाषा)
पितृगृह	पिइघर	पीहर
कर्पट:	कप्पडो	कपड़ा
शिथिल	सढिल	ढीला
एकादश	एआरह	ग्यारह
यज्ञोपवीत	जण्णोवइअ	जनेऊ
खदिर	खइर	खैर
वचन	बयण	बैन (ब्रजभाषा)
अश्रु	अंसु	आंसू
सप्त	सत्त	सात
सर्प	सप्प	सांप
स्तम्भ	थम्भ	खम्भ
कर्म	कम्म	काम
हस्त	हत्थ	हाथ
भगिनी	बहिनी	बहन
वार्त्ता	बत्त	बात
दुग्ध	दुद्ध	दूध
कर्ण	कन्न	कान
घृतम्	घिअम्	घी
मेघ:	मेहो	मेह
गम्भीरम्	गहिरम्	गहरा, इत्यादि।

ऊपर के प्रमाणों से यह बात समझ में आ सकती है कि प्रत्येक प्रच-

लित भाषा मे नवीन भावों के द्योतक नवीन शब्द और उसी भाषा के अपभ्रंश नित्य ही बढ़ते रहते हैं। जब ऐसे शब्दों की अधिकता होती है तब वे सब अपभ्रंश शब्द और कुछ उस प्रचलित भाषा के विशुद्ध शब्द मिलकर एक नई बोली का रूप धारण करते हैं, और फिर अपनी उन्नति का नवीन क्षेत्र तैयार कर लेते हैं।

प्राकृत का विकास होते-होते उससे तीन शाखायें फूट निकलीं— मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री। मागधी मगध देश वा बिहारकी भाषा थी। शौरसेनी शूरसेन प्रदेश अथवा मथुरा के आस-पास की और महाराष्ट्री महाराष्ट्र प्रान्त की भाषा थी। मागधी और शौरसेनी के मिश्रण से एक और भाषा का जन्म हुआ था, जिसे अर्द्ध-मागधी कहते थे। इस भाषा में जैन-धर्म के कुछ ग्रन्थ लिखे गये थे।

विक्रम संवत् के लगभग आठ-नौ सौ बरस तक प्राकृत भाषा का प्रचार रहा। इसके बाद उसमें कुछ परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे वह यहां तक बढ़ा कि उसमें से अपभ्रंश नाम से एक नवीन भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। "अपभ्रंश" शब्द का अर्थ है—"बिगड़ी हुई भाषा"। प्राकृत के अन्तिम वैय्याकरण हेमचन्द्र सूरि ने, जो बारहवीं शताब्दी में हुए थे, अपने "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" नामक व्याकरण-ग्रंथ के आठवें अध्याय में अपभ्रंश भाषा का उल्लेख किया है, और उसका व्याकरण भी लिखा है। उन्होंने उस समय के ग्रन्थों से चुनकर उदाहरणार्थ सैकड़ों पद्य भी लिख दिये है, जिससे उस समय की प्रचलित भाषा की खासी झलक दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ अपभ्रंश भाषा का एक पद्य हम यहां देते हैं—

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जतु वयंसिअहु, जद भग्गा घर एन्तु॥

अर्थात्, हे बहन! अच्छा हुआ जो मेरा पति मारा गया। यदि भागा हुआ घर आता तो मैं सखियों में लज्जित होती।

अपभ्रंश भाषा उस समय केवल मामूली भेद के साथ भारत के बहुत से प्रदेशों में बोली जाती थी। हेमचन्द्र के मरने के बाद, थोड़े ही

वर्षों में, भारत में राज्य-विप्लव हुआ। आपस की फूट से एक विशाल साम्राज्य टुकड़े-टुकडे हो गया। स्नेह-सम्बन्ध टूट गया। छोटे-छोटे सैंकड़ों राज्य कायम हुए। एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य के निवासियों को शत्रु समझने लगे। विदेशी विजेताओं के पैर जमे और भारत की फूट से वे लाभ उठाने लगे।

इस राज्य-क्रान्ति का प्रभाव भाषा पर भी पड़ा। परस्पर ईर्ष्या-द्वेष के कारण व्यावहारिक सम्बन्ध संकुचित हुआ। उसी के साथ-साथ भाषा की एकरूपता में भी अन्तर आने लगा। प्रदेशों का सम्बन्ध-विच्छेद होते ही उनमें व्यापक भाषा अपभ्रंश भी प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न रूप में विकसित होने लगी। भिन्न-भिन्न प्रान्तों की प्राकृत का "अपभ्रंश" रूप भिन्न-भिन्न हुआ। शौरसेनी का अपभ्रंश "नागर" अपभ्रंश कहलाता है। ब्रजभाषा शौरसेनी प्राकृत का रूपान्तर है। हमारी हिन्दी भाषा दो अपभ्रंशों से मिलकर बनी है, एक नागर अपभ्रंश, जिससे पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी का जन्म हुआ; दूसरे अर्ध-मागधी का अपभ्रंश, जिससे पूर्वी हिंदी निकली है जो अवध, बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़ में बोली जाती है।

पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत और भी कई बोलियां हैं। जैसी, अवधो अवध में, बुन्देली बुन्देलखण्ड में, ब्रजभाषा मथुरा के आसपास, कन्नौजी गङ्गा-यमुना के मध्य और उत्तर के प्रदेश में और हिन्दुस्तानी दिल्ली और मेरठ के आसपास के प्रदेश में बोली जाती है।

अपभ्रंश भाषा प्रकृत और प्रान्तीय भाषाओं के मध्य की भाषा है। प्राकृत के बाद अपभ्रंश और अपभ्रंश के बाद प्रान्तीय भाषाओं की सृष्टि हुई है। अपभ्रंश भाषा से पुरानी हिन्दी, ब्रजभाषा और गुजराती का बहुत अधिक सम्बन्ध है।

प्रारम्भ में पश्चिमी हिन्दी का जो रूप था उससे राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति हुई। डा०टोसीटोरी का मत है कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक पश्चिमी राजपूताना और गुजरात में एक ही भाषा बोली जाती थी,

इसे वे प्राचीन राजस्थानी भाषा कहते हैं । यही भाषा गुजराती और मारवाड़ी का मूल है।

अपभ्रंश भाषाएं ग्यारहवें शतक तक प्रचलित थीं। इसके बाद इसकी भिन्न-भिन्न शाखायें निकलीं, और पन्द्रहवें शतक तक पहुँचते-पहुँचते वे अपने भिन्न-भिन्न वातावरण में फूलने और फलने लगीं । हिन्दी भाषा मुख्यतः तीन प्रकार के शब्दों से बनी है, तत्सम, तद्भव और देशज । तत्सम वे शब्द कहलाते हैं, जो सीधे संस्कृत से आये हैं। संस्कृत में उनका जो रूप है, देशी भाषाओं में भी वही है । जैसे, बल, हल, बन, मन, धन, जन, दूर, सूर, नदी, शीत, वर्षा, समुद्र, बसन्त, साधु, सन्त, दिन, राजा, कवि, काम, क्रोध, दर्शन, मनुष्य । तद्भव वे शब्द है, जो मूल में तो संस्कृत के शब्द हैं, पर वे अपभ्रंश अर्थात् बिगड़े हुए रूप मे प्रचलित हैं। जैसे, बच्चा (वत्स), राय (राजा), आग (अग्नि), कान (कर्ण), काज (कार्य), सूख (शुष्क), सुई (सूची), बरस (वर्ष), रात (रात्रि), सब (सर्व), माथा (मस्तक), सिर (शीर्ष), नेवला (नकुल), भात (भक्त), दूध (दुग्ध) आदि। देशज वे शब्द हैं जो या तो भारत के आदिम निवासियों की बोलियों से लिये गये हैं, या कार्य या पदार्थ के रूप या ध्वनि के अनुसार बना लिये गये हैं । देशज शब्द संस्कृत या प्राकृत से कोई सम्बन्ध नहीं रखते । देशज शब्द जैसे पगड़ी, रोड़ा, पेट, झाड़ झंखाड़, गंडेरी, धूमधाम, ओस, कढ़ाई, टीला, होड़, मामा, खिड़की, तथा, खड़-खड़ाहट, बड़बड़ाना, चट, धड़ाम, ऊटपटांग, झिलमिल, चींचपड़ आदि।

संस्कृत भाषा हिन्दी, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उड़िया और बंगला भाषाओं की मातृभाषा है। बंगला, उड़िया और मराठी में तत्सम शब्द बहुत हैं। हिन्दी और गुजराती में उससे थोड़ा कम और पंजाबी और सिन्धी में तो सब से कम है । ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कारण यह जान पड़ता है कि सिन्ध और पंजाब में विदेशियों के बार-बार आक्रमण होते रहे । इससे आर्य, विशेषकर ब्राह्मण उन प्रान्तों से पूरब की ओर हटते आये। उन प्रांतों में खासकर अहीर, गूजर और जाटों के जत्थे रह गये।

अतएव स्वभावतः उनकी भाषा से तत्सम शब्द कम होते गये और उनके स्थान में तद्भव और देशज शब्द भरते गए। ब्रजभाषा में तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्द ही अधिक हैं।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के सिवाय हिन्दी में बहुत से विदेशी शब्द भी मिल गये हैं, और अब भी मिलते जा रहे हैं। हिन्दी का शब्द-भण्डार बराबर बढ़ता जा रहा है। मुसलमान जब इस देश में आये, तब उनकी भाषा अरबी, तुर्की या फारसी के भी बहुत से शब्द हिन्दी में मिल गए। पोर्चुगीज और अंग्रेजों के आने पर भी शब्द-वृद्धि हुई, और अंग्रेजी शब्दों का तांता तो अभी तक चला आ रहा है। विदेशी शब्दों के सिवाय अन्य प्रान्तीय भाषाओं के भी कुछ शब्द हिन्दी में आ मिले हैं। सब के थोड़े-थोड़े उदाहरण आगे दिये जाते हैं—

अरबी—अक्ल, इख़्त्यार, इम्तिहान, एतराज, औरत, हाल, सिफ़ारिश, अदालत, मुक़दमा, तारीख तनख़्वाह, हूबहू, इन्साफ़, ऐब, उमदा, ख़बर, ख़र्च, तकरार, दलील, दुनिया, मज़कूर, मशगूल, शरबत, सलाह, हुक्म आदि।

फारसी—अजमायश, आदमी, उम्मीदवार, आबादी, ख़रीद, गुमाश्ता, बाग़, चश्मा, दूकान, चाकू, ताज़गी, गुज़रान तन्दुरुस्ती, दस्तावेज़, दरिया, प्याला, कमर, दाग़, मोज़ा, गुलाब, साबुन, होशियार, हवा, हज़ार आदि।

तुर्की—तोप, लाश, बोतल आदि।

पोर्चुगीज—अंग्रेज, पिस्तोल, पलटन, कप्तान, कमरा, नीलाम, इंजीनियर, चा, काफी, गोदाम, (गोडाउन), चाबी आदि।

अंग्रेजी—वो[illegible], [illegible], [illegible]कट, कलक्टर, डाक्टर, टेबल, पेंसिल, पेंशन, बूट, फार्म, बोर्डिंग, डिग्री, ग्लास, फंड, रेल, वारंट, रसीद, रबर, लालटेन, पतलून, मील, इंच, फुट, वास्कट, म्यूनिसिपैलिटी, सेविंग बैंक, सोडावाटर, होटल, हास्पिटल, बोतल, पास, रजिस्ट्री, नोटिस, समन, स्कूल, कमेटी, फीस, स्लेट, टीन, प्रेस, इन्स्पेक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, कान्स्टेब्ल आदि।

मराठी—प्रगति, लागू, बाजू, (तरफ) आदि।

बंगला —उपन्यास, प्राणपण, गल्प, डोंगी आदि ।

इस समय हिन्दी-भाषा के तीन मुख्य रूप हैं । पहला विशुद्ध हिन्दी, जिसमें तत्सम और तद्भव शब्दों का ही बाहुल्य रहता है, अन्य भाषा के शब्द उसमें प्रवेश नहीं कर सकते । दूसरा हिन्दुस्तानी, जिसमें रोज-मर्रा की बोलचाल के सब शब्द, चाहे वे किसी भाषा के क्यों न हों, आ सकते हैं । तीसरा उर्दू, जिसमें अरबी और फारसी शब्दों की बहुलता रहती है । उर्दू कोई भिन्न भाषा नहीं, वह हिन्दी का एक रूपान्तर मात्र है । "हिन्दुस्तानी" नाम अंग्रेजों का रक्खा हुआ है, पर यह दिल्ली और उसके आसपास के जिलों में बहुत प्राचीन-काल से बोली जाती है । मुसलमानों के संसर्ग से जैसे "उर्दू" नाम से हिन्दी का एक नया रूप अलग हो गया, वैसे ही यदि कोई बनाना चाहे तो अंग्रेजी और हिन्दो के मिश्रण से भी एक नया रूप बन सकता है । आजकल कालेज, स्कूल और मीटिंगों में इस नये रूप का दर्शन होता है; पर अभी तक उसका नामकरण नहीं हुआ है । यदि मुसलमानों की तरह अंग्रेज भी इस देश में आकर बस जांय तो सम्भव है हिन्दी और अंग्रेजी के मिश्रण से उनकी एक "बाजारी" बोली अलग बन जाय ।

हिन्दी का पुराना नाम

हिन्दी का पुराना नाम हिन्दवी या हिन्दुई है, जिसका अर्थ है हिन्दुओं की भाषा । यहां हिन्दी के विषय में कुछ कहने के पहले "हिन्दू" शब्द पर विचार कर लेना उचित जान पड़ता है ।

भारतवर्ष की आर्य-जाति का "हिन्दू" नाम क्यों और कब से पड़ा ? यह विचारणीय बात है । संस्कृत-साहित्य में "हिन्दू" शब्द का कहीं उल्लेख नहीं । न तो वेदों में, न उपनिषदों में, न स्मृतियों में और न पुराणों में ही इस शब्द का कहीं पता है । फिर यह कहाँ से आया और इसमें कौन सा ऐसी विशेषता देखकर इतनी बड़ी एक सुसभ्य जाति ने इसे ग्रहण कर लिया ? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं ।

मेरुतन्त्र में एक स्थान पर "हिन्दू" शब्द आया है; इस सम्बन्ध के कुछ श्लोक हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

पश्चिमाम्नाय मन्त्रास्तु प्रोक्ताः पारस्य भाषया।
अष्टोत्तर शताशीतिर्येषां संसाधनात्कलौ॥
पञ्चखाना सप्तमीराः नवसाहा महाबलाः।
हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनाः॥
हीनञ्च दूषयेत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये।
पूर्वाम्नाये नवशत षडशीति प्रकीर्तिता॥
फिरङ्ग भाषया मन्त्रा येषां संसाधनात्कलौ॥
अधिपा मण्डलानाञ्च सग्रामेष्वपराजिताः॥
इङ्गरेजा नव षट्पञ्च लण्डजाश्चापि भाविनः।

शिवरहस्य में भी एक स्थान पर ऐसा कहा गया है—

हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे।

हमें मेरुतन्त्र और शिवरहस्य के ये श्लोक पीछे से मिलाये हुए जान पड़ते हैं। क्योंकि पूर्वकाल में यदि हिन्दू-धर्म कोई धर्म होता तो उसका उल्लेख स्मृति और पुराणों में कहीं न कहीं अवश्य होता। अतएव हम इन श्लोकों को किसी सुचतुर संस्कृतज्ञ की करामात समझकर अप्रामाणिक समझते हैं।

हिन्दू शब्द हमें फारसी भाषा में मिलता है। फारसी का एक पद्य सुनिये—

अगर आँ तुर्क शीराज़ी बदस्त आरदद दिले मारा।
बख़ाले हिन्दुवश बख़शम समरकन्दो बुख़ारारा॥

यह आज से कोई साढ़े पाँच सौ बरस पहले का हाफिज शीराजी का शेर है, इसमें हिन्दू शब्द "काले" के अर्थ में आया है। ग़यासुल्लोग़ात में हिन्दू शब्द का अर्थ ऐसा लिखा है—

"हिन्दू दर महाविरे फ़ारसियाँ बमानी दुज़्द व राहजन मी आयद।"

इसमें हिन्दू शब्द का अर्थ काफिर और डाकू किया गया है। यदि

हिन्दू शब्द का अर्थ काला, काफिर, चोर, गुलाम ही है तो उसे भारत-वासियों ने अपने उत्तम आर्य नाम के स्थान पर क्यों स्वीकार कर लिया ? हमें ग़यासुल्लोग़ात का अर्थ द्वेषवश लिखा जान पड़ता है। तो क्या फारसी के हिन्दू शब्द के काले अर्थ ही में हमारा नाम हिन्दू पड़ा है ? नहीं; भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। नीम शब्द ही को लीजिये। फारसी में नीम का अर्थ आधा है और हिन्दी में नीम एक वृक्ष का नाम है। "नीम हकीम" कहने से यह अर्थ नहीं लगा लेना लेना चाहिये कि नीम वृक्ष ही हकीम है। यदि हमारा नाम हिन्दू किसी अच्छे अर्थ में रक्खा गया है तो किसी अन्य भाषा में इस शब्द का अर्थ चोर, डाकू होने से हम चोर डाकू नहीं हो सकते। हाँ, यदि किसी ने चोर, डाकू और काले के ही अर्थ में हमारा नाम हिन्दू रक्खा है और हमने उसे स्वीकार कर लिया है, तो हमारे लिए अवश्य कलङ्क की बात है। परन्तु हमारा हिन्दू नाम नया नहीं, आज से पांच हजार वर्ष पहले की पारसियों की मुख्य धर्म-पुस्तक दसातीर में हमारे देश का नाम "हिन्दू" लिखा मिलता है। इसके प्रमाण मे उक्त पुस्तक से कुछ वाक्य हम यहाँ उद्धृत करते है—

अकनू बिरहमने व्यास नाम अज़ हिन्द आमक बसदाना के अक़ल चुनानस्त। (ज़रतुश्त की ६५ वीं आयत)

अर्थात् व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया है जिसके समान कोई पण्डित नहीं।

चूं व्यास हिन्दी बलख आमद। गस्तास्प ज़रतुश्तरा बख़वांद। (१६३वी आयत)

जब हिन्द का रहनेवाला व्यास बलख आया तब (ईरान के राजा) गस्तास्प ने ज़रतुश्त को बुलवाया।

आगे फिर लिखा है—

मन मरदे अम हिन्दी निज़ादे।

मैं हिन्द में पैदा हुआ एक पुरुष हूँ।

बै हिन्द बाज़ गश्ते।

फिर वह हिन्द को लौट गया।

इन प्रमाणों से यह प्रकट होता है कि महर्षि व्यास के समय में ईरान वाले इस देश को "हिन्द" कहते थे। व्यास ने स्वयं अपने देश का नाम हिन्द और अपने को हिन्द का निवासी कहा है। यह वैसी ही बात है जैसे आजकल हम लोग अँग्रेजों को समझाने के लिए उनके सामने अपने देश का नाम इण्डिया और अपना नाम इंण्डियन बतलाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि ईरान वाले इस देश को हिन्द क्यों कहते थे? हमारी समझ में हिन्द शब्द सिन्धु का अपभ्रंश है। ईरानी भाषा में 'स' का उच्चारण प्रायः 'ह' होता है। इससे सिन्धु का हिन्दु हो जाना असम्भव नहीं है। सम्भव है, उस समय वे लोग सिन्धु नद के इस पार के देश को हिन्द और यहाँ के निवासियों को हिन्दी या हिन्दू नाम से पुकारते रहे हों। ग्रीक भाषा में सिन्धु का नाम इण्डस मिलता है, और इसी से इण्डिया शब्द की उत्पत्ति हुई जान पड़ती है। उच्चारण-भेद से सिन्धु का किसी ने हिन्द बना लिया, किसी ने इण्डस।

मेरी राय में अब इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि हमारे देश का नाम हिन्द और हमारा नाम हिन्दू इस देश में मुसलमानों के आने से बहुत पहले ही पड़ चुका था। मुसलमानों ने हमारा यह नाम नहीं रक्खा।

सुप्रसिद्ध सर जार्ज ग्रियर्सन की भी "हिन्दू" शब्द के सम्बन्ध में यही राय है। इंग्लैण्ड से १६-६-१६ के भेजे हुए अपने पत्र में वह लिखते हैं:—

You are quite right in stating that हिन्द is a Persian word, and is the Persian equivalent of सिन्धु. The Persians called the whole of India by this name. The old form of "हिन्दू" was हिन्दी, which is derived form an older form हैन्दव, which is the equivalent of the Sanskrit सैन्धव, not of सिन्धु.

The word हिन्दी means a native of हिन्द, that is a native of India, an Indian, But, in Persian, हिन्दू or हिन्दी meant a person of the Hindu religion. Thus Amir Khusro says of Sultan Firoz Shah Khilzi, in his "Ghurratul Kamal," "what ever like fell into the king's hands was pounded into bits under the feet of elephants. The Musalmans, who, were Hindis, had their lives spared." You will thus see that, when applied to a language. Hindi properly means any Indian language. Bengali and Marathi are just as much Hindi as the language we now call Hindi. The use of the word Hindi in its modern sense, is quite late. Its proper name is हिन्दुई *i. e.*, the language of Hindus, as opposed to Urdu, the language of Musalmans.

अब प्रश्न यह है कि इस शब्द का उल्लेख हमारे संस्कृत ग्रंथों में क्यों नहीं मिलता। मेरी समझ में इसका कारण यही जान पड़ता है कि हिन्दू शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है; और हमने यह नाम स्वयं नहीं रक्खा है, बल्कि विदेशी हमें इस नाम से पुकारते थे। जैसे अमेरिका, यूरोप आदि देशों के लोग हमें इंडियन नाम से पुकारते हैं। परन्तु हम लोग अपनी पुस्तकों में अपने को हिन्दू ही लिखते हैं, इंडियन नहीं लिखते। अब प्रश्न यह है कि विदेशियों का रक्खा हुआ "हिन्दू" नाम हमने स्वीकार क्यों कर लिया ? इसका उत्तर यही है कि पूर्वकाल में भारत और ईरान में घनिष्ट सम्बन्ध था; दोनों देशों की भाषा में बहुत कुछ समानता थी; दोनों देशों के रीति-रस्म में बहुत कुछ एकता थी; पुराण-ग्रंथों में दोनों देशों में वैवाहिक सम्बन्ध तक की चर्चा पाई जाती है।

अतएव नित्य के संसर्ग से हमारे लिए उनके रक्खे हुए हिन्दू नाम को पहले हमने कौतूहल-वश स्वीकार किया; फिर धीरे-धीरे इस नाम ने हमारे उर्वर मस्तिष्क में अपनी जड़ जमा ली। परन्तु हमने संस्कृत-ग्रंथों में अपना प्राचीन नाम ही कायम रक्खा, केवल बोलचाल में हम अपने को हिन्दू कहने लगे।

कितनी ही विदेशी जातियां इस देश मे आईं और मिल-जुलकर एक हो गईं। इसी तरह यह हिन्दू नाम भी विदेश से आया और यहां हमारा हो गया। अतएव हिन्दू नाम को घृणा की दृष्टि से देखने का हमें कोई कारण प्रतीत नहीं होता। यह हिन्दू नाम हमारे और ईरानवासियों के प्राचीन सम्बन्ध की यादगार है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि मुसलमानों ने हमारा नाम हिन्दू नहीं रक्खा, पृथ्वीराज रासो से भी यह प्रमाणित हो सकता है। चन्दबरदाई ने रासो के अनेक स्थलों पर हिन्दू और हिन्दुस्तान शब्द लिखे हैं। चन्दबरदाई से पहले मुसलमानों को इस देश में आये ही कितने दिन हुए थे कि उनका रक्खा हुआ नाम एक विशाल जाति में इतना प्रचार पा जाता कि एक वीर और स्वजात्याभिमानी कवि अपनी कविता में उस नाम को स्थान देता? स्वदेश और स्वजाति के जिस नाम से समाज अच्छी तरह परिचित रहता है, कवि लोग उनके लिए प्रायः वही नाम अपनी कविता में लिखते हैं। आजकल भी हिन्दी-भाषा के कवि अपनी कविता मे आवश्यकता पड़ने पर अपने देश का नाम भारत या हिन्दुस्तान ही लिखते है; इंडिया नहीं। अब यह बात ध्यान में आ सकती है कि चन्दबरदाई से हजारों वर्ष पहले, जबकि पृथ्वी-मंडल पर मुसलमानों का कहीं अस्तित्व भी नहीं था, हमारी आर्य-जाति हिन्दू, हिंदुस्तान नाम को अपना चुकी थी। इसी से चन्द कवि को इन शब्दों के बहुल प्रयोग मे कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।

हमारे देश का नाम हिन्द, यहां के निवासियों का नाम हिन्दी या हिन्दू और हमारी भाषा का नाम हिन्दवी या हिन्दी बहुत पुराना है।

पहले देश का नाम, फिर निवासियों का नाम, फिर भाषा का नाम रक्खा गया।

अमीर, ख़ुसरो की एक पहेली में हिन्दी शब्द आया है; वह यह है--

फारसी बोले आईना। तुरकी सोचे पाईना।
हिन्दी बोलते आरसी आये। मुंह देखे जो इसे बताये॥

हिन्दी का एक पुराना नाम "भाषा" भी है। महा महोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी स्वरचित गणक तरंगिणी के ३३वें पृष्ठ पर भास्वती की भाषा-टीका का एक उदाहरण उद्धृत करते हैं। उसमें भाषा शब्द आया है। उसका एक वाक्य यह है--

"सो देख कै बनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह"

यह टीका सं० १४८५ की बनी है। तुलसीदास ने रामायण में "भाषा" शब्द लिखा है--

भाषा निबद्धमति मंजुलमातनोति।
*　　*　　*
भाषा भनित मोरि मति थोरी।

पर उन्होंने अपने फारसी पंचनामे में हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया है। सं० १६८० में लिखी हुई गोरा-बादल की कथा में जटमल ने "हिंदवी" शब्द का प्रयोग किया है। आजकल भी बहुधा पुस्तकों के नामों और टीकाओं में हिन्दी के स्थान पर "भाषा" शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे भाषा भास्कर, भाषा टीका आदि। पादरी आदम साहब लिखित उपदेश-कथा में, जो सं० १८९४ में दूसरी बार छपी, इस भाषा का नाम "हिन्दुवी" लिखा है। "पदार्थ विद्यासार" नामक पुस्तक में जो स० १९०३ में छपी है, "हिन्दी भाषा" नाम आया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावत में लिखा है---

तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का, सबै सराहैं ताहि॥

मालूम होता है कि पहले हिन्दू लोग इस भाषा को "भाषा" और मुसलमान लोग "हिन्दुई" या "हिन्दुवी" कहते थे।

संवत् १८६१ के बने हुए "प्रेमसागर" में लल्लूलालजी ने इस भाषा का नाम "खड़ी बोली" लिखा है। उन्होंने ही एक जगह अपनी भाषा का नाम "रेख्ते की बोली" लिखा है। जान पड़ता है, भाषा का नाम "रेख्ता" उस समय रक्खा गया, जब इसमें अरबी, फारसी के शब्द भी मिलने लगे।

हिन्दी-गद्य

हिन्दी-गद्य का प्राचीन उदाहरण नहीं मिलता। महाराज पृथ्वीराज के समय के दो एक पत्रों की प्रतिलिपि, महात्मा गोरखनाथ, गोस्वामी बिठ्ठलनाथ, गंगा भाट, गोस्वामी गोकुलनाथ और नाभादासजी आदि की पुस्तकों से गद्य के कुछ उदाहरण आगे दिये जांयगे; वे हिन्दी-गद्य के यथार्थ उदाहरण नहीं कहे जा सकते। क्योंकि वे पत्र और पुस्तकें भिन्न-भिन्न प्रदेशों की बोलियों में लिखी गई हैं। हिन्दी-गद्य के उस रूप का, जो देहली के आस-पास विकास पा रहा था, जिसमें अमीर ख़ुसरो ने अपनी पहेलियां लिखीं, जिसे ब्रजभाषा ने दबा लिया था और जो पहले रेख्ता और आजकल खड़ी बोली के नाम से प्रसिद्ध है, कोई उदाहरण नहीं मिलता। अमीर ख़ुसरो का जन्म संवत १३१२ में हुआ। उसने जो छंद लिखे हैं, वे अवश्य ही उस समय की बोलचाल की भाषा में लिखे गय हैं। उसके छन्दों के विषय ही ऐसे हैं, जो रोजमर्रा की बोलचाल में ही लिखे जाते हैं। उदाहरण के लिए यहां उसके कुछ छंद लिखे जाते हैं—

तरवर से एक तिरिया उतरी, उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली मोरी।
अमीर ख़ुसरो यों कहें, अपने नाम निबोरी।

*　　*　　*

बीसों का सिर काट लिया। ना मारा ना ख़ून किया॥

*　　*　　*

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय ।
मीठे लागे वाके बोल, ऐ सखि साजन ? ना सखि ढोल ।

*   *   *

"उसने बहुत रिझाया","आधा नाम बताया", "बीसों का सिर काट लिया" आदि बिलकुल खड़ी बोली के वाक्य हैं । हिन्दी का यह रूप अमीर खुसरो के वक्त में अवश्य रहा होगा । "उसने बहुत रिझाया" में "ने" का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है । ब्रजभाषा की कविता में "ने" का प्रयोग बहुत ही कम देखा जाता है । तुलसीदास के रामायण में "ने" हुई नहीं । किन्तु अमीर खुसरो ने "ने" का प्रयोग किया है । "मीठे लागे वाके बोल" ये ब्रजभाषा के शब्द हैं । इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि ब्रजभाषा और हिन्दी दोनों का विकास साथ ही साथ हो रहा था । श्रीकृष्ण की जन्मभूमि की भाषा होने के कारण अपभ्रंश शब्दों की बहुलता से काव्य-रचना में प्रयोग-सुलभ (सुगम) और कर्ण-मधुर होने के कारण वैष्णव कवियों और भक्तों ने ब्रजभाषा को ही प्रधानता दी । जितने काव्य लिखे गए, सब ब्रजभाषा में । हिन्दी की तरफ किसी ने दृष्टि ही नहीं की । तो भी वह दिल्ली के आसपास के जिलों में बोली जाती रही, और अब भी बोली जाती है ।

चन्दबरदाई हिन्दी का आदि कवि कहा जाता है । पर हिन्दी का जो रूप उसकी कविता में दिखाई पड़ता है, उससे भी विशेष स्पष्ट रूप उस समय वर्तमान था । यह बात अमीर खुसरो की कविता से अच्छी तरह समझ में आ जाती है । चन्दबरदाई और अमीर खुसरो के बीच में सिर्फ ६४ वर्ष का अन्तर है । इतने थोड़े अर्से में चन्दबरदाई की हिन्दी इतना विकास नहीं पा सकती कि वह खुसरो की हिन्दी हो सके । खुसरो के थोड़े ही दिन बाद कबीर हुए । कबीर की कविता भी खुसरो की हिन्दी में मिलती है । कविता-कौमुदी में कबीर की कविताएं देखिये । कितने ही पद और पद्य ऐसे मिलेंगे जो आजकल की हिन्दी में कहे गए जान पड़ते हैं । इससे मालूम होता है कि हिन्दी का विकास स्वतन्त्र रूप से होता

आ रहा है। चन्दबरदाई के समय में हिन्दी का एक अलग रूप था, जिसका प्रयोग उसने अपनी कविता में कहीं-कहीं किया है। उसे हम हिन्दी का आदि कवि इसी से मानते हैं कि उसके समकालीन या पहले के और किसी कवि की हिन्दी-कविता उपलब्ध नहीं। किन्तु यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि उस समय शुद्ध हिन्दी में भी कविता होती थी, और देहली के आसपास आजकल की खड़ी बोली की तरह हिन्दी बोली जाती थी। कारक, वचन, लिंग और पुरुष का प्रयोग खुसरो के समय में भी वैसा ही होता था, जैसा आजकल है। खुसरो की भाषा हमें इस सन्देह में डाल देती है कि क्या वास्तव मे हिन्दी का जन्म बारहवें शतक में हुआ? मेरी राय में खुसरो की व्याकरणसम्मत हिन्दी के लिए उसका जन्मकाल कई सौ बरस पीछे हटाना पड़ेगा और यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी का आदि कवि चंद नहीं, बल्कि कोई और होगा, जिसका पता नही।

मुसलमानों ने अपने अरबी-फारसी के शब्दों को हिन्दी में मिलाने का प्रयत्न भी किया। अमीर खुसरो ने इसी खयालसे खालिकबारी लिखी थी। बहुत से अरबी-फारसी के शब्द संस्कृत शब्दों के साथ, जहाज के पीछे छोटी नांव की तरह, जोड़ दिये गए, जो आज तक जुड़े ही चलते हैं। जैसे, कागज-पत्र शादी-ब्याह, खत-पत्र, चिट्ठी-रसां आदि। शाहजहां के समय तक हिन्दी में अरबी-फारसी के इतने शब्द आ चुके थे कि उर्दू के नाम से हिन्दी का एक नया रूपान्तर बन गया। उर्दू को बादशाही दरबार और कचहरियों में जगह मिली। महावरों से उसकी नींव दृढ़ की गई और रसीली कविताओं से उसका शृङ्गार किया गया। बेचारी हिन्दी पहले तो ब्रजभाषा की छाया में पनप न सकी, फिर उर्दू ने उसका रास्ता रोका। संवत् १८६० में ब्रजभाषा से मिली-जुली आगरा के आसपास की बोली में एक पुस्तक लिखी गई। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दी का विकास लल्लूलालजी के ही प्रारम्भ किये हुए रास्ते पर होता रहा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे हिन्दी का रूप ही बदल गया और उसने एक नये युग में प्रवेश किया। हिन्दी का मूल

ान्मस्थान दिल्ली के आसपास का प्रदेश है। व्रजभाषा तथा युक्तप्रांत ी कई बोलियों और उर्दू के कुञ्जों से निकलकर हिन्दी अब अपने असली रूप में विकास पा रही है। अब हिन्दी व्याकरणसम्मत एक शुद्ध और ाब प्रकार के शब्दों से पूर्ण भाषा है। हिन्दी-गद्य में प्रायः सब विषयों ६ ग्रंथ तैयार हो चुके है और होते जाते हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के वद्वानों द्वारा यह भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार की गई है। इसका ाहित्य भण्डार जिस तेजी से बढ़ रहा है, उसे देखते हुए हम हर्ष से हते हैं कि थोड़े ही वर्षों में यह भारत की प्रांतीय भाषाओं में सर्वोत्तम ाहित्यिक-स्थान ग्रहण करेगी।

गद्य-हिन्दी के क्रम-विकास का कोई उदाहरण हमें नहीं मिला। जो कुछ पुरानी पुस्तकें हमें मिली हैं, वे हिन्दी में नहीं, बल्कि उसके भिन्न-भिन्न रूपान्तरों में लिखी हुई हैं। हिन्दी का वास्तविक विकास सं० १९०० ते होने लगा है। यहाँ हिन्दी के पुराने रूपान्तरों और वास्तविक हिन्दी, दोनों के कुछ उदाहरण दिये जाते है—

महाराज पृथ्वीराज के समय के कुछ पत्र मिले हैं, उनमें से दो की प्रतिलिपि यहाँ दी जाती है।

श्रीहरा एकलिंगो जयति

श्री श्री चित्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुवर बाई का वारण गाम मोई आचारज भाई रूसीकेसजी बाँचजो अपन श्री दली मुँ भाई लंगरी राय जी आग्रा है जो श्रीदली सुँ श्री हजूर को बी खास रुका आयो है जो मारो भी पदारवा की सीखवी है नेदली काका जी षेद है जो कागद बांचत चला आवजो थानेमा आगे जाइगे पड़ेगा थाके वास्ते डाक बेठी है श्री हजूर बी हुक्म बेगीयो है जो थे ताकीद सुँ आवजो थारे मन्दर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सुँ आग्रा पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आद्यसो सं० ११४५ चैत सुदी १३। सही

यह विक्रम सं० १२३५ का पत्र है, उस समय जो संवत् प्रचलित था वह विक्रम संवत् से ९० वर्ष कम है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह है—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेशजी को चित्तौर से बाई साहब श्री पृथाकुँवरि बाई का संवाद बाँचना। आगे भाई श्री लंगरीरायजी श्री दिल्ली से आये हैं और श्री दिल्ली से हुजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काका जी अस्वस्थ हैं। सो कागज बाँचते चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है। श्री हुजूर(समरसिंह)ने भी आज्ञा दी है। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है सो हम लोगों के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सबेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मिती चैत सुदी १३, संवत् ११४५।

दूसरा पत्र—मेवाड़ की एक सनद, सं० १२२६

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधीराज तपे राजश्री श्री रावल जी श्री समरसी जो बचनातु दा अमा आचारज ठाकुर रुसीकेष कस्य थाने दली सु डायजे लाया अणी राज में ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है जो जनाना में थारा बंसरा टाला ओ दूजो जावेगा नहीं और थारी बैठक दली में ही जी प्रमाण परधान बरोबर कारण होवेगा।

भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) के महाराजाधिराज रावल समरसिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेश को—तुमको दिल्ली से दायजे में लाया। राज्य में तुम्हारी दवा ली जायगी, दवा पर तुम्हारा अधिकार है, और अन्तःपुर में तुम्हारे वंशजों के सिवाय दूसरा नहीं जायगा, और दरबार में तुमको प्रधान के बराबर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली में था।

सं० १४०७—महात्मा गोरखनाथ जी

स्वामी तुम्है तो सतगुरु अम्है तो सिष सबद एक पूछिबा, दया करि कहिबा, मन न करिबा रोस। पराधीन उपरान्ति बन्धन नाहीं, सु आधीन उपरांति मुकुति नाहीं।

सं० १६००—गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी

प्रथम की सखी कहत हैं, जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूब के इनके मन्दहास्य ने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुंज विषै शृंगार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई।

सं० १६२६—गंगा भाट (चंद छंद बरनन की महिमा से)

इतनो सुन के पातशाह जी श्री अकबर शाहाजी आदसेर सोना नरहरदास चारन को दिया।

सं० १६४८—गोस्वामी गोकुलनाथ जी

(चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता से) श्री गुसाईं जी के सेवक एक पटेल की वार्ता। सो वह पटेल वैष्णवराज नागर में रहे तो हतो। वा पटेल वैष्णव के दो बेटा हते और एक स्त्री हती।

सं० १६६०—नाभादास जी

अब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये।

सं० १६६९—गोस्वामी तुलसीदास

सं० १६६९ समये कुमार सुदी तेरसी बार शुभदीने लिषीतं पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अंस विभाग पूर्वसु जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मैशे प्रमान माना।

सं० १६७०—बनारसीदास जी

सम्यग् दृष्टी कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम ए तीन भाव जामें नाहीं सो सम्यग दृष्टी।

सं० १६८०—जटमल (गोरा बादल की कथा से)

हे बात कीसा चित्तौड़ गड़ के गोरा बादल हुआ है जीनकी वार्ता की किताब हींदवी में बनाकर तैयार करी है।....ये कथा सोल से अस्सी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई।

सं० १७६७—सूरति मिश्र (कविप्रिया की टीका से)

सीस फूल सुहाग अरु बेंदा भाग ए दोऊ आये पावड़े सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये हैं।

सं० १७८६—दास

धन पाये ते मूर्खहू बुद्धिवन्त ह्वैजातु है । और युवावस्था पाये ते नारी चतुर ह्वैजाति है । उपदेश शब्द लक्षणा सो मालूम होता है औ वाच्यहू में प्रगट है ।

सं० १८६० —लल्लूलाल जी

निदान श्रीकृष्णचन्द्र के पास बैठा सुन-सुन घबड़ा कर अर्जुन बोला कि हे देवता तू किसके आगे यह बात कहै है और क्यों इतना खेद करै है ।

सं० १८६०—सदल मिश्र (नासकेतोपाख्यान से)

कुंड में क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमें कमल कमल के फूलों पर भौंरे गूँज रहे थे, तिस पर हंस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते, आसपास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलें कुहुक रहे थे जैसा बसंतऋतु का घर ही होय ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् हिन्दी-गद्य का विकास बड़ी तेजी से हुआ । इससे पहले लोगों का ध्यान पद्य की ही ओर विशेष रहा, गद्य में पुस्तकें कम लिखी गईं । किन्तु हरिश्चन्द्र के बाद गद्य लिखने की ओर विद्वानों की इतनी रुचि हुई, कि पद्य का स्थान पीछे पड़ गया । पद्य से गद्य की विशेष उन्नति हुई, पद्य पिछड़ गया और गद्य ने एक परिमार्जित रूप धारण कर लिया । यहाँ हम हिन्दी-गद्य के नये युग के क्रम-विकास के कुछ उदाहरण उपस्थित करते हैं—

सं० १९११—राजा शिवप्रसाद

जब बिपत के दिन आते हैं तो सारे सामान ऐसे ही बन्ध जाते हैं । निदान राजा नल ने चलते समय दमयन्ती की साड़ी काटकर आधी उसके बदन पर रहने दी ।

सं० १९२०—स्वामी दयानन्द

वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय, किन्तु जो पदार्थ जैसा है, वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है ।

सं० १९२६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

फिर महाराज अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किये। फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि बंटाढार कर दिया, और शिफारिश ने भी खूब ही छकाया।

पंडित बालकृष्ण भट्ट

शब्द की आकर्षण-शक्ति न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से लवमात्र भी कम नहीं कही जा सकती। बल्कि शब्द की इस शक्ति को न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से विशेष कहना चाहिये। इसलिये कि जिस आकर्षण-शक्ति को न्यूटन ने प्रकट किया वह केवल प्रत्यक्ष में काम दे सकती है।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

उनके कथन का अवतरण देकर मल्लिनाथ ने उन्हें फटकार बताई है और लिखा है कि प्रसंग भी देखते हो या मनमानी हांकते हो। तुम्हें इस प्रयोग को सही साबित ही करना है तो पाणिनि-व्याकरण के पीछे न पड़कर और व्याकरण देखो। (किरातार्जुनीय)

अनाज महंगा होने से किसानों ही पर आफत नहीं आती; किन्तु मेहनत मजदूरी करनेवाले और लोगों पर भी आती है, यही नहीं, सभी लोगों पर उसका असर पड़ता है। (सम्पत्तिशास्त्र)

बाबू श्यामसुन्दरदास

इस गद्य की उत्पत्ति से यह तात्पर्य नहीं है कि पहले गद्य था ही नहीं; किसी न किसी रूप में था। नहीं तो क्या लोग पद्य में बातचीत करते थे? गद्य बोलचाल में अवश्य था, पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों और स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप में था। जिन्हें हम आजकल बोलियों का नाम देते हैं, जैसे आगरे के निकट व्रजभाषा बोली जाती है।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता की भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्त्तव्य है। जितना ही गहरा वह अपनी

प्रतिभा द्वारा इस सौन्दर्य-सागर में डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य में सफल होता है ।

पं० पद्मसिंह शर्मा

बिहारी की सखी का परिहास बड़ा ही लाजवाब है । रसिक मोहन सुनकर फड़क ही गये होंगे । इससे अच्छा साफ सच्चा सीधा और दिल में गुदगुदी करनेवाला मीठा मजाक साहित्य-संसार में शायद ही हो ।

हिन्दी-पद्य

हिन्दी-गद्य से पद्य में विशेष उन्नति हुई है । पद्य के द्वारा थोड़े समय और थोड़े शब्दों में अधिक प्रभावोत्पादक बातें कही जा सकती हैं । उसके कंठस्थ रखने में सुविधा होती है । अक्षरों, मात्राओं और पदों का नियमबद्ध संगठन होने से उसके पढ़ने में भी आनन्द आता है । तथा पद्य का सम्बन्ध गान-विद्या से है और गान-विद्या मनुष्यमात्र को प्रिय है, यहां तक कि वह पशु-पक्षी तक का हृदय भी माहित करने की शक्ति रखती है, इन कारणों से पद्य की ओर लोगों की स्वाभाविक रुचि बढ़ती गई । गद्य में उपर्युक्त गुण नहीं; इसी से पूर्वकाल में उसका प्रचार भी कम हुआ । परन्तु उपर्युक्त गुण न रहने पर भी आजकल पद्य की अपेक्षा गद्य का प्रचार अधिक क्यों है ? इसका कारण यह है कि गद्य म ही संसार का प्रतिदिन का व्यवहार चलता है । बोलकर जो कुछ काम हम लोग करते कराते हैं, सबमें गद्य का उपयोग करते है । इसलिए थोड़े ही परिश्रम से अपने मानसिक भावों को गद्य द्वारा प्रकट करने की शक्ति मनुष्य में आ सकती है । पद्य में यह सुगमता नहीं । उसके लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है, नियम सीखने पड़ते हैं, मस्तिष्क के विचारों को पद्य के पेचीले रास्ते से घुमा फिराकर निकालना पड़ता है, इसी से उसमें अधिक समय लगता है । अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी मनुष्य पद्य में इतनी पटुता नहीं प्राप्त कर सकता कि उसके द्वारा वह गद्य की तरह धाराप्रवाह रूप से बातचीत कर सके । पद्य के लिए

प्रतिभा है, पद्य-रचना के अधिकारी वे ही हैं । गद्य-रचना आसान है, क्योंकि वही प्रतिदिन की बोलचाल है । उसमें उन्नति करना सर्वसाधारण के लिए सुगम है ।

गद्य की अपेक्षा पद्य में जो विशेषताएं हैं, संस्कृत-साहित्य में भी उन पर विशेष ध्यान दिया गया है । हाथ-मुंह धोने, दातुन करने, बाल सँवारने आदि साधारण कामों की बातें भी मनु आदि ने पद्य में कही हैं । वही क्रम हिन्दी के आदि-काल में भी ग्रहण किया गया । उस समय के प्रतिभा-सम्पन्न लोगों को जो कुछ कहना हुआ, उन्होंने सब पद्य में कहा । आजकल मनुष्यों के जीवन-चरित्र प्रायः गद्य में लिखे जाते हैं, पूर्वकाल में पद्य में लिखे जाते थे । इसमें सन्देह नहीं कि गद्य की अपेक्षा पद्य में लिखा हुआ जीवन-चरित्र अधिक प्रभावशाली हो सकता है; परन्तु पद्य-रचना का कार्य उतना सुगम नहीं, जितना गद्य का ।

हिन्दी-पद्य के विषय में दो एक बातें और कहने की हैं । वे ये हैं कि संस्कृत-कविता में जैसा वर्णवृत्तों का प्राधान्य है, वैसा हिन्दी में नहीं । पुराने कवियों में तो शायद ही किसी ने वर्णवृत्तों में कविता की हो । यदि किसी ने की भी है, तो वर्णवृत्त के नियम का उसने अच्छी तरह से पालन नहीं किया है । मात्रिक छन्दों में अपने भावों को सरलतापूर्वक वर्णन करने में उसे जैसी सफलता मिलती है वैसी वर्णवृत्तों में नहीं । पुराने कवियों के विषय में एक यह बात भी ध्यान देने के योग्य है कि उनमें ऐसे कवियों की संख्या अधिक है जिन्होंने अन्य छन्दों की अपेक्षा घनाक्षरी और सवैया छन्दों में ही अधिक रचना की है । यों तो तुलसी ने दोहे चौपाई में ही सारी राम-कथा कह डाली है, बिहारी ने दोहों ही दोहों में रस भरा है, चन्द और केशव ने विविध छन्दों में अपने मनोभाव प्रकट किये हैं; किन्तु घनाक्षरी और सवैया लिखने वाले कवियों की ही संख्या अधिक है । आजकल इन छन्दों की उतनी कदर नहीं रही । अब कितने ही नये छन्दों का प्रचार बढ़ रहा है । आजकल वर्णवृत्तों में भी कविता सफलता के साथ होने लगी है ।

हिन्दी-पद्य-रचना के विषय मे एक बात विशेष उल्लेख के योग्य है कि इसमें प्रारम्भकाल से ही तुकबन्दी का प्रचार है । संस्कृत में जैसे अतुकान्त कविता का बाहुल्य है, हिन्दी में वैसा ही, बल्कि उससे भी विशेष, तुकबन्दी का प्राधान्य है । मात्रिक छन्दों में तुकबन्दी के बिना भाषा का माधुर्य कम हो जाता है । हां, वर्णवृत्तों में अतुकान्त रूप नहीं खटकता । पहले के कवि वर्णवृत्तों में प्रायः नहीं के बराबर ही कविता रचते थे, अतः बेतुकी की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया ।

हिन्दी और वैष्णव

वैष्णव सम्प्रदाय में चार भेद हैं—विष्णु-सम्प्रदाय, रामानुज-सम्प्रदाय, मध्व-सम्प्रदाय और वल्लभ-सम्प्रदाय । इन चारों सम्प्रदायों के मुख्य आचार्य विष्णु, रामानुज, मध्व और वल्लभ थे । विष्णुस्वामी द्रविड़ देश के रहने वाले थे । इनका जन्म दिल्ली में किसी राजा के मन्त्री के घर हुआ था । इन्होंने शाङ्कर-मत का खंडन किया है । रामानुज स्वामी भी द्रविड़-देश-निवासी थे । इनके पिता का नाम "केशव" और माता का "मति" था । मध्वाचार्य का जन्म मदरास के रजतपीठ जि० कनारा में सं० १२५४ में हुआ । इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट था । वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ में आन्ध्रदेश (दक्षिण) में हुआ । इन्होंने भागवत दशमस्कंध का पद्य में अनुवाद किया है ।

राम और कृष्ण वैष्णवों के प्रधान उपास्य-देव हैं । ये विष्णु के अवतार माने जाते हैं । चन्दबरदायी ने रासो के पहले ही छंद में गुरु को नमस्कार कर साकार लक्ष्मीश विष्णु को स्मरण किया है । आगे चलकर उसने दस अवतारों की कथा अलग-अलग लिखी है । इससे मालूम होता है कि उसके चित्त पर वैष्णव धर्म का विशेष प्रभाव था । और हिन्दी का आदि कवि भी वही माना जाता है । अतएव यह कहा जा सकता है कि वैष्णवों ही ने हिन्दी का उसके जन्मकाल से लालन-पालन किया है । हिन्दी के साथ वैष्णवों का अधिक सम्बन्ध होने का एक

कारण और भी है। वह यह है कि हिन्दी उस प्रदेश की भाषा है, जहां वैष्णवों के आराध्यदेव राम और कृष्ण ने अवतार धारण किया था। जिस स्थान पर उन्होंने लीला की, उस स्थान, वहां के निवासियों और उनकी भाषा से वैष्णवों का प्रेम होना स्वाभाविक ही है। राम और कृष्ण का कीर्तन करने में वैष्णव कवियों का एक तांता-सा बँध गया। हिन्दी में आज तक शायद ही ऐसा कोई कवि हुआ हो जिसने किसी न किसी रूप में राम-कृष्ण का गुण-गान न किया हो।

पन्द्रहवीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द हुए। उन्होंने मानो हिन्दी-भाषा में वैष्णव धर्म की नींव दृढ़ कर दी। उनके पश्चात् ही भक्त-शिरोमणि सूरदास ने सं० १५४० में जन्म लिया। सूरदास ने अपनी कविता के द्वारा हिन्दी का गौरव मुसलमान सम्राट् अकबर के दरबार तक फैला दिया। इसी शताब्दी में दक्षिण देश से आकर स्वामी वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति को और भी चमत्कृत कर दिया। सूरदास और वल्लभाचार्य की संयुक्त शक्ति ने वैष्णव-सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति की एक बाढ़-सी ला दी। इसी अवसर में स्वामी हरिदास, हितहरिवंश और नन्ददास की मधुर ध्वनि गूँजने लगी। वैष्णवदल में एक से एक प्रतिभाशाली कवियों ने जन्म लेकर हिन्दी-भाषा द्वारा-जनता का मन ऐसा खींच लिया कि देश में चारों ओर हिन्दी कविता सहस्र धारा होकर उमड़ चली। अभी लोग इस आनन्द-लहरी में स्नान करके तृप्त हो ही रहे थे कि हिन्दी-कवियों के शिरोमणि तुलसीदास आ पहुँचे। इनकी कलम ने हिन्दी में वैष्णव-धर्म को अजर अमर बना दिया। आज इनके समान प्रतिभाशाली कवि हिन्दी में कोई नहीं। आज अपढ सपढ़ सब में तुलसीदास वैष्णव-धर्म की चर्चा करते हुए पाये जाते हैं। तुलसीदास के समान आज भारतवर्ष भर में किसी हिन्दी-कवि का आदर नहीं।

वैष्णव कवियों की कविता का रस चखकर मलिक मुहम्मद जायसी और रहीम ऐसे कितने ही मुसलमान कवि अपनी कविता द्वारा वैष्णव-

धर्म का प्रचार करने लगे । और रसखान तो जाति-पाँति सब छोड़कर स्वयं वैष्णव हो गये।

सूर और तुलसी के पीछे हिन्दी के जितने कवि हुए, सब राम और कृष्ण के कीर्तन में उत्तरोत्तर वृद्धि करते चले आये। ग्रामीण कवियों ने अपनी रोज की बोलचाल में भी कविता रची । उसके द्वारा गांव के अपढ़ लोगों में वैष्णव-धर्म का खूब प्रचार हुआ। एक उदाहरण देखिये—

हरे हरे केसवा हरु रे कलेसवा तोरा के रटत महेसवा रे।
तोरे नाम जपत बा पुजत बा सबसे प्रथम गनेसवा रे ॥
जल बरसैला धान सरसैला सुख उपजैला मघवा रे।
प्रागदास प्रहलदवा के कारन रघवा ह्वै गैलें बघवा रे ॥

*　　*　　*

गाँव के लोग अपनी रोजमर्रा की बोलचाल की कविता को बड़े ध्यान से सुनते और खूब समझते हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दी-भाषा द्वारा वैष्णव-धर्म का सम्मान बढ़ा और वैष्णव-धर्मके साथ हिन्दीका प्रचार हुआ।

हिन्दी और जैन

जैन-साहित्य में हिन्दी का रूप सोलहवीं शताब्दी से स्पष्ट होने लगा है। उसके पहले वह प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसी गुँथी थी कि हम उसे हिन्दी नहीं कह सकते । सं० १५८० में ठकुरसी नामक एक कवि ने "कृपण-चरित्र" नामक एक छोटी-सी कविता-पुस्तक लिखी। उसमें से एक छप्पय हम यहां उद्धृत करते हैं—

कृपण कहै रे मीत मज्झु घरि नारि सतावै।
जात चालि धणु खरचि कहै जो मोह न भावै ॥
तिहि कारण दुब्बलौ रयण दिन भूख न लागै।
मीत मरणु आइयौ गुज्झु आंखौ तू आगे ॥
ता कृपण कहैरे कृपण सुनि मीत न कर मन मांहि दुखु।
पीहरि पठाइ दै पापिणी ज्यों को दिण तूं होइ सुखु ॥

*　　*　　*

इस छन्द में हिन्दी भाषा की एक स्पष्ट मूर्ति निकल आने में बहुत थोड़ी कसर दिखाई पड़ती है।

सत्रहवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास हुए। इनका जन्म सं० १६४३ में, जौनपुर नगर में हुआ। इन्होंने अपनी कविता में हिन्दी का रूप स्पष्ट कर दिया। इनके रचे चार ग्रन्थ, बनारसीविलास, नाटक समय-सार, अर्द्धकथानक, और नाममाला (कोष) प्रसिद्ध हैं। अर्द्धकथानक इनका सबसे अच्छा ग्रन्थ है। इसमें इन्होंने अपना ५५ वर्ष का आत्म-चरित लिखा है। इस ग्रन्थ से इनकी कविता की थोड़ी-सी बानगी आगे दिखलाते हैं।

सं० १६७३ में आगरे में प्लेग का प्रकोप हुआ। उसका वर्णन इन्होंने ऐसा किया है—

इस ही समय ईति बिस्तरी, परी आगरे पहिली मरी।
जहां तहां सब भागे लोग, परगट भया गांठ का रोग॥
निकसै गांठि मरै छिन मांहि, काहू की बसाय कछु नांहि।
चूहे मरें वैद्य मर जांहि, भयसो लोग अन्न नहिं खांहि॥

* * *

जब अकबर बादशाह के मरने का समाचार जौनपुर पहुंचा, उस समय वहां के निवासियों की क्या दशा हुई, उसका वर्णन सुनिये—

इसही बीच नगर में सोर। भयो उदंगल चारिहु ओर॥
घर घर दर दर दिये कपाट। हटवानी नहिं बैठें हाट॥
भले वस्त्र अरु भूषण भले। ते सब गाड़े धरती तले॥
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र। लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
ठाढ़ो कम्बल अथवा खेस। नारिन पहिरे मोटे वेस॥

* * *

ऊंच नीच कोऊ न पहिचान। धनी दरिद्री भयें समान।
चोरी धारि दिसै कहुं नांहि। योंही अपभय लोग डरांहि॥

एक बार बनारसीदास परदेश में अपने साथियों के सहित कहीं ठहरे, इतने में पानी बरसने लगा। तब सब भागकर सराय में गये, वहां जगह नहीं थी। बाजार में कहीं खड़े होने का स्थान नहीं था। सबके किवाड़ बन्द थे। उस समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

फिरत फिरत फावा भये, बैठो कहै न कोइ।
तलै कींच सों पग भरे, ऊपर बरसत तोइ॥
अंधकार रजनी विषै, हिमरितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यो, पुरुष उठ्यो लै बांस॥

*　　　*　　　*

बनारसीदास प्रतिभावान् कवि थे। इनके पश्चात् भूधरदास आदि और भी कई अच्छे कवि हुए, जिन्होंने हिन्दी-भाषा में बड़ी ललित कविताएं रची है। जैन विद्वानों ने पूर्वकाल से ही हिन्दी की उन्नति और उसके प्रचार में हाथ बंटाया है। आज भी हिन्दी के लिए उनका उद्योग कम नही।

हिन्दी और सिक्ख

सिक्खों के आदि गुरु नानकदेव ने हिन्दी का बहुत प्रचार किया। उन्होंने यात्राएं भी बड़ी दूर-दूर की की थी। सिक्ख विद्वानों का कथन है कि वे जहां-जहां जाते थे वहां हिन्दी ही में धर्मोपदेश करते थे। उनके कहे हुए वचन सब हिन्दी ही में है। सिक्खों के पांचवे गुरु अर्जुनदेवजी हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक थे। अपने से पहले हुए गुरुओं की वाणी का संग्रह करके "गुरु ग्रंथ साहब" की रचना उन्होंने ही की है। यह सिक्खों का धर्म-ग्रन्थ है, और अब तक करतारपुर में मौजूद है। गुरु तेगबहादुर ने औरंगजेब को हिन्दी ही में संसार की असारता का उपदेश दिया था।

सिक्ख-सम्प्रदाय में हिन्दी का सबसे अधिक सम्मान गुरु गोविन्दसिंह के समय में हुआ। गुरु गोविन्दसिंह का वर्णन कविता-कौमुदी में आ गया है। ये स्वयं हिन्दी के अच्छे कवि थे। हिन्दी में शिक्षा देने के लिए

इन्होंने कई पाठशालाएं खोली थीं। इनके सिवा भाई सन्तोषसिंह ने भी हिन्दी का बहुत कुछ हित-साधन किया है। ये सिक्खों में हिन्दी के महाकवि कहे जाते हैं। इनके रचे "सूर्यप्रकाश" नामक ग्रन्थ को सिक्ख लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं।

काशी में शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु गोविन्दसिंह के भेजे हुए सन्त गुलाबसिंह ने भी हिंदी की बड़ी सेवा की है। इनके लिखे हुए चार ग्रन्थ आजकल उपलब्ध होते हैं। सब हिन्दी में हैं, और वेदान्त-प्रेमी सिक्खों में उनका बड़ा आदर है।

वर्तमानकाल में भी सिक्ख-सम्प्रदाय में ज्ञानी ज्ञानसिंह द्वारा हिन्दी का अच्छा प्रचार हो रहा है। इन्होंने हिन्दी कविता में "ग्रन्थप्रकाश" नामक ग्रंथ की रचना की है।

हिन्दी और गुजराती

गुजराती का हिन्दी के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। अच्छी हिन्दी जाननेवाला थोड़े ही परिश्रम से गुजराती सीख सकता है।

गुजरात में गुजराती भाषा के साहित्य का जन्म नरसी मेहता और मीराबाई के समय से हुआ। मीराबाई की जीवनी और कुछ कविताएं कविता-कौमुदी में दी हुई हैं। उससे यह साफ प्रकट होता है कि मीराबाई की कविता की भाषा कैसी है। कहीं-कहीं मारवाड़ी और गुजराती बोलचाल के शब्द आ गए हैं, नहीं तो वह विशुद्ध हिन्दी ही है। यहां हम नरसी मेहता का एक पद लिखते हैं। उससे पाठक आसानी से समझ लेंगे कि गुजराती और हिन्दी में कितना अन्तर है।

वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीड़ पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे तोए, मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोकमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच, काछ, मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन नव झाले हाथ रे॥

मोह माया व्यापे नहि जेने दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
रामनामशूं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे॥
वणलोभी ने पटरहित छे काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैंयों तेनुं दर्शन करतां कुल एकोतेर तार्यां रे॥

बहुत थोड़े शब्द इसमें ऐसे हैं, जो हिन्दीवाले न समझ सकते हों; परन्तु भाव तो सब समझ लेंगे।

नरसी मेहता के पहले गुजरात में गुजराती भाषा बोली तो जाती थी; किन्तु उसका कोई साहित्य नहीं था। ब्रजभाषा की कविता को ही विद्वान् और कवि लोग पढ़ते और लिखते थे। गुजराती में ब्रजभाषा का आधिक्य है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि वल्लभ-सम्प्रदाय का आदर गुजरात में बहुत है। वल्लभ-सम्प्रदाय का भक्ति-साहित्य ब्रज-भाषा में बहुत है। इससे गुजरात में धार्मिक-भाव के साथ ब्रजभाषा का भी प्रभाव बढ़ गया।

गुजराती कवियों ने हिन्दी के बहुत-से छन्दों को अपनाया है और उनमें रचनाएं की हैं।

हिन्दी में जैसे तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद और गिरधर की कुण्डलियां प्रसिद्ध हैं, वैसे ही गुजराती में नरसी मेहता की प्रभाती, मीरा-बाई के भजन, सामल के छप्पय, दयाराम की गरभियां, और नर्मदाशंकर के रोला छन्द की महिमा है। सुप्रसिद्ध कवि दयाराम की कविता तो हिंदी से बहुत ही मिलती-जुलती है। लीजिए, एक उदाहरण देखिये—

हरदम कृष्ण कहे श्रीकृष्ण कहे तू ज़बां मेरी।
यही मतलब खातर करता हूं खुशामद मैं तेरी॥
दही और दूध शक्कर रोज खिलाता हूं तुझे।
तो भी हर रोज हरनाम न सुनाती मुझे॥
खोई जिन्दगानी सारी सोइ गुनाह माफ़ तेरा।
दया मत भूले प्रभुनाम आखिर वक्त मेरा॥

* * *

बंगला और मराठी की अपेक्षा गुजराती का हिन्दी से अधिक सम्बन्ध है। इस समय भी गुजराती साहित्य में हिन्दी की बहुत छाया वर्तमान है।

हिन्दी और मुसलमान

मुसलमान जब से इस देश में आये, तभी से हिन्दी के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा। राज्य का सब कामकाज हिन्दी में ही होता था। मुहम्मद क़ासिम, महमूद ग़ज़नवी और शहाबुद्दीन गोरी ने हिन्दुस्तान में अपना दफ्तर हिन्दी में ही रक्खा था। उनकी तवारीखों से इन बातों का साफ़-साफ पता चलता है। हसन गांगू ब्राह्मणी ने अपने हिसाब का दफ्तर गांगू ब्राह्मण को सौंपा था।

अमीर ख़ुसरो ने हिन्दी में बहुत से दोहे, पहेलियां, गीत, दो अर्थी, अनमिल और मुकरनी आदि लिखे। अमीर ख़ुसरो का जन्म सं० १३१२ और मरण सं० १३८२ में हुआ। दिल्ली में अब तक उनकी कब्र है और उस पर मेला भी लगा करता है। उन्होंने खालकबारी नामक एक पुस्तक लिखी, जिसमें अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्द पद्य में बताये गये हैं। हिन्दुओं को मुसलमानों की भाषा से और मुसलमानों को हिन्दुओं की भाषा से परिचित कराने का ख़ुसरो ने यह सब से पहला प्रयत्न किया था। ख़ुसरो ने जिस हिन्दी में छन्द रचे हैं, वह अवश्य ही उनके समय की बोलचाल की भाषा होगी। और किसी कवि की कविता उस हिन्दी में नहीं मिलती। यहां ख़ुसरो की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

खालकबारी

बया बिरादर आवरे भाई। बनशान मादर बैठ री माई।
मुश्क काफ़ूर अस्त कस्तूरी कपूर। हिन्दवी आनन्द शादा और सरूर।
मूश चूहा गुर्बः बिल्ली मार नाग। सोज़नो रिश्तः बहिन्दी सुई ताग॥

* * *

आंखों का एक नुसखा

लोध फिटकरी मुर्दासङ्ग । हल्दी, जीरा एक-एक टङ्ग ।।
अफ़ीम चनाभर मिर्च चार । उरद बराबर थोथा डार ।
पोस्त के पानी पोटली करे । तुरत पीर नैनों की हरे ।।

* * *

पहेलियां

तरवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया ।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया ।
आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी ।
"अमीर खुसरो" यों कहें अपने नाम "न बोली" ।। "निबोरी" ।

फ़ारसी बोले आईना । तुरकी सोचे पाईना ।
हिन्दी बोलते आरसी आये । मुंह देखे जो इसे बताये ।।
"आईना" ।

बीसों का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ।।
"नाखून" ।

जलकर उपजे जल में रहे । आंखों देखा "खुसरो" कहे ।।
"काजल" ।

आदि कटे ते सब को पारै । मध्य कटे ते सब को मारै ।
अन्त कटे ते सब को मीठा । सो "खुसरो" मैं आंखों दीठा ।
"काजल" ।

पहेलियों के सिवा खुसरो ने स्त्रियों के गाने के लिए बहुत से गीत भी लिखे थे । नमूने के तौर पर उनका एक गीत यहां दिया जाता है—

अम्मा, मेरे बाबा को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया ।।
अम्मा, मेरे भाई को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा भाई तो बाला री, कि सावन आया ।।

अम्मा, मेरे मामूं को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा मामूं तो बाका री, कि सावन आया ।

खुसरो की "मुकरनियां" भी बहुत मशहूर हैं ।

मुकरनी—

सिगरी रैन मोहि संग जागा ।
भोर भई तब बिछुड़न लागा ॥
उसके बिछुड़े फाटत हिया ।
क्यों सखि, साजन ? ना सखि, "दिया" ॥ १ ॥
सरब सलोना सब गुन नीका ।
वा बिन सब जग लागे फीका ।
वाके सर पर होवे कौन ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, "लौन" ॥ २ ॥
वह आवे तब शादी होय ।
उस बिन दूजा और न कोय ।
मीठे लागे वाके बोल ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, ढोल ॥ ३ ॥

एक दिन खुसरो राह में चले जारहे थे । चलते-चलते प्यास लगी । एक पनघट पर पहुंचे । चार पनिहारिनें पानी भर रही थीं । खुसरो ने पानी मांगा । उनमें से एक इन्हें पहचानती थी । उसने अपनी सहेलियों से कहा कि देख, खुसरो यही है, जिसके गीत गाये जाते हैं । उनमें से एक ने खुसरो से कहा, मुझे खीर की कविता सुनाओ, तब पानी पिलाऊंगी । दूसरी ने चरखे पर, तीसरी ने ढोल पर और चौथी ने कुत्ते पर कविता सुननी चाही । खुसरो ने चारों का उत्तर एक ही छन्द में दिया—

खीर पकाई जतन से चरखा दिया जला ।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा ॥ ला,पानी पिला ॥

इस तरह के बेसिर-पैर के छन्द का नाम अनमिल है । खुसरो कभी-कभी "ढकोसला" भी कहा करते थे । एक ढकोसला यह है ।—

भादों पक्की पीपली, चू चू पड़े कपास ।
बी महतरानी दाल पकाओगी, या नङ्गा ही सो रहूं ॥

खुसरो ने "दो सखुने" भी बहुत से कहे हैं । कुछ ये हैं—

गोश्त क्यों न खाया—डोम क्यों न गाया ? गला न था ।
जूता क्यों न पहना—समोसा क्यों न खाया ? तला न था ।
अनार क्यों न चखा—वज़ीर क्यों न रखा ? दाना न था ।
पण्डित क्यों पियासा—गदहा क्यों उदासा ? लोटा न था ।
पण्डित क्यों न नहाया—धोबिन क्यों मारी गई ? धोती न थी ।
सौदागर रा च मे बायद—बूचे को क्या चाहिये ? दोकान ।
तिश्ना रा श मे बायद—मिलाप को क्या चाहिये ? चाह ।
शिकार बचा मे बायद करद—क़ूबते मग़ज़ को क्या चाहिये ? बादाम ।

खुसरो के मुहल्ले में चम्मो नाम की एक बुढ़िया की दूकान थी । वह लागों को भांग और चरस पिलाया करती थी । भंगेड़ियों और गंजेड़ियों का एक खास जमघट उसके यहां लगा रहता था । खुसरो उसी रास्ते से दरबार आते-जाते और टहलने निकला करते करते थे । बुढ़िया कभी-कभी हुक्का भरकर सामने खड़ी होजाती । खुसरो यह खयाल करके कि बुढ़िया का दिल दुखाना ठीक नहीं, कभी-कभी एक-दो फूंक ले लेते थे । एक दिन उसने कहा, "आप कवि हैं । हजारों गीत, गजल, राग, रागिनी लिखा करते हैं, कोई चीज इस दासी के नाम से भी बना दीजिये । आपकी कृपा से इस दासी का भी नाम रह जायगा ।" इसके बाद वह तकाजे पर तकाजे पर करने लगी । एक दिन खुसरो ने उसके नाम से यह कह ही डाला—

औरों की चौपहरी बाजे चिम्मो की अठपहरी ।
बाहर का काई आये नाहीं आयें सारे शहरी ॥
साफ़सूफ़कर आगे राखे जिसमें नाहीं तूसल ॥
औरों के जहं सींक समावे चिम्मो के तहं मूसल ॥

अर्थात्, बादशाहों के यहां तो सिर्फ चार पहर ही नौबत बजती है, इसके यहां आठो पहर कूंडी, सोटा बजता रहता है । बाहर का कोई आता

नहीं, शहर ही के सफेदपोश आते हैं। भङ्ग को साफ़-सूफ़ करके यह आगे रखती है, जिसमें जरा भी कूड़ा-करकट नहीं होता। ऐसी गाढ़ी भांग छनती है कि औरों की भांग में जहां सींक खड़ी हो सकती है, वहां चिम्मो की भांग में मूसल खड़ा होजाता है।

कहना नही होगा कि खुसरो की बदौलत चिम्मो का भी नाम रह गया। खुसरो ने फारसी और हिन्दी की मिलावट के छन्द भी लिखे हैं। उनमें एक यह है:—

ज़े हाल मिसकी मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैनां बनाय बतियां ॥
कि ताबे हिजरां न दामे ऐ जां! न लेहु काहे लगाय छतियां ॥
शबाने हिजरां दराज़ चूं ज़ुल्फ़ व रोज़े वसलत चु उम्र कोतह।
सखी पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां ॥

खुसरो ने एक मौके पर यह दोहा कितना सुन्दर कहा है—

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुं देश ॥

* * *

अकबर के समय में तो हिन्दी का महत्व बहुत बढ़ गया था। अकबर का जन्म सं० १५९९ में अमरकोट में हुआ। १६६२ वि० तक उसने राज किया। वह विशेष पढ़ा-लिखा न था, पर प्रतिभाशाली और सत्सगी था। उसके दरबार में हिन्दी के अच्छे-अच्छे कवि, पण्डित और गवैये रहते थे। उसका समय हिन्दी का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। कुछ छन्द यहां लिखे जाते हैं, जो अकबर के बनाये हुए कहे जाते हैं:—

(१)

जाको जस है जगत में, जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि ॥

(२)

साहि अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद बिलोकन बालहिं।
आहट ते अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं ॥

त्यों बलि बेनी सुधारि धरी सु भई छवि यों ललना अरु लालहिं।
चम्पक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहिं॥

(३)

केलि करै विपरीत रमै सु अकब्बर क्यों ;स इतो सुख पावै।
कामिनी को कटि किंकिनि कान किधौं गनि पीतम के गुन गावै॥
बिन्दु छुटो तन में सु लालट तें यों लट में लटको लगि आवै।
साहि मनोज मनो चित मै छबि चंद लये चकडोर खिलावै॥

अपने बेटे जहांगीर को भी अकबर ने हिन्दी सिखाई,और अपने पोते ख़ुसरो को तो छः वर्ष की अवस्था ही में हिन्दी सीखने के लिए भूदत्त भट्टाचार्य के सुपुर्द कर दिया था। शाहजहां अपनी मातृभाषा के समान हिन्दी-भाषण में अधिकार रखता था। शाहजहां के दरबार मे हिन्दी-कवियों का अच्छा सम्मान था। उसका बड़ा लड़का दारा तो हिन्दी और संस्कृत में अपने बाप-दादों से भी बढ़कर निकला। उसने उपनिषदों का फ़ारसी भाषा में उल्था किया। औरङ्गजेब यद्यपि हिन्दुओं से बड़ा द्वेष रखता था, हिन्दी से विमुख वह भी नहीं था। एक बार शाहज़ादा मुहम्मद आज़म ने कुछ आम औरङ्गजेब के पास भेजे और प्रार्थना की कि इनके नाम रख दो। औरङ्गजेब ने बेटे को लिखा—"तुम स्वयं विद्वान् होकर बूढ़े बाप को क्यों कष्ट देते हो? खैर, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए आमों का नाम मैंने 'सुधारस' और 'रसना-विलास' रक्खा है"—

शाही दरबारों में हिन्दी-गवैयों का भी बड़ा आदर था। तानसेन को अकबर ने पहले ही मुजरे में एक करोड़ का इनाम दिया था। बैरमखां खानखाना ने बाबा रामदास को एक लाख रुपये एक ही दिन दे डाले थे। शाहजहां ने महापात्र जगन्नाथराय त्रिशूली के बराबर रुपये तौल दिये थे। उसी ने कलावन्त लाल खाँ को 'गुणनिधि की उपाधि दी थी। हिन्दी का इतना आदर था कि मुसलमान गवैये भी हिन्दी की राग-रानियां गाते थे। हिन्दू गवैयों का तो कहना ही क्या है, मुसलमान गवैये अब तक भी हिन्दी राग-रागनियां गाते हैं।

मुसलमानी राजत्वकाल का इतिहास और हिन्दी का इतिहास यदि मिलाकर देखा जाय तो यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि मुसलमानों की उन्नति के साथ हिन्दी की उन्नति हुई है और उनके अधःपतन के साथ एक बार हिन्दी का भी रंग फीका पड़ गया है। जब मुसलमानी शासन का सूर्य उन्नति पर था, हिन्दी के बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कवि उसी समय में हुए थे। मुसलमानों की उन्नति के समय हिन्दी इस तरह फूली फली कि उसके सुमधुर सुगन्ध और स्वाद से आजकल हम लोग बहुत आनन्द पा रहे हैं। हिन्दी के इस नाते से मुसलमानों की ओर हमारा प्रेम बढ़ जाता है। हिन्दी की इस उन्नति से मुसलमानों को गर्व होना चाहिए।

बहुत से मुसलमान कवियों ने हिन्दी में कविता की है। उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं। साथ ही यह भी लिख दिया जाता है कि उनके रचे हुए कौन-कौन से ग्रथ उपलब्ध हैं—

कवि	ग्रन्थ
१—अमीर ख़ुसरो	फुटकर
२—मलिक मुहम्मद जायसी	कविता-कौमुदी में वर्णन देखिये।
३—अकबर	फुटकर
४—क़ादिरबख़्श	,,
५—अब्दुलर्रहीम खानखाना	कविता-कौमुदी में वर्णन देखिये।
६—उसमान	,, ,, में देखिये।
७—सैयद इब्राहीम (रसखान)	,, ,, ,,
८—मुबारक	,, ,, में देखिये।
९—अहमद	वेदान्त कविता
१०—वहाब	बारहमासा
११—अब्दुर्रहमान	यमक शतक
१२—जलील	फुटकर
१३—याक़ूब खाँ	रसिक-प्रिया की टीका
१४—जुल्फ़िकार	सतसई का टीका

कवि	ग्रन्थ
१५—अनवर खाँ	अनवर चंद्रिका
१६—प्रेमी यमन	अनेकार्थ नाम माला
१७—आजम	नखशिख
१८—सैयद गुलाम नबी	रसप्रबोध, अङ्गदर्पण
१९—तालिब अली	नखशिख
२०—नबी	फुटकर
२१—आलम	कविता-कौमुदी देखिये ।

किसी-किसी मुसलमान कवि न तो हिन्दी में ऐसी अच्छी कविता की है, कि उसके एक-एक पद पर कितने ही हिन्दू कवियों की कविता न्योछावर कर दी जा सकती है । अंत में बड़े साहस और संतोष के साथ हम यह कह सकते हैं कि पिछले सहृदय मुसलमान बादशाहों और कवियों ने हिन्दी की जो सेवा की है वह कभी न कभी अवश्य हिन्दू-मुसलमानों के भाषा विषयक विरोध को दूर करने में समर्थ होगी ।

हिन्दी और उर्दू

उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं, वह हिन्दी का एक रूपान्तर मात्र है । हिन्दी में अरबी, फारसी और तुर्की के कुछ शब्दों के आजाने से वह कोई नई भाषा नहीं कहला सकती । और जब हिन्दी उर्दू का व्याकरण एक है तो वह अलग स्वतन्त्र भाषा कैसे कहला सकती है ? इसी तरह आजकल कालेजों में अंग्रेजी शब्दों से लसी हुई जो हिन्दी बोली जाती है, वह कोई नई भाषा नहीं कहला सकती । हिन्दी और उर्दू में सिर्फ इतना ही अंतर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और संस्कृत शब्दों की उसमें बहुलता रहती है; उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी और फारसी के शब्दों की अधिकता रहती है । गुजराती भाषा के भी दो रूप हैं, एक पारसियों की गुजराती, दूसरी गुजरातियों की गुजराती । पारसियों की गुजराती में अरबी, फारसी के शब्द अधिक

होते हैं और गुजरातियों की गुजराती में संस्कृत और अपभ्रंश के शब्द। पर गुजराती भाषा के अलग-अलग नाम नहीं। दोनों रूपों का एक ही नाम है। ऐसा ही सम्बन्ध हिन्दी और उर्दू का है।

मुसलमानों के आने के पहले ही से अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द यहां भी भाषा में प्रचलित थे। यह बात चदबरदाई की कविता से स्पष्ट मालूम होती है। जब मुसलमानों का संसर्ग इस देश में बढ़ा, तब उनकी भाषा के बहुत से शब्द भी हमारी बोलचाल में बढ़ गए। बोल-चाल समझने के सुभीते के लिए हिन्दू-मुसलमान दोनों ने हिन्दी में अरबी फारसी के शब्दों को मिलने दिया। शाहजहां के वक्त में इस मिश्रित भाषा का नाम उर्दू पड़ गया। "उर्दू" नाम होने के पहले ही कबीर, सूर और तुलसी की कविता में अरबी फारसी के बहुत से शब्द व्यवहृत हुए हैं। तुर्की में उर्दू शब्द का अर्थ है "लश्कर का बाजार"। यह मिली-जुली बोली लश्कर के बाजार में, जहाँ मुल्क-मुल्क और शहर-शहर के आदमी जमा होते थे, बोली जाती थी। वहीं से इस बाजारू हिन्दी का नाम उर्दू हुआ। इसका एक पुराना नाम "रेख़ता" भी है। कबीर साहब ने कुछ "रेख़ते" लिखे हैं, पर वहाँ "रेखता" उनके एक खास छन्द का नाम है, बोली का नहीं। यद्यपि उनके रेख़तों की भाषा "रेख़ता" ही है।

शम्सुलउल्मा मौलवी मुहम्मद हुसेन साहब आजाद ने "आबेहयात" के छठे पृष्ठ पर जो यह लिखा है कि "इतनी बात हर शख़्स जानता है कि हमारी उर्दू ज़बान ब्रजभाषा से निकली है" (पृष्ठ ६); "संस्कृत और ब्रजभाषा की मिट्टी से उर्दू का पुतला बना है" (पृष्ठ ३४) वह ठीक नहीं है। उर्दू ब्रजभाषा से नहीं निकली, बल्कि हिन्दी ही का नाम उर्दू रख लिया गया है। अमीर खुसरो की पहेलियों और कबीर के रेख़तो से स्पष्ट मालूम होता है कि हिन्दी चन्दबरदाई के पहले से स्वतन्त्र रूप से बोली जाती रही है, और उसी में अरबी फारसी के शब्द जगह पाकर घुस बैठे। जिस भाषा का नाम शाहजहाँ के वक्त में "उर्दू" पड़ा, वह

उसके बहुत पहले से बोली जाती रही है। वह ब्रजभाषा के समान ही पुरानी भाषा है। हम उर्दू को ब्रजभाषा से निकली हुई नहीं मानते, वह हिन्दी है; सिर्फ उसका नाम नया रक्खा गया है। यह एक बड़ी दिल-चस्प बात है कि अरबी फारसी के शब्दों को मजबूर होकर हिन्दुस्तानी ढाँचे में ढल जाना पड़ा है। उन्होंने अपने को हिन्दी-व्याकरण के हवाले कर दिया, जिसने उनके तन पर अपना जामा पहना दिया। कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं।

प्राय: सभी शब्दों का बहुवचन हिन्दी-व्याकरण के नियमानुसार है। जैसे,

आदमी का	आदमियों—		
मेवा का	मेवों	न कि	मेवाजात
निशान का	निशानों	न कि	निशानात
मुश्किल का	मुश्किलों	न कि	मुश्किलात
दफ़ा का	दफ़ाओं	न कि	दफ़ात
औरत का	औरतों, औरतें	न कि	मस्तूरात
मज़दूर का	मज़दूरों	न कि	मज़दूरान

इत्यादि; अब कुछ लोग उर्दू में अरबी फारसी के शब्दों का असली बहुवचन लिखने लगे हैं। पर ऐसा करके वे भाषा को और भी कठिन बना रहे हैं और उसकी सीमा संकुचित कर रहे हैं। मामूली बोलचाल में उन शब्दों का हिन्दी-रूप ही प्रचलित है और रहेगा।

फारसी शब्दों से बहुत सी क्रियाएं भी हिन्दी के ढंग पर बन गई है। जैसे—

शरम से	शरमाना
गुज़र से	गुज़रना
फ़रमान से	फ़रमाना
क़बूल से	क़बूलना
बदल से	बदलना
बख़्श से	बख़्शाना

काहिली से कहलाना
मुनकिर से मुकरना इत्यादि।

कुछ क्रियाएं करना, होना आदि शब्दो के संयोग से बन गई ह । जैसे; खुश होना, ज़िक्र करना, रवाना होना, दिल लगाना इत्यादि।

कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका धड़ तो हिन्दुस्तानी है और सिर फ़ारसी। जैसे; समझदार, गाड़ीख़ाना, पानदान, पीकदान, मोदीख़ाना, हाथीवान इत्यादि।

कुछ ऐसी-ऐसी चीजें भी, जो इस मुल्क में बाहर से आई, अपना नाम साथ लाई । जैसे; साबुन, शीशा, मशक, क़ाज़ी, हुक्क़ा, चिलम, नैचा, कुर्ता, चोगा, आस्तीन, पायजामा, इज़ार, रुमाल, शाल, दुशाला, तकिया, बुरक़ा, चपाती, पुलाव, अचार, बेदमुश्क, रक़ाबी, तश्तरी, चमचा, किश्ती, चाय आदि।

बहुत से अरबी फारसी के शब्दों का इतना प्रयोग बढ़ गया है कि अब उनके स्थान पर संस्कृत या प्राकृत के पर्यायवाची शब्द ढूंढ़कर रक्खे जांय तो या तो कुछ अर्थ ही न निकलेगा या भाषा इतनी कठिन हो जायगी कि सर्वसाधारण तो क्या, शिक्षित हिन्दू भी कठिनता से समझ सकेंगें। जैसे—

मज़दूर, वकील, क़लम, दवात, स्याही, मसख़रा, नसीहत, चादर, सूरत, तोता, पर, जुलाब, गुलाब, तंग, ज़ीन, रकाब, नाल, कोतल, जहाज़, मस्तूल, परदा, दालान, तनख़्वाह, मल्लाह, ताज़ा, ग़लत, सही, रसद, कारीगर, तराज़ू, शतरंज। शतरंज ख़ास हिन्दुस्तान की चीज है। पर अब इसके असली नाम "चतुरंग" से शायद ही कुछ लोग परिचित हों। ऊपर के शब्दों के पर्यायवाची शब्द संस्कृत में अवश्य हैं, पर हिन्दी में उनका प्रयोग बन्द हो गया। अब पाटल के स्थान पर गुलाब ने अधिकार जमा लिया है।

हिन्दी के इस नये रूपान्तर में कवियों ने कमाल का हाथ दिखाया। उन्होंने उर्दू को खूब संवारा; महावरों के आभूषण से खूब सजाया, इसमें

का शोखी, नजाकत और चुलबुलापन सिखाया। सब तरह से सज-धज-कर वह रसिकों के गले का हार हो गई। उर्दू कवियों से अपनी रचना का विषय हिन्दुस्तान से नहीं, बल्कि ईरान से लिया। संस्कृत और हिन्दी में जितने स्त्री-पुरुष के प्रेम सम्बन्धी काव्य लिखे गये हैं, उन सब में स्त्री पुरुष पर आसक्त दिखाई गई। रामायण में सीता के हृदय में राम से पहले प्रेमांकुरित हुआ है। भागवत में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-संदेश पहले भेजा। इसी तरह दमयन्ती नल पर संयोगिता पृथ्वीराज पर आसक्त दिखाई गई है। अंग्रेजी कवियों का मार्ग इससे जरा सा जुदा है। वहाँ स्त्री पर पुरुष आसक्त होता है। वह अपना प्रणय पहले प्रकट करता है। यही उनके देश की प्रथा भी है। पर उर्दू-कवियों ने बिलकुल ही उलटा और अप्राकृतिक मार्ग पसन्द किया है। उन्होंने पुरुष पर पुरुष को आसक्त दिखाया, और उसी नींव पर अपना महल खड़ा किया है। उनके महल की नींव की ईटें हिन्दुस्तान से नहीं, बल्कि ईरान से ली गईं। उर्दू ने फारसी से यह सभ्यता सीखी। इसके सिवा विषय भी नया चुना गया। हिन्दी को मनुष्य-समाज से बाहर जाने का बहुत कम मौका मिलता है। चन्द्रोदय, सूर्योदय, वन, पर्वत, नदी, निर्झर देखने का अवकाश उसे बहुत कम है। प्रेम,विरह, भक्ति, नीति और हास-परिहास ही से उसे फुरसत नहीं। वसन्त का विकास होनेपर वह हृदय को नवीन-प्रेम, नवीन-भक्ति और नवीन-आनन्द से सजा लेती है। विरहावस्था में ही वह कोयल और पपीहे के स्वर से कुछ वेदना अनुभव करती है; नहीं तो सदा वह समाज का आनन्द अनुभव करने में निमग्न रहती है। आवश्यकता पड़ने पर वह वीरों को वीररस से उन्मत्त कर देती है। समय पड़ने पर नीति के उत्तम उपदेश देती है। मौके पर मनोविनोद से भी नहीं चूकती। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति तो उसके जीवन का लक्ष्य ही मालूम होता है। पर उर्दू का ढंग निराला होता है। वह हमेशा बाग में डेरा डाले रहती है। कभी-कभी वह यार के कूचे में हो आती है, पर बहुत-सा वक्त वह बुलबुल की फ़रियाद सुनने, उसकी ओर से वकालत करने

और सैयाद को बुरा-भला कहने ही में व्यतीत करती है। और वह बुलबुल भी यहां का नहीं, ईरान का है। हिन्दुस्तान में बैठे ईरान के बुलबुल का पक्ष समर्थन करना, उसकी ओर से बकझक करना, कल्पना से अपनी और उसकी दशा का मिलान करना, ध्यान के नेत्र से उसके उजड़े हुए घोंसले को देखकर आह भरना, यह सब उर्दू के चमत्कार के काम हैं। वह सांस नहीं लेती, आह भरती है। बल्कि यह कहना चाहिए कि आह भरने के लिए ही वह सांस लेती है। वस्ल का मौका उसे बहुत ही कम मिलता है। हिज्र की पीड़ा से रात-दिन वह तड़पा करती है। तड़पना ही उसके जीवन का लक्ष्य है। इश्क, वफ़ा, दाम, बुलबुल घोंसला, सैयाद, चमन, गुल, बहार, ख़िज़ां, वस्ल, हिज्र, कफ़न, क़ब्र, जनाज़ा, आह, दिल, जिगर, क़मर, बाग़बां, शिकवा, ख्वाब, बोसा, ज़ुल्फ, तीर, चश्म, तड़प, ख़ून, मौत, सितम, सनम, और नाला शिकवा ही में उसने अपनी उम्र के सैकड़ों बरस बिता दिये। इनके आगे क़दम रखने की उसे फ़ुरसत ही न मिली। उसने अपने प्यारों को दुनिया के काम का न रक्खा। उन्हें खींचकर उसने इश्क की आग में डाल दिया, जहां वे हमेशा तड़पते रहे। इश्क की दीमक उनके दिलों को जिन्दगी भर चाटती रही।

एक ने अपना यह अनुभव बयान किया है—

इश्क का मनसब लिखा जिस दिन मेरी तकदीर में।
आह की नक़दी मिली सहरा मिला जागीर में॥

* * *

वे कल्पित हिज्र ही में सदा आह भरते रहते हैं। वस्ल से उन्हें हिज्र में मजा भी ज्यादा आता है। एक ने कहा—

वस्ल में हिज्र का ग़म हिज्र में मिलने की ख़ुशी।
कौन कहता है जुदाई से विसाल अच्छा है!!

* * *

उर्दू के कवि उड़ान में कभी-कभी हिन्दी-कवियों से बहुत ऊँचे जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। हिन्दी में एक बिहारी ही ऐसे कवि हुए हैं, जो

दूर की कौड़ी लाने में उर्दू-कवियों से मोरचा ले सकते हैं। नहीं तो सब सीधे-सादे, प्रेमी, भक्त और नीतिज्ञ हैं। हवा में महल खड़ा करना वे बहुत कम जानते हैं। उर्दू के कवि मरकर भी देखते रहते हैं कि यार उनके जनाज़े के साथ है कि नहीं। क़ब्र में गड़े रहकर भी वे यार के क़दमों की आवाज़ पहचानते रहते हैं कि वह क़ब्र पर फूल चढ़ाने आया कि नहीं। यार के हाथों अपना क़त्ल कराते हैं और उसकी तलवार के स्पर्श का सुख अनुभव करते हैं। कभी-कभी वे इसीलिए भी मर जाते हैं कि बहुत दिनों से विरक्त उनका यार उनकी मृत्यु का समाचार सुन कर उनके घर आये। ये सब करामात की बातें गरीब हिन्दी-कवियों में नहीं।

फारसी में इश्क़ की दो सूरतें हैं, इश्क़ हक़ीक़ी और इश्क़ मजाज़ी। उर्दू में इश्क़ मजाज़ी ही का अधिक चलन है। इश्क़ हक़ीक़ी के रसिक बहुत थोड़े कवि हुए हैं। किन्तु उन्होंने जो कुछ कहा है, वह अद्भुत है, अनुपम है। आसी इसी श्रेणी के कवि हैं। ग़ालिब को हम उर्दू-साहित्य का सम्राट् मानते हैं। ऐसा प्रतिभाशाली कवि उर्दू में कोई नहीं हुआ। क्या भाषा, क्या भाव, क्या प्रभाव, ग़ालिब सब पर ग़ालिब हैं। वे यद्यपि उर्दू के विषय की सीमा से बाहर बहुत कम आये, पर तो भी जो कुछ कहा, वह लासानी है। सुन्दर मंजी हुई भाषा, रत्न की तरह झलकते हुए भाव, मद का-सा प्रभाव और किसी की कविता में नहीं। एक-एक शेर लाखों की क़ीमत का है।

अब उर्दू के कवियों ने रास्ता बदला है। ज़ुल्फ़ों की लपेट से नजात पाकर, आह-ऊह का धंधा छोड़कर अब वे मुल्क और क़ौम की ओर झुके हैं। इस रास्ते के रहबर हाली को समझना चाहिए। आज़ाद, चकबस्त, हसरत और अकबर ने इस रास्ते को खूब आरास्ता कर दिया है। अकबर को मरे अभी थोड़े दिन हुए, किन्तु अपने समय में वह लासानी थे। न हिन्दी में कोई वैसा कवि था, न उर्दू में। उनकी साफ सुथरी उर्दू भाषा, मजेदार महावरे, कहने का अनोखा ढंग कुछ निराला ही है।

यहां तक तो विषय की बातें हुईं । अब भाषा की ओर आइये। हिन्दी-कवियों की अपेक्षा उर्दू-कवि भाषा की स्वच्छता पर बहुत ध्यान देते हैं। उनके यहां महावरों का बहुत खयाल किया जाता है। उर्दू तो महावरों ही की भाषा है । थोड़े ही से शब्द ऐसे हैं, जिनके प्रयोग में लखनऊ और दिल्ली वालों में मतभेद है, बाकी सब मंजा-मंजाया दुरुस्त है। पहले-पहल उर्दू पर ब्रजभाषा का प्रभाव पड़ रहा था। उसके पुराने कवि "से" की जगह "सो" लिखते थ । पर धीरे-धीरे सब कट-छंटकर विशुद्ध खड़ी बोली का रूप रह गया।

स्थानाभाव से इस विषय को हम यहीं समाप्त करते हैं। अब आगे उर्दू के कवियों के कुछ चुने हुए शेर हम अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। आइये, उर्दू कवियों की लच्छेदार बातें सुनिये, उनकी ऊँची उड़ान देखिये, चुभ जाने वाले ख़यालात का मुलाहज़ा फरमाइये, दिल में गुदगुदी पैदा करने वाले शेरों की करामात देखिये और अनुभव कीजिये कितना आनन्द है! कितना माधुर्य है! हिन्दी का यह उद्यान कितना विकसित हो रहा है!

काबा बुतख़ाना कलेसा सौमेआ,
फिरते हैं दर-दर कि तेरा घर मिले।
कुछ न पूछो कैसी नफरत हम से है,
हम हैं जब तक वह हमें क्यों कर मिले? आसी।

बस कि दुश्वार है हर काम का आसां होना।
आदमी को भी मुअस्सर नहीं इन्सां होना॥ ग़ालिब।

कह सके कौन कि यह जलवह गरी किसकी है?
परदह छोड़ा है वह उसने कि उठाये न बने॥
इश्क पर जोर नहीं, है यह वह आतिश "ग़ालिब"।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने॥
इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना॥

मेहरबां होके बुलालो मुझे चाहो जिस वक्त।
मैं गया वक्त नहीं हूं कि फिर आ भी न सकूं ॥
इस सादगी पै कौन न मर जाय ऐ ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं ॥
शब को किसी के ख़्वाब में आया न हो कहीं।
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदन के पांव ॥
रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहां कोई न हो।
हमसख़ुन कोई न हो और हमजबां कोई न हो ॥
बे दरो दीवार सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया न हो और पासबां कोई न हो ॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
औ' अगर मर जाइये तो नौहे ख़्वां कोई न हो ॥
उनको देखे से जो आ जाती है मुंह पर रौनक़।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है ॥
मुनहसर मरने पै हो जिसकी उम्मीद।
नाउम्मेदी उसकी देखा चाहिये ॥
मुहब्बत में नहीं है फ़र्क जीने और मरने का।
उसीको देखकर जीते हैं जिस क़ाफिर पे दम निकले ॥
हमको मालूम है जिन्नत की हकीकत लेकिन ॥
दिल के ख़ुश रखने को "ग़ालिब" यह खयाल अच्छा है ॥

ग़ालिब।

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से। एक लड़का।
शाम ही से बुझा-सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का ॥
सुबह गुज़री शाम होने आई "मीर"
तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा ॥

सख्त काफ़िर था जिसने पहले "मीर"
मज़हबे इश्क इख्तियार किया। मीर।

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहां है ! किस तरफको है ? किधर है ? जुरअत।

मैं गो कि हुस्न में ज़ाहिर में मिस्ल माह नहीं।
हज़ार शुक्र कि बातिन मेरा सियाह नहीं ।। नासिख।

सियहबख्ती में कब कोई किसी का साथ देता है ?
कि तारीकी में साया भी जुदा होता है इन्सां से। नासिर अली।

तिरछी नज़रों से न देखो आशिके दिलगीर को।
कैसे तीरंदाज हो सीधा तो कर लो तीर को ।। नासिख।

आंखें नहीं चेहरा पर तेरे फ़क़ीर के,
दो ठीकरे हैं भीख के दीदार के लिये ।। आतिश।

यह मजनूं है, नहीं आहू है लैला।
पहनकर पोसतीं निकला है घर से।।
जिसे तू सींग समझे है, यह हैं ख़ार।
लगे हैं पांव में, निकले हैं सर से ।। नसीर।

उम्र सारी तो कटी इश्क़ बुतां में "मोमिन"।
आख़िरी वक्त में क्या ख़ाक मुसल्मां होंगे ? मोमिन।

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता ।। मोमिन।

लाई हयात आये, कज़ा ले चली, चले।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले।
लोग घबरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जायेंगे। ज़ौक़।

नशये इश्क़ का गर ज़ौक़ दिया था मुझको।
उम्र का तंग न पैमाना बनाया होता।। ज़ौक़।

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है।
मुर्दा दिल ख़ाक जिया करते हैं॥
हाय, क्या चीज़ ग़रीबुल्वतनी होती है।
बैठ जाता हूं जहां छांव घनी होती है। हफ़ीज़।

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक़ सबने कह-कहकर।
हुये थे जमा कुछ आंसू मेरी आंखों से बह-बहकर॥ सौदा।

बंद होजाती हैं सायारों की आंखें ख़ौफ़ से।
फेंकता हूं जब मैं दिल से आहे आतिशबार को॥ नासिख़।

तारे तो ये नहीं मेरी आहों से रात की।
सूराख़ पड़ गये है तमाम आसमान में॥ मीरतक़ी।

न करता ज़ब्त मैं नाला तो फिर ऐसा धुवां होता।
कि नीचे आसमां के एक नया और आसमां होता। ज़ौक़।

यही सोज़े दिल है तो महशर में जलकर।
जहन्नुम उगल, देगा मुझको निगलकर॥ अमीर मीनाई।

अफ़सुर्दा दिल के वास्ते क्या चांदनी का लुत्फ़।
लिपटा पड़ा है मुर्दा सा गोया कफ़न के साथ॥ ज़ौक।

दिल के आईने में है तसवीरे-यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

लटों में कभी दिल को लटका दिया।
कभी साथ बालों के झटका दिया॥ मीरहसन।

ज़माना होगया अकबर तेरी सीधी निगाहों से।
ख़ुदा न ख़ास्ता तिरछी नज़र होती तो क्या होता॥ अकबर।

सोहबत तुझे रक़ीब से मैं अपने घर में दाग़।
कीधर पतंग, शमअ कहां अंजुमन कुजा॥ सौदा।

खुलता नहीं दिल बंद ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आ जाता है तू इसमें किधर से॥ ज़ौक़।

जग में आकर इधर उधर देखा ।
तू ही आया नज़र जिधर देखा ॥ मीरदर्द ।
यों नज़ाकत से गरां सुर्मा है चश्मे यार को ।
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमे बीमार को ॥ नासिख़ ।
शक्ल तो देखो मुसब्बिर खींचेगा तसवीरे-यार ।
आप ही तसवीर उसको देखकर हो जायगा ॥ ज़ौक़ ।
न हो महसूस जो पै किस तरह नक़शे में ठीक उतरे ।
शबीहे यार खिचवाई कमर बिगड़ी, दहन बिगड़ा ॥ मसहफ़ी ।
नाज़ुक है,न खिचवाऊंगा तस्वीर मैं उसकी ।
चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आये ॥ अर्शद देहलवी ।
दिल ! क्योंकर मैं उस रुख़सारे-रोशन के मुकाबिल हूं ।
जिसे ख़ुरशीदे-महशर देखकर कहता है मैं तिल हूं ॥ अकबर ।
नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में ।
कोने-कोने ढूढ़ती फिरती क़ज़ा थी मैं न था ॥ ज़फ़र ।
इन्तहाये-लागरी से जब नज़र आया न मैं ।
हँसके वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये ॥ नासिख़ ।
मुझ ज़ुल्फ़ के मारे को न जञ्जीर पिन्हाओ ।
काफ़ी है मेरी क़ैद को एक मकड़ी का जाला ॥
नज़ीर अकबराबादी ।
छूट जाये ग़म के हाथों से जो निकले दम कहीं ।
खाक़ ऐसी जिन्दगी पर तुम कहीं और हम कहीं ॥ ज़ौक़ ।
कौन होता है बुरे वक़्त की हालत का शरीक ।
मरते दम आंख को देखा है कि फिर जाती है ॥ कोई ।
क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये ।
हमने तो बोसा लिया था ख़्वाब में तसवीर का ॥ कोई ।
न था कुछ तो खुदा था कुछ न होता तो ख़ुदा होता ।
डुबोया मुझको होने ने न होता मैं तो क्या होता ॥

हुई मुद्दत कि "ग़ालिब" मर गया पर याद आता है ।
वह हर एक बात पर कहना कि यों होता तो क्या होता ॥ ग़ालिब
इन आबलो से पांव के घबरा गया था मैं ।
जी खुश हुआ है राह को पुरख़ार देखकर ॥ ग़ालिब ।
मरता हूं इस आवाज़ पर हरचंद सर उड़ जाय ।
जल्लाद को लेकिन वह कहे जायं कि "हां और" ॥ ग़ालिब ।
क़र्ज़ की पीते थे मै, लेकिन समझते थे कि हां ।
रङ्ग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन ॥ ग़ालिब ।
चल ऐ बादे सबा आहिस्ता चल, बेदार होता है ।
मना कर कलियों को चटखें न मेरा यार सोता है ॥ कोई ।
वहां पहुंच के यह कहना सबा सलाम के बाद ।
कि तेरे नाम की रट है ख़ुदा के नाम के बाद ॥ आसी ।
समझो हमारे इश्क़ की हद अपने हुस्न से ।
आईनादार हालते बुलबुल है रूय गुल ॥ आसी ।
हाय, इक चांद के टुकड़े ने सितारों की तरह ।
मुद्दतों शाम से ता सुबह जगाया हमको ॥ आसी ।
घट गई वस्ल में फ़ुरकत में बढ़ी थी जितनी ।
रात आशिक़ की कभी दिन के बराबर न हुई ॥ आसी ।
इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है ॥ आसी ।
बेख़ुदी ले गई कहां हमको ।
देर से इन्तज़ार है अपना ॥ आसी ।
शिकस्ता दिले इश्क की जान क्या ।
नज़र तुमने फेरी कि वह मर गया ॥ आसी ।
सब्र मुश्किल है आरज़ू बेकार ।
क्या करें आशिक़ी में क्या न करें ॥ हसरत ।
हैफ़ उस चार गिरह कपड़े की क़िस्मत "ग़ालिब" ।

जिसकी क़िस्मत में हो आशिक़ का गरेबां होना ॥ ग़ालिब ।

खंजर को चूस-चूस के कहते हैं मेरे ज़ख्म ।
ज़ालिम मज़े भरे हुए तुझ में कहां के हे ॥ अमीर मीनाई ।

चंद तसवीरे बुतां चन्द हसीनों के ख़तूत ।
बाद मरने के मेरे घर से यह सामां निकला ॥ दर्द ।

आंखें न जीने देंगी तेरी बेवफ़ा मुझे ।
इन खिड़कियों से झांक रही है क़ज़ा मुझे ॥ बहर लखनवी ।

कहीं ऐसा न हो तुझ पर भी कोई वार चल जाये ।
अजल हटजा कि झुंझलाया हुआ इस वक़्त क़ातिल है ॥ अमीर

वो शब को मेरी क़ब्र पै क्या चाल चल गये ।
सदहा चिराग़ नक्श कफ़े पा से जल गये ॥
कमसिनी है तो ज़िदें भी हैं निराली उनकी ।
इस पै मचले हैं कि हम दर्दे जिगर देखेगे ॥ फ़साहत

रुख़े रोशन के आगे शमा रखकर वह यह कहते हैं ।
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है ॥ दाग़ ।

वो निहायत हमें मग़रूर नज़र आते हैं ।
पास बैठे हैं मगर दूर नज़र आते हैं ॥ दाग़ ।

पड़े हैं सूरते नक्शे क़दम न छेड़ो हमें ।
हम और ख़ाक में मिल जायेगे उठाने से ॥ आसी ।

अल्लाह रे ज़ालिम तेरे क़ानून की बन्दिश ।
लबबन्द, ज़बांबन्द, दहनबद, नज़रबद ॥
अब्दुलमजीद ख्वाजा, अलीगढ़ ।

न अब दिन हैं मेरे अपने न रातें हैं मेरी अपनी ।
वह यह क्या कर गये अल्लाह शब भर मेहमां होकर ॥
आरिफ़, देहलवी ।

हाली के अशआर

जहां में "हाली" किसी पै अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा।
यह भेद है अपनी ज़िन्दगी का बस इसका चर्चा न कीजियेगा ॥
होगी न क़द्र जान की क़ुरबां किये बग़ैर ॥
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ।
वर्ना यां ऐब तो सब फ़र्दे बशर करते हैं ॥
बादे सबा गई फूंक क्या जानें कान में क्या ?
फूले नहीं समाते गुञ्चे जो पैरहन में ॥
पिघलते हैं सांचे में ढलने की ख़ातिर।
लगाते हैं ग़ोता उछलने की ख़ातिर ॥
ठहरते हैं दम लेके चलने की ख़ातिर।
वह खाते हैं ठोकर संभलने की ख़ातिर ॥
सबब को मरज़ से समझते हैं पहले।
उलझते हैं पीछे सुलझते हैं पहले ॥
न राहत तलब हैं न मुहलत तलब वह।
लगे रहते हैं काम में रोज़ो शब वह ॥
नहीं लेते हैं दम एकदम बे सबब वह।
बहुत जाग लेते हैं सोते हैं तब वह ॥
वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया ॥ हाली।

अकबर के अशआर

बुतों की मदह से कुल शायरी उर्दू की ममलू है।
शिकस्त उर्दू जो पायेगी तो मैं समझूंगा बुत टूटा ॥
इश्क़ नाज़ुक मिज़ाज है बेहद।
अक्ल का बोझ उठा नहीं सकता ॥
कोई मरे तो पूछ कि क्या ले गया वह साथ।
बिल्कुल फ़ज़ूल बहस है वह छोड़ क्या गया ॥

पाकर ख़िताब नाच का भी ज़ौक़ हो गया।
सर हो गये तो बाल का भी शौक़ हो गया॥
तंग दुनिया से दिल इस दौरे फ़लक में आ गया।
जिस जगह मैंने बनाया घर सड़क में आ गया॥
एक दिन और क़यामत खिसक आयेगी इधर।
और क्या अर्ज़ करूं आप से कल क्या होगा॥
कहां हैं हममें अब ऐसे सालिक की राह ढूंढ़ी क़दम उठाया।
जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं किताब देखी क़लम उठाया॥
हंसके दुनिया में मरा कोई कोई रोके मरा।
ज़िन्दगी पाई मगर उसने जो कुछ हो के मरा॥
जी उठा मरने से वह जिसकी ख़ुदा पर थी नज़र।
जिसने दुनिया ही को पाया था वह सब खो के मरा॥
मौलवी गो कि हैं शमसूलउल्माय फिर भी हैं सुस्त।
रेंगते फिरते हैं परवानये बे शब की तरह॥
पादरी से मिले पहले तो क्या शेख़ को उज्र।
देखिये पीर का नम्बर तो है इतवार के बाद॥
मैं अपने आप में उन शायरों में फ़र्क पाता हूं।
सख़ुन उनसे संवरता है सख़ुन से मैं संवरता हूं॥
हम उर्दू को अरबी क्यों न करें उर्दू को वह भाषा क्यों न करें?
बहसों के लिये अख़बारों में मज़मून तराशा क्यों न करें?
आपस में अदावत कुछ भी नहीं लेकिन इक अखाड़ा क़ायम है।
जब इससे फ़लक का दिल बहले हम लोग तमाशा क्यों न करें?
तुझे हम शायरों में क्यों न अकबर मुंतख़ब समझें।
बयां ऐसा कि दिल माने ज़बां ऐसा कि सब समझें॥
बागे उमीद के फल होते हैं रोज़ ज़ाया।
हमको ख़ुदा बचाये औलादे डारविन से॥

डारविन साहब हक़ीक़त से निहायत दूर थे।
मैं न मानूंगा कि मूरिस आपके लंगूर थे॥
बेपरद: नज़र आई कल जो चंद बीबियां।
अकबर ज़मीं में गैरते क़ौमी से गड़ गया॥
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ।
कहने लगीं कि अक़्ल पै मरदों के पड़ गया॥
अपने मंसूबे तरक्क़ी के हुये सब पायमाल।
बीज जो मग़रिबने बोया वह उगा और फल गया॥
बूट डासन ने बनाया हमने इक मज़मूं लिखा।
मुल्क में मज़मूं न फैला और जूता चल गया॥
रक़ीबों ने रपट लिखवाई है जा जा के थाने में।
कि अकबर ज़िक्र करता है ख़ुदा का इस ज़माने में॥
दुनिया में हूं दुनिया का तलबगार नहीं हूं।
बाज़ार से गुज़रा हूं ख़रीदार नही हूं॥
ज़िन्दा हूं मगर ज़ीस्त की लज्ज़त नहीं बाकी।
हरचंद कि हू होश में हुशियार नही हूं॥
वह गुल हूं ख़िज़ा ने जिसे बरबाद किया है।
उलझूं किसी दामन से मैं वह ख़ार नही हूं॥
चर्ख़ ने पेशे कमीशन कह दिया इज़हार मे।
क़ौम कालिज में और उसकी ज़िन्दगी अख़बार में॥
लोग कहते हैं कि हैं आप निहायत क़ाबिल।
मैं इसी सोच में रहता हूं कि किस क़ाबिल हूं॥
तालिब-इल्मों को ले जावो कमेटी में न तुम।
कहीं ऐसा न हो यह क़ौम प आशिक़ हो जायं॥
बाक़ी नहीं वह रंग गुलिस्तान हिन्द में।
मिहनत का है अब काम क़ुलिस्तान हिन्द में॥
मुद्दत से होश में हूं नज़रे दिले ज़बां हूं।

लेकिन खुला न अब तक मै कौन हूं, कहां हूं ?

जैसा मौसिम हो मुताबिक उसके मै दीवाना हूं ।
मार्च में बुलबुल हूं जौलाई में परवाना हूं ॥

फ़रमा गये है यह खूब भाई घूरन ।
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन ॥

ख़िलवते नाज़ मे क्या शान खुद आराई है ।
हुस्न खुद आलिमे हैरत मे तमाशाई है ॥

अनार आते जो क़ाबुल के तो पड़ते सबके हिस्से में ।
अमीर आये तो हमको क्या मजे है लार्ड मिन्टो के ॥

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो ।
जब तोप मुक़ाबिल है तो अख़बार निकालो ॥

शेख़जी के दोनों बेटे बाहुनर पैदा हुये ।
एक हैं खुफ़िया पुलिस में एक फांसी पा गये ॥

पेट मसरूफ है कलर्की में ।
दिल है ईरान और टर्की में ॥

बिरगिड के मौलवी को क्या पूछते हो क्या है ?
मग़रिब की पालिसी का अरबी में तरजुमा है ॥

क़दरदानों की तबीअत का अजब रंग है आज ।
बुलबुलों को है यह हसरत कि वह उल्लू न हुये ॥

मेरा टट्टू भी ज़ियादा मशरक़ी है शेख़ साहब से ।
कि वह मोटर में चढ़ते हैं यह मोटर से भड़कता है ॥

दिलेरी सिखाते हैं हमको यह कहकर ।
जहन्नुम से डरना बड़ी बुज़दिली है ॥

फ़िरगी से कहा पेंशन भी लेकर बस यहीं रहिये ।
कहा, जीने को आये है यहां मरने नहीं आये ॥

काफ़ी हैं अमीरों को क़वानीन गवर्मेंट ।
मज़हब की ज़रूरत तो ग़रीबों के लिये है ॥

मेम ने शेख़ को डांटा तो पुकारा वह ग़रीब ।
देखिये तोप ने लाठी को दबा रक्खा है ॥
तुम्हारे हुस्न में सायस का भी दिल उलझता है ।
कमर को देखकर वह खते उक़लैदिस समझता है ॥
क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ ।
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ ॥
ख़ुदा की राह मे पहले बसर करते थे सख़्ती से ।
महल में बैठकर अब इश्क़े कौमी मे तड़पते है ॥
सनद कैसी ? जमाल इनमें अगर है, होगा ख़ुद ज़ाहिर ।
कोई सार्टीफिकट से ख़ूबसूरत हो नहीं सकता ॥
जो अस्ल व नक़ल से वाक़िफ़ है उसने दिल को है रोका ।
मुबारिक हो तुम्हीं को चाटना लड्डू ये फ़ोटो का ॥
हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं ।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं ॥
क्या ग़नीमत नहीं यह आज़ादी ।
सांस लेते हैं बात करते हैं ॥
अग़राज़ बढ़ गया है आराम घट गया है ।
ख़िदमत में है वह लेज़ी और नाचने को रेडी ॥
तालीम की ख़राबी से होगई बिल आख़िर ।
शौहर परस्त बीबी पब्लिक पसंद लेडी ॥
तोप खिसकी, प्रोफेसर पहुंचे ।
जब बसूला हटा, तो रंदा है ॥
मेहरबानी से मुझे गोदाम की कुञ्जी तो दी ।
लेकिन अब गेहूं नहीं बाक़ी फ़क़त घुन क्या करें ?

इक़बाल की एक ग़ज़ल

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा ।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्तां हमारा ॥

गुरबत में हम अगर हैं रहता है दिल वतन में।
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहां हमारा॥
परबत जो सब से ऊंचा हमसाया आसमां का।
वह सन्तरी हमारा वह पासबां हमारा॥
गोदी में खेलती हैं जिसकी हज़ारों नदियां।
गुलशन है जिसके दम से रश्के जिनां हमारा॥
ऐ आबरूद गंगा, वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा॥
यूनान मिस्र रोमा सब मिट गये जहां से।
बाक़ी मगर है अब तक नामो निशां हमारा॥
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा॥
'इक़बाल' कोई महरम अपना नहीं जहां में।
मालूम क्या किसी को दरदे पिन्हां हमारा॥

* * *

यह उर्दू कविता का दिग्दर्शनमात्र है। इसमें पुराने और नये दोनों ढंग के नमूने आ गए। नये रंग-ढंग देखकर पाठक समझ जायेंगे कि उर्दू अब गुलशन से निकल कर शहर-समाज में आरही है।

यहां तक तो उर्दू शायरी की बातें हुईं। उर्दू-गद्य का भी भण्डार बहुत बड़ा है। उसमें प्रायः सभी विषयों के कुछ-न-कुछ ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। सरकारी दफ्तरों में, और कई रियासतों में उर्दू का ही बोल-बाला है। उर्दू के बड़े-बड़े मशायरे होते हैं और उसका साहित्य बढ़ाने के उपाय सोचे जाते हैं। इधर हिन्दी का प्रभाव बढ़ता हुआ देखकर कुछ अदूर-दर्शी लोग हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठाकर हिन्दू-मुसलमानों में वैमनस्य फैलाने की कोशिश कर रहे हैं। यह बड़े खेद की बात है।

हिन्दू और मुसलमान इस देश की दो आंखें हैं। एक दूसरे की अवहेलना करेगा तो कब तक निर्वाह होगा। शिक्षित मुसलमान जानते हैं कि हिन्दुओं की कलम से ही उर्दू आज इस दरजे को पहुंची है। भला हिन्दू अब उसपर कुठाराघात क्यों करेंगे? इसी तरह मुसलमान कवियों ने हिन्दी की जो कुछ सेवा की है, वैसी सेवा हिन्दी के कितने कवियों ने की है? रहीम और रसखान की तुलना हम हिन्दू कवियों में किससे करें? मुसलमानों को अपने पूर्वज हिन्दी-सेवी मुसलमानों की कृतियों पर गर्व होना चाहिये। विरोध की क्या बात है! जब हिन्दू-मुसलमानों का चोली-दामन का साथ है तब एक को दूसरे की भाषा वेष-भूषा से नफरत क्यों होनी चाहिये? प्रत्येक हिन्दू को उर्दू सीखनी चाहिये और प्रत्येक मुसलमान को हिन्दी। मेरी तो दृढ़ धारणा है कि उर्दू जाने बिना कोई भी व्यक्ति हिन्दी का सुलेखक नहीं हो सकता। अबतक उर्दू की भाषा-शैली हिन्दी से कई अंशों में बढ़कर है। उर्दू में मुहावरों का जैसा सुन्दर प्रयोग होता है, वैसा प्रयोग हिन्दी में वे ही लेखक कर सकते हैं, जिन्हें उर्दू का ज्ञान है। आपस के विरोध को छोड़कर हिन्दू और मुसलमान दोनों को चाहिये कि वे जहां तक कर सकें, चाहे हिन्दी के चाहे उर्दू के साहित्य की वृद्धि करें। मनुष्य सुगमता और सरलता का स्वभाव से ही पक्षपाती है। हिन्दी बोलने और लिखने में उसे सुभीता दिखाई पड़ेगा तो मुसलमानों के हजार विरोध करने पर भी हिन्दी की उन्नति रुक नहीं सकती। इसी तरह उर्दू में उसे आसानी होगी तो हिन्दुओं के हजार सिर पटकने पर भी उसका उरूज बन्द नहीं हो सकता। अरबी, फारसी और तुर्की के जितने शब्द हिन्दी में आ चुके हैं, हिन्दुओं को उन्हें अपनालेना चाहिये, उनसे काम लेना चाहिये। इसी तरह मुसलमानों को संस्कृत के प्राचीन शब्दों से कोई परहेज न होना चाहिये। ऐसे सद्विचार से हम आपस में सद्व्यवहार कायम रख सकेंगे, और वाक्शक्ति ऐसी पवित्र वस्तु को हम परस्पर विद्वेष ऐसे कुत्सित कार्य का कारण न बनने देंगे।

हिंदी-कविता

हिन्दी का उत्पत्तिकाल विक्रम की आठवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। तब से आज तक हिन्दी-साहित्य के स्थूल रूप से पांच भाग किये जा सकते हैं—

१—उत्पत्तिकाल—८०० वि० से १२०० वि० तक

२—प्रारम्भकाल—१२०० वि० से १५०० तक

३—प्रौढ़काल—१५०० वि० से १७५० तक

४—उत्तरकाल—१७५० से १९०० तक

५—वर्त्तमानकाल—१९०० से

उत्पत्तिकाल के मुख्य कवि—चंद, जल्ह, जगनिक।

प्रारम्भकाल के मुख्य कवि—विद्यापति, अमीर खुसरो, कबीर, नानक आदि।

प्रौढ़काल के मुख्य कवि—सूर, तुलसी, मीराबाई, हितहरिवंश, दादूदयाल, गंग, रहीम, केशवदास, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारी, भूषण, मतिराम, लाल, घन आनन्द, देव, वृन्द।

उत्तरकाल के मुख्य कवि—दास, दूलह, गिरिधर, ठाकुर, पदमाकर, ग्वाल, दीनदयाल, रघुराज, द्विजदेव, लक्ष्मणसिंह, गिरधरदास।

मुख्य लेखक—लल्लूलाल, सदलमिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह।

वर्त्तमानकाल के मुख्य कवि—हरिश्चंद्र, बदरी नारायण चौधरी, विनायक राव, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', सैयद अमीर अली, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, मिश्रबन्धु, किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिधर शर्मा, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रूपनारायण पाण्डेय,

सत्यनारायण, मन्नन द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पाण्डेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, बदरीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचन्द्र शुक्ल आदि। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी का नया युग प्रारम्भ होता है। हरिश्चन्द्र ने कविता का विषय भी बदला और भाषा-शैली में भी कुछ नवीनता सन्निविष्ट की। उसी समय से खड़ीबोली की कविता को भी प्रोत्साहन मिला और उसमें भी भावोद्दीपन होने लगा।

हिन्दी-साहित्य का आकाश अगणित उज्ज्वल नक्षत्रों से देदीप्यमान होरहा है। हिन्दी-साहित्य का उपवन अनेक मनोमोहक सुरभित सुमनों से सुशोभित है। हिन्दी-साहित्य का अमृत-प्रवाह असंख्य स्रोतों से प्रवाहित होकर रसिकों के हृदय की भूमि को सुधा-सलिल से सींचकर उसमें नवजीवन का संचार कर रहा है। हिन्दी-साहित्य का मधुरनाद एक-एक कण्ठ से निकलकर सहस्र-सहस्र कण्ठ से प्रतिध्वनित होरहा है। आइये एक बार हिन्दी-साहित्य की थोड़ी-सी माधुरी का मजा चखिये।

हिन्दी मे भक्त-प्रेमी और शृंगारी कवियों की संख्या सबसे अधिक है। भक्त और प्रेमी कवियों में कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, मीरा दादू और रसखान का स्थान बहुत ऊंचा है। कबीर ने जो कुछ कहा है, उसमें अनुभव की मात्रा अधिक है, कल्पना की बहुत कम। कबीर ने जो कुछ कहा, स्पष्ट, सत्य और निष्पक्ष कहा है। कबीर कहते हैं—

सुख के माथे सिलि परै, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, जो पल-पल नाम रटाय॥

सच्चा भक्त, सच्चा प्रेमी ही सांसारिक सुखों को लात मारकर दुःख को गले लगा सकता है।

ईश्वर-स्मरण के विषय में कबीर कहते हैं—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

प्रेम के विषय में कबीर कहते है—

प्रेम न बाड़ी ऊपजे , प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै , सीस देइ लै जाय ॥
प्रेम-प्रेम सब कोइ कहैं , प्रेम न चीन्है कोइ ।
आठ पहर भीना रहै , प्रेम कहावै सोइ ॥
प्रेम छिपाया ना छिपै , जा घट परगट होय ।
जो पै मुख बोलै नहीं , नैन देत हैं रोय ॥
कबिरा प्याला प्रेम का , अन्तर लिया लगाय ।
रोम रोम में रम रहा , और अमल क्या खाय ॥
नैनों की करि कोठरी , पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिकै , पियको लिया रिझाय ॥
प्रीतम को पतियां लिखूं , जो कहुं होय बिदेस ।
तन में मन में नैन में , ताको कहा संदेस ॥
गगन गरजि बरसै अमी , बादल गहिर गंभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी , भीजै दास कबीर ॥
सुन्न मंडल मे घर किया , बाजै सबद रसाल ।
रोम रोम दीपक भया , प्रकटे दीनदयाल ॥

प्रेम की कैसी विषद् महिमा है ! कैसा स्वाभाविक वर्णन है ! हिन्दी कवियों ने विशुद्ध प्रेम का जैसा उज्ज्वल वर्णन किया है, वैसा अन्य भाषा में बहुत कम है ।

विद्यापति कहते हैं:—

सेई परित अनुराग बखनइत तिले तिले नूतुन होइ ।

अर्थात्, वही प्रीति, वही अनुराग प्रशंसा के योग्य है जो तिल-तिल नवीन होता जाय ।

आगे विद्यापति असीम अनुराग का अनुभव करते हैं: —

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल ।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सूनल स्रुति पथे परस न गेल ॥

अर्थात्, जन्म-भर हमने (अपने प्रिय का) रूप देखा; किन्तु आंखें

तृप्त न हुईं। जन्म-भर हमने वही मधुर वाणी सुनी, पर सुनने की इच्छा बनी ही रही। प्रेम का यह कितना सुन्दर वर्णन है !

अब आगे बढ़िये, हिन्दी-साहित्य की लम्बी सड़क सघन छाया से आच्छादित है। जगह-जगह पर पथिकाश्रम हैं, उपवन हैं, कुञ्ज हैं, सर, सरिता, निर्झर के मनोरम दृश्य हैं, रसिक पथिकों को सब प्रकार का आराम देने के लिए सुकविसमुदाय प्रत्येक समय उपस्थित रहता है। मार्ग-भर में न कहीं उजाड़ है, न ऊसर, न बन, न बयाबान। जिस पथिक की जैसी रुचि हो, वह वैसा ही सुखोपभोग कर सकता है। आइये, कुछ दूर तक इस मार्ग पर हम लोग भी चलें।

यह सूरदास जी हाथ में तम्बूरा लिये अपने आश्रम के द्वार पर विराजमान हैं। ये श्रीकृष्ण के बालचरित और गोपियों के विरह की बातें सुना रहे हैं।

मैया मेरी मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो ।
चार पहर बंशीबट भटक्यो सांझ परे घर आयो ।।
मैं बालक बहियन को छोटौ छीको किस विध पायो ।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो ।।
तूं जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो ।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो ।।
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो ।
सूरदास तब बिहंसि जसोदा ले उर कंठ लगायो ।।

कितना सुन्दर वर्णन है, कितनी स्वाभाविकता, कितना सौन्दर्य है ! श्रीकृष्ण के विरह में गोपियां व्याकुल होकर आपस में कहती हैं—

जब तें पनिघट जाऊं सखीरी वा जमुना के तीर ।
भरि भरि जमुना उमड़ि चलत है इन नैनन के नीर ।।

श्रीकृष्ण के चले जाने पर पनघट का वह हास-विलास कहां ? अब तो आंसुओं से जमुना उमड़ आती है।

सूरदास प्रीति करनेवालों से कहते हैं—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।

*　　　*　　　*

जिन कोउ काहू के वश होहि ॥

फिर वही प्रेम की महिमा इस प्रकार गाते हैं—

देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत ।
प्रान तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहिं समेत ॥
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतंग ।
तनु तो तिहि ज्वाला जर्यो, चित न भयो रस भंग ॥
सब रस को रस प्रेम है ।

विरह ही प्रेम का प्राण है । विरह न हो तो प्रेम का आनन्द आ ही नहीं सकता है । माता यशोदा श्रीकृष्ण के विरह में कह रही है—

मेरे कुंवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धर्यो रहै ।

सारा ब्रज श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल, श्रीकृष्ण ब्रज के विरह मे बेचैन ।

आगे हढ़िये । बीच-बीच में ये बहुत-से काव्य-कुटीर हैं, जिनमें से अनेकों प्रकार के मधुर नाद निकलकर दिशाओं में गूंज रहे हैं । सब जगह थोड़ा-थोड़ा ठहरने से बहुत देर होगी । लीजिये, यह मीराबाई का आश्रम है । मीरा कहती हैं—

घायल सी घूमत फिरूं रे मेरा दरद न जाने कोय ।

सच है, "घायल की गति घायल जानै" दूसरा कौन जान सकता है !

बाबल बैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हारी बांह ।
मूरख बैद मरम नहिं जानै करक करेजे मांह ॥
जाओ बैद घर आपने रे म्हारो नांव न लेय ।
मैं तो दाधी विरह की रे काहे कूं औषद देय ॥
खिन मन्दिर खिन आंगने रे खिन खिन ठाढ़ी होय ।
घायल ज्यों घूमूं खड़ी रे म्हारी बिथा न बूझे कोय ॥

काढ़ि कलेजा मै धरूं रे कौआ तू ले जाय।
ज्यां देस्यां म्हारो पिव बसै रे वै देखत तू खाय ॥

विरह का कैसा मार्मिक वर्णन है। प्रेम का कितना सुन्दर रूप है। आगे बढ़िये। यह कविशिरोमणि तुलसीदास का आश्रम आ गया। तुलसी रामभजन में मग्न हैं। संसार में सर्वत्र उन्हें राम ही राम दिखाई पड़ रहे हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, वृक्ष, देवता, राक्षस सब में उनको अपने राम की मूर्ति दिखाई पड़ रही है। इनका आश्रम सबसे बड़ा है। इनके पास राजा, रंक, फकीर सब आते हैं। इनका दरबार बहुत बड़ा है। ये कहते हैं—

जेहिके जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सदेहू।
परहित बस जिनके मनमाही। तिनकहं जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

ये व्यंग और हास-परिहास में भी बड़े पटु हैं। श्रीराम से कहते हैं—

गर्ब करहु रघुनन्दन जनि मन मांह।
आपन रूप निहारहु सियकै छांह ॥

अर्थात्, हे राम अपने रूप का घमंड न कीजिए, जरा अपने रूप का सीता की छाया से मिलान तो कीजिये। सीता की तुलना आप क्या कर सकते हैं?

सीता के अंग-रंग का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं—

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ॥
सिअ तुव अङ्ग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ॥

सीता जब राम के साथ बन को चलीं, उस समय सीता की मृदुता का वर्णन करने में तुलसी ने अप्रतिम पटुता दिखाई है।

पुरते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जलकी पटु सूखि गये मधुराधर वै ॥

फिर बूझति हैं चलनोऽब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय को अंखियां अति चारु चलीं जल च्वै ॥

कितना सीधा-सादा वर्णन है ! कितना मर्मभेदी भाव है !

आगे चलिये। यह रसखान का आश्रम है। रसखान प्रेम में मस्त हैं। इनका आलाप सुनिये—

मानस हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बस मेरो चरों नित नंद की धेनु मंझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥

* * *

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर कौ तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं ॥
रसखानि कबौं इन आंखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूं कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं ॥

सच्चा प्रेमी ही संसार के वैभव को इस तरह लात मारता है।

यह मार्ग बहुत लम्बा है। आइये, एक सुगम मार्ग से चलें। इस मार्ग में बड़े-बड़े कुंज हैं। आइये, पहले संतकुंज में थोड़ा विश्राम ले लें। यहां सब संत कवि जमा हैं। कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, मलूक, सुन्दरदास, चरनदास, पलटू, धरनी, बुल्ला, भीखा, दरिया आदि संत यहां अपने-अपने ध्यान में मस्त हैं। प्रत्येक के मुंह से उसका अनुभव निकलता जा रहा है। सुनिये—

जब में था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेमगली अति सांकरी, तामें दो न समाहिं ॥ कबीर।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिनराती ॥ रैदास।

झरि लागै महलिया, गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठे सोभा बरनि न जाय ॥
धर्मदास।

काहे रे बन खोजन जाई ।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकुर माँहि जस छाई ।
तैसे ही हरि बसैं निरन्तर घटही खोजो भाई ।। नानक ।

सरग नरक संसै नहीं, जियन मरन भय नाँहि ।
राम बिमुख जे दिन गये, सो सालैं मन माँहि ।। दादू ।

दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी ।
अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अबिनासी ।। मलूक ।

तौ सही चतुर तूं जान परबीन अति परै जनि पींजरे मोह कूवा ।
पाइ उत्तम जनम, लाइलै चपल मन, गाइ गोबिन्द गुन जीत जूवा ।।
सुन्दर ।

चरनदास यों कहत हैं, सुनियो संत सुजान ।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान ।। चरनदास ।

सुनि लो पलटू भेद यह, हंसि बोले भगवान ।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान ।। पलटू ।

इसी संत-कुञ्ज में हम दो देवियों को भी बैठे देखते हैं । ये कह रही हैं—

सीस कान मुख नासिका, ऊंचे ऊंचे नांव ।
"सहजो" नीचे कारने, सब कोउ पूजै पांव ।। सहजोबाई ।

बौरी ह्वै चितवत फिरूं, हरि आवें केहि ओर ।
छिन उट्ठूं छिन गिरि परूं, राम दुखी मन मोर ।। दयाबाई ।

अब आगे बढ़िये । यह प्रेम-कुञ्ज है । यहां कौन-कौन हैं ? देखिये, यहां घन आनन्द, आलम और शेख, सीतल, ठाकुर और बोधा प्रेम में मतवाले, इश्क में चूर, बैठे-बैठे प्रेम की लहर ले रहे हैं । हर एक के मुंह से उसका अनुभव फूटा पड़ता है ।

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधिनीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ।।

"घन आनंद" जीवन दायक हो कछू मेरिऔ पीर हिय परसौ।
कबहू वा बिसासी सुजान के आंगन मों अंसुवनि को लै बरसौ॥

घन आनंद।

मन की अंटक तहां रूप को विचार कहा,
रीझिबे की पैंड़ो और बूझि कछु न्यारी है।

आलम।

पैंड़ों सम सूधो बेंड़ो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नहीं तहां सबल भगति है। सेख भनि तहां मेरे त्रिभुवन राय है जु दीनबन्धु स्वामी सुरपतिन को पति है॥ बैरी को न बैर बरिआई को न परबेस हीने को हटक नाहीं छीनै को सकति है। हाथी की हुंकार पल पाछे पहुंचन पावै चींटी की चिघार पहले ही पहुंचति है।

सेख।

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनंद का कद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन में बद किया॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफंद किया।
चम्पकदल, सोनजुही, नरगिस, चामीकर, चपला, चद किया॥

सीतल।

यह प्रेम कथा कहिये किहि सों सौ कहे सों कहा कोऊ मानत है।
पर ऊपरी धीर बधायो चहै तन राग न वा पहिचानत है॥
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है।
बिन आपने पांय बिवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है॥

ठाकुर।

लोक क लाज और साक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ॥
गांव को गेह को देह को नातो सनेह में हां तो करै पुनि सोऊ॥
बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ॥
लोक की भीति डरात जो मीत तौ प्रीति के पैंड़े परे जनि कोऊ॥

बोधा।

और आगे बढ़िये। यह नीत-निकुञ्ज है। इसमें आप को राजनीति और लोक-व्यवहार के पंडित मिलेंगे। न ये प्रेमी हैं,न विरही,न शृङ्गारी हैं, न वीर। ये, मनुष्य को संसार में किस ढंग से रहना चाहिए, इस बात की शिक्षा दे रहे हैं। इनमें मुख्य-मुख्य नीति-निपुणों के नाम ये हैं—

नरहरि, रहीम, वृन्द, बैताल, घाघ और गिरिधर। जरा देर के लिए ठहर जाइये और इनके उपदेश सुन लीजिये।

ज्ञानवान हठ करै निधन परिवार बढ़ावै।
बंधुवा करै गुमान धनी सेवक ह्वै धावै॥
पंडित किरिया हीन रांड़ दुरबुद्धि प्रमाने।
धनी न समझै धर्म नारि मरजाद न माने॥
कुलवंत पुरुष कुल विधि तजै, बंधु न मानै बंधु-हित।
संन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग में मूरख विदित॥ नरहरि :

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारौ गेह तें, कस न भेद कहि देय॥ रहीम।

सब सों आगे होय कै, कबहुं न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात॥ वृन्द।

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥
बाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै॥
अरु बेनियाव राजा मरै तबै नीद भरि सोइये।
बैताल कहै बिक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥ बैताल।

भुइयाँ खेड़े हर ह्वै चार। घर ह्वै गिहिथिन गऊ दुधार॥
अरहर की दाल जड़हन का भात। गागल निबुआ औ घिउ तात॥
सह रस खंड दही जो होय। बाँके नैन परोसैं जोय॥
कहें घाघ तब सबही झूठा। उहां छाँड़ि इहवैं बैकुंठा॥
घाघ।

जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग।
जो संग राखे ही बनै तो करि राखु अपंग॥
तौ करि राखु अपंग फेरि फरकै सु न कीजै।
कपट रूप बतराय ताहि को मन हरि लीजै॥
कह गिरिधर कविराय खुटक जैहै नहिं ताकी।
कोटि दिलासा देउ लई धन धरती जाकी॥ गिरिधर

अब आगे एक बन मिलेगा। इसका नाम है, वीरबन। इसमें केवल दो ही चार झोंपड़े नजर आते हैं। दो तो सामने हैं, एक भूषण का, दूसरा लाल का। बाकी टूटी-फूटी हालत में हैं। वीरों को फुरसत कहाँ कि वे शांति से बैठने के लिए कुंज-निकुज की रचना करें। दोनों वीर अपनी-अपनी कुटी के सामने टहल-टहलकर कुछ कह रहे हैं। सुनिये—

बिना चतुरंग संग बानरन लैकै,
बाँधि बारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम सों लाख भट,
जीति लीन्हीं नगरी विराट में बड़ाई है॥
भूषन भनत ह्वै गुसलखाने में खुमान,
अवरंग साहिबो हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज शिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥ भूषण।

उद्यम तें सम्पति घर आवै। उद्यम करै सपूत कहावै॥
उद्यम करै संग सब लागै। उद्यम तें जग में जस जागै॥
समुद उतरि उद्यम तें जैये। उद्यम तें परमेश्वर पैये॥ लाल।

इस वीरबन में आपको विशेष आनन्द न आया होगा। लीजिये, सामने एक बहुत बड़ा उद्यान है। वहाँ चलकर विश्राम कीजिये।

इस उद्यान का नाम है, शृंगारोद्यान। इसके दो भाग हैं; एक भाग में सूरदास, नंददास, परमानंददास, कृष्णदास, कुंभनदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, हितहरिवंश, हरिदास, विट्ठल विपुल, रसिक

गोविन्द, भगवतरसिक, बिहारीदास, ध्रुवदास, हठी, सीतलदास, सहचरिशरण, किशोरीअलि, अलबेली अली, श्रीभट्ट, गदाधर भट्ट, व्यासजी, नागरीदास, हितवृन्दावनदास, आनदघन, रसखान, सूरदास मदनमोहन, नारायण स्वामी, ललित माधुरी और ललित किशोरी के प्रेम-निकेतन अलग-अलग बने हुए हैं; किन्तु सबके रंग-ढंग, रहन-सहन, विषय-वृत्त एक-से हैं।

चलिये, पहले इस प्रेम-निकेतन की सैर कर ले। यहाँ विशुद्ध-प्रेम की चर्चा है। सात्विक-श्रृंगार का आनंद है। सब रांधाकृष्ण के सौन्दर्य, राधाकृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन करने में निमग्न हैं। यहाँ मन पर सांसारिक विषयों का प्रभाव नही। यहाँ प्रेम है, भक्ति है, सौन्दर्योपासन है, और हृदय की निर्मलता का उज्ज्वल विकास है। यहाँ की प्रेमकथा मनुष्य के चरित्र को कलुषित नहीं करती, किन्तु उज्ज्वल, पावन और निष्कलंक करती है।

यहाँ—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं-ज्यों डूबै स्यामरँग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय॥

यहाँ के एक-एक प्रेमी का, एक-एक सौन्दर्योपासक का रहस्य समझने के लिए एक-एक जन्म चाहिए। यहाँ प्रेम है, आनंद है, सच्चा सुख और सच्ची शांति है। यहाँ का स्वर, यहाँ का राग, यहाँ का गान, यहां की तान सुनकर हृदय रखनेवाला मनुष्य यहाँ ही का होकर रहता है। आइये, श्रृंगारोद्यान के दूसरे भाग की सैर करें।

यहाँ केशव, बिहारी, मतिराम, देव, पद्माकर, ग्वाल, पजनेस और द्विजदेव के बड़े-बड़े रंग बिरंगे सजे-सजाये महल हैं। छोटे-बड़े और भी सैकड़ों सुन्दर घर इधर-उधर दिखाई पड़ रहे हैं। स्त्री यहाँ की अधिष्ठात्री देवी है। यहाँ सांसारिक विषय-वासना का ही साम्राज्य है। यहाँ मनुष्य-जीवन का लक्ष्य स्त्री-सुखोपभोग ही माना जाता है। यहाँ स्त्रियों के हाव-भाव और कटाक्ष से घायल विरहियों का जमघट है। दूती और कुटनियों का बाजार गर्म है। नायक और नायिकाओं की अनेक जातियाँ

यहाँ विद्यमान हैं। अभिमार-स्थानों की भरमार है। कुलवधुओं से लुक-छिपकर बातें करना, उन्हें उड़ा लाना, अविवाहिता नववयस्काओं से दूषित प्रेम करना, हर मौसम और हर अवस्था के लिए तैयार किये हुए नुसखों के अनुसार विषय-विलास करना, रात-दिन चोटी से लेकर अँगूठे तक स्त्री के अंगों की चर्चा में निमग्न रहना, यही यहाँ का धंधा है, यही यहाँ का जीवन है। इस उद्यान के कवियों ने हिन्दी-संसार में विषयानुराग की मात्रा खूब बढ़ा दी, व्यभिचार की वृद्धि की, निकम्मेपन की जड़ जमाई, वैवाहिक-पवित्रता पर आक्रमण किया। मैं यह केवल परिणाम की बातें कहता हूँ! उन कवियों के राग सुन्दर, वर्णन करने के ढंग मनोहर और स्त्री-पुरुषों के मनोभावों को व्यक्त करने की उनकी क्षमता प्रशंसनीय है। यदि मन पर विषयवासना का बुरा असर पड़ने का भय न हो तो मनोविनोद के लिए उनकी वाणी अनमोल चीज है। आइये, कुछ श्रवण कीजिये। केशव को एक बड़ा दुःख है। वह क्या ?

केसव केसनि अस करी, जस अरिहूँ न कराहिं।
चंद्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाहिं॥

बिहारी को मार्ग में चलते-चलते रति-क्रीड़ा का स्मरण आ रहा है—

नाक चढ़ै सीबी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि-फिरि भूलि उहै गहै, पिय कँकरीली गैल॥

मतिराम, नेह की आग से जल रहे हैं—

नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आग लेन आई हिये, मेरे गई लगाय॥

देव का तो कहना ही क्या है। ये तो सिर से पैर तक प्रेम के रंग में रंगे हुए, आजन्म विषय-सिन्धु मे गोता खाते रहे। इन्होंने बड़े अनुभव से कहा है—

जोगहू से कठिन संयोग पर नारी को।

पद्माकर इनमें से किसी से कम नहीं। इनका एक नसखा सुनिये।

गुलगुली गिलमै गलीचा है, गुनाजन है,
चांदनी है, चिक है, चिरागन की माला है ।
कहै पदमाकर है गजक गिज़ाहू सज़ी,
सय्या हैं, सुरा है औ सुराही हैं सुप्याला हैं ॥
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं ।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला औ बिसाला चित्रसाला है ॥

किसी गरीब को यह सुख-सामग्री दुर्लभ है । पदमाकर ने सर्दी का इलाज बताया । अब ग्वाल से गर्मी की दवा सुन लीजिय ।

जेठ को न त्रास जाके पास ये विलास होय,
खस के मवास पै गुलाब उछरयो करै ।
बिही के मुरब्बे डब्बे चांदी के बरक भरे,
पेठे, पाग केवरे में बरफ़ परयो करै ॥
ग्वाल कवि चन्दन चहल में कपूर चूर,
चंदन अतन तन बसन खरयो करै ।
कंजमुखी, कंजनैनी, कंज के बिछौनन पै,
कंजन की पंखी करकंज ते करयो करै ॥

वाह वा, क्या सुन्दर सुख-स्वप्न है ! गरीबों को यहां भी गुंजाइश नहीं । आइये पजनेस का काव्यामृत पान कीजिये । इनकी प्राणप्यारी के उरोज कैसे हैं, सुनिये ।

उरज उठौना चक्रवाकन के छौना कैधों,
मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के ।

द्विजदेव की तो बात ही निराली है । ये राजा महाराजा हैं । सुख की सब सामग्री से इनका महल खूब सुसज्जित है । इनकी व्यथा सुनिये—

वह मन्द चले किन मेरी भटू पग लाखन की अंखियां अटका ।

इसी विषयी समाज के एक सदस्य ने एक स्त्री को सलाह दी है—

बावरी जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यों नहिं अङ्क लगावति ॥

अब इन्हें छोड़िये । उर्दू शायरों की महफ़िल के रंग-ढग की ही यह मंडली है । वहां भी जीते जी मौत है, यहां भी वैसी ही आह-ऊह है । अन्तर इतना ही है कि वहां अप्राकृतिक प्रेम की चर्चा है । यहां प्रकृति की सीमा के भीतर ही सब आमोद-प्रमोद है ।

आगे आइये । उद्यान के दोनों भागों के बीच में यह किसका महल है ? इसके द्वार पर लिखा है—

परम प्रेमनिधि रसिकवर, अति उदार गुन खान ।
जग-जन रंजन आसु कवि, को हरिचन्द समान ॥
जग जिन तन समकरि तज्यो, अपने प्रेम प्रभाव ।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नांव ॥

यह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बंगला है । ये उद्यान के दोनों भागों की सैर किया करते हैं । ये बड़े प्रेमी, बड़े रसिक, बड़े उदार और विलासी पुरुष हैं । इन्होंने उद्यान के बीचो-बीच से एक नई सड़क निकलवाई है । उस पर अनेक कवियों ने अपने बंगले बनवाये हैं । कुछ के नाम ये हैं—प्रतापनारायण मिश्र, नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक, अयोध्या-सिंह उपाध्याय, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त आदि । ये सब अपनी-अपनी मौज में मस्त हैं । अभी तक इनके बंगलों में शोभा सजावट का नाम नहीं । नये ढंग से सजाने का प्रयास किया जा रहा है । कुछ समय लगेगा । इनका कोई कुंज नहीं, जहां सबसे एक साथ मिला जाय । हां, एक क्लब जरूर है, जहां कभी-कभी दो-चार जमा हुआ करते हैं, और भारत विषयक नीरस चर्चा करके कालयापन कर जाते हैं । हरिश्चंद्र की पहुंच दोनों ओर थी, इसलिए उनके बंगले में नया और पुराना दोनों प्रकार का सौन्दर्य विकसित हो उठा है । आइये, प्रत्येक से अलग-अलग मिलकर कुछ वार्तालाप कीजिये ।

हरिश्चन्द्र कहते हैं—

जिय पै जु होव अधिकार तौ बिचार कीजै,
लोकलाज भलो बुरो भले निरधारिये ।
नैन, स्रौन कर, पग सबै परबस भये,
उतै चलिजात इन्हें कैसे कै संभारिये ।।
हरीचंद भई सब भांति सों पराई हम,
इन्हें ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये ।
मन में रहै जो ताहि दीजिये बिसारि,
मन आपै बसै जामें ताहि कैसे कै बिसारिये ।।

एक दूसरे ढंग का सुनिये—

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवत केवल ।
पसु समान सब अन्न खात पीवत गंगाजल ।।
धन बिदेश चलि जात तऊ जिय होत न चंचल ।
जड़ समान ह्वै रहत अकलहत रचि न सकत कल ।।
जीवत बिदेश की बस्तु लै, ता बिन कछु नहिं करि सकत ।
जागो जागो अब सांवरे, सब कोउ रुख तुमरो तकत ।।

यहां से अब हम नई सड़क पर चल रहे हैं ।

तब लखिहौ जहं रह्यो एक दिन कंचन बरसत ।
तहं चौथाई जन रूखी रोटिहुं कहं तरसत ।।
जहं आमन की गुठली अरु बिरछन की छालें ।
ज्वार चून महं मेलि लोग परिवारहिं पालें ।।
नौन तेल लकरी घासहुं पर टिकस लगै जहं ।
चना चिरौंजी मोल मिलै जहं दीन प्रजा कहं ।।

प्रतापनारायण मिश्र ।

शकर के सेवक दुलारे सब लोगन के
नीति के निकेत निगमागम पढ़त हैं ।

जीवन के चारों फल चाखन की चाह कर
उन्नति की ओर निसिबासर बढ़त हैं ।।
भारती के भूषण प्रतापशील पूषण से
जिनकी कृपा से पर दूषण कढ़त है ।
ऐसे नर नागर तरेंगे भवसागर को
प्यारे परमारथ के पोत पै चढ़त हैं ।।

नाथूराम शंकर शर्मा ।

वंदनीय वह देश, जहां के देशी निज अभिमानी हों ।
बाधवता में बंधे परस्पर परता के अज्ञानी हों ।।
निन्दनीय वह देश जहां के देशी निज अज्ञानी हों ।
सब प्रकार परतन्त्र पराई प्रभुता के अभिमानी हों ।।

श्रीधर पाठक ।

आशा की है अमित महिमा, धन्य है देवि आशा ।
जो छूके है मृतक बनते प्राणियों को जिलाती ।।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

लक्ष्मी दीजै, लोक में मान दीजै । विद्या दीजै, सभ्य संतान दीजै ।।
हे हे स्वामी, प्रार्थना कान कीजै । कीजै कीजै, देश कल्याण कीजै ।।

देवीप्रसाद पूर्ण ।

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुये हैं ।
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुये हैं ।।
परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाये ।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये ।।
हम खेले कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद में !
हे मातृभूमि ! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में !

मैथिलीशरण गुप्त ।

अब यहीं ठहरिये । यह मार्ग अभी बन रहा है । रास्ते में कंकड़-पत्थरों के ढेर लगे हैं । न छाया है, न पानी का कहीं ठिकाना है । यहीं

से लौट चलिये। फिर कभी इस मार्ग की सैर की जायगी।

आइये, एक कुंज में बैठकर इस बात पर ग़ौर करें कि हमने क्या देखा और कैसा देखा !

ऊपर हिन्दी-साहित्य की एक हलकी-सी झलक दिखा दी गई। शृंगारी-कवियों में सात्विक प्रेमी वृन्दावनवासी कृष्ण-भक्तों की रचनाओं के उदाहरण नहीं दिये गये। जिन्हें विस्तृत रूप से देखना हो, कविता-कौमुदी में देख सकते हैं। अन्य कवियों के भी काव्य की छटा कौमदी में देखने को मिलेगी। इसी से उदाहरण बहुत थोड़े दिये गये। अब स्थूल-रूप से हिन्दी-साहित्य पर दृष्टि डालिये।

हिन्दी-कविता के दो रूप हैं, एक ब्रजभाषा का, दूसरा हिन्दी का, जिसे "खड़ीबोली" भी कहते हैं। ब्रजभाषा का भंडार खड़ीबोली के भंडार से बहुत बढ़ा-चढ़ा है। ब्रजभाषा के कवियों के टक्कर का एक भी कवि अभी तक खड़ी बोली में नहीं हुआ है। किन्तु खड़ीबोली की कविता की ओर लोगों की रुचि जिस तेजी से बढ़ रही है, उसे देखकर यह कहना पड़ता है कि यह खड़ीबोली के किसी महाकवि के शीघ्र आविर्भूत होने की शुभ सूचना है। सैकड़ों हजारों सोते निकल रहे हैं, शीघ्र ही वे महानद के रूप में परिणत हो जांयगे। नन्हीं-नन्हीं लकड़ियां प्रज्वलित हो रही हैं, शीघ्र ही किसी बड़े कुन्दे में अग्नि का अवतार होने वाला है। प्रकाश फैल जायगा, दिशा उज्ज्वल हो जायगी, फिर इस बात को कोई कभी याद भी न करेगा कि इस कुन्दे के सुलगाने में कितनी चैलियों ने आत्मत्याग किया था।

ब्रजभाषा के कवियों को भाषा के सम्बन्ध में जितनी स्वतन्त्रता थी, हिन्दी के कवियों को उसकी चौथाई भी नहीं। ब्रजभाषा का कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार शब्दों को तोड़-मरोड़कर सड़क तैयार कर लेता है। आवश्यकतानुसार कंकड़-पत्थर को काट-छांटकर वह सहज में ही उन्हें जमा देता है। उसपर उसके भावों से लदा हुआ छकड़ा आसानी से चल निकलता है। वह आनन्द को आनंद, अनन्द और अनन्दा कर

सकता है। तुलसीदास ने ग़रीबनेवाज को गरीबनेवाज़ू करके पराई चीज को भी अपने साँचे में ढाल लिया। वह खाता है को खात, गाता है को गावत और अंक को आंक, निःशंक को निसांक और बंक को बांक कर सकता है। कारकों का प्रयोग भी वह मनमाना कर लिया करता है। उसे बड़ी स्वतंत्रता है। किन्तु हिन्दी-कवि को ऐसा सौभाग्य नहीं प्राप्त है। उसके सामने बड़ा बन्धन है। जो रोड़ा जैसा है, उसे वैसा ही—बिना काट-छांट किये, जमाना पड़ता है। उसे जरा-भर भी तराश-ख़राश करने का अधिकार नहीं। वह आनन्द को आनँद भी नहीं कर सकता, जाओगे को जावगे भी नहीं बना सकता। उसके आस-पास की जमीन ऊबड़-खाबड़ है। उसी में से होकर उसका सँकरा रास्ता है। इससे वह अपने छकड़े पर थोड़ा-थोड़ा माल लादकर लाता है। बताइये, कैसी मुसीबत है। जितना माल ब्रजभाषा का कवि एक बार में लाता है, हिन्दी का कवि उसे चार बार में। ग्राहकों को उसके लिए बहुत देर तक इन्तजार करना पड़ता है। उर्दू-कवियों ने इस तकलीफ़ को समझा है, उन्होंने कुछ उद्दंडता से काम भी लिया है। आवश्यकता पड़ने दर उन्होंने अपना नियमित मार्ग छोड़कर इधर-उधर भी हाथ-पैर फैला दिये हैं। वे अपना काम निकालना जानते हैं, किसी का कुछ बिगड़े, इसकी उन्हें परवा नहीं। उर्दू का एक शेर सुनिये—

खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आजाता है तू इसमें किधर से।। (ज़ौक़)

इस शेर में "है", "जाने", "जाता है" और "इसमें", इन बेचारों का ढांचा तो देखने में पूरा है, पर जान अधूरी है। "है", "ने", "ता", और "में" का रूप देखने में तो दीर्घ है, किन्तु उच्चारण में वे ह्रस्व हैं। हिन्दीवाले बेचारों का इतनी स्वतन्त्रता भी प्राप्त नहीं। उर्दू वाले और को "औ" और "पर" को "प" लिखकर भी अपना भाव प्रकट कर सकते हैं, किन्तु हिन्दी में यह गुनाह माना जाता है। हिन्दी में शब्दों के रूप और उच्चारण में अंतर नहीं होना चाहिए। नियमित संकरे रास्ते

ही से चलना चाहिए; किन्तु हर एक बार माल पूरा आना चाहिए, थोड़े माल से ग्राहकों का जी नहीं भर सकता। ऐसा करने के लिए हिन्दी के कुछ कवि उर्दू वालों का ही रास्ता पकड़ना चाहते हैं। वर्तमान कवियों में इस मत के पोषक पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय कहे जा सकते हैं। दूसरा दल कहता है कि नहीं,रास्ता संकरा है तो क्या, मर्यादा का उल्लंघन करना ठीक नहीं, रास्ते ही पर चलो; माल थोड़ा आवे तो ग्राहकों को उतने ही में संतुष्ट होने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। इस दल के मुखियों में बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त का नाम लिया जा सकता है। तीसरा एक दल और है। वह कहता है कि ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों के रास्ते के बीच से चलो। क्रिया तो खड़ीबोली ही की रखो; किन्तु थोड़े-से ब्रजभाषा के संज्ञा शब्द और क्रियाविशेषणों को भी मिला लो। इस दल के अगुआ राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' और पण्डित नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा हैं। 'पूर्ण' तो अपनी मानवलीला पूर्ण कर गये। 'शङ्करजी' उस मार्ग पर खड़े होकर लोगों को उसकी सुगमता सुझा रहे हैं।[१] किन्तु अधिक संख्या दूसरे दलवालों की है। वे गद्य-पद्य दोनों का मार्ग एक करना चाहते हैं। मार्ग संकरा है, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। वे कहते हैं कि संस्कृतवालों को देखो, उन्होंने मर्यादा के भीतर रहकर कैसा कमाल किया है, कैसा कठिन व्रत निभाया है। हम लोग अभी ऐसा नहीं कर सकते, इसमें रास्ते के संकरेपनका दोष नहीं। अभी हम लोगों में प्रतिभा ही नहीं जागृत हुई। प्रतिभाशाली के लिए सीधे-टेढ़े किसी रास्ते में भी रुकावट नहीं।

यह तो रास्ते की बात हुई। अब यह देखना है कि ब्रजभाषा और हिन्दी दोनों में कैसा माल आ चुका है और अब कैसा आरहा है।

हिन्दी-कविता में प्रारम्भ से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक मुख्यतः चार-पांच विषयों ही का प्राधान्य रहा है—भक्ति, प्रेम, शृङ्गार, वीर और नीति। इनमें सबसे बड़ा समुद्र शृङ्गार का हुआ। कितने ही कवि तो उसमें आजीवन डूबे रहे, कुछ बीच में उतराये भी तो आगे तैरने की

[१] आपका स्वर्गवास हो चुका है।

उनमें शक्ति ही न रही, और कितने उसके किनारे ही पर नहाते-धोते और खेलते रह गये ।

भक्त कवियों ने अपने अनुभव की बात कही है । वे प्रेमी थे, ज्ञानी थे और सदाचारप्रिय थे । हिन्दू-समाज की जीवनशक्ति को उन्होंने बल-प्रदान किया है । हिन्दुओं में जो कुछ ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और सदाचार की चर्चा है, उसमें से अधिकांश हिन्दी-कवियों की सम्पत्ति है । कौन कह सकता है कि हिन्दुओं के दैनिक व्यवहार में तुलसी, सूर और कबीर की प्रेरणा नहीं है ! हिन्दी का भक्ति-साहित्य बड़ा उज्ज्वल, बड़ा सुन्दर और बड़ा मधुर है । उसमें प्राणों को आराम, मन को आनन्द और आत्मा को शान्ति मिलती है ।

वीर रस की कविता हिन्दी में अधिक नहीं । जो कुछ है, उसका सम्बन्ध हृदय से कम, शरीर से अधिक है ।

नीति की कविता वीर रस की कविता से अधिक है । और समाज में उसका प्रचार भी है । हिन्दी की यह सम्पदा अवश्य देखने की चीज है ।

शृंगार के विषय में मुझे कुछ अधिक कहना है, इसी से मैंने उसे सब के अंत में चुना है । हिन्दी-कवियों में शृंगारी कवियों की संख्या सब से अधिक है । इनमें कुछ तो बहुत उच्च-कोटि के हैं, उन्होंने हृदय के सौन्दर्य पर बड़ी ललित कविता की है । भक्त कवियों ने जहां कहीं प्रसंगवश शृंगार का वर्णन किया है, उसमें विशुद्ध प्रेम और मानव-स्वभाव की सच्ची झलक दिखाई पड़ती है । वे सदाचार की सीमा के बाहर नहीं गये हैं । किन्तु सिर से पैर तक शृंगार में डूबे हुए कवियों ने सदाचार को लात मारी है । उन्होंने नायक-नायिका-भेद को कविता का सब से प्रधान अंग बना डाला है । नायिकाओं को पता ही नहीं, किन्तु कवियों ने उनके सैकड़ों भेद कर डाले । सबकी अलग-अलग भाषा, सब के अलग-अलग भाव, वेष, भूषा और चाल; बिलकुल नया संसार ही रच दिया । इस संसार में सदाचार की गंध नहीं । अभिसार-स्थान की सजावट है, दूतियों की दौड़ है, वाक्यविलास है, विरहोच्छ्वास और

बेकली है। कोकिल और पपीहों के हजारों अपराध गिनाये जा रहे हैं, उन्हें लाखों गालियां दी जा रही है। उन बेचारों को इसका पता भी नहीं। विरह के वर्णन में तो और गजब ढाया गया है। एक विरहिणी पार्वती की पूजा करने गई थी। जैसे ही उसने हाथ में माला लेकर पार्वती के गले में डालना चाहा, वैसे ही, हाथ लगते ही माला राख हो गई। तब उस विभूति को शिवजी को चढ़ाकर वह वापस आई। विरह की आंच हृदय ही में होती है, किन्तु कवियों को वहीं तक उसे रखने में सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने हाथ में भी उसकी दाहक शक्ति पहुचा दी। एक विरहिणी पनघट पर जल लाने गई। घड़ा भरकर सिर पर रखते ही वह विरह की आंच से सूख जाता था। फिर उतारकर फिर भरती और सिर पर रखते ही वह फिर सूख जाता। दिनभर इसी चढ़ाव उतार में लगी रही।

बिहारी ने एक विरहिणी का वर्णन इस प्रकार किया है—

इत आवत चलि जाति उत, चली छ सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासिन साथ॥

अर्थात्, विरह के मारे वह इतनी कमजोर हो गई है कि सास लेने और छोड़ने के साथ वह छः-सात हाथ आगे-पीछे आती-जाती रहती है। सांस रूपी हिंडोले पर चढ़ी हुई इधर से उधर झूलती रहती है।

ऐसा तो उस नायिका का हाल था। अब यह बात यहा समझ में नहीं आती कि जब वह हवा से भी इतनी हलकी होगई थी तो तितली का पंख लगाकर अपने प्रियतम के पास क्यों न उड़कर चली गई ?

ग्वाल कवि ने एक विरहिणी का हाल ऐसा लिखा है—

तांदुर ले आई तिया आंगन में ठाढ़ी रही,
कर के पसारबे में भात हाथ में भयो।

इस देश में जब से अंग्रेजी राज आया तब से विरही-विरहिणियों की संख्या तो बढ़ गई, किन्तु पहले जैसी घटनाएं अब नहीं होतीं। लाखों विरही तो रोज़ रेल पर चढ़े फिरते हैं, बीसों हजार कालेजों में भरे पड़े

है; डाक और तार का भी पूरा प्रबन्ध है फिर भी किसी विरही के घर से यह खबर नहीं आती कि उसकी विरहिणी की आह से उसका घर जल गया या किसी कोयल या पपीहे की बोली से उसकी स्त्री मर गई। मालूम होता है, इस बला को पुराने कवि अपने साथ ही स्वर्ग ले गये।

दूसरा नम्बर नख-शिख वर्णन करनेवाले कवियों का है। इन्होंने नायिका के जिस अंग को छुआ है उसे अन्तिम सीमा तक पहुंचा दिया है। चितवन से किसी को घायल होते सुना हो तो उसे वज्र और बिजली बना डाला। बीच में जरा-सी उठी हुई नाक अच्छी लगी तो उसे इतना झुकाया कि तोते की-सी नाक बनाकर तब दम लिया, चाहे वे अपनी स्त्री की तोते ऐसी टेढ़ी नाक को स्वयं पसन्द न करें। स्तनों की कठोरता अच्छी लगी तो उसे पहाड़ बना डाला, नायिका दबकर मर जाय तो मरे, इनका क्या बिगड़ा। नायिका की कमर पतली होने में कुछ सुभीता समझ पड़ा तो उसके पीछे पड़ गये। संसार की पतली-से पतली चीजें याद की गईं और कमर को उनसे भी पतली कहा गया। पतलेपन की दौड़ यहाँ तक बढ़ी कि केशवदास ने उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। बस, अब आगे कहाँ जाओगे? जो चीज ही नहीं, उससे अधिक पतली और क्या हो सकती है। केशवदास ने कहा है:—

सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान

* * *

यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।

चलो छुट्टी हुई। इस प्रकार के कविगण प्रतिदिन नितम्ब और स्तनों के बीच में, नाभि के पास, कटिप्रदेश देखते रहे हैं, फिर भी कहते हैं कि कटि हुई नहीं। इस झुठाई का भी कुछ ठिकाना है! कल्पना के पीछे ये लोग ऐसे उड़े कि असली वस्तु ही को भूल गए। अत्युक्ति और उत्प्रेक्षा को इतना महत्त्व दिया कि स्वाभाविकता ही से हाथ धो बैठे।

उर्दू के सौदा कवि ने एक शेर में कहा —

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक़ सब ने कह-कहकर।

हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह-बहकर ॥

यह झूठ की अन्तिम सीमा है। इससे आगे कोई बढ़ नहीं सकता। एक ही पिनक में चले जाते हुए इन कवियों को देख कर कोई-कोई कवि इनकी दिल्लगी भी उड़ाने लगे। एक कवि कहता है —

मांस की गरेथी कुच कंचन कलस कहैं,
मुख चन्द्रमा जो असलेषमा को घर है।
दोऊ कर कमल मृनाल नाभी कूप कहै,
हाड़ ही को जंघा ताहि कहै रम्भा तर है।
हाड़ को दसन ताहि हीरा मूंगा मोती कहै,
चाम को अधर ताहि कहै बिम्बा फर है।
एती झूठी जुगती बनावै औ कहावै कवि,
तापर कहत हमें सारदा को बर है॥

उर्दू-कवियों की मिथ्यावादिता से मौलाना हाली भी नाराज हुए थे। वे कहते हैं—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सजा है,
अबस झूठ बकना अगर ना रवा है।
तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी खुदा है,
मुक़र्रर जहाँ नेक व बद की जज़ा है।
गुनहगार वाँ छूट जावेंगे सारे,
जहन्नुम को भर देगे शायर हमारे।

शृङ्गारी-कवि-मंडल के सब से अन्तिम कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। शृङ्गार में जो कुछ कहना-सुनना बाकी था, उसे उन्होंने कहकर समाप्त किया। इसके सिवाय उन्होने कुछ और भी कहा। उसे देखकर नये कवियों ने अपना रुख बदलना प्रारम्भ किया। वह रुख यहाँ तक बदला कि अब शृंगार का कोई नाम भी नहीं लेता। आजकल के कवि हाथ धोकर भारत के पीछे पड़ गए हैं, कोई भारत को कायर बनाता है, कोई अभागा कहता है, कोई उसे पुरानी कहानी सुनाकर उठाना चाहता है,

ग्रौर कोई उसकी जी भर कर भर्त्सना करता है। कविता में कुछ दम नहीं, किन्तु जय, जय की इतनी भरमार है कि ऐसी ग्राशङ्का होती है कि इतने जयजयकार के भय से कहीं भारत यह देश छोड़कर भाग न जाय। भारत के पीछे रो-धोकर यह भेड़ियाधसान किसी ग्रौर तरफ चलेगी, तब उसे भी ग्रन्तिम सीमा तक खदेड़कर दूसरे को पकड़ेगी। हिन्दी-कवियों में यह विशेषता देखी जाती है कि वे जिधर पिल पड़े, उधर से वे तब तक नहीं मुड़ते, जब तक उसमें कुछ अस्तित्व रहता है।

खड़ीबोली की कविता को सबसे ग्रधिक प्रोत्साहन पंडित महावीर प्रसादजी द्विवेदी से मिला है। द्विवेदीजी ही के उद्योग से ग्राज खड़ीबोली की कविता का एक रूप देखने को मिल रहा है। सरस्वती ने इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है। ग्रब भविष्य में, बहुत ग्राशा है कि विशुद्ध खड़ीबोली में भी ब्रजभाषा के समान भावपूर्ण कविता होने लगेगी। ग्रभी-तो खड़ीबोली की कविता मे भावों का चमत्कार देखने को बहुत ही कम मिलता है।

हिन्दी की वर्तमान दशा

हिन्दी की वर्तमान दशा बहुत ही ग्राशापूर्ण है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दी के लिए ग्रनुराग जागृत हुग्रा है। प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख नेताग्रों ग्रौर विद्वानों ने एक स्वर से हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। सुलेखकों ग्रौर सुकबियों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। नये-नये समाचार-पत्र निकल रहे हैं। हिन्दी के पुस्तकालयों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। बड़े-बड़े नगरों में हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाएं खुलती जारही हैं। पुस्तक-प्रकाशकगण, ग्रच्छे लेखकों से मौलिक ग्रन्थ लिखवाकर, ग्रन्य भाषाग्रों के उत्तम ग्रन्थों का ग्रनुवाद कराके ग्रौर उन्हें ग्रावश्यकतानुसार सचित्र, सजिल्द तैयार कराके हिन्दी-साहित्य का कलेवर बढ़ाते जा रहे हैं। हिन्दू लोग तो हिन्दी की ग्रोर खिंचते ही ग्रा रहे हैं, मुसलमानों में भी हिन्दी के लिए बड़ी रुचि उत्पन्न हुई है। देशभक्त मुसलमान हिन्दी सीखने का उद्योग करते पाये जाते हैं।

इस समय देश में हिन्दी की दो बड़ी संस्थाएं काम कर रही हैं — एक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और दूसरे नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन सार्वदेशिक संस्था है। उसका प्रधान कार्यालय प्रयाग में है। वह मद्रास में हिन्दी-प्रचार के लिए हजारों रुपये मासिक व्यय कर रहा है और सफलता भी प्राप्त कर रहा है।[1] प्रतिवर्ष सर्वोत्तम ग्रन्थकार को वह बड़े सम्मान के साथ बारह सौ रुपये पुरस्कार के देता है। भारत के कई प्रान्तों में उससे सम्बद्ध प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय हैं, जो सम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्ति में तत्पर रहते हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से पुरानी है। हिन्दी और नागरी लिपि के लिए खासकर युक्तप्रान्त वालों मे अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय इस सभा ही को है। सभा ने हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों की खोज का बहुत ही उपयोगी काम किया है। पुराने काव्य-ग्रंथों का अनुसंधान, उत्तमोत्तम ग्रंथों का सम्पादन और प्रकाशन, हिन्दी के एक वृहत् कोष की रचना, ये सब काम सभा का गौरव बहुत ऊंचा करते हैं। सभा जन्म से ही हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है।

मासिक पत्रिकाओं में सरस्वती, माधुरी, प्रभा और श्रीशारदा सब से अच्छी हैं। इनका मूल भी दृढ़ है और क्षेत्र भी विस्तृत है। साप्ताहिक पत्रो में प्रताप, अभ्युदय, कर्मवीर का प्रभाव और प्रचार अधिक है। दैनिक-पत्रों में [illegible], स्वतंत्र, आज और कलकत्ता समाचार हिन्दी जानने वाली जनता की बहुमूल्य राजनीतिक सेवा कर रहे है। विद्यार्थियों के लिए विद्यार्थी और बालसखा आदि पत्र निकल रहे है। स्त्रियों के लिए स्त्रीदर्पण, गृहलक्ष्मी और ज्योति आदि मासिक पत्र-पत्रिकाए विशेष उल्लेखनीय हैं।[2]

[1]अब सम्मेलन का इस संस्था से संबंध नहीं रहा है। सम्मेलन वर्धा में 'राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति' नामक एक नई संस्था का अहिन्दी भाषी प्रांतों में हिन्दी-प्रचार के लिए संचालन कर रहा है।

[2]मासिक साप्ताहिक व दैनिक पत्रों की स्थिति में भी बहुत परिवर्तन

हिन्दी के वर्तमान सुकवियों में 'पंडित नाथूराम शंकर शर्मा, पंडित श्रीधर पाठक, पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवान दीन, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पंडित कामताप्रसाद, पंडित रामचरित उपाध्याय, मिश्रबन्धु, पंडित गिरिधर शर्मा, पंडित माधव शुक्ल, पंडित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही', पंडित रूपनारायण पांडेय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, बाबू जयशङ्कर, प्रसाद, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, पंडित लोचनप्रसाद पाण्डेय, पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी, पंडित बदरीनाथ भट्ट, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, ठाकुर गोपालशरण सिंह, पांडेय मुकुट-धर शर्मा, बाबू सियारामशरण गुप्त, बाबू गोविन्ददास, पण्डित हरिप्रसाद द्विवेदी (वियोगी हरि) आदि की कृतियों से हिन्दी-साहित्य का उपवन सुरभित हो चला है। सुलेखकों में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पंडित पद्मसिंह शर्मा, पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू गणेशशङ्कर विद्यार्थी, बाबू ब्रजनन्दन सहाय, श्रीयुत प्रेमचन्द, पण्डित रामजी लाल शर्मा, पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, पण्डित माधव राव सप्रे, प० किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू रामदास गौड़ बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, पण्डित कृष्णाकांत मालवीय, पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू रामचन्द्र वर्मा और श्रीयुत नाथूराम प्रेमी आदि का स्थान बहुत ऊंचा है। सुकवियों में प्रायः सभी सुलेखक हैं। भिन्न भाषाभाषी प्रान्तों में भी हिन्दी के अच्छे ज्ञाताओं की संख्या बढ़ती जा रही है। इस समय बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र मद्रास आदि भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के लोगों में हिन्दी के जानकार या लेखक मिलेंगे।

इस तरह हिन्दी-साहित्य का बढ़ता हुआ वटवृक्ष एक दिन कैलास से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक अपनी सुखद शीतल छाया से तैंतीस

हो चुका है। पुराने कई पत्र बन्द हो गये हैं और कई नये अच्छे पत्र निकलने लगे हैं।

'इनमें कई महानुभाव स्वर्गीय हो चुके हैं।

कोटि भारतवासियों को शांति और सुख प्रदान करेगा। सारे देश में एक भाषा के प्रचार से हम में एक राष्ट्रीयता जागृत होगी; पारस्परिक प्रेम, ऐक्य और बन्धुत्व की वृद्धि होगी और घनिष्टता और सहानभूति का भाव पुष्ट होगा।

हिन्दी जीती जागती भाषा है। उसकी ग्राहिका-शक्ति बड़ी प्रबल है। उसने अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं के हजारों शब्द हजम कर लिये, अब अंग्रेजी भाषा के शब्दों को वह चुनचूनकर अपनाती जाती है। विदेशी भाषाओं के जो शब्द अपनी भाषा में खप गये, वे सब हिन्दी की मिलकियत होगए। अच्छे लेखक उन शब्दों से बराबर काम लेने लगे हैं। नये-नये मुहावरों का भी रोज-रोज समावेश होता जाता है। एक दिन सर्वांगसुन्दर हिन्दी-भाषा भारत की भाषाओं में प्रधान पद को सुशोभित करेगी।

कविता-कौमुदी

पहला भाग

चन्दबरदाई

चन्दबरदाई का नाम राजपूताने में बहुत प्रसिद्ध है। वह भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज चौहान का राजकवि, मित्र और सामन्त था। वह भट्ट जाति के जगात (वर्तमान राव) नामक गोत्र का था। उसके पूर्वज पंजाब के रहनेवाले थे, और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानों के यहां थी।

चन्द का जन्म लाहौर में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि चंद और पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था और एक ही तिथि को दोनों ने शरीर भी छोड़ा। पृथ्वीराज का जन्म सवत् १२०५ में और मृत्यु १२४८ में हुई। अतएव चंद के भी जन्म-मरण का समय यही समझना चाहिए।

चन्द के पिता का नाम राववेण और विद्या-गुरु का नाम गुरुप्रसाद था। वह षट्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र-शास्त्र, पुराण, नाटक और गान आदि विद्याओं में बड़ा निपुण था। वह जालन्धरी (जालपा) देवी का उपासक था।

चंद ने दो विवाह किये थे। उसकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। उसके ग्यारह सन्तति हुईं, दस लड़के और एक लड़की। लड़की का नाम राजबाई था। चंद के दसों पुत्रों में जल्ह बड़ा योग्य था। पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई का विवाह, 'रासो' के अनुसार, चित्तौर के रावल समरसिंह के साथ

हुआ था। पृथाबाई के साथ जल्ह भी रावल जी का दहेज में दिया गया था। जब शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में रावल समरसिंह जी मारे गए तब उनके साथ पृथाबाई सती हुई थी। सती होने के पहले पृथाबाई ने अपने पुत्र को एक पत्र लिखा था। जिसमें सूचना दी थी कि श्री हुजूर समर में मारे गये और उनके संग ऋषिकेशजी भी बैकुण्ठ को पधारे हैं। ऋषिकेशजी उन चार लोगों में से हैं जो दिल्ली से मेरे संग दहेज में आये थे, इसलिए इनके वंशजों की खातिरी रखना। "ने पाछे मारा च्यारी गराँ का मनषाँ की षात्री राखजो। ई मारा जीव का चाकर हे जो थासु कदी हरामषोर नीवेगा"। यह पत्र माघ सुदी १२, संवत् १२४८ विक्रम का लिखा हुआ है। इससे प्रकट है कि जल्ह पृथाबाई के साथ चित्तौर गया था।

चंद ने पृथ्वीराज का चरित्र जन्म से लेकर अन्तिम युद्ध तक "पृथ्वीराज रासो" नामक महाकाव्य में वर्णन किया है। अन्तिम लड़ाई के समय चंद पृथ्वीराज के साथ उपस्थित नहीं था, वह देवी के एक मन्दिर में बैठकर "रासो" को पूरा कर रहा था। इसलिए अन्तिम लडाई का वृत्तान्त वह नहीं लिख सका। पीछे से उसके पुत्र जल्ह ने उस युद्ध का वृत्तान्त लिखा। रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन ने पकड़ लिया था। वह उन्हें गजनी ले गया और उनकी दोनों आंखें फोड़वा कर उसने उन्हें कैदखाने में डाल दिया। "रासो" लिखकर चंद अपने घर आया और उसे जल्ह को देकर वह गजनी गया। वहां गोरी को प्रसन्न करके वह पृथ्वीराज से मिला। उसने कौशल से पृथ्वीराज के हाथ से शहाबुद्दीन को मरवा डाला। फिर राजा और कवि दोनों ने कटार से अपना-अपना प्राणांत वहीं किया। पृथ्वीराज के साथ चंद का जीवन-चरित्र ऐसा मिला हुआ है कि उससे वह किसी तरह अलग नहीं किया जा सकता। चंद पृथ्वीराज का लंगोटिया मित्र था। वह सदा पृथ्वीराज के साथ रहता था। इसलिए जो-जो घटनाएं उसने लिखी हैं, उनमें सत्य का अंश बहुत अधिक है। उसने आंखों-देखी बातें लिखी हैं।

चंद महाकवि था। उसका बनाया हुआ "पृथ्वीराज रासो" हिन्दी में एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें स्थान-स्थान पर कविता के नवो रसों का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया गया है। चंद ने पृथ्वीराज का सम्पूर्ण चरित्र अपनी स्त्री गौरी से कहा है। जिस प्रकार तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद, बिहारी के दोहे, गिरधर की कुण्डलियां और पद्माकर के घनाक्षरी छन्द प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार चंद ने छप्पय लिखने में बड़ा नाम पाया है।

"रासो" की कविता में संयुक्ताक्षरों की खूब भरमार है। पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि जीभ को खूब ऊबड़-खाबड़ रास्ता तै करना पड़ रहा है। पर उस रास्ते में जो काव्य-रस के मनोहर पुष्प खिले हुए हैं उनकी सुगन्ध से मन मुग्ध हो जाता है। "रासो" में वीर और शृङ्गार-रस की कविता बहुत है। उनमें बड़ा चमत्कार और बड़ी मनोमोहकता है।

चन्द की कविता की भाषा अच्छी तरह वे ही लोग समझ सकते हैं जिन्हें संस्कृत और राजपूताने की बोली का अच्छा ज्ञान हो। साधारण हिन्दी जानने वालों की समझ में वह अच्छी तरह नहीं आ सकती।

"रासो" बहुत बड़ा ग्रन्थ है। समय-समय पर चंद जो कविताएं रचता था, उसे वह कण्ठस्थ रखता था, या कागज पर लिख लेता होगा। उन्हें पुस्तकाकार उसने ६० दिनों में किया। रासो में कुल ६९ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। पृथ्वीराज ने अपने जीवन में बहुत-सी लड़ाइयां लड़ी थीं और उन्होंने विवाह भी कई किये थे। रासो में सब का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। आजकल के ऐतिहासिक विद्वान् रासो में वर्णित पृथ्वीराज और मुहम्मदगौरी-सम्बन्धी कई लड़ाइयों को सत्य नहीं मानते।

चंद का जन्म लाहौर में हुआ था और वहां मुसलमानों का अधिक संसर्ग था इसलिए चंद की कविता में अरबी, फारसी के भी बहुत-से शब्द आ गए हैं।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने "रासो" को प्रकाशित किया है। अभी इससे भी अधिक शुद्ध-संस्करण के प्रकाशित होने की आवश्यकता है।

आगे हम चंद की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं—

पद्मावती समय

दूहा

पूरब दिस गढ़ गढ़न पति, समुद शिखर अति दुग्ग।
तहं सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग ॥ १ ॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर भ्रज्जाद।
पबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसान बहु साद ॥ २ ॥

कबित्त

धुनि निसान बहु साद नाद सुरपच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटित साज तिन।
गज असंख गजपतिय मुहर सेना तिय संखह।
इन नायक कर धरी पिनाक धरभर रज रक्खह।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम सो पदमसेन कूंवर सुघर ॥ ३ ॥

दूहा

पदमसेन कूंवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुं कला ससि भान ॥ ४ ॥

कबित्त

मनहुं कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय।
बाल वेस ससिता समीप अमृत रस पिन्निय।
बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिया।
हार कीर अरु बिम्ब मोति नख सिख अहि घुट्टिया।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति विह बनाय संचै संचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहुं काम कामिनि रचिय ॥ ५ ॥

दूहा

मनहुं काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास ॥ ६ ॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठ कला सुजान।
जानि चतुरदस अंग षट, रति बसंत परमान ॥ ७ ॥
सखियन संग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिप्पिय नयन, तब मन भयौ हुलास ॥ ८ ॥

कबित्त

मन अति भयौ हुलास बिगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर बिम्ब फल जानि कीर छवि।
यह चाहत चख चकृत उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ लियौ तब गहित अप्प कर।
हरषत अनन्द मन महि हुलस लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटित सो तिहि महं रष्षत भई ॥ ९ ॥

दूहा

तिहि महल रष्षत भई, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुट्ट्यो कीर सों, राम पढ़ावत फुल्ल ॥ १० ॥
कीर कुँवरि तन निरखि दिखि, नख सिख लौं यह रूप।
करता करी करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप ॥ ११ ॥

कबित्त

कुट्टिल केस सुदेश पौह परचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संध हंस गति चलत मंद मंद।
सेत बस्त्र सोहै सरीर नख स्वाति बुन्द जस।
भमर भंवहि भुल्लहि सुभाव मकरंद वास रस।
नैन निरखि सुख पाय सदिन मूरति रचिय।

दूहा

सुक समीप मन कुंवरि को, लग्यो बचन कै हेत ।
अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत ॥ १३ ॥

गाथा

पुच्छत बयन सु बाले उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये ।
कवन नाम तुम देस कवन थंद करय परवेस ॥ १४ ॥
उच्चरिय कीर सुनि बयनं हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं ।
तहां इन्द्र अवतार चहुआनं तहं प्रथिराजह सूर सुभारं ॥ १५ ॥

पद्धरी

पदमावतीहिं कुंवरी संघत्त,
दुज कथा कहत सुनि सुनि सुबत्त ॥ १६ ॥
हिंदवान थान उत्तम सुदेस,
तहं उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥ १७ ॥
संभरि नरेस चहुआन थान,
प्रथिराज तहां राजंत भान ॥ १८ ॥
बैसह बरीस षोड़स नरिंद,
आजान बाहु भुअ लोक यन्द ॥ १९ ॥
संभरि नरेस सोमेस पूत,
देवंत रूप अवतार धूत ॥ २० ॥
सामंत सूर सब्बे अपार,
भूजान भीम जिम सार भार ॥ २१ ॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन,
तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ॥ २२ ॥
सिगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जंजीर,
चुक्कै न सबद बेधंत तार ॥ २३ ॥
बल बैन करन जिमि दान पान,
सतसहस सील हरिचंद समान ॥ २४ ॥

साहस सुक्रंम विक्रम जु वीर,
दानव सुमत्त अवतार धीर ॥ २५ ॥
दिस च्यार जानि सब कला भूप,
कंद्रप्प जानि अवतार रूप ॥ २६ ॥

दूहा

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नन्द ।
सहस किरन झलहल कमल, रिपि समीप वर विन्द ॥२७॥
सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अङ्ग ।
तन मन चित्त चहुवाँन पर, बस्यो सु रत्तह रङ्ग ॥२८॥
बेस बिती ससिता सकल, आगम कियो बसंत ।
मात पिता चिंता भई, सोधि जुगति को कंत ॥२९॥

कबित्त

सोधि जुगति को कंत कियौ तब चित्त चहों दिस ।
लयौ विप्र गुर बोल कही समझाय बात तस ।
नर नरिंद नरपती बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह ।
सीलवन्त कुल सुद्ध देहु कन्या सु नरेसह ।
तब चलन देहु दुज्जह लगन सगुन वन्द दिय अप्प तन ।
आनन्द उछाह समुदह सिषर बजत नद्द नीसान घन ॥३०॥

दूहा

सवा लष्ष उत्तर सयल, कमऊं गढ़ दूरङ्ग ।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभंग ॥३१॥
नारिकेलि फल परठि दुज, चौक पूरि मन मुत्ति ।
दई जु कन्या बचन बर, अति अनन्द करि जुत्ति ॥३२॥

भुजङ्गप्रयात

बिहसित बरं लगन लिन्नौ नरिदं,
बजी द्वार द्वारं सु आनन्द दुंदं ॥३३॥
गढंनं गढ़ं पत्ति सब बोलि नुत्ते,
सबं आइयं भूप कटु बंस जुत्ते ॥३४॥

चले दस सहस्सं असव्वार जानं,
पूरियं पैदलं तेतीस थानं ॥३५॥
मदं गल्लितं मत्त सै पंच दंती,
मनो साम पाहार बुगपंति पंती ॥३६॥
चलै अग्गि तेजी जु तत्ते तुखारं,
चौवरं चौरासी जु सार्कत्ति भारं ॥३७॥
नगं कंठ नूपं अनूपं सु लालं,
रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं ॥३८॥
सुरं पंच साबद्द वाजित्र वाज,
सहस्सं सहन्नाय मृग, मोहि राजं ॥३९॥
समुद सिर सिखर उच्छाह छाहं
रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं ॥४०॥
पदमावती विलखि बर बाल बेली,
कही कीर सों बात तब होइ केली ॥४१॥
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं,
बरं चाहुआनं जु आनौ नरेसं ॥४२॥

दूहा

आनौं तुम्ह चहुआन बर, अरु कहि इहै संदेस।
सांस सरीरहि जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस ॥४३॥

कबित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिखि कग्गर दिन्नौ।
लगु नव रग रचि सरब दिन्न द्वादस ससि लिन्नौ ॥
सें अरु ग्यारह तीस साष संवत परमानह।
जोवित्री कुल सुद्ध बरनि वर रष्षहु प्रानह ॥
दिष्षंत दिष्ट उच्चरिय बर इक्क पलक बिलम्ब न करिय।
अलगार रयन दिन पच महि ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ॥४४॥

दूहा

ज्यों रुकमनि कन्हर वरी, ज्यों वरि संभर कांत ।
शिव मंडप पच्छिम दिशा, पूजि समय स प्रांत ॥४५॥
लै पत्री सुक यों चल्यौ. उड़्यो गगनि गहि बाव ।
जहं दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठ जाम में जाव ॥४६॥
दिय कग्गर नृपराज कर, षलि वंचिय प्रथिराज ।
सुक देखत मन में हँसे, कियो चलन को साज ॥४७॥

कबित्त

उहै घरी उहि पलनि उहै दिन बेर उहै सजि ।
सकल सूर सामंत लिये सब बोल बंब बजि ।
अरु कवि चन्द अनूप रूप सरसै बर कह बहु ।
और सेन सब पच्छ सहस सेना तिय सष्षहु ।
चामंडराय दिल्ली धरह गढ़पति कर गढ़ भार दिय ।
अलगार राज प्रथिराज तब पूरब दिस तब गमन किय ॥४८॥

दूहा

जा दिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज ।
ताही दिन पतिसाह कौं, भइ गज्जनै अवाज ॥४९॥

कबित्त

सुनि गज्जनै अवाज चढ्यो साहाब दीन बर ।
खुरासान सुलतान कास काबिलिय मीर धुर ।
जंग जुरन जालिम जुझार भुज सार सार भुअ ।
धर धमंकि भजि सेस गगन रवि लुप्पि रैन हुअ ।
उलटि प्रवाह मनो सिन्धु सर रुक्कि राह अड्डौ रहिय ।
तिहि घरिय राज प्रथिराज सौं चन्द बचन इहि विधि कहिय ॥५०॥
निकट नगर जब जानि जाय वर विन्द उभय भय ।
समुद सिखर घन नद्द इंद दुहुं ओर घोर गय ।
अगवानिय अगिवान कुंअर बनि बनि हय सज्जति ।
दिष्षन को त्रिय सबनि गौख चढ़ि छाजन रज्जति ।

बिलखि अवास कुंवरि वदन मनो राहु छाया सुरत।
अंषति गवष्षि पल पल पलकि दिखत पंथ दिल्ली सुपति ॥५१॥

पद्धरी

दिष्षंत पंथ दिल्ली दिसान,
सुख भयो सूक जब मिल्यो आन ॥५२॥
सन्देश सुनत आनन्द नैन,
उमगीय बाल मनमथ्य सैन ॥५३॥
तन चिकट चीर डारयो उतारि,
मज्जन मयंक नव सत सिंगार ॥५४॥
भूषन मंगाय नख सिख अनूप,
सजि सेन मनो मनमथ्थ भूप ॥५५॥
सोव्रन्न थार मोतिन भराय,
झलहल करंत दीपक जराय ॥५६॥
संगह सखीय लिय सहस बाल,
रुकमनिय जेम मज्जत मराल ॥५७॥
पूजीय गवरि शंकर मनाय,
दच्छिनै अंग करि लगिय पाय ॥५८॥
फिर देखि देखि प्रथिराज राज,
हस मुद्ध मुद्ध चरपट्ट लाज ॥५९॥
करि पकरि पीठ हय पर चढ़ाय,
लै चल्यो नृपति दिल्ली सुराय ॥६०॥
भइ खबरि नगर बाहिर सुनाय,
पदमावतीय हरि लीय जाय ॥६१॥
बाजी सु बंब हय गय पलान,
दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसान ॥६२॥
तुम लेहु लेहु मुख जंपि जोध,
हन्नाह सूर सब पहिरि क्रोध ॥६३॥

अग्गे जु राज प्रथिराज भूप,
पच्छै सु भयो वह सब सैन रूप ।।६४।।
पहुंचे सु जाय तत्ते तुरंग,
भुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग ।।६५।।
उलटी जु राज प्रथिराज बाग,
थकि सूर गगन धर धसत नाग ।।६६।।
सामंत सूर सब काल रूप,
गहि लोह छोह वाहै सु भूप ।।६७।।
कम्मान बान छुट्टहिं अपार,
लागंत लोह इम सारि धार ।।६८।।
घमसान घान सब बीर खेत
घन श्रोन बहत अरु रुकत रेत ।।६९।।
मारे बरात के जोध जोह,
परि रुंड मुंड अरि खेत सोह ।।७०।।

दूहा

परे रहत रिन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख रुक्ख ।
जीति चल्यो प्रथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ।।७१।।
पदमावति इम लै चल्यौ, हरखि राज प्रथिराज ।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ।।७२।।

कबित्त

भाई जु आनि आवाज आय साहाबदीन सुर ।
आज गहौं प्रथिराज बोल बुल्लंत गजत धुर ।
क्रोध जोध जोधा अनन्त करिय पन्ती अनि गज्जिय ।
बांन नालि हथनालि तुपक तीरह सब सज्जिय ।
पवै पहार मनो सार के भिरि भुजान गजनेस बल ।
आये हकारि हुंकार करि खुरासान सुलतान दल ।।७३।।

भुजङ्गप्रयात

खुरासान मुलतान खन्धार मीरं,
बलक सोबलं तेग अच्चूक तीरं ॥७४॥
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानी,
ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी ॥७५॥
मंजारी-चखी मुक्ख जम्बक्क लारी,
हजारी हजारी इकें जोध भारी ॥७६॥
तिनं पष्षरं पीठ हय जीन सालं,
फिरंगी कती पास सुकलात लालं ॥७७॥
तहां बाघ बाघं मरूरी रिछोरी,
घनं सार सम्मूह अरु चौरं झोरी ॥७८॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी,
तुरक्की महाबान कम्मान बाजी ॥७९॥
ऐसे असिव असवार अग्गेल गोलं,
भिरे जून जेते सुतत्ते अमोलं ॥८०॥
तिनं मद्धि सुलतान साहाब आपं,
इसे रूप सों फौज बरनाय जापं ॥८१॥
तिनं घेग्गियं राज प्रथिराज राजं,
चिहौ ओर घनघोर नीसान बाजं ॥८२॥

कबित्त

बज्जिय घोर निसान रान चहुआन चिहौ दिस।
सकल सूर सामन्त समरि बल जंत्र मंत्र तस।
उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट।
कढ़त तेग मनो वेग लगत मनो बीज झट्ट घट।
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भइ श्रोन धर।
हर हनषि वीर जग्गे हुलस हुरव रङ्गि नव रत्त वर ॥८३॥

दूहा

हुरव रङ्ग नव रत्त वर, भयो युद्ध अति चित्त ।
निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह चित्त ॥८४॥

कबित्त

न को हार नह जित्त रहेइ न रहहि सूर वर ।
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर ।
कहौं कमध कहौं मथ्थ कहौं कर चरन अन्त दुरि ।
कहौ कंध वहि तेग कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर ।
कहौं दन्त मन्त हय खुर षुपरि कुम्भ भ्रसंडह रुंड सब ।
हिन्दवान रान भय भानमुख गहिय तेग चहुआन जब ॥८५॥

भुजंगप्रयात

गही तेग चहवान हिंदवान रानं,
गजं जूथ परि कोप केहरि समानं ॥ ८६ ॥
करे रुण्ड मुण्डं करी कुम्भ फारे,
बरं सूर सामन्त हुकि गर्ज भारे ॥ ८७ ॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे,
मदं तज्जियं लाज ऊमङ्ग मग्गे ॥ ८८ ॥
दौरे गजं अन्ध चहुआन केरो,
करीयं गिरद्दं चिहौ चक्क फेरो ॥ ८९ ॥
गिरद्दं उड़ी भान अन्धार रैनं,
गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं ॥ ९० ॥
सिरं नाय कम्मान प्रथिराज राजं,
पकरिये साहि जिमि कुलिङ्ग बाजं ॥ ९१ ॥
लै चल्यौ सिताबी करी फारि फौजं,
परे मीर से पञ्च तहं खेत चौजं ॥ ९२ ॥
रजं पुत्त पच्चास जुज्झे अमोरं,
बजै जीत के नद्द नसीन घोरं ॥ ९३ ॥

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै सङ्ग ।
दिल्ली दिसि मारिग लगो, उतरि घाट गिर गङ्ग ॥ ९४ ॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतान ।
निकट नगर दिल्ली गये, चत्रभुजा चहुआन ॥ ९५ ॥

कबित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरो परिट्ठय ।
हर बांसह मंडप बनाय करि भांवरि गंठिय ॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रति वर ।
पद्मावति दुलहिन दुल्लह प्रथिराज राज नर ॥
डण्डयो साह सहाबदी अट्ठ सहस हय वर सुवर ।
दै दान मान षट भेस को चढ़े राज द्रुग्गा हुजर ॥ ९६ ॥

दूहा

चढ़े राज द्रुग्गह नृपति, सुमत राज प्रथिराज ।
अति अनन्द आनन्द सें, हिन्दवान सिरताज ॥ ९७ ॥

महोबा-खंड

आल्हा और पृथ्वीराज के युद्ध में पृथ्वीराज के मूर्छित होनें पर गिद्धनी का उसकी आंख निकालने लगना और युद्ध भूमि में घायल गिरे हुए सञ्जमराय का उसे अपना मांस देकर राजा को बचाना ।

कबित्त

लोह लागि चहुंवान परे मुरछा ह्वै धरतिय ।
उड़ गीधनि बैठि कै चुञ्च बाहैति विरत्तिय ।
देख्यो सञ्जमराय नृपति दृग दाढ़ति पंछिन ।
अपने तन को मांस काटि भखु दियो ततच्छिन ॥
अपनै सुनयन देख्यो नृपति अन्त समैं भ्रम पल्लियब ।
आये बिवान बैकुण्ठ के देह सहत धरि चल्लियब ॥

दूहा

गीधनि कौं पल भखु दियो, नृप कै नैन बचाय ।
देह हँसत बैकुण्ठ को, पहुंच्यो सञ्जमराय ।।

चंद के अन्य दोहे

सरस काव्य रचना रचौं, खलजन सुनिन हसन्त ।
जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त ।। १ ।।
तौ पुनि सुजन निमित्त गुन, रचिये तन मन फूल ।
जू का भय जिय जानि कै, क्यों डारिये दुकूल ।। २ ।।
पूरन सकल बिलास रस, सरस पुत्र फलदान ।
अन्त होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान ।। ३ ।।
जसहीनो नागौ गिनहु, ढंक्यो जग जसवान ।
लंपट हारै लोह छन, त्रिय जीतै बिन बान ।। ४ ।।
समदरसी ते निकट है, भुगति मुगति भरपूर ।
विषम दरस वा नरन तें, सदा सरबदा दूरि ।। ५ ।।
पर योषित परसै नहीं, ते जीते जग बीच ।
परतिय तक्कत रैन दिन, ते हारे जग नीच ।। ६ ।।

विद्यापति ठाकुर

महोपाध्याय विद्यापति ठाकुर मैथिल ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर, पितामह का जयदत्त ठाकुर और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर था । इनका जन्म मिथिला देश के विसपी ग्राम में हुआ था ।

विद्यापति का जन्म किस संवत् में हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता । बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा संकलित विद्यापति की पदावली में राजा शिवसिंह के सिंहासनारोहण विषयक एक कविता है । उसके ऊपर के दो पद हम यहां प्रस्तुत करते हैं :—

३ ९ २ ४ २ ३ १

"अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवय सक समुद्द कर आगनि ससी।
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ बार बेहप्पय जाउ लसी॥"

इससे केवल इतना पता चलता है कि लक्ष्मणसेन (लक्खन) द्वारा प्रचारित सन् २९३ (शकाब्द १३२४, विक्रम संवत् १४५९) में राजा शिवसिंह गद्दी पर बैठे। विद्यापति राजा शिवसिंह के दरबार में थे। दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। राजा ने इनको बिसपी ग्राम दान दे दिया था। उसका दानपत्र अभी तक इनके वंशजों के पास है। उस पर सन् २९३ लिखा है। इससे अनुमान होता है कि राजा ने गद्दी पर बैठने की खुशी में बिसपी ग्राम विद्यापति को दे दिया था। राज-दरबार में अपनी विद्वत्ता के बल पर इतना सम्मान प्राप्त करने के समय किसी मनुष्य की आयु कम से कम कितनी होनी चाहिए, इसकी कल्पना करके सन् २९३ के उतना समय पहले विद्यापति का जन्म-काल अनुमान कर लेना चाहिए।

विद्यापति की पदावली में बहुत से पद्य ऐसे हैं जिनमें राजा शिवसिंह और उनकी रानी लखिमा देवी का नाम आया है। शृंगार-रस का जहां कोई मधुर वर्णन आया है, वहां विद्यापति ने लिखा है कि इस रसको राजा शिवसिंह और लाखिमा देवी ही जानती हैं। रानी लाखिमा देवी के विषय में ऐसा कहने की स्वतन्त्रता जब कवि को प्राप्त थी, तब इससे प्रकट होता है कि विद्यापति को राजा शिवसिंह बहुत मानते थे।

विद्यापति प्रतिभाशाली कवि और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने संस्कृत भाषा में पांच उत्तम ग्रन्थ बनाये जिनका मिथिला में बड़ा आदर है। मैथिल-भाषा में इनके बनाये बहुत से पद हैं, जो मिथिला में काम-काज के अवसर पर गृहस्थों के यहां गाये जाते हैं, और इनके कुछ पदों का बंगदेश में भी विशेष आदर है। इसी से कुछ बङ्गाली महाशय इनको भी बङ्गाली-कवि कहते हैं; परन्तु ये बङ्गाली नहीं थे।

इनकी कविता में शृङ्गार-रस प्रधान है। संयोग वियोग के छोटे-

छोटे भावों को भी दिखाने में इन्होंने बड़ी पटुता दिखलाई है। हमने इनकी कविता में से कुछ अच्छे-अच्छे पद चुनकर आगे संग्रह कर दिये हैं, उसके पढ़ने से पाठकों को सहज ही में यह पता चल जायगा कि इन्होंने भावों के झलकाने में कितनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। इनकी कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसंद करते थे। वास्तव में इनकी कविता बड़ी ही श्रुतिमधुर और भाव-विभूषिता है।

इनकी कविता की भाषा हिन्दी है। केवल थोड़े-से ऐसे शब्द हैं जो मिथिला में बोले जाते हैं। अपनी कविता में स्थान-स्थान पर इन्होंने ठेठ हिन्दी शब्दों का अच्छा प्रयोग किया।

इनकी कविता के कुछ चुने हुए पद यहां हम उद्धृत करते हैं। बहुत-से पद चमत्कारपूर्ण होने पर भी हमने छोड़ दिये, क्योंकि उनके भावों में अश्लीलता अधिक थी।

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव॥

सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि।
जमुना का तिर उपवन उदवेगल फिरि फिरि ततहि निहार।
गोरस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि॥
तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन बचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति बन्दह नन्दकिशोरा॥ १॥

कि कहब हे सखि आजुक बात, मानिक पड़ल कुबनिक हात।
काच कांचन न जानय मूल, गुन्जा रतन करइ समतूल।
जे किछु कभु नहि कला रस जान, नीर खीर दुहुं करे समान।
तन्हि सो कहाँ पिरित रसाल, बानर कण्ठे कि मोतिय माल।
भनइ विद्यापति इह रस जान, बानर मुंह कि शोभय पान॥ २॥

सजनी अपद न मोहि परबोध।
तोड़ि जोड़िअ जाहां गेंठे पए पड़ ताहां तेज तम परम बिरोध॥

सलिल सनेह सहज थिक सीतल ई जानइ सबे कोइ।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइ तइग्रग्रो विरत रस होइ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइग्र कुल ससि नीली रंग।
अनुभवि पुनि अनुभवए अचेतन पड़ए हुतास पतंग॥ ३॥

कालि कहल पिग्रा ए सांझहि रे जायब मोये मारू देश।
मोये अभागिली नहिं जानल रे संग जइतंग्रो योगिनी वेश॥
हृदय बड़ दारुन रे पिया बिनु बिहरि न जाइ।
एक शयन सखि सूतल रे अछल बालभु निस भोर।
न जानल कति खन तेजिगेल रे बिछुरल चकवा जोर॥
सून सेज हिय सालइ रे पियाए बिनु घर मोये आजि।
विनति करहु सुसहेलिनि रे मोहि देह अगिहर साजि॥
विद्यापति कवि गाग्रोल रे आवि मिलत पिय तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे राय शिवसिंह नहिं भोर॥ ४॥

हमर नागर रहल दूर देश, केऊ, नहिं कहि सक कुशल संदेश।
ए सखि काहि करब अपतोस, हमर अभागि पिया नहिं दोस।
पिया बिसरल सखि पुरुब पिरीति, जखन कपाल वाम सब विपरीति।
मरम क वेदन मरमहि जान, आन क दुख आन नहिं जान।
भनइ विद्यापति न पुरइ काम, कि करति नागरि जाहि विधि वाम॥५॥

लोचन धाए फेधायेल हरि नहिं आयल रे।
शिव शिव जिवग्रो न जाए आसे अरुझाएल रे॥

मन करि तहँ उड़ि जाइग्र जहां हरि पाइग्र रे।
पेम परसमनि जानि आनि उर लाइग्र रे॥
सपनहु संगम पाग्रोल रंग बढ़ाग्रोल रे।
से मोर विहि विघटाग्रोल निन्दग्रो हेरायल रे॥
भनइ विद्यापति गाओल धनि धइरज कर रे।
अचिरे मिलत तोहिं बालम्भु पुरत मनोरथ रे॥६॥

सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे।
जौवन बिनु तन तनु बिनु जौवन
की जौवन पिय दूरे॥
सखि हे मोर बड़ दैव विरोधी॥ ७॥

माधव कत तोर करब बड़ाइ।
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहुं अधिक लजाइ॥
जो श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ तौ पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीश निशाकर तौ पुन इकहि पक्ष इजोर॥
मनि समान अओरो नहिं दूसर तिन कहुं पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित भै रहु की कहु ठामहि ठामे॥
तोहर सरिस एक तोह माधव मन होइछ अनुमाने।
सज्जन जन सौं नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने॥ ८॥

सखि कि पुछसि अनुभव मोय।
सेही पिरित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतुन होइ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल स्रुति पथे परस न गेल॥
कत मधु जामिनअ रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल।
लाख लाखजुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुड़न न गेल॥
कत विदग्ध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइत लाखवे न मिलल एक॥ ९॥

ब्रह्म कमण्डल वास सुवासिनी सागर नागर गृह वाले,
पातक महिष विदारण कारण धृत करवाल वीचि माले,
जय गंगे, जय गंगे, शरणागत भय भंगे॥ १०॥

पिय मोर बालक हम तरुणी,
कोन तप चुकलौंह भैलौंह जननी।
पहिर लेल सखि इक दछिनक चीर,
पिया के देखत मोर दगध सरीर॥

पिया लेलि गोद कै चललि बजार,
हटिया के लोग पुछें के लागु तोहार।
नहिं मोर देवर कि नहिं छोट भाइ,
पुरब लिखल छल स्वामी हमार ॥११॥

सखी मोर पिया,
अबहुँ न आओल कुलिश हिया।
नखर खोआयलुं दिवस लिखि लिख,
नयन अन्धयालुं पिया पथ पेखि।
आयब हेत कहि मोर पिया गैला,
पूरबक तेज गुन बिसरिल भेला।
भनहि विद्यापति शुन अवराइ,
कानु समझाइते अब चलि जाइ ॥१२॥

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा विहरति छाति।
गोपी सकल बिसरलनि रे जत छिल अहिवाति ॥
सुतिल छलहुं अपन गृह रे निन्दई गेलउ सपनाइ।
कर सौं छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिय गराणी।
आनक धन सों धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी ॥
गोकुल चान चकोरल रे चोरी गेल चन्दा।
बिछुड़ि चलिल दुहु जोड़ी रे जीव इह गेल धन्दा ॥
काक भाष निज भाखह रे पहु आओत मोरा।
क्षीर खांड़ भोजन देव रे भरि कनक कटोरा ॥
भनहिं विद्यापति गाओल रे धैरज धर नारी।
गोकुल होयत सुहाओन फेरि मिलत मुरारी ॥१३॥

अंगने आओब जब रसिया, पलटि चलब हम ईषत हंसिया।
रस नागरि रमनी, कत, कत जुगुति मनहि अनुमानी।
आवेशे आंचरे पिया धरबे, जाओब हम जतन बहु करबे।

कंचुया धरब जब हठिया, करे कर बांधब कुटिल आध दिठिया।
रभस मांगब पिय जबहीं, मुख मोड़ि विहंसि बोलब नहिं नहिं।
सहजहिं सुपुरुख भमरा, मुख कमल मधु पीयब हमरा।
नैखने हरब मोर गेयाने, विद्यापति कह धनि तुय धेयाने ॥१४॥

सरस बसंत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनहु रूप वचन यक भाषिय मुख से दुरि करु चीरे॥
तोहर वदन सम चांद होअथि नहिं जैयौ जतन बिह देला।
कै बेरि काटि बनावल नव कय तैयौ तुलित नहिं भेला॥
लोचन तूअ कमल नहिं भैसक से जग के नहिं जाने।
से फिर जाय लुकैनह जल भय पंकज निज अपमाने॥
भनहि विद्यापति सुन वर जौवित ईसभ लछमि समाने।
राजा शिवसिंह रूपनरायन लखिमा देइ प्रति भाने ॥१५॥

जइत देखलि पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि।
कनकलता सम सुन्दरि सजनी विह निरमावल आनि॥
हस्ति गमनि जगा चलइत सजनी देखइत राजकुमारि।
जिनका यह न सुहागिन सजनी पाय पदारथ चारि॥
नील वसन तन घेरलि सजनी सिरै लेल चिकुर संभारि।
तापर भमर पिवय रस सजनी बैसल पंख पसारि॥
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी लोचन अंबुज धारि।
विद्यापति यह गाओल सजनी गुन पाओलि अवधारि ॥१६॥

कबीर साहब

संयुक्त-प्रान्त में शायद ही कोई ऐसा हिंदू हो जो कबीर साहब को न जानता होगा। कबीर साहब के भजन मंदिरों में और सत्संग के अवसरों पर गाये जाते हैं। उनकी साखियां प्रायः कहावतों का काम दिया करती हैं।

कबीर साहब एक पंथ के प्रवर्तक थे, जिसे कबीर-पंथ कहते हैं।

कबीर-पंथियों में निम्नश्रेणी के लोग अधिकांश पाए जाते हैं। उनमें से कुछ तो साधू हैं जो गांवों में कुटी बनाकर रहते हैं, और कुछ गृहस्थ हैं। कबीर-पंथी साधू सिर पर नोकदार पीले रंग की टोपी पहनते हैं।

कबीर साहब कौन थे ? कहां और किस समय में वे उत्पन्न हुए ? उनका असली नाम क्या था ? बचपन में वह कौन धर्मावलंबी थे? उनका विवाह हुआ था या नहीं ? और वह कितने समय तक जीवित रहे ? इन बातों में बड़ा मतभेद है। कबीर साहब की जीवनी लिखनेवाले भिन्न-भिन्न बातें बतलाते हैं। उनमें सत्य का अंश कितना है, इसका पता लगाना सहज नहीं है। "कबीर-कसौटी" में कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ वि० में और मरण १५७५ वि० में होना लिखा है। कबीर-पंथी लोग उनकी उम्र तीन सौ वर्ष की बतलाते हैं। उनके कथनानुसार कबीर साहब का जन्म १२०५ वि० में और मरण १५०५ वि० में हुआ है। इनमें से किसकी बात सत्य है ? इसका निर्णय करना बड़ी खोज का काम है। कबीर-पंथ के विद्वानों की राय में कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहब ने अपने को जुलाहा लिखा है। एक जगह वह कहते हैं—

तू बाह्मन मैं काशी का जुलहा बूझहु मोर गियाना।

(आदि ग्रंथ)

इससे अब इस बात में तो कुछ संदेह रह ही नहीं जाता कि कबीर साहब जुलाहे थे। परन्तु वह जन्म के जुलाहे नहीं थे, यह कहावतों से मालूम होता है।

कहा जाता है कि संम्वत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को एक ब्राह्मण की विधवा कन्या के पेट से एक पुत्र पैदा हुआ। लोक-लज्जावश उसने बालक को लहर तालाब (काशी) के किनारे फेंक दिया। संयोग से नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उसी राह से आरहा था। उसने उस अनाथ बच्चे को घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नाम से विख्यात हुआ।

कबीर साहब बालकपन ही से बड़े धर्मपरायण थे। जब उनको सुध-

बुध होगई तब वह तिलक लगाकर राम राम जपा करते थे। एक जुलाहे के घर में रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असंभव-सा प्रतीत होता है। परन्तु संगति का प्रभाव बड़ा विचित्र होता है, वह असंभव को संभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानंद के शिष्य थे। स्वामी रामानंद शेष रात्रि में गंगा-स्नान के लिए मणिकर्णिका घाट पर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाट की सीढ़ियो पर जाकर सो रहे। अंधेरे में स्वामीजी का पैर उनके ऊपर पड़ गया। तब वे कुलबुलाये। स्वामीजी ने कहा—"राम राम कह; राम राम कह" कबीर साहब ने उसी को गुरुमंत्र मान लिया। उसी दिन से उन्होंने काशी में अपने को स्वामी रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध किया। यवन के घर में पले होने पर भी कबीर साहब की प्रवृत्ति हिन्दू-धर्म की तरफ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात वह स्वयं स्वीकार करते हैं—

"हम घर सूत तनहिं नित ताना"।

कबीर साहब ने विवाह किया था या नहीं, इस विषय में भी बड़ा मतभेद है। कबीर-पंथ के विद्वान् कहते हैं कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परन्तु उन्होंने उससे विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषय में भी विचित्र बातें सुनी जाती हैं—"डूबे बंस कबीर के उपजे पूत कमाल" यह भी एक कहावत-सा प्रसिद्ध होरहा है। इससे पता चलता है कि कबीर ने विवाह अवश्य किया था और कमाल कबीर का पुत्र था। कमाल भी कविता करते थे, परन्तु उन्होंने कबीर साहब के सिद्धान्तों के खंडन करने ही में अपनी सारी उम्र बितादी। इसीसे "डूबे बंस कबीर के उपजे पूत कमाल" कहा गया है।

कबीर साहब बड़े ही सुशील और बड़े सदाचारी थे। एक दिन की

बात है कि उनके यहां बीस-पच्चीस भूखे फकीर आए। कबीर साहब के पास उस दिन कुछ खाने को नहीं था। इसलिए वे बहुत घबराये। लोई ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपया लाऊं, वह मुझ पर मोहित है, मैं पहुंची नहीं कि उसने रुपये दिये नहीं। कबीर साहब ने कहा—जाओ, ले आओ। लोई साहूकार के बेटे के पास गई और उसने उससे अपना अभिप्राय कह सुनाया। साहूकार के बेटे ने तत्काल धन देदिया। जब अन्त में उसने अपना मनोरथ प्रकट किया, तब लोई ने रात में मिलने का वादा किया।

दिन खाने-खिलाने में बीत गया। रात हुई, चारों ओर अंधेरा छा गया। संयोग से उस दिन पानी बरस रहा था। लोई ने कबीर साहब से सब वृतान्त कह दिया था, इससे कबीर साहब को चैन नहीं था। वह सोचते थे कि जिसकी बात गई, उसका सब गया। उन्होंने हवा-पानी की कुछ भी परवा न की और कम्बल ओढ़कर स्त्री को कंधे पर बिठा कर वह साहूकार के घर पहुंचे; आप तो बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गई। न तो उसके कपड़े भीगे थे और न उसके पैरों में ही कीचड़ लगी थी। यह देखकर साहूकार के लड़के ने इसका कारण पूछा। लोई ने सब सच-सच कह दिया। यह सुनकर साहूकार के बेटे की कुवृत्ति बदल गई। वह लोई के पैर पर गिर पड़ा और कहा—तुम मेरी मां हो। इतना कहकर वह बाहर आया और कबीर साहब के पैर से लिपट गया और उसी दिन से वह उनका सेवक बन गया।

कबीर साहब के जीवन-चरित्र में ऐसी बहुत-सी कथाएं हैं जिनसे उनकी सच्चरित्रता प्रकट होती है।

कबीर साहब पढ़े-लिखे न थे। सत्संगी थे। सत्संग ही से उन्होंने हिन्दू-धर्म की गूढ़-गूढ़ बातें जानली थीं। उनके हृदय में हिन्दू-मुसलमान किसी के लिए द्वेष न था; वह सत्य के बड़े पक्षपाती थे। जहां उन्हें सत्य के विरुद्ध कुछ दिखाई पड़ा, वहां उन्होंने उसका खंडन करने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

कबीर साहब ने अपना अधिकार हिन्दू-मुसलमानों दोनों पर जमाया। आजकल भी हिन्दू-मुसलमान दोनों प्रकार के कबीर-पंथी मिलते हैं; परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनों का कबीर मत से बैर हो गया। हिन्दू-धर्म के नेता एक अहिन्दू के मुख से हिन्दू-धर्म का प्रचार देखकर भड़के और मुसलमान कबीर साहब के हिन्दू-आचार्य का शिष्य होने तथा हिन्दू-धर्म का प्रचार करने के कारण कट्टर विरोधी होगये। इस विरोध के कारण उनको बड़ी-बड़ी कठिनाइयां भोगनी पड़ीं। परन्तु उनके हृदय में जो सत्य का दीपक जल रहा था, वह किसी के बुझा। न बुझा।

कबीर साहब ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। वे साखी और भजन बनाकर कहा करते थे और उनके चेले उसे कंठस्थ कर लेते थे, पीछे से वह सब संग्रह कर लिया गया। कबीर-पंथ के अधिकांश उत्तम-उत्तम ग्रन्थ उनके शिष्यों के रचे हुए कहे जाते हैं।

"खास ग्रन्थों" में निम्न-लिखित पुस्तकें हैं—

१—सुखनिधान, २—गोरखनाथ की गोष्ठी, ३—कबीर पांजी, ४—बलख की रमैनी, ५—आनन्द राम सागर, ६—रामानन्द की गोठी ७—शब्दावली, ८—मंगल, ९—बसन्त, १०—होली, ११—रेखता, १४—झूलन, १३—ककहरा, १४—हिन्दोल, १५—बारहमासा, १६—चांचर, १७—चौंतीसी, १८—अलिफनामा, १९—रमैनी, २०—साखी, २१—बीजक।

कबीर-पंथियों में बीजक का बड़ा आदर है। बीजक दो हैं—एक तो बड़ा, जो स्वयं कबीर साहब का काशिराज से कहा हुआ बतलाया जाता है, और दूसरे बीजक को कबीर के एक शिष्य भग्गूदास ने संग्रह किया है। दोनों में बहुत कम अन्तर है।

कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है। मेरी समझ में लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यों तो अर्थ लगानेवाले कुछ न कुछ उलटा-सीधा अर्थ लगा ही लेते हैं;

परन्तु खींच-तानकर लगाये गए ऐसे अर्थों में कुछ विशेषता नहीं रहती। नमूने के लिए एक पद यहां दिया जाता है—

ठगिनी क्या नैना झमकावै, कबिरा तेरे हाथ न आवै ॥
कद्दू काटि मृदङ्ग बनाया नीबू काटि मंजीरा।
सात तरोई मंगल गावै नाचै बालम खीरा ॥
भैंस पदमिनी आसिक चूहा मेढ़क ताल लगावै।
चोला पहिरि गदहिया नाचै ऊंट बिसुनपद गावै ॥
आम डार चढ़ि कछुआ तोड़ै गिलहरि चुनि चुनि लावै।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, बगुला भोग लगावै ॥

बे सिर-पैर की बातें हैं। तब भी कबीर-पंथी लोग इनका कुछ-न-कुछ अर्थ बैठा ही लेते हैं।

कबीर साहब मूर्ति-पूजा के कट्टर विरोधी थे। यद्यपि ईश्वर का अवतार धारण करना भी वह नहीं मानते थे, परन्तु अपने को उन्होंने स्वयं सत्य-लोक-वासी प्रभु का दूत बतलाया है। वह कहते हैं—

काशी में हम प्रकट भये हैं रामानंद चेताये।
समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आये ॥

(शब्दावली)

लोगों का ऐसा कथन है कि मगहर में प्राण-त्याग करने से मुक्ति नहीं मिलती। भला, सत्यान्वेषक कबीर इस बात को कैसे मान सकते थे? उन्होंने लोगों का यह भ्रम मिटाने के लिए ही मगहर में जाकर शरीर छोड़ा। इस विषय में उन्होंने कहा है—

जो कबीर काशी मरे तो रामहिं कौन निहोरा।

* * *

जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।

कबीर साहब की कविता में बड़ी शिक्षा भरी है। एक-एक पद से उनकी सत्य-निष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने जो कहा है, प्रायः सभी एक-से-एक बढ़कर है। हमने उन्हींमें से कुछ साखी और भजन चुन लिये

हैं। हमें कबीर साहब की साखी में बड़ा आनन्द मिलता है। बातें तो छोटी-सी हैं, परन्तु उनमें अगाध ज्ञान भरा हुआ है।

हम यहां कबीर साहब की कुछ साखियां और भजन उद्धृत करते हैं—

साखी

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया बताय॥ १॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान॥ २॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़ा में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ॥ ३॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपे मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत॥ ४॥
सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीखई, भीतर चकनाचूर॥ ५॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय॥ ६॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान॥ ७॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय॥ ८॥
सुमिरन की सुधि यों करै, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर विचार॥ ९॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि।
मनुवां तो दहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नांहि॥१०॥
गगन मंडल के बीच में, जहां सोहंगम डोरि।
सबद अनाहद होत है, सुरत लगी तहं मोरि॥११॥

कबिरा गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥१२॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरिता देखि कर, भये कबीर उदास ॥१३॥
झूठे सुख को सुख कहै, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥१४॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यों तारा परभात ॥१५॥
रात गंवाई सोय करि, दिवस गंवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥१६॥
आज कहै कल्ह भजूंगा, काल कहै फिर काल।
आज कालके करत ही, औसर जासी चाल ॥१७॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियां चुग गईं खेत ॥१८॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१९॥
कबिरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥२०॥
पांचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥२१॥
कहा चुनावै मेड़ियां, लम्बी भीति उसारि।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चारि ॥२२॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा, मैं रूँदूंगी तोहिं ॥२३॥
यह तन कांचा कुम्भ है, लिए फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ॥२४॥

आये हैं सो जांयगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले, एक बंधे जंजीर ॥२५॥
आसपास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥२६॥
या दुनिया में आय के, छाड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥२७॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥२८॥
ऐसी गति संसार की, ज्यों गाड़र की ठाट।
एक पड़ा जेहि गाड़ में, सबै जाहि तेहि बाट ॥२९॥
तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बंधि रहा, सो अपना नहि होय ॥३०॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहि ॥३१॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन हो गये सब्ब ॥३२॥
माली आवत देखि कै, कलियां करी पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, कालि हमारी बार ॥३३॥
हम जानें थे खाहिंगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥३४॥
भक्ति भाव भादों नदी, सबैं चलीं घहराय।
सरिता सोइ सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥३५॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निःकामी निज देव ॥३६॥
लागी लागी क्या करे, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार ह्वै जाय ॥३७॥

लागी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥३८॥
सोऔं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोचन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूं नाहिं ॥३९॥
ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग में रहैं, हरि को भूलें नाहिं ॥४०॥
कबीर हंसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥४१॥
हंसौ तो दुख ना बीसरै, रोवों बल घटि जाय।
मनहीं माहिं बिसूरना, ज्यौं घुन काठहिं खाय ॥४२॥
हँस हँस केतन पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हांसी खेले पिउ मिलै, (तो) कौन दुहागनि होय ॥४३॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥४४॥
मांस गया पिञ्जर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुं न आइया, मन्द हमारे भाग ॥४५॥
हबस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
पीर सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग ॥४६॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुंधुआय।
छूटि पड़ौं या विरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥४७॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै नहीं, धूवां ह्वै ह्वै जाय ॥४८॥
जो जन बिरही नाम के, तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करैं, सुमिरन करैं विदेह ॥४९॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥५०॥

आगि लगी आकास में, झरि झरि परैं अंगार।
कबिरा जरि कंचन भया, कांच भया संसार ॥५१॥
कबिरा वैद बुलाइया, पकरि के देखी बांहि।
वैद न वेदन जानई, करक करेजे मांहि ॥५२॥
जाहु वैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई, भला करैगा सोय ॥५३॥
सीस उतारै भुइं धरै, तापर राखै पांव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥५४॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥५५॥
छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥५६॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥५७॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहिं ॥५८॥
जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान ॥५९॥
प्रेम तो ऐसा कीजियो, जैसे चंद चकोर।
घींच टूटि भुइं मां गिरै, चितवै वाही ओर ॥६०॥
जहां प्रेम तहं नेम नहिं, तहां न बुधि व्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि वार ॥६१॥
प्रेम छिपाया न छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय ॥६२॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥६३॥

कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥६४॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥६५॥
जल में बसै कमोदिनी, चन्दा बसै अकास।
जो है जाको भावता, सो ताही के पास ॥६६॥
प्रीतम को पतियां लिखूं, जो कहुं होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ताको कहा संदेस ॥६७॥
साईं इतना दीजिये, जा में कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाय ॥६८॥
बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान।
साधु संगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥६९॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं ॥७०॥
अवगुन मेरे बापजी, बकसु गरीबनिवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥७१॥
साहिब तुमहि दयाल हो, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥७२॥
सिख तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिख से कछु नहिं लेय ॥७३॥
सिंहों के लेहंड़े नहीं, हंसों की नहिं पांत।
लालों की नहिं बोरियां, साधु न चलैं जमात ॥७४॥
साधु कहावन कठिन है, ज्यों खांड़े की धार।
डगमगाय तो गिरि परे, निःचल उतरै पार ॥७५॥
गांठी दाम न बांधई, नहिं नारी से नेह।
कहै कबीर ता साधु के, हम चरनन की खेह ॥७६॥

साधु हमारी आतमा, हम साधुन के जीव।
साधुन मद्धे यों रहौं, ज्यों पय मद्धे घीव ॥७७॥
जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥७८॥
कबीर संगत साधु की, हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाधु की, आठों पहर उपाधि ॥७९॥
कबीर संगत साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड़ भोजन मिले, साकट संग न जाय ॥८०॥
कबीर संगत साधु की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥८१॥
कबीर संगत साधु की, निष्फल कभी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥८२॥
संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़े, तऊ न भीजै कोर ॥८३॥
हरियर जानै रूखड़ा, जौ पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही, केतहु बूड़ा मेह ॥८४॥
मारी मरै कुसंग की, ज्यों केले ढिग बेर।
वह हालै वह चीरई, साकट संग निबेर ॥८५॥
केला तबहिं न चेतया, जब ढिग जामी बेरि।
अब के चेते क्या भया, कांटों लीन्हा घेरि ॥८६॥
समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार।
जहं देखों तहं एकही, साहिब का दीदार ॥८७॥
सहज मिलै सो दूध सम, मांगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐंचातानि ॥८८॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥८९॥

आटा तजि भूसी गहै, चलना देखु निहार।
कबीर सारहि छांड़ि कै, करै असार अहार ॥९०॥
उततें कोई न बाहुरा, जातें बूझूं धाय।
इततें सबही जात हैं, भार लदाय लदाय ॥९१॥
उततें सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावैं तीर ॥९२॥
जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समझ लेहु मन माहिं ॥९३॥
सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ताको काल कहा करे, जो आठ पहर हुसियार ॥९४॥
नांव न जानौं गांव का, बिन जाने कित जांव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गांव ॥९५॥
सतगुरु दीनदयाल हैं, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुंचा जाय ॥९६॥
चलन चलन सब कोइ कहैं, मोंहि अंदेशा और।
साहिब से परिचय नहीं, पहुचैंगे केहि ठौर ॥९७॥
कबीर का घर सिखर पर, जहां सिलहली गैल।
पांव न टिकै पिपीलिका, पंडित लादे बैल ॥९८॥
मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥९९॥
कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढ़ै बन माहिं।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं ॥१००॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुंक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय ॥१०१॥
जरा मीच व्यापै नहीं, मुआ न सुनियें कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइयां होय ॥१०२॥

साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज-दंद ।
एते निकसि न बहुरैं, जो जुग जाहि अनन्त ॥१०३॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ॥१०४॥
जूझेंगे तब कहेंगे, अब कछु कहा न जाय ।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥१०५॥
अगिन आंच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार ।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्यौहार ॥१०६॥
सूरा नाम धराइ के, अब का डरपै बीर ।
मंड़ि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥१०७॥
पतिबरता को सुख घना, जाके पति है एक ।
मन मैली बिभिचारनी, ताके खसम अनेक ॥१०८॥
पतिबरता पति को भजे, और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥१०९॥
नैनों अन्तर आव तूं, नैन झांपि तोहिं लेवं ।
ना में देखौं और को, ना तोंहि देखन देवं ॥११०॥
में सेवक समरत्थ का, कबहुं न होय अकाज ।
पतिबरता नांगी रहे, तो वाही पति की लाज ॥१११॥
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल ।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥११२॥
चन्दन गया विदेसड़े, सब कोइ कहें पलास ।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधिकी बास ॥११३॥
लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल ।
लाली देखन में गई, में भी होगई लाल ॥११४॥
हम बासी वा देश जहं, बारह मास बिलास ।
प्रेम झिरै बिगसै कंवल, तेज पुंज परकास ॥११५॥

कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं ।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं ॥११६॥
ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय ।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥११७॥
जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तोहिं फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥११८॥
दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वास से, लोह भस्म होजाय ॥११९॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय ॥१२०॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है, भूसन दे झख मारि ॥१२१॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
कहि कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ॥१२२॥
कथा कीरतन रात दिन, जाके उद्यम येह ।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥१२३॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तो पावै दीदार ।
औसर मानुष जनम का, बहुर न बारम्बार ॥१२४॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार ।
हतै पराई आतमा, जीभ बांधि तरवार ॥१२५॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥१२६॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट ।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥१२७॥
जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां, गहिरे पानी पैठ ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारै बैठ ॥१२८॥

पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुस्कल ॥१२९॥
भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥१३०॥
कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करै, तौ विष से अमृत होय ॥१३१॥
लाया साखि बनाय करि, इत उत अच्छर काट।
कह कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥१३२॥
पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीं, और बंधावत धीर ॥१३३॥
मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥१३४॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृसना तजै, ताहि मिलै भगवान् ॥१३५॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देह।
साधू ऐसा चाहिये, ज्यों पैंड़े की खेह ॥१३६॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग ॥१३७॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय ॥१३८॥
हरी भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरिभज निरमल होय ॥१३९॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल मांगे ठौर।
मल निरमल तें रहित है, ते साधू कोई और ॥१४०॥
सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ताके हिरदे आप ॥१४१॥

सांचे स्राप न लागई, सांचे काल न खाय।
सांचा को सांचा मिलै, सांचे माहिं समाय ॥१४२॥
सांचे काइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥१४३॥
सांचे को सांचा मिलै, अधिक बढ़े सनेह।
झूठे को सांचा मिलै, तड़दे टूटै नेह ॥१४४॥
जहां दया तहं धर्म है, जहां लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तहं काल है, जहां छिमा तहं आप ॥१४५॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजों आपना, मुझसा बुरा न कोय ॥१४६॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदइ होय।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय ॥१४७॥
कोटि करम लागे रहें, एक क्रोध का लार।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥१४८॥
दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की, तहां उबरिये भागि ॥१४९॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥१५०॥
जहं आपा तहं आपदा, जह संसय तहं सोग।
कह कबीर कैसे मिटैं, चारो दीरघ रोग ॥१५१॥
कबीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरू वह दास ॥१५२॥
तन तुरंग असवार मन, कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को, विषे बाज लिये हाथ ॥१५३॥
चलौ चलौ सब कोई कहै, पहुंचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१५४॥

पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अंग।
रावन के दस सिर गये, परनारी के संग ॥१५५॥
सब सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास।
जो जननी ह्वै आपनी, तऊ न बैठे पास ॥१५६॥
छोटी मोटी कामिनी, सब ही विष की बेल।
बैरी मारै दांव दै, यह मारै हंसि खेल ॥१५७॥
जागत में सोवन करै, सोवन में लौ लाय।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥१५८॥
निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१५९॥
तिनका कबहुं न निंदिये, जो पांयन तर होय।
कबहूं उड़ि आंखिन परै, पीर घनेरी होय ॥१६०॥
दोष पराये देखि करि, चले हसन्त हसन्त।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अन्त ॥१६१॥
माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रह्यो लपटाय।
हाथ मलै औ सिर धुने, लालच बुरी बलाय ॥१६२॥
औगुन कहौं शराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष से पसुआ करै, द्रव्य गांठि को देय ॥१६३॥
रूखा सूखा खाइ कै, ठंडा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव ॥१६४॥
कबीर साईं मुज्झ को, रूखी रोटी देय।
चुपड़ी मांगत मैं डरूं, रूखी छीन न लेय ॥१६५॥
सत्त नाम को छांड़ि कै, करै और को जाप।
बेस्या केरे पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥१६६॥
एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।
जा गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥१६७॥

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पुजौं पहार।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय संसार ॥१६८॥
कांकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥१६९॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥१७०॥
सपने में साईं मिले, सोव्रत लिया जगाय।
आंखि न खोलूं डरपता, मति सुपना ह्वै जाय ॥१७१॥
सांझ पड़े दिन बीतवै, चकवी दीन्ही रोय।
चल चकवा वा देस को, जहां रैन ना होय ॥१७२॥
चात्रिक सुतहि पढ़ावही, आन नीर मति लेय।
मम कुल यही स्वभाव है, स्वाति बूंद चित देय ॥१७३॥
जूआ चोरी मुखबिरी, व्याज घूस पर नार।
जो चाहैं दीदार को, एती वस्तु निवार ॥१७४॥
धरती करते एक पग, समुदर करते फाल।
हाथन परबत तौलते, तिनहूं खाया काल ॥१७५॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में, परसा पद निर्बान ॥१७६॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गंभीर।
चहुंदिस दमकै दामिनी, भीजैं दास कबीर ॥१७७॥
सुन्न मँडल में घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीनदयाल ॥१७८॥
सौ जोजन साजन बसैं, मानो हृदय मंझार।
कपट सनेही आंगने, जानु समुंदर पार ॥१७९॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं, हरिजन हरि हीं देत ॥१८०॥

कबिरा माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलें, गले रंहट के देख ॥१८१॥
साधू गांठि न बांधई, उदर समाना लेप।
आगे पाछे हरि खड़े, जब मांगै तब देय ॥१८२॥
बात बनाई जग ठगा, मन परबोधा नाहिं।
कह कबीर मन लै गया, लख चौरासी मांहि ॥१८३॥
कबिरा माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला साँस उसास की, जामें गांठ न मेर ॥१८४॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो रांड।
साधू भीख न मांगई, जो मांगै सो भांड ॥१८५॥
आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥१८६॥
कबिरा नवै सो आपको, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तोलिये, नवै सो भारी होय ॥१८७॥
तरवर तासु बिलम्बिये, बारह मास फलन्त।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केल करन्त ॥१८८॥
कबिरा हम गुर रस पिया, बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक ॥१८९॥
सब रंग तांत, रबाब तन, बिरह बजावे नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै सांई कै चित्त ॥१९०॥
गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ॥१९१॥
केसन कहा बिगारिया, जो मूंडो सौ बार।
मन को क्यों नहीं मूंड़िये, जामें विषय विकार ॥१९२॥
कबिरा रसरी पांव में, कह सोवै सुख चैन।
स्वांस नगारा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥१९३॥

शब्दावली

(१)

मन फूला फूला फिरै जक्त में कैसा नाता रे ॥ टेक ॥
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ॥
पेट पकरि माता रोवै बांह पकरि कै भाई।
लपटि झपटि कै तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ॥
जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ॥
चार गजी चरगजी मंगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारों कोने आग लगाया फूंक दियो जस होरी ॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा ॥
घर की तिरिया देखन लागी ढूंढ़ि फिरी चहुं देसा।
कहै कबीर सुनो भई साधो छोड़ो जग की आसा ॥

(२)

काया बौरी, चलत प्रान काहे रोई ॥ टेक ॥
काया पाय बहुत सुख कीन्हों नित उठि मलि मलि धोई।
सो तन छिआ छार ह्वै जैहै नाम न लैहै कोई ॥
कहत प्रान सुनु काया बौरी मोर तोर संग न होई।
तोहिं अस मित्र बहुत हम त्यागा सङ्ग न लीन्हा कोई ॥
ऊसर खेत कै कुसा मंगावै चांचर चवर कै पानी।
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा कै मिहमानी ॥
सब सनकादिक आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख होई।
जो जो जन्म लियो बसुधा में थिर न रह्यो है कोई ॥
पाप पुन्य है जन्म संघाती समुझि देखि नर लोई।
कहत कबीरा अन्तर की गति जानत बिरला कोई ॥

(३)

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी ।।टेक।।
साज समाज पिया लै आये और कहरिया चारी ।
बम्हना बेदरदी अचिरा पकरि कै जोरत गंठिया हमारी ।।
सखी सब गावत गारी ।।
विधि गति बाम कछु समझ परत ना बैरी भई महतारी ।
रोय रोय अंखियां मोर पोंछत घरवां से देत निकारी ।।
भई सबको हम भारी ।।
गवन कराय पिया लै चाले इत उत बाट निहारी ।
छूटत गांव नगर से नाता छूटै महल अटारी ।।
करम गति टरै न टारी ।।
नदिया किनारे बलम मोर रसिया दीन्ह घूंघट पट टारी ।
थरथराय तन कांपन लागे काहू न देख हमारी ।।
पिया लै आये गोहारी ।।
कहैं कबीर सुनो भई साधो यह पद लेहु बिचारी ।
अब के गौना बहुरि नहिं औना करिले भेंट अंकवारी ।।
एक बेर मिलि ले प्यारी ।

(४)

हमन हैं इस्क मस्ताना हमन को होसियारी क्या ?
रहैं आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या ?
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते ।
हमारा यार है हम में हमन को इन्तिजारी क्या ?
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है ।
हमन गुरु नाम सांचा है हमन दुनिया से यारी क्या ?
न पल बिछुड़े पिया हम से न हम बिछुड़ें पियारे से ।
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ?

कबीरा इस्क का माता दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या ?

५

भज ले सिरजनहार, सुघर तनके पायके ॥टेक ॥
काहे रहो अचेत कहां यह औसर पैहो।
फिर नहिं ऐसी देह बहुरि पाछे पछितैहो ॥
लख चौरासी जोनि में, मानुष जन्म अनूप।
ताहि पाय नर चेतत नाहीं, कहा रंक कहा भूप ॥ सुघर० ॥
गर्भ वास में रह्यो कह्यो मैं भजिहौं तोहीं।
निसदिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढ़ौ मोहीं ॥
चरनन ध्यान लगाइके, रहौं नाम लौ लाय।
तनिक न तोहि बिसारिहौं, यह तन रहै कि जाय॥ सुघर० ॥
इतना कियो करार काढ़ि गुरु बाहर कीना।
भूलि गयौ यह बात भयौ माया आधीना ॥
भूलि बातें उद्र की, आन पड़ी सुधि एत।
बारह बरस बीतिगे या बिधि, खेलत फिरत अचेत ॥सुघर०॥
बिषया बान समान देह जोबन मदमाती ।
चलत निहारत छाँह तमक के बोलत बाती ॥
चोवा चन्दन लाइ के, पहिरे बसन रँगाय।
गलियां-गलियां झांकी मारै, पर तिरिया लख मुसकाय॥सुघर०॥
तरुनापन गई बीत बुढ़ापा आनि तुलाने ।
कांपन लागे सीस जलत दोउ चरन पिराने ॥
नैन नासिका चूवन लागे, मुख तें आवत बास।
कफ पित कंठै घेर लियो है, छुटि गइ घर की आस ॥ सुघर० ॥
मातु पिता सुत नारि कहो काके सङ्ग जाई।
तन धन घर औ काम धाम सब ही छुटि जाई।

आखिर काल घसीटि है, पड़िहौ जम कै फन्द ।
बिन सतगुरु नहिं बांचिहौं, समुझ देख मतिमन्द ।। सुघर० ।।
सफल होत यह देह नेह सतगुरु से कीजै ।
मक्ती मारग जानि चरन सतगुरु चित दीजै ।।
नाम गहौ निरभय रहौ, तनिक न व्यापै पीर ।
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कबीर ।। सुघर० ।।

(६)

जाग पियारी अब का सोवै । रैन गई दिन काहे को खोवै ।।
जिन जागा तिन मानिक पाया । तैं बौरी सब सोय गँवाया ।।
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ।।
हौं बौरी बौरापन कीन्हों । भर जोबन अपना नहिं चीन्हों ।।
जाग देख पिय सेज न तेरे । तोहि छांड़ि उठि गये सबेरे ।।
कहैं कबीर सोई धन जागे । सबद बान उर अन्तर लागै ।।

(७)

या जग अंधा, मैं केहि समुझावों ।। टेक ।।
इक दुइ होयँ उन्हें समुझावों, सबहि भुलाना पेट के धन्धा ।।मैं केहि०।।
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुन्दा ।।मैं केहि०।।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा के पड़िगा फन्दा ।।मैं केहि०।।
घर का बस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारिके ढूंढ़त अंधा ।।मैं केहि०।।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बंदा ।।मैं केहि०।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इकदिन जाय लंगोटी झार बंदा।।मैंकेहि०।।

(८)

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं, देखि भागै सोई सूर नाहीं ।
काम और क्रोध मद लोभ से जूझना, मंडा घमसान तहं खेत माहीं ।।
शील औ साच संतोष साही भये, नाम समसेर तहं खूब बाजै ।
कहै कब्बीर कोई जूझि हैं सूरमा, कायरां भीड़ तहं तुरत भाजै ।।

(९)

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर, खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़दे बालके, आयजा भेख भगवंत पाहीं॥
भेष भगवंत की सेस महिमा करै, सेस के सीस पर चरन डारै
कामदल जीतिके कंवल दल सोधिके, ब्रह्म को बेधि कै क्रोध मारै॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै, गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोई संत जन जौहरी, करम की रेख पर मेख मारै॥

(१०)

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी॥
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो यह सब अकथ कहानी॥

(११)

पायो सत नाम, गरे कै हरवा।
सांकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पांच कहरवा।
ताला कुंजी हमैं गुरु दीन्ही जब चाहों तब खोलों किवरवा॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा॥

(१२)

कैसे दिन कटिहैं, जतन बताये जइयो॥
एहि पार गंगा वोहि पार यमुना
बिचवा मड़इया हमको छवाये जइयो॥

अंचरा फारि के कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहियां पकरि के रहिया बताये जइयो ॥

(१३)

करम गति टारे नाहिं टरी ।
मुनि बसिष्ट से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दसरथ को बन में बिपति परी ॥
कहं वह फन्द कहां वह पारधि कहं वह मिरग चरी ।
सोता को हरि लैगो रावन सुबरन लंक जरी ॥
नीच हाथ हरिश्चन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोनि परी ॥
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी ।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी ॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा विधि संयोग परी ।
कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही ॥

(१४)

सन्तो राह दोऊ हम दीठा ।
हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानै, स्वाद सबन को मीठा ॥
हिन्दू बरत एकादसि साधै, दूध सिंघाड़ा सेती ।
अन को त्यागै मन नहि हटकै, पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै, बिसमिल बांग पुकारै ।
उनकी भिस्त कहां ते होइ है, सांझे मुरगी मारै ॥
हिन्दू दया मेहर को तुरकन, दोनों घट सों त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारै, आगि दुनों घर लागी ॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई ।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहेउ खोदाई ॥

(१५)

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करै बड़ाई सागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवैं यह देखो हिन्दुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करै सगाई॥
बाहर से एक मुरदा लाये धोय धाय चढ़वाई।
सब सखियां मिल जेंवन बैठीं घर भर करै बड़ाई॥
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई॥

(१६)

मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा।

आसन मारि मंदिर में बैठे, नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलै, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैलैं बकरा।
जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमौलें, काम जराय जोगी बनि गैलैं हिजरा।
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रंगौलें, गीता बांचि कै होइ गैलै लबरा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवां बांधल जैबे पकरा॥

(१७)

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।

सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मच हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार॥
स्रिङ्गी की मिङ्गीकरि डारी, पारासर कै उदर विदार।
कनफूंका चिरकासी लूटे, लूटे जोगेसर करत विचार॥
हम तो बचिगे साहब दया से, शब्द डोर गहि उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगनी से रहो हुसियार॥

(१७)

घूंघट का पट खोल रे, तोहैं पीव मिलेंगे।

घट घट में वह साई रमता, कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै, झूठा पंचरङ्ग चोल रे॥
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे।
जोग जुगत सों रङ्ग महल में, पिय पायो अनमोल रे॥
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

(१९)

तेरे दया धरम नहिं तन में, मुखड़ा क्या देखै दरपनमें॥
घरबारी तो घर में राजी, फक्कड़ राजी बन में॥
ऐंठी धोती पाग लपेटी, तेल चुवत जुलफन मे।
गली गली की सखी रिझाई, दाग लगाया तन में॥
पाथर की एक नाव बनाई, उतरा चाहै छन में।
कहत कबीर सुनो भई साधो, कायर चढ़ै न रन में॥

(२०)

मेरा तेरा मनुवां, कैसे एक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाइ रे॥
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे॥
जुगन जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रगी फिरै बिहंगी, सब धन डारा खोइ रे॥
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होइ रे॥

(२१)

बीत गये दिन भजन बिना रे।
बाल अवस्था खेल गंवायो, जब जवानि तब मान किया रे॥
लाहे कारन मूल गंवायो, अजहुं न मिटी तेरे मनकी तृषा रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, पार उतरि गये सन्त जना रे॥

(२२)

तोहिं मोरी लगन लगाये रे फकिरवा।

सोवत ही मैं अपने मंदिर में, सबदन मारि जगाये रे फकि०।
बूड़त ही भव के सागर मे, बहियां पकरि समुझाये रे फकि०।
एकै बचन बचन नहिं दूजा, तुम मोसे बंद छुड़ाये रे फकि०।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्त नाम गुन गाये रे फकि०।

(२३)

अंधियरवा में ठाढ़ि गोरी, का करलू।

जब लगि तेल दिया में बाती, एही अंजोरवा बिछाय घलतू।
मन का पलंग सन्तोष बिछौना, ज्ञान का तकिया लगाय रखतू।
जरि गया तेल बुझाइ गई बाती, सुरत में मुरत समाय रखतू।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जोतियामें जोतिया मिलाय रखतू।

(२४)

झीनी झीनी बीनी चदरिया।

काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुख मन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कंवल दल चरखा डोलै, पांच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागै, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥

(२५)

रहना नहिं देस बिराना है।

यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ी, उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ औ झांखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

(२६)

लोका मति का भोरा रे।

जो कासी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा रे ॥

राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा।

गुरु प्रताप साधु संगति जग जीतै जाति जोलाहा ॥

कहत कबीर सुनौ रे सन्तो भरम परौ जनि कोई।

जस कासी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई ॥

रैदास

रैदासजी कबीर साहब के समय में हुए थे। ये जाति के चमार थे। इनके पिता का नाम रग्घू और माता का नाम घुरबिनिया था। इनका जन्म काशी में हुआ था। ये भी महात्मा रामानन्द के शिष्यों में थे।

रैदासजी और कबीर साहब में बहुत वादविवाद हुआ करता था। रैदासजी जब कुछ सयाने हुए तब भक्तों और साधुओं की सेवा में अधिक रहने लगे। जो कुछ कमाते, सब साधु-सन्तों को खिला-पिला दिया करते थे। यह बात इनके पिता रग्घू को अच्छी नहीं लगी। उसने स्त्री सहित रैदासजी को घर से अलग कर दिया। खर्च के लिए वह इनको एक कौड़ी भी नहीं देता था। रैदासजी जूता बनाकर किसी तरह अपना गुजर करते और रात-दिन भगवत्-चर्चा में मग्न रहा करते थे। ये मांस मदिरा को छूते तक न थे। १२० वर्ष की अवस्था में इन्होंने शरीर छोड़ा।

इनके विषय में बहुत-सी करामात की कहानियां लोगों में प्रसिद्ध हैं। गुजरात प्रांत में इनके मत को माननेवाले लाखों आदमी हैं जो अपने को रविदासी कहते हैं। ये मीराबाई के गुरु थे। इनकी कविता से इनकी बड़ी भक्ति प्रकट होती है। रैदासजी के बनाये हुए कुछ दोहे और पद हम यहां उद्धृत करते हैं—

(१)

हरि सा हीरा छांडि कै, करै आन की आस।

ते नर जमपुर जाहिंगे , सत भाषै रैदास ॥

(२)

रैदास रात न सोइये , दिवस न करिये स्वाद ।
अहनिसि हरिजी सुमिरिये , छाड़ि सकल प्रतिवाद ॥

(३)

भगती ऐसी सुनहु रे भाई ।
आइ भगती तब गई बड़ाई ।
कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीन्हे ।
कहा भयो जे चरन पखारे जौलौं तत्व न चीन्हे ॥
कहा भयो जे मूंड़ मुड़ायो कहा तीर्थ व्रत कीन्हे ।
खाली दास भगत अरु सेवक परम तत्व नहिं चीन्हे ॥
कह रैदास तेरी भगत दूर है भाग बड़े सों पावे ।
तजि अभिमान मेटि आपा पर पिपलिक ह्वै चुनि खावे ॥

(४)

पहले पहरे रैन दे बनजरिया तैं जनम लिया संसार वे ।
सेवा चूकी राम की तेरी बालक बुद्धि गंवार वे ॥
बालक बुद्धि न चेता तू भूला माया जाल वे ।
कहा होय पीछे पछताये जल पहिले न बांधी पाल वे ॥
बीस बरस का भया अयाना थांभि न सक्का भार वे ।
जन रैदास कहै बनजरिया जनम लिया संसार वे ॥

(५)

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊं । फल अरु मूल अनूप न पाऊं ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी । पुहुप भंवर जल मीन बिगारी ॥
मलयागिर बेधियो भुअंगा । विष अमृत दोउ एकै संगा ॥
मन ही पूजा मन ही धूप । मन ही सेऊं सहज सरूप ॥
पूजा अरचा न जानूं तेरी । कह रैदास कवन गति मेरी ॥

(५)

रे चित चेत अचेत काहे बालक को देख रे।
जाति ते कोई पद नहिं पहुंचा राम भगति विशेष रे॥
खट क्रम सहित जे विप्र होते हरि भगति चित दृढ़ नाहिं रे।
हरि की कथा सोहाय नाहीं स्वपच तूलै ताहि रे॥
मित्र शत्रु अजात सबतें अन्तर लावे हेत रे।
लाग वाकी कहां जानै तीन लोक पवेत रे॥
अजामिल गज गनिका तारी काटी कुंजर की पास रे।
ऐसे दुरमत मुक्त कीये तो क्यों न तरै रैदास रे॥

(७)

जो तुम गोपालहिं नहिं गैहौ।
तो तुमका सुख में दुख उपजै सुखहि कहां ते पैहौ॥
माला नाय सकल जग डहको झूठो भेख बनैहौ।
झूठे ते सांचे तब होइ हो हरि की सरन जब ऐहौ॥
कनरस, बतरस और सबै रस झूठहि मूड़ डुलैहौ।
जब लगि तेल दिया में बाती देखत ही बुझ जैहौ॥
जो जन राम नाम रंग राते और रंग न सोहैहौ।
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ॥

(८)

प्रभु जी संगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी॥
गली गली को जल बहि आयो सुरसरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम नाम गंगोदक पायो॥
स्वांति बूंद बरसै फनि ऊपर सीस विषै होइ जाई।
वही बूंद कै मोती निपजै संगत की अधिकाई॥
तुम चंदन हम रेंड़ बापुरे निकट तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम आवै बास सुबासा॥

जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा ॥
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है कह रैदास चमारा ॥

(९)

अब कैसे छुटै नाम रट लागी ॥ टेक ॥
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी । जाकी अंग अंग बास समानी ॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा । जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती । जाकी जोति बरै दिन राती ॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा । जैसे सोनहि मिलत सोहागा ॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा । ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

धर्मदास

धर्मदासजी जाति के कसौधन बनिये और बांधवगढ़ के बड़े भारी महाजन थे । इनके जन्म और मरण के समय का ठीक पता नहीं चलता । परन्तु ये कबीर साहब के समकालीन थे, यह निश्चय है ।

धर्मदास जी बालकपन ही से बड़े धर्मात्मा और भगवत्-चर्चा के प्रेमी थे, साधु-संतों और पंडितों का बड़ा आदर-सत्कार करते थे । इन्होंने दूर-दूर तक तीर्थों की यात्रा की थी ।

मथुरा से आते समय कबीर साहब से इनका साक्षात् हुआ । कबीर साहब ने मूर्तिपूजा और तीर्थ व्रत आदि का खंडन मंडन करके इनका चित्त संत-मत की ओर झुकाया । फिर तो ये बराबर कबीर साहब से मिलते रहे और अपना संशय मिटाते रहे । "अमर सुख निधान" ग्रन्थ में इनकी और कबीर साहब की बातचीत विस्तार के साथ लिखी है । उनमें बहुत-सी ज्ञान की बातें हैं ।

कबीर साहब की शरण में आने पर धर्मदासजी ने अपना सारा धन लुटा दिया । सं० १५७५ वि० में जब कबीर साहब परमधाम को सिधारे तब उनकी गद्दी धर्मदास जी को मिली । उससे पंद्रह या बीस वर्ष के बाद इन्होंने भी इस संसार को छोड़ा ।

इनकी शब्दावली में से कुछ पद चुनकर हम यहां उद्धृत करते हैं—

(१)

मोरे पिया मिले सत ज्ञानी ।

ऐसन पिय हम कबहुं न देखा, देखत सुरत लुभानी ।।
आपन रूप जब चीन्हा बिरहिन, तब पिय के मन मानी ।।
कर्म जलाय के काजल कीन्हा, पढ़े प्रेम की बानी ।।
जब हंसा चले मानसरोवर, मुक्ति भरे जहं पानी ।।
धर्मदास कबीर पिय पाये, पिट गई आवाजानी ।।

(२)

गुर पैयां लागों, नाम लखा दीजो रे ।।

जनम जनम का सोया मनुआं, शब्दन मारि जगा दीजो रे ।।
घट अंधियार नैन नहिं सूझै, ज्ञान का दीपक जगा दीजो रे ।।
विष की लहर उठत घट अन्तर, अमृत बूंद चुवा दीजो रे ।।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेय के पार लगा दीजो रे ।।
धरमदास की अरज गुसाईं, अब के खेप निभा दीजो रे ।।

(३)

हम सत्त नाम के बैपारी ।

कोई कोई लादे कांसा पीतल, कोई कोई लौंग सुपारी ।।
हम तो लाद्यो नाम धनी को, पूरन खेप हमारी ।।
पूंजी न टूटै नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी ।।
हाट जगाती रोक न सकि है, निर्भय गैल हमारी ।।
मोती बूंद घट ही में उपजै, सुकिरत भरत कोठारी ।।
नाम पदारथ लाद चला है, धरम दास बैपारी ।।

(४)

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ।

खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठै शोभाबरनि न जाय ।।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम आनन्द ह्वै साधु नहाय ।।

खुली किवरिया मिटी अंधियरिया , धनसतगुरु जिन दिया लखाय ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी , सतगुरु चरन में रहत समाय ॥

(५)

मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो ।
अपन बलम परदेस निकरि गैलो हमरा के कछुवो न गुन दै गैलो ॥
जोगिन ह्वै के मैं बन बन ढूंढ़ों हमरा के बिरह बैराग दै गैलो ॥
संग की सखी सब पार उतरि गैलीं हम धन ठाड़ी अकेली रहि गैलो ॥
धरमदास यह अरज करतु हैं सार सबद सुमिरन दै गैलो ॥

(६)

मोरा पिया बसै कौने देस हो ।
अपने पिया के ढूंढ़न हम निकसी कोई न कहत सनेस हो ॥
पिय कारन हम भई हैं बावरी धर्यो जोगिनिया कै भेस हो ।
ब्रह्मा विष्णु महेस न जाने का जानै सारद सेस हो ॥
धनि जो अगम अगोचर पइलन हम सब सहत कलेस हो ।
उहां के हाल कबीर गुरु जानै आवत जात हमेस हो ॥

गुरु नानक

गुरु नानक का जन्म सं० १५२६ वि०, कार्तिक की पूर्णिमा के दिन, चार घड़ी रात रहे, कल्यानचन्द खत्री की धर्मपत्नी तृप्ता के गर्भ से हुआ। कल्यानचन्द, जिला लाहौर, तहसील शकरपुर के तलवंडी नगर के सूबाराय बुलार पठान के कारकुन थे।

गुरु नानक ने बालकपन ही में अपनी विलक्षण बुद्धि के अपूर्व चमत्कार दिखाये। ये बहुत सीधे-सादे और संत स्वभाव के थे। सं० १५४५ वि० में इनका विवाह गुरुदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ। संवत् १५५१ और १५५३ वि० में सुलक्षणी देवी के गर्भ से क्रमश: श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र, दो पुत्रों का जन्म हुआ। आगे चलकर श्रीचन्द्र उदासी साधु-सम्प्रदाय के मूल पुरुष हुए। और लक्ष्मी-

चन्द्र के वंश के लोग अब तक वर्तमान हैं ।

गुरू नानक जी के समय में मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू-जाति त्राहि-त्राहि कर रही थी। गुरु नानक जी के सदुपदेश से हिन्दुओं में एक ऐसा सिख-समुदाय पैदा हो गया जिसने हिन्दुओं की मान-मर्यादा ही नहीं बचाई, बल्कि मुसलमानी सल्तनत की जड़ तक हिला दी। विचार करके देखा जाय तो गुरू नानकजी ने हिन्दुओं का बड़ा भारी उपकार किया।

गुरू नानकजी ने सं० १५२६ से १५७९ तक आगरा, बिहार, बङ्गाल, आसाम, ब्रह्मा, उड़ीसा, मारवाड़, हैदराबाद, मद्रास, लंका, बद्रीनारायण, नैपाल, सिकम, भूटान, सिंध, मक्का, जद्दा, मदीना, रूम, बगदाद, ईरान, बिलोचिस्तान, कंधार, काबुल, और काश्मीर की यात्रा की। यात्रा में ये जहां-जहां गये, वहां-वहां के लोग इनके उपदेश से बहुत लाभ उठाते रहे। काशी में गुरू नानक और कबीर साहब से भी धर्म-चर्चा हुई थी। अन्त के १६ वर्ष इन्होंने कर्तारपुर में बिताकर ६९वर्ष १० महीना और १० दिन की अवस्था (सं० १५९५) में शरीर छोड़ा।

गुरू नानक जी की शिक्षा ने पंजाब मे सिखों की एक जाति ही बना दी। इनके बाद जितने गुरू हुए, सब एक से एक बढ़कर पराक्रमी, प्रतापी और बुद्धिमान हुए। यह गुरू नानक जी ही की शिक्षा का फल था कि गुरू गोविन्दसिंह सरीखे शूरवीर हिन्दुओं में पैदा हुए।

हम गुरू नानकजी की कविता के कुछ नमूने यहां उद्धृत करते हैं—

कलियां थी धडले भये, धड़लियों भये सुपैदु।
नानक मता मतो दियां, उज्जरि गइया खेडु ॥ १ ॥
जागोरे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागो "नानका", जब सोवउ पांव पसारि ॥ २ ॥
मित्रां दोस्त माल धन, छंडि चले अति भाइ।
संगि न कोई "नानका", उह हंस अकेला जाइ ॥ ३ ॥
जेही पिरीति लगंदिया, तोड़ निबाहू होइ।
"नानक" दरगह जांदियां, ठक्क न सक्के कोइ ॥ ४ ॥

सूरा एकन आंखियन , जो लड़नि दला में जाय ।
सूरे सोई "नानका" जो , मंनणु हुकुम रजाय ॥ ५ ॥
हिरदे जिनके हरि बसे , से जान कहियहि सूर ।
कही न जाई "नानका" , पूरि रह्या भरपूर ॥ ६ ॥
मन की दुबिधा ना मिटै , मुक्ति कहां ते होइ ।
कउड़ी बदले "नानका" , जन्म चल्या नर खोइ ॥ ७ ॥
जिन बोले अमृत बसे , जीयां होवे दाति ।
तिन बेले तू उठि बहु , चिह पहरे पिछली राति ॥ ८ ॥

(९)

इस दम दा मैनू कीबे भरोसा , आया आया न आया न आया ॥
या संसार रैन दा सुपना , कहिं दीखा कहिं नाहि दिखाया ।
सोच विचार करे मत मन में , जिसने ढूढ़ा उसने पाया ॥
"नानक" भक्तन के पद परसे , निस दिन रामचरन चित लाया ॥

(१०)

सब कछु जीवत को व्योहार ।
माता पिता भाई सुत बांधव, अरु पुन गृह की नार ॥
तन तें प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार ॥
आध घरी कोऊ नहि राखै घर तें देत निकार ॥
कहु नानक भज राम नाम नित जातें हो उद्धार ॥

(११)

मन की मनहीं माहि रही ॥
ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही ॥
दारा मीत पूत रथ संपति धन जन पूर्न मही ॥
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हार्यो मानस देह लही ॥
"नानक" कहत मिलन की बिरियां सुमिरत कहा नहीं ॥

(१२)

जो नर दुख में दुख नहिं मानै ।।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जानै ।।
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना ।।
हर्ष शोक तें रहे नियारो नाहि मान अपमाना ।।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जगते रहै निरासा ।।
काम क्रोध जेहि परसैं नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा ।।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी ।।
"नानक" लीन भयो गोविन्द सों ज्यों पानी संग पानी ।।

(१३)

रे मन कौन गत होइ है तेरी ।
याहि जग मे राम नाम, सो तो नहि सुन्यो कान,
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी ।।
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहि निमिष कीन्ह,
दारा सुत भयो दीन, पगहुं परी बेरी ।।
"नानक" जन कह पुकार, सुपने ज्यों जग पसार,
सिमरत नहि क्यों मुरार, माया जाकी चेरी ।।

(१४)

सुमरन करले मेरे मना ।
तेरि बिति जाति उमर हरिनाम बिना ।।
कूप नीर बिनु धेनु छीर बिन मंदिर दीप बिना ।
जैसे तरुवर फल बिन हीना तैसे प्राणी हरनाम बिना ।।
देह नैन बिन रैन चंद बिन धरती मेह बिना ।
जैसे पंडित वेद विहीना तैसे प्राणी हरनाम बिना ।।
काम क्रोध मद लोभ निहारो छांड़ दे अब संतजना ।
कहे "नानकशा" सुन भगवंता या जग में नहिं कोइ अपना ।।

(१५)

बिसर गई सब तात पराई । जब मे साधू सङ्गत पाई ।।

नहिं कोई बैरी नहिं बेगाना सकल सङ्ग हमरी बनि आई ।
जो प्रभु कीन्हों सो भला करि मानो यह सुमति साधू से पाई ॥
सब में रम रहा प्रभु एकाकी पेख पेख "नानक" बिगसाई ॥

(१६)

साधो मन का मान त्यागो ।
काम क्रोध संगति दुर्जन की ताते अहनिस भागो ॥
सुख दुख दोनों सम करि जानै और मान अपमाना ।
हर्ष शोक ते रहै अतीता तिन जग तत्व पिछाना ॥
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागै खोजै पद निरबाना ।
जन "नानक" यह खेल कठिन है किनहूं गुरुमुख जाना ॥

(१७)

काहे रे बन खोजन जाई ।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही सङ्ग समाई ॥
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकर मांहि जस छाई ।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई ॥
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई ।
जन "नानक" बिन आपा चीन्हे मिटै न भ्रम की काई ॥

सूरदास

सूरदास का जन्म अनुमान से १५४० वि० में और मरण १६२० वि० में कहा जाता है। उन्होंने ६७ वर्ष की अवस्था में सूरसारावली लिखी। सूरदास का सबसे बड़ा ग्रन्थ सूरसागर है, सूरसारावली उसी की सूची है, जो सूरसागर के बननेके बाद बनी है। सूरसारावली में लिखा है—

"गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन ।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन ॥

इससे पता चलता है कि सूरसारावली लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। उन्होंने साहित्य-लहरी नाम का एक और ग्रन्थ

बनाया है। उसमें सूरसागर के दृष्ट-कूट पदों का संग्रह है। साहित्य-लहरी में सूरदास ने एक स्थान पर लिखा है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल संवत पेख॥
नन्द नन्दन मास छै ते हीन तृतिया वार।
नन्द नन्दन जनम ते हैं बाण सुख आगार॥
तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन;
नन्द नन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन॥

अर्थ—मुनि = ७, रसन = रसहीन अर्थात् शून्य, रस = ६, दसन गौरीनन्दन = १ = १६०७, नन्द नन्दन मास = बैशाख, छै हीन तृतिया = अक्षय तृतिया, तृतिय ऋक्ष = कृतिका नक्षत्र, सुकर्म योग। (देखो सरदार कवि कृत साहित्य लहरी की टीका)।

इससे प्रकट होता है कि साहित्य लहरी १६०७ वि० में बनी। उस समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। क्योंकि साहित्य लहरी और सूरसारावली के बनने का समय प्रायः एक ही अनुमान किया जाता है। इस अनुमान के आधार पर सूरदास का जन्म (१६०७—६७) १५४० वि० में होना सिद्ध होता है।

सूरदास का जन्म दिल्ली के पास "सीही" गांव में हुआ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ लोग रुनकता गांव (रेणुकाक्षेत्र) को, जो आगरा मथुरा की सड़क पर है, इनका जन्म-स्थान बतलाते हैं। इनके माता-पिता दरिद्र थे। पिता का नाम रामदास था। सूरदास सात भाई थे। छः भाई मुसलमानों के साथ लड़ाई में मारे गये। सरदार कवि ने सूरदास को चन्दबरदाई का वंशज बतलाया है।

सूरदास जन्म के अन्धे न थे। ऐसी कहावत है कि एकबार ये एक युवती को देखकर उस पर मुग्ध हो गये। उसकी ओर एकटक ताकते हुए ये बहुत देर तक खड़े रहे। अन्त में वह युवती इनके पास स्वयं आई और कहने लगी—महाराज! क्या आज्ञा है? सूरदास को उस समय

अपनी स्थिति पर बड़ी लज्जा आई। इन्होंने यह दोष आंखों का समझ कर युवती से कहा कि यदि तुम मेरी आज्ञा मानती हो तो सुई से मेरी दोनों आंखें फोड़ दो। युवती ने आज्ञानुसार ऐसा ही किया। तब से सूरदास अन्धे हो गये। भक्तमाल में लिखा है कि सूरदास जन्म के अन्धे थे; परन्तु इस पर सहसा विश्वास नहीं होता; क्योंकि इन्होंने अपनी कविता में रंगों का, ज्योति का और अनेक प्रकार के हाव-भाव का ऐसा यथार्थ वर्णन किया है जो बिना आंख से देखे, केवल सुनकर, नहीं किया जा सकता।

सूरदास की कविता के लालित्य और माधुर्य के विषय में तो कहना ही क्या है? हिन्दुओं के घर-घर में इनके भजन बड़े प्रेम से गाये और सुने जाते हैं। हिन्दुस्तान के गवैये सूरदास के भजन बड़े चाव से गाते हैं। राम-चरित्र लिखने में जैसी तुलसीदास जी ने अपनी प्रतिभा दिखलाई है, उसी तरह श्री कृष्ण की लीला लिखकर सूरदास ने भी अपनी अनुपम कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। प्रेमी और भक्तजनो के हृदयों में सूरदास के भजनों से आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है। कविता द्वारा बाल-चरित्र का ठीक-ठीक चित्र आंखों के सामने कर देने की इनमें अलौकिक पटुता थी। हिन्दी-साहित्य में सूरदास का गौरव कितना है, यह इस दोहे से भली-भांति समझा जा सकता है—

"सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहं तहं करैं प्रकास॥"

गांवों की साधारण जनता ने भी सूर, तुलसी और कबीर की कविता के सम्बन्ध में अपनी राय अपनी ही बोली में स्थिर की है। उनकी समालोचना का एक नमूना यह है—

जो कुछ रहा सो अंधरा कहिगा, कठवउ कहेसि अनूठी।
बचा खुचा सो जोलहा कहिगा, और कहै सो जूठी॥

गोपियों के विरह-वर्णन में सूरदास ने हृद्गत भावों के झलकाने में कमाल कर दिया है। सूरदास काव्य-शास्त्र के पंडित थे। पुराणों का

इन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध आठ कवियों को मिलाकर अष्टछाप स्थापित किया था। उनके नाम ये हैं—कृष्णदास, परमानन्द दास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, सूरदास। इन आठो में सूरदास सब से उत्तम थे। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के उपदेश से इन्होंने श्री मद्भागवत का उल्था किया, जो सूरसागर नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सवा लक्ष पद थे, किन्तु अब पांच हजार ही उपलब्ध हैं। सूरसागर के सिवा ब्याहलो, नल दमयंती और हरिवंश की टीका भी इन्होंने लिखी थी। किन्तु ये तीनों अब अप्राप्य हैं।

सूरदास ने ८० वर्ष की अवस्था मे गोकुल में शरीर छोड़ा। इनका अन्तिम भजन यह है, जो शरीर छोड़ते समय इन्होंने कहा--

खञ्जन नैन रूप रस माते।
अति से चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।।
चल चल जात निकट श्रवनन के उलट-पलट ताटंक फंदाते।
सूरदास अञ्जन गुन अटके नतरु अबहिं उड़ि जाते।।

प्राचीन मनुष्यों की कहावत है कि ये उद्धव के अवतार थे। इसमें सन्देह नही कि उनके हृदय में वास्तविक प्रेम था। ये प्रेम की दशा से पूर्ण अभिज्ञ थे और भगवान श्रीकृष्ण को सखा-भाव से भजनेवाले भक्त थे।

यद्यपि इनके पद-पद में लालित्य भरा है, परन्तु स्थानाभाव से इनके थोड़े से पद सूरसागर से चुनकर यहां लिखे जाते हैं।

(१)

मेरो मन अनत कहां सुख पावै।।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै।।
कमल नयन को छांड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंगा को छांड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै।।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।
"सूरदास" प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै।।

(२)

सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरुवन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये ।।
चारु कपोल लोल लोचन छवि गौरोचन को तिलक दिये ।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये ।।
कठुला कं, बज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये ।
धन्य "सूर" एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये ।।

(३)

यशोदा हरि पालने झुलावैं ।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं जोइ सोई कछु गावै ।।
मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न वेगी सी आवे तोकों कान्ह बुलावै ।।
कबहूं पलक हरि मूदि लेत हैं कबहूं अधर फरकावैं ।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रही कर-कर सैन बतावै ।।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरे गावैं ।
जो सुख "सूर" अमर मुनि दुर्लभ सो नंदभामिनि पावै ।।

(४)

लालन हौं बारी तेरे या मुख ऊपर ।
माई मेरिहि डीठि न लागे तातें मसि विन्दा दयो भ्रू पर ।।
सर्वसु मैं पहिले ही दीनीं नान्हीं नान्हीं दंतुली दू पर ।
अब कहा करों निछावरि "सूर" यशोमति अपने लालन ऊपर ।।

(५)

घुटरुवन चलत श्याम मणि आंगन मात पिता दोउ देखत री ।
कबहुंक किलकिलात मुख हेरत, कबहुं जननि मुख पेखत री ।।
लटकन लटकत ललित भाल पर काजर बिन्दु भ्रुव ऊपर री ।
वह सोभा नैननि भरि देखैं नहिं उपमा कहुं भू पर री ।।
कबहुंक दौर घुटरुवन लटकत गिरत परत फिरि धावत री ।

(९)

कमलनयन कछु करौ बियारी।
लुचुई लपसी सद्य जलेबी सोइ जेवहु जो लगे पियारी॥
घेवर मालपुआ मुतिलाड़ू सुघर सजूरी सरस संवारी।
दूध बरा उत्तम दधि बाटी दाल मसूरी की रुचि न्यारी॥
आछो दूध औटि धौरी को मैं ल्याई रोहिणि महतारी।
"सूरदास" बलराम श्याम दोउ जेवैं हैं जननि जाइ बलिहारी॥

(१०)

जेंवत श्याम नंद की कनियां।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नंदरनियां॥
बरी बरा बेसन बहु भांतिन व्यजन विविध अनगनियां।
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनियां॥
मिश्री दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छविधनियां।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो मुख कहत न बनियां॥
जो रस नन्द यशोदा बिलसत सो नहिं तिहूं भुवनियां।
भोजन करि नन्द अंचवन कियो मांगत "सूर" जुठनियां॥

(११)

चंद्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चद्र खिलौना लैहौं॥
धौरी को पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं।
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झंगुली कंठ न लैहौं॥
जैहों लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं।
लाल कहैहौं नंद बबा को तेरो सुत न कहैहौं॥
कान लाय कछु कहत यसोदा दाउहि नाहिं सुनैहौं।
चंदा हूं ते अति सुन्दर तोहि नवल दुलहिया ब्यैहौं॥
तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबहीं ब्याहन जैहौं।
"सूरदास" सब सखा बराती नूतन मंगल गैहौं॥

इतते नन्द बुलाइ लेत हैं उतते जननि बुलावति री ॥
दंपति होड़ करत आपुस में श्याम खिलौना कीनो री।
"सूरदास" प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हितकरि दोउ लीनो री ॥

(६)

गहे अंगुरिया तात की नंद चलन सिखावत।
अरबराई गिरि परत है कर टेकि उठावत ॥
बार बार बकि श्याम सों कछु बोल बकावत।
दुहंधा दोउ दंतुली भईं अति मुख छवि पावत ॥
कबहुं कान्ह कर छांड़ि नंद पग द्वै करि धावत।
कबहुं धरणि पर बैठि के मन महं कछु गावत ॥
कबहु उलटि चलैं धाम को घुटरुन करि धावत।
"सूर" श्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढ़ावत ॥

(७)

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
कितीबार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहू है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन सी भ्वैं लोटी ॥ भुईं
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
"सूर" श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

(८)

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहि मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिझत बल भैया ॥
मोसों कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि जतन बटैया ॥
अब बाबा कहि कहत नंद को यसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिझावत तब उठि चलो खिसैया ॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हंसत हंसत उर लैया।
"सूर" नंद बलिरामहि धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया ॥

(१२)

मैया मेरी, मैं नहि माखन खायो ।

भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो ।
चार पहर बंसीबट भटक्यो सांझ परे घर आयो ।।
मैं बालक बहियन को छोटो छीको किस बिध पायो ।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ।।
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो ।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो ।।
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो ।
"सूरदास" तब बिहंसि जसोदा ले उर कंठ लगायो ।।

(१३)

मैया मैं न चरैहौं गाइ ।

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाइं पिराइ ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ ।।
मैं पठवति अपने लरिका कूं आवै मन बहराइ ।
"सूर" श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ ।।

(१४)

नैना ढीठ अतिहो भए ।

लाज लकुट दिखाय त्रासी नैकहूं न नए ।।
तोरि पलक कपाट घूघट ओट मेटि गए ।
मिले हरि को जाइ आतुर जे है गुणनि मए ।।
मुकुट कुण्डल पीतपट कटि ललित भेस ठए ।
जाइ लुब्धे निरखि वह छवि "सूर" नन्द-जए ।।

(१५)

बिछुरे श्री ब्रजराज आजु तौ नैनन ते परतीत गई ।
उठि न गई हरि संग तबहि ते ह्वै न गई सखि श्याममई ।।
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई ।

साचे क्रूर कुटिल ए लोचन व्यथा मीनछवि मानो छीनलई ।।
अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए ते शूल नए ।
"सूरदास" याही ते जड़ भए इन पलकन ही दगा दए ।।

(१६)

यशोदा बार बार यों भाषै ।
है कोई ब्रज हितू हमारो चलत गोपालहिं राखै ।।
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वै आयौ ।।
अरु ये गोधन हरो कंस सब मोहि बंदी ले मेलौ ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अंखियन आगे खेलौ ।।
बासर बदन बिलोकत जीवों निसि निज अङ्क में लाओं ।
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मवश तौ हंसि काहि बुलाओं ।।
कमल नयन गुण टेरत टेरत अधर बदन कुम्हिलानी ।
"सूर" कहा लगि प्रकट जनाऊं दुखित नन्दजू की रानी ।।

(१७)

अरी मोहिं भवन भयानक लागे, माई ! श्याम बिना ।
देखहिं जाइ काहि लोचन भरि नन्द महरि के अंगना ।।
लै जु गये अक्रूर ताहि को ब्रज के प्राणधना ।
कौन सहाय करे घर अपने मेटे बिघन घना ।।
काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना ।
"सूरदास" मोहन दरसन बिन सुख संपति सपना ।।

(१८)

नैन सलोने श्याम, हरि कब आवहिंगे ।
वे जो देखत राते राते फूलन फूले डार ।
हरि बिन फूल झरी सी लागत झरिझरि परत अंगार ।।
फूल बिनन ना जाऊं सखीरी हरि बिन कैसे फूल ।
सुनरी सखी मोहिं राम दुहाई लागत फूल त्रिशूल ।।

जब तें पनिघट जाऊं सखीरी वा जमुना के तीर।
भरि भरि यमुना उमड़ि चलत है इन नैनन के नीर॥
इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घरनाव।
चाहत हौं ताही पै चढ़िके हरि जी के ढिग जावं॥
लाल पियारे प्राण हमारे रहे अधर पर आय।
"सूरदास" प्रभु कुंज बिहारी मिलत नहीं क्यों धाय॥

(१९)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्राण दह्यो॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों सम्पति हाथ गह्यो।
सारंग प्रीति करी जो नाद सों सन्मुख बाण सह्यो॥
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कछू कह्यो।
"सूरदास" प्रभु बिन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो॥

(२०)

प्रीति तौ मरनऊ न बिचारै।
प्रीति पतंग जोति पावक ज्यों जरत न आपु संभारै॥
प्रीति कुरंग नाद स्वर मोहित बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन तें पड़त न आपु संभारै॥
सावन मास पपीहा बोलत पिउ पिउ करि जो पुकारै।
"सूरदास" प्रभु दरसन कारन ऐसी भांति बिचारै॥

(२१)

जिमि कोउ काहु के वश होंहि।
ज्यों चकोर दिनकर वश डोलत मोह फिरावत मोहिं॥
हम तो रीझ लटू भइ लालन महा प्रेम जिय जानि।
बन्ध अबन्ध अमुति निशिवासर को सुरझावति आनि॥
उरझे संग अंग अंग प्रति विरह बेलि की नाईं।
मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि रूप सुधा सियराई॥

अति आधीन हीन अति ब्याकुल कहां लों कहों बनाइ।
ऐसी प्रीति करी रचना पर "सूरदास" बलि जाइ॥

(२२)

कह्यो कान्ह सुन यशुमति मैया।
आवहिंगे दिन चार पांच में हम हलधर दोउ भैया।
मुरली वेत विषाण देखिये शृंगी बेर सबेरो।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो॥
जा दिन तें तुमसे बिछुरे हम कोऊ न कहत कन्हैया।
भोरहिं नाहिं कलेऊ कीनो सांझ न पय पीयो ना घैया॥
कहत न बन्यो संदेशो मोपै जननि जितो दुख पायो।
अब हम सों बसुदेव देवकी कहत आपनो जायो॥
कहिये कहा नन्द बाबा सों बहुत निठुर मन कीनो।
"सूर" हमहिं पहुंचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीनो॥

(२३)

मधुकर हम न होहिं वे बेली।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रंग करत कुसुम रस केली॥
वारे ते वर बाजि बढ़ी हैं अरु पोषी पिय पानि।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत होत सदा हित हानि॥
है बेली विरहा बृन्दावन उरझी श्याम तमाल।
पुहुप वास रस रसिक हमारे विलसत मधुप गोपाल॥
योग समीर धीर नहिं डोलत रूप डार ढिग लागि।
"सूर" परागनि तजति हिये ते श्री गुपाल-अनुरागि॥

(२४)

समुझि न परत तुम्हारी ऊधो।
ज्यों त्रिदोष उपजे जक लागत बोलत बचन न सूधो॥
आपुन को उपचार करो कछु तब औरन सिख देहू।
बड़ो रोग उपज्यो है तुमको मौन सवारे लेहू॥

वहाँ भेषज नाना विधि को अरु मधुरिपु से हे वैद ।
हम कातर डरपत अपने सिर यह कलंक है कैद ॥
सांची बात छांड़ कत झूठी कहो कौन विधि सुनहीं ।
"सूरदास" मुकताहल भोगी हंस ज्वारि को चुनहीं ॥

(२५)

अंखियां हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यो चाहत कमलनैन को निसिदिन रहत उदासी ॥
आये ऊधो फिरि गये आंगन डारि गये गर फांसी ।
केसरि को तिलक मोतिन की माला बृन्दावन को वासी ॥
काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हांसी ।
सूरदास प्रभु तुमरे दरस को जाइ करवट ल्यों कासी ॥

(२६)

ऊधो अंखियां अति अनुरागी ।
इकटक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस पावस ऋतु आई देखत हैं विदमान ।
अब धौं कहा कियो चाहत है छाड़हु निर्गुन ज्ञान ॥
सुनि प्रिय सखा श्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाइ ।
जैसे मिलै सूर के स्वामी तैसी करहु उपाइ ॥

(२७)

हमको हरि की कथा सुनाउ ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि मथुरा ही लै जाउ ॥
वे नर नारिन ही समुझहिंगी तेरो बचन बनाउ ।
पालागौं ऐसी इन बातनि उनहीं जाइ रिझाउ ॥
जो शुचिसखा श्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ ।
तो बारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि दिखाउ ॥
जो कोउ कोटि करै कैसे हू विधि विद्या व्यसाउ ।
तो सुन "सूर" मीन को जल बिन नाहिं न और उपाउ ॥

(२८)

ऊधो जी हमहिं न योग सिखैये ।
जेहि उपदेश मिले हरि हमको सो व्रत नेम बतैये ।।
मुक्ति रहो घर बैठि आपने निरगुन सुनत दुख पैये ।
जेहि सिर केस कुसुम भरि गूंथे तेहि कैसे भसम चढ़ैये ।।
जानि जानि सब मगन भये हैं आपुन आपु लखैये ।
"सूरदास" प्रभु सुनत न वा बिधि बहुरि किया ब्रज ऐये ।।

(२९)

ऊधो कहा मति दीन्हो हमहिं गोपाल ।
आवहु री सखी सब मिलि बैठो जो पावें नंदलाल ।।
घर बाहर तें बोलि लेहु सब जावदेक ब्रजबाल ।
कमलासन बैठहु री माई मूंदहु नैन विशाल ।।
षटपद कही सोऊ करि देखी हाथ कछू नहिं आई ।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन नेकु न देत दिखाई ।।
फिरि भई मगन विरह सागर में काहुहि सुधि न रही ।
पूरण प्रेम देखि गोपिन को मधुकर मौन गही ।।
कछु ध्वनि सुनि स्त्रवनन चातक की प्रान पलटि तनु आये ।
"सूर" सो अब के टेरि पपीहै विरही मृतक जिवाये ।।

(३०)

मुख देखे की कौन मिताई ।
जैसे कृपनहिं दीन मांगनो लालच लीने करत बड़ाई ।।
प्रीतम सो जो रहे एक रस निसिवासर बढ़ि प्रेम सवाई ।
चित महिं और कपट अन्तर्गत ज्यों फलखीर नीर चिकनाई ।।
तब वह करी नन्द नन्दन अलि बन बेली रसरास खिलाई ।
अब यह कितही दूर मधुपुरी ज्यों उड़ि भंवर बेल तजि जाई ।।
योग सिखाये क्यों मनमाने क्योंऽब ओसकन प्यास बुझाई ।
"सूरदास" उदास भई हम पूरब प्रीति उघरि निज आई ।।

(३१)

ऊधो योग योग हम नाहीं ।
अबला सार ज्ञान कहा जानैं कैसे ध्यान धराहीं ।।
ते ये मूंदन नैन कहत हैं हरि मूरति जा माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमतें सुनी न जाही ।।
स्रवन चीर अरु जटा बंधावहु ये दुख कौन समाहीं ।
चंदन तजि अंग भस्म बतावत विरह अनल अति दाही ।।
योगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपु माहीं ।
'सूरदास" ते न्यारे न पल छिन ज्यों घट तें परछाहीं ।।

(३२)

कहां लौं कीजै बहुत बड़ाई ।
अति अगाध मन अगम अगोचर मनसो तहां न जाई ।।
जाके रूप न रेख बरन बपु नाहिन सङ्गत सखा सहाई ।
ता निर्गुण सों नेह निरन्तर क्यों निबहै री माई ।।
जल बिन तरंग भीति बिन लेखन बिन चेतहिं चतुराई ।
या ब्रज में कछु नहीं चाह है ऊधो आनि सुनाई ।।
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति अंग अंग उरझाई ।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन "सूरदास" सुखदाई ।।

(३३)

कहत कत परदेसी की बात ।
मन्दिर अरध अवधि बदि हम सों हरि अहार चलि जात ।।
शशि रिपु बरष सूर रिपु युगवर हर रिपु किये फिरे घात ।
मघ पंचक लै गये श्यामघन आइ बनी यह बात ।।
नखत वेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात ।
"सूरदास" प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीजत पछितात ।।

(३४)

ऊधो जो तुम हमहिं बतायो ।

सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो ॥
योग याचना जबहि अगहू गहि तबहीं है सो ल्यायो ।
भटक परयो बोहित के खग ज्यों फिरि हरि ही पै आयो ॥
अब कै तो सोई उपदेशो जेहि जिय जाय जिआयो ।
बारक मिलैं "सूर" के प्रभु तौ करौं आपनो भायो ॥

(३५)

मधुकर इतनी कहियहु जाइ ।
अति कृसगात भई ये तुम बिन परम दुखारी गाय ॥
जल समूह बरसत दोउ आंखें हूंकति लीने नाउं ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनों सूंघति सोई ठाउं ॥
परति पछार खाइ छिनहीं छिन अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहु "सूर" काढ़ि डारी है बारि मध्य तें मीन ॥

(३६)

जाके रूप बरन बपु नाहीं । नैन मूंदि चितवो चित मांहीं ॥
हृदय कमल में ज्योति बिराजै । अनहद नाद निरन्तर बाजै ॥
इड़ा पिंगला सुखमन नारी । सहज सु तामें बसैं मुरारी ॥
माता पिता न दारा भाई । जल थल घट-घट रह्यो समाई ॥
इहि प्रकार भव दुख सरि तरहू । योग पंथ क्रम क्रम अनुसरहू ॥

(३७)

प्रेम प्रेम तें होय, प्रेम तें पर है जीये
प्रेम बंधो संसार, प्रेम परमारथ लहिये
एकै निश्चय प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल
सांचो निश्चय प्रेम को, जिहि रे मिलैं गोपाल
ऊधो कहि सतभाय, न्याय तुम्हरे मुख सांचे
योग प्रेमरस कथा, कहो कंचन की कांचे
जाके पर है हूजिये, गहिये सोई नेम
मधुप हमारी सों कहो, योग भलो या प्रेम

सुनि गोपी के बैन, नेम ऊधो के भूले।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजन में फूले॥
खिन गोपी के पां परैं, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेंटहीं, ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य सुरभी बनचारी।
धनि यह पावन भूमि, जहाँ गोविंद अभिसारी॥
उपदेसन आये हुते, मोहिं भयो उपदेस।
ऊधो यदुपति पै चले, धरे गोप को भेस॥
भूले यदुपति नावं, कहो गोपाल गोसाई।
एक बार ब्रज जाहु, देहु गोपिन दिखराई॥
वृन्दाबन सुख छांड़ि कै, कहां बसे हो आइ।
गोबर्द्धन प्रभु जानि कै, ऊधो पकरे पांइ॥
ऊधो ब्रज को नेम, प्रेम बरनो सब आई।
उमग्यो नैनन नीर, बात कछु कह्यो न जाई॥
"सूर" श्याम भूलत भये, रहे नैन जल छाइ।
पोंछि पीतपट सों कह्यो, भल आये योग सिखाइ॥

(३८)

कहां लौं कहिये ब्रज की बात।
सुनहु श्याम तुम बिन उन लोगन जैसे दिवस बिहात॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमी हत अंबुज गत बिन पात॥
जाकहुं आवत देखि दूरतें सब पूछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
"सूर" श्याम संदेसन के डर पथिक न उहि मग जात॥

(३९)

सुन ऊधो मोहिं नेक न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।

तुम उनको कछु भली न कीनी निसिदिन दियो बियोग ॥
यदपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राजसुख भोग।
तद्यपि मनहि बसत बंशीवट ब्रज यमुना संयोग ॥
वे उत रहत प्रेम अवलम्बन इतते पठयो योग।
"सूर" उसास छांड़ि भरि लोचन बढ़्यो विरह ज्वर सोग ॥

(४०)

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
वृन्दाबन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छांहीं ॥
प्रात समय माता यसुमति अस नन्द देख सुख पावत।
माखन रोटी दह्यो सजायो अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल बाल संग खेलत सब दिन हंसत खिरात।
"सूरदास" धनि धनि ब्रजवासी जिन सों हंसत ब्रजनाथ ॥

(४१)

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि जिय मिलन न हरि बिसरै ॥
और मित्र ऐसे समया महं कत पहिचान करै।
बिपति परे कुसलात न बूझै बात नहीं उचरै ॥
उठिके मिले तंदुल हम दीने मोहन बचन फुरै।
"सूरदास" स्वामी की महिमा टारी विधि न टरै ॥

(४२)

और को जाने रस की रीति।
कहां हौं दीन कहां त्रिभुवनपति मिले पुरातन प्रीति ॥
चतुरानन सन निमिष न चितवत इती राज की नीति।
मोंसे बात कही हिरदय की गये जाहि युग बीति ॥
बिनु गोबिन्द सकल सुख सुन्दरि भुस पर की सी भीति।
हौं कहा कहों "सूर" के प्रभु की निगम करत जाकी कीत ॥

(४३)

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहां तें सजनी सुनियत दूरि सिधारे ॥
वे जल सर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातक चकोर श्यामघन बदन सुधानिधि प्यारे ॥
मधुबन बसत आस दरसन की जोई नैन मग हारे।
"सूरज" श्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे ॥

(४४)

रुक्मिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
वा क्रीड़ा खेलत यमुना तट विमल कदम की छाहीं ॥
सकल सखा अरु नन्द यसोदा वे चितते न टराहीं।
सुत हित जानि नन्द प्रतिपालै बिछुरत विपति सहाहीं ॥
यद्यपि सुखनिधान द्वारावति तउ मन कहुं न रहाहीं।
"सूरदास" प्रभु कुंजबिहारी सुमिरि सुमिरि पछताहीं ॥

(४५)

सखीरी श्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारनहार ॥
भंवर कुरंग काम अरु कोकिल कपटिन की चटसार।
सुनहु सखीरी दोष न काहू जो बिधि लिखो लिलार ॥
उमड़ी घटा नाखि आवे पावस प्रेम की प्रीति अपार।
"सूरदास" सरिता सर पोखत चातक करत पुकार ॥

(४६)

सखीरी श्याम कहा हित जानै।
कोऊ प्रीति करे कैसेहू वे अपनो गुन ठानै ॥
देखो या जलधर की करनी बरसत पोषै आनै।
"सूरदास" सरबस जो दीजै कारो कृतहि न मानै ॥

(४७)

मेरे कुंअर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धरयो रहै।
को उठि प्रात होत ले माखन को कर नेत गहै॥
सूने भवन यसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज में आनन्द हो तो मुनि मनसाहू न गहै।
"सूरदास" स्वामी बिनु गोकुल कौड़ीहू न लहै॥

(४८)

जन्म सिरानो ऐसे ऐसे।
कै घर घर भरमत यदुपति बिन कै सोवत कै वैसे॥
कै कहुं खान पान रसनादिक कै कहुं बाद अनैसे।
कै कहुं रंक कहूं ईश्वरता नट बाजीगर जैसे॥
चेत्यो नहीं गयो टरि अवसर मीन बिना जल जैसे।
यह गति भई "सूर" की ऐसी श्याम मिलैं धौं कैसे॥

(४९)

काया हरि के काम न आई।
भाव भक्ति जहं हरियश सुनयो तहां जात अलसाई॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहां सुनत उठि धाई।
चरन कमल सुन्दर जहं हरि को क्योंहूं न जात नवाई॥
जब लगि श्याम अंग नहिं परसत आंखे जोग रमाई।
"सूरदास" भगवंत भजन बिनु विषय परम विष खाई॥

(५०)

सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनौपन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत॥
आंखिन अन्ध श्रवण नहिं सुनियत थाके चरन समेत।
गंगाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत॥
राम नाम बिन क्यों छूटोगे चन्द्र गहे ज्यों केत।
"सूरदास" कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत॥

(५१)

जो तू राम नाम चित धरतो।

अबको जन्म आगलो तेरो दोऊ जन्म सुधरतो ॥

यम को त्रास सबै मिटि जातो भक्त नाम तेरो परतो।

तंदुल घृत संवारि श्याम को संत परोसो करतो ॥

होतो नफा साधु की संगति मूल गांठते टरतो।

"सूरदास" बैकुण्ठ पैठ में कोऊ न फेंट पकरतो ॥

(५२)

दो में एको तो न भई।

ना हरि भजे न गृह सुख पाये वृथा बिहाय गई ॥

ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि भई।

अविगत गति कछु समुझि परत नहिं जो कछु करत दई ॥

सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसिदिन होत खई।

पद नख चंद चकोर विमुख मन खात अंगार भई ॥

विषय विकार दवानल उपजी मोह बयार बई।

भ्रमत भ्रमत बहुते दुख पायो अजहुं न टेव गई ॥

कहा होत अब के पछताने होती सिर बितई।

"सूरदास" सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई ॥

(५३)

अद्भुत एक अनूपम बाग।

गुल कमल पर गजवर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग ॥

रि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।

चिर कपोत बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग ॥

ल पर पुहुप, पुहुप पर पालव, ता पर सुक, पिक, मृगमद, काग।

जन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर यक मनिधर नाग ॥

ग अंग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।

(५४)

आपको आपनही बिसरो।

जैसे स्वान कांच के मन्दिर भ्रमि भ्रमि भूंकि मरो।
ज्यों केहरि प्रतिमा के देखत बरबस कूप परो॥
मरकट मूठि छोड़ि नहीं दीनी घर घर द्वार फिरो।
"सूरदास" नलिनी के सुवना कहु कौने पकरो॥

(५५)

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।

समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोनों मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रम जाल कहावै "सूरदास" सगरो।
अबकी बार मोहिं पार उतारो नहिं प्रन जात टरो॥

(५६)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहे।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहे॥
घर के कहैं बेग ही काढ़ो भूत भये कोउ खैहे।
जा प्रीतम से प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहे॥
कहं वह ताल कहा वह सोभा देखत धूर उड़ैहैं।
भाई बंधु कुटुम्ब कबीला सुमिरि सुमिरि पछतैहैं॥
बिन गोपाल कोऊ नहिं अपना जस कीरति रहि जैहै।
सो तो "सूर" दुर्लभ देवन को सतसंगति में पैहै॥

(५७)

छाड़ु मन हरि बिमुखन को संग।

जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग॥

कागहि कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग ॥
पाहन पतित बाम नहिं बेधत रीतो करत निषंग ।
सूरदास" खल कारी कामरि चढत न दूजो रंग ॥

(दोहे)

भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप ।
सब कुसुमनि मिल रस करै, कमल बँधावै आप ॥ १ ॥
सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि ।
घन आशा सब दुख सहै, अंत न यांचे बारि ॥ २ ॥
देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत ।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत ॥ ३ ॥
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतङ्ग ।
तनु तो तिहि ज्वाला जरयो, चित न भयो रस भङ्ग ॥ ४ ॥
मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूंछै बात ।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ॥ ५ ॥
प्रीति परेवा की गनो, चाहत चढ़न अकास ।
तहं चढ़ि तीय जु देखिये, परत छांड उर स्वांस ॥ ६ ॥
सुमर सनेह कुरङ्ग को, पवन न राख्यो राग ।
धरि न सकत पग पछमनौं, सर सनमुख उर लाग ॥ ७ ॥
सब रस को रस प्रेम है, बिषयी खेलै सार ।
तन, मन, धन, यौवन खिसै, तऊ न मानै हार ॥ ८ ॥
तैं जु रत्न पायो भलो, जान्यो साधु समाज ।
प्रेमकथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज ॥ ९ ॥
सदा संघाती आपनो, जिय को जीवन प्रान ।
सो तू बिसरयो सहज ही, हरि ईश्वर भगवान ॥ १० ॥
वेद पुरान स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि ।
महामढ़ अज्ञान मति, क्यों न संभारत ताहि ॥ ११ ॥

खग मृग मीन पतंग लौं, मैं सोधे सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते, कहों कहां लगि और॥ १२॥
प्रभु पूरन पावन सखा, प्राननहू को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥ १३॥
गर्भवास अति त्रास में, जहां न एको अंग।
सुनि सठ तेरो प्रानपति, तहां न छांड़्यो संग॥ १४॥
दिना राति पोखत रह्यो, ज्यों तंबोली पान।
वा दुख तें तोहि काढ़ि कैं, लै दीनो पय मान॥ १५॥
जिन जड़ ते चेतन कियो, रचि गुन तत्व-विधान।
चरन चिकुर कर नख दिये, नयन नासिका कान॥ १६॥
असन बसन बहुविधि दिये, औसर-औसर आनि।
मात पिता भैया मिले, नई रुचहि पहिचानि॥ १७॥
सजन कुटुम परिजन बढ़े, सुत दारा धन धाम।
महामूढ़ विषयी भयो, चित आकर्ष्यो काम॥ १८॥
खान पान परिधान रस, यौवन गयो व्यतीत।
ज्यों बिट परि परतीय बस, भोर भये भयभीत॥ १९॥
जैसे सुख ही मन बढ्यो, तैसे बढ़्यो अनंग।
धूम बढ़्यो लोचन खस्यो, सखा न सूझ्यो संग॥ २०॥
जम जान्यो सब जग सुन्यो, बाढ़्यो अजस अपार।
बीच न काहू तब कियो, (जब) दूतनि काढ़्यो बार॥ २१॥
कह जानो कहँवा मुवो, ऐसे कुमति कुमीच।
हरिसों हेत बिसारि के, सुख चाहत है नीच॥ २२॥
जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ "सूर" गँवार॥ २३॥

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी का असली नाम मुहम्मद था। मलिक इनकी उपाधि थी, और जायस में रहने के कारण लोग इनको जायसी कहते थे। वास्तव में यह जायस के रहनेवाले न थे। पद्मावतके तेईसवे दोहे की पहली चौपाई—"जायस नगर धरम असथानू, तहां आइ कवि कीन्ह बखानू" से स्पष्ट है कि ये कहीं बाहर से जायस में आये और वहां इन्होंने पद्मावत लिखी। जायसी रायबरेली जिले में एक बड़ा कस्बा और रेल का स्टेशन है।

बहुत से लोग कहते हैं कि इनका जन्म-स्थान गाजीपुर है। ये एक दरिद्रकुल में उत्पन्न हुए थे। सात वर्ष की अवस्था में शीतला निकलने से इनकी दाहिनी आंख जाती रही और चेहरा भी ऊबड़खाबड़ होगया। इसी अवसर में इनकी माता भी मर गई। पिता शीतला निकलने के पहले ही मर चुके थे। ये अनाथ होकर साधु-फकीरों के साथ फिरने लगे और उनकी संगति से ही इन्होने बहुत-सी बातें सीखीं। वेदान्त और योग-क्रिया की भी बहुत-सी बातें इनको मालूम थीं। पद्मावत में स्थान-स्थान पर इन्होंने अपने इस ज्ञान का परिचय दिया है। अखरावट में तो वेदान्त ही की चर्चा मुख्य है।

योगी समझकर बहुत से लोग इनके शिष्य होगये। शिष्य लोग इनके बनाये हुये बारहमासों को गाया करते थे। इनका एक चेला अमेठी आया। वह इनका बनाया हुआ नागमती का बारहमासा गा-गाकर घर-घर भीख मांगा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने भी उसे सुना। उन्हें वह बहुत पसंद आया। खासकर इस दोहे ने तो उनके हृदय पर बहुत ही प्रभाव डाला—

"कंवल जो बिगसत मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
सूख बेलि फिर पलुहइ, जउ पिउ सींचइ आइ॥"

राजा ने उस चेले से बारहमासे के रचयिता का परिचय पाकर मलिक

मुहम्मद को लाने के लिए अपना एक सरदार भेजा। तब से मलिक मुहम्मद अमेठी में रहने लगे। राजा को कोई संतान न थी। मलिक मुहम्मद की कृपा से उनका वंश चला। तब से इनका बहुत आदर होने लगा। वहीं पर इनका देहान्त भी हुआ। राजा ने अपने महल से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर इनकी कब्र बनवादी, जो अब तक है।

एक दिन अवध के एक रईस ने इनके चेहरे को देखकर ठट्ठा मारकर हंस दिया। इस पर इन्होंने बड़े धैर्य्य से कहा—

"मोंहि का हँससि कि कोहरहिं"

अर्थात् मेरी हँसी उड़ाते हो या उस कुम्हार की, जिसने मुझे ऐसा कुरूप गढ़ा है? इस पर रईस साहब बहुत शर्मिन्दा हुए और इनका परिचय पाकर उन्होंने अपने अपराध की क्षमा मांगी।

जायसी के जन्म-मरण की ठीक तिथि का पता नहीं चलता। पद्मावत में उसका रचनाकाल हिजरी सन् ९२७ (सं० १५८४) दिया हुआ है। इससे इनके समय का अनुमान किया जा सकता है।

जायसी ने दो पुस्तकें पद्य में लिखीं, एक पद्मावत और दूसरी अखरावट। पद्मावत में रानी पद्मावती की कहानी बड़ी कुशलता से लिखी गई है। यद्यपि उसकी भाषा जायस के आसपास की देहाती है, परन्तु उसमें रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि का बहुत सुन्दर समावेश हुआ है। सारी कथा दोहे-चौपाई में है। मुसलमान होने पर भी प्रसंग के अनुसार हिन्दू देवताओं के प्रति भक्ति का वर्णन करने में जायसी ने बड़ी उदार-हृदयता का परिचय दिया है। एक मुसलमान के द्वारा हिन्दी-भाषा की ऐसी सेवा होनी बड़े हर्ष की बात है।

अखरावट पद्मावत के बाद बना। अखरावट में क से लेकर प्रायः सभी अक्षरों पर कविता की गई है। इसमें ईश्वर की स्तुति और संसार की असारता बतलाई गई है।

जायसी की कविता का कुछ नमूना हम आगे प्रस्तुत करते हैं—

राजा का स्वर्गवास (पद्मावत से)

तौलहि श्वास पेट महँ अही । जौलहि दशा जी उ की रही ॥
काल आइ देखलाई सांटी । उठि जिय चला छांड़ के माटी ॥
काकर लोग कुटुम घर बारू । काकर अर्थ द्रव्य संसारू ॥
वही घड़ी सब भयो परावा । आपन सोइ जो परसा खावा ॥
रहि जे हितू साथ के नेगी । सबै लागि काढ़न तेहि बेगी ॥
हाथ झार जस चलै जुवारी । तजा राज ह्वै चला भिखारी ॥
जब लग जीव रतन सब काहा । भा बिन जीव न कौड़ी लाहा ॥

गढ़ सौंपा तेहि बादल , गये टेकत बसुदेव ।
छोड़ी राम अयोध्या , जो भावै सो लेव ॥

पद्मावति पुनि पहरि पटोरा । चली साथ पिय के ह्वै जोरा ॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई । पूनो शशि सो अमावस भई ॥
छोरे केश मोति लट छूटी । जानो रयनि नखत सब छूटी ॥
सेंदुर परा जो शीस उघारी । आग लाग चहि जग अंधियारी ॥
यही दिवस हों चाहत नाहीं । चलो साथ पिय दै गलबाहीं ॥
सारस पंखि नहिं जिये निरारे । हौं तुम बिन का जियों पियारे ॥
न्योछावर कै तन छहराऊं । छार होऊँ संग बहुर न आऊं ॥
दीपक प्रीति पतंग ज्यों , जन्म निबाह करेउं ।
न्योछावर चहुंपास ह्वै , कंठ लाग जिय देउं ॥

पद्मावत का सती होना।

नागमती पद्मावत रानी । दोउ महासत सती बखानी ॥
दोउ सौत चढ़ खाट जो बैठी । औ शिवलोक परा तहँ दीठी ॥
बैठो कोइ राज औ पाटा । अन्त सबै बैठे पुनि खाटा ॥
चन्दन अगर काढ़ सर साजा । औार गति देय चले लै राजा ॥
बाजन बाजहिं होय अगोता । दोउ कन्त लै चाहें सोता ॥

एक जो बाजा भयो बिवाहू । अब दुसरे है और निबाहू ॥
जियत जलै जो कन्त की आसा । मुये रहस बैठे इक पासा ॥

आज सूर दिन अथयो, आज रयनि शशि बूड़ ।
आज नाथ जिय दीजिये, आज अगिन हम जूड़ ॥

सर रच दान पुन्य बहु कीन्हा । सात बार फिर भांवर लीन्हा ॥
एक जो भांवर भयो बियाही । अब दूसर ह्वै गोहन जाही ॥
जियत कन्त तुम हम गल लाई । मुये कण्ठ नहिं छाड़हु साई ॥
लै सर ऊपर खाट बिछाई । पौढ़ी दोउ कन्त गल लाई ॥
और जो गांठ कन्त तुम जोरी । आदि अन्त लहि जाय न छोरी ॥
[illegible] जो अव[illegible] न याथी । हम तुम नाह दोहू जग साथी ॥
लागी कण्ठ अंग दै होरी । छार भई जर अंग न मोरी ॥

राती पिय के नेह की, स्वर्ग भयो रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोई संसार ॥

वै सहगवन भई जिय आई । बादशाह गढ़ छेका धाई ॥
तब लग सो अवसर ह्वै बीता । भये अलोप राम औ सीता ॥
आय शाह जो सुना अखारा । ह्वै गइ रात दिवस उंजियारा ॥
छार उठाय लीन इक मूठी । दीन्ह उड़ाइ पिरथबी झूठी ॥
सगरे कटक उठाई माटी । पुल बांधा जहं जहं गढ़ घाटी ॥
जो लहि उपर छार नहिं परै । तौ लहि यह तृष्णा नहिं मरै ॥
भा दहवा भा जूझ असूझा । बादल आय पँवर पर जूझा ॥

जून्हर भईं सब इस्त्री, पुरुष भये संग्राम ।
बादशाह गढ़ चूरा, चितौर भा इसलाम ॥

मैं यह अर्थ पण्डितन बूझा । कह कि हम कुछ और न सूझा ॥
चौदह भुवन जोहत उपराहीं । सो सब मानुष के घट माहीं ॥
तन चितौर मन राजा कीन्हा । [illegible] पद्मिनि चीन्हा ॥
गुरू सुवा जेहि पंथ दिखावा । बिन गुरु जगत सो निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धंधा । बाचा सोई न यह चित बन्धा ॥

राघव दूत सोइ शैतानू । माया अलाउदीं सुलतानू ॥
प्रेम कथा यह भांति विचारू । बूझ लेहु जो बूझहि पारू ॥
तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि ।
जामें मारग प्रेम का, सबै सराहैं ताहि ॥

मुहमद कवि यह जोर सुनावा । सुना सो प्रेम पीर का पावा ॥
जोरे लाय रक्त ले गये । प्रेम प्रीति नयनहिं जल भये ॥
औ मैं जान गीत अस कीन्हा । की यह रीति जगत महं चीन्हा ॥
कहाँ सो रतनसेन अब राजा । कहाँ सुवा अस बुध उपराजा ॥
कहाँ अलाउदीन सुलतानू । कहँ राघव जेहि कीन्ह बखानू ॥
कहँ सुरूप पद्मावति रानी । कुछ न रही जग रही कहानी ॥
धन माईं यह कीरति तासू । फूल मरै पर मरै न बासू ॥
कौन जगत यश बेचा, कौन लीन यश मोल ।
जो यह पढ़ें कहानी, हम संबरै दोउ बोल ॥

मुहमद वृद्ध बैस जो भई । यौवन हुत सो अवस्था गई ॥
बल जो गयो कै खीन शरीरू । दृष्टि गई नयनहिं दै नीरू ॥
दसन गये कै बचा कपोला । बैन गये अनरुच दै बोला ॥
बुधि जो गई दै हिय बौराई । गर्व गयो तरिहत शिर नाई ॥
श्रवण गये ऊंच जो सूना । स्याही गये सीस भा धूना ॥
भंवर गये केसहिं दे भुवा । यौवन गयो जीत ले जुवा ॥
जो लहि जीवन जोबन साथा । पुनि सो मीच पराये हाथा ॥

अखरावट

ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं । जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं ॥
आपुहि आप जो देखइ चहा । आपन प्रभुता आपसे कहा ॥
सबइ जगत दरपन कै लेखा । आपुहि दरपन आपुहि देखा ॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू । आपुहि सउजा आपु अहेरू ॥
आपुहि पुहुप फूल बन फूले । आपहि भंवर बासरस भूले ॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखनहारा ॥

आपुहि घटघट महं सुख चाहइ । आपुहि आपन रूप सराहइ ॥
पानी महं जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ ।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ ॥
सा साँसा जड़ लहि दिन चारी । ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी ॥
अंध न रहहु होहु डिठिआरा । चीन्हि लेहु जो तोहि संवारा ॥
पहले से जो ठाकुर कीजिअ । अइसे जिअन मरन नहिं छीजिअ ॥
छाड़हु घिउ अरु मछरी मासू । सूखे भोजन करहु गरासू ॥
दूध मास घिव करु न अहारू । रोटी सान करहु फरहारू ॥
यहि विधि काम घटावहु काया । काम क्रोध तिसना मद माया ॥
तब बइठउ बजरासन मारी । गहि सुखमना पिङ्गला नारी ॥
प्रेम तन्तु तस लागि रहु, करहु ध्यान चित बाधि ।
पारधि जइस अहेर कहं, लागि रहइ सर साधि ॥

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास कस्बा बाड़ी जिला सीतापुर के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १५५० के लगभग माना जाता है। शिवसिंह सरोज में सं० १६०२ में इनका जीवित रहना लिखा है। यह अच्छे कवि थे। १५८२ में इन्होंने सुदामा-चरित्र लिखा। इन्होंने ध्रुवचरित्र भी लिखा था। सुदामा-चरित्र हमने देखा है। इनकी कविता बड़ी सुन्दर है। इनके सुदामा-चरित्र से कुछ नमूने यहां दिये जाते हैं—

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल श्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं। ओढ़े पीत बसन गरे में बैजयंती माल शंख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं। कहत नरोत्तम संदीपनि गुरू के पास तुमहीं कहत हम पढ़े एक साथ हैं। द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥१॥

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सुधारत संपति की तिनके नहिं इच्छा।

मेरे हिये हरि के पद पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिये बावरी बाँभन को धन केवल भिच्छा ॥२॥

दानी बड़े तिहुं लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली बिधि सिद्धि करौ पिय मेरो मतो लै।
दीनदयालु के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो तिहूपन क्यों कन मांगत डोलै ॥३॥

क्षत्रिन के प्रन युद्ध जुवा सजि बाजि चढ़े गज राजन ही।
वैस को बानिज और कृषी, प्रन शूद्र के सेवन-साजन ही।
बिप्रन को प्रन है जु यही सुख सम्पति सों कुछ काज नहीं।
कै पढ़िबो कै तपोधन है कन मांगत बांभनै लाज नहीं ॥४॥

कोदो सवां जुरतौ भरिपेट न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत व्यतीत भयो सिसियातहि हौं हठती पै तुम्हें न हठौती।
जो जनती न हितू हरि सो तौ मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर तें न गयो कबहूं पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥५॥

छांड़ि सबै तक तोहि लगी बक आठहु जाम यहै जक ठानी।
जातहि दैहें लदाय लढ़ा भरि लैहौं लदाय यहै जिय जानी।
पावें कहां ते अटारी अटा जिनके बिधि दीन्ही है टूटी-सी छानी।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तो काहू पै मेटि न जात अजानी ॥६॥

फाटे पट टूटी छानि खायो भीख मांगि आनि बिना जग्य बिमुख रहत देव-पित्रई। वै हैं दीनबन्धु दुखी देख कै दयाल ह्वै हैं दैहैं कछु भलो सो हौं जानत अगत्रई। द्वारिका लौं जात पिय! केतौ अलसात तुम काहे को लजात भई कौन-सी बिचित्रई। जो पै सब जन्म या दरिद्र ही सतायो तोपै कौन काज आइहै कृपानिधि की मित्रई ॥७॥

तें तो कही नीकी सुनि बात हित ही की यही रीति मितई की नित प्रीति सरसाइये। मित्र के मिलेते चित्त चाहिये परसपर मित्र के जो जेंइये सो आपद जेंवाइये। वै हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप तहां

यही रूप जाय कहा सकुचाइये । दुख सुख करि दिन काटे ही बनैगे भूलि बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ।।८।।

बिप्र के भगत हरि जगत-बिदित-बन्धु लेत सब ही की सुधि ऐसे महादानि हैं । पढ़े एक चटसार कही तुम कैयो बार लोचन-अपार वै तुम्हें न पहिचानिहैं । एक दीनबन्धु कृपासिन्धु फेर गुरूबन्धु तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहैं। नाम लेत चौगुनी गये तें द्वार सौगुनी सो देखत सहसगुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ।।९।।

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै जक तेरे ।
जौ न कहो करिये तौ बड़ो दुख जैए कहां अपनी गति हेरे ।।
द्वार खरे प्रभु के छरिया तहं भूपति जान न पावत नेरे ।
पांच सुपारी तैं देखु बिचारिकै भेट कौं चार न चाउर मेरे ।।१०।।

यह सुनि के तब ब्राह्मनी , गई परोसिनि पास ।
पाव सेर चाउर लिये , आई सहित हुलास ।।११।।
सिद्धि करी गनपति सुमिरि , बांधि दुपटिया खूंट ।
मांगत खात चले तहां , मारग बाली बूट ।।१२।।

मंगल संगीत धाम धाम में पुनीत जहां नाचै बारबधू देवनारि अनुहारिका । घंटन के नाद कहूं बाजन के छाइ रहे कहूं पिक केकि पढ़ैं सुक और सारिका । रतनन-ठाट हाट-बाटन में देखियत घूमैं गज अस्व रथपती नर-नारिका । दसो-दिसा भीर द्विज धरत न धीर मन उठति है पीर लखि बलबीर द्वारिका ।।१३।।

दीठि चकचौंधि गई देखत सुबर्नमयी, एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं । पूछे बिन कोऊ कहूं काहू सों न करै बात देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं । देखत सुदामें धाय पौरजन गहे पाय, "कृपा करि कहो कहां कीने बिप्र गौन हैं ?" "धीरज अधीर के हरन पर-पीर के, बताओ बलबीर के महल यहां कौन हैं ।।१४।।"

द्वारपाल चलि तहं गयो , जहां कृस्न जदुराय ।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो , बोल्यौ सीस नवाय ।।१५।।

सीस पगा न झंगा तन में प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु पांय उपानह की नहिं सामा ।।
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल के धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ।।१६।।

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेटयो ।
सोच भयौ सुरनायक के कलपद्रुम के हिय मांझ खखेटयो ।।
कंप कुबेर हिये सर सो परसे पग जात सुमेर ससेटयो ।
रंक तें राउ भयौ तबहीं जबहीं भरि अंक रमापति भेंटयो ।।१७।।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये ।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये ।।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोये ।।१८।।

तन्दुल तिय दीने हते, आगे धरियो जाय ।
देखि राजसम्पति विभव, दै नहिं सकत लजाय ।।१९।।
अन्तरजामी आप हरि, जानि भगत की रीति ।
सुहृद सुदामा विप्र सों, प्रगट जनाई प्रीति ।।२०।।
कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ।
चांपि पोटरी कांख में, रहे कहो केहि हेत ।।२१।।

आगे चना गुरमात दये ते लये तुम चाबि हमें नहिं दीने ।
स्याम कही मुसकाय सुदामा सों चोरि की बानि में हौ जु प्रबीने ।।
पोटरी कांख में चांपि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने ।
पाछिली बानि अजौं न तजी तुम तैसेई भाभी के तन्दुल कीने ।।२२।।

खोलत सकुचत गांठरी, चितवत हरि की ओर ।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखर गये तेहि ठौर ।।२३।।

तन्दुल मांगत मोहन विप्र संकोच ते देत नहीं अभिलाखे ।
हैं नहिं पास कछू कहि के तेहि गोपि घनी विधि कांख में राखे ।।

सो लखि दीनदयालु उतै यह चोरी करी तुम यों हंसि भाखे ।
खोलि के पोट अछोट मुठी गिरिधारन चाउर चाव सों चाखे ॥२४॥
कांपि उठी कमला मन सोचति मो सों कहा हरि को मन औंको ।
ऋद्धि कंपी सब सिद्धि कंपी नवनिद्धि कंपी ब्रह्मनायक धौंको ॥
सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लयो भरि भौंको ।
मेरु डरयो बकसै जनि मोंहि कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥२५॥

हूल हियरा में कान कानन परी है टेर भेटत सुदामै स्याम बनै न अघातहीं । कहै नरोत्तम ऋद्धि सिद्धिन में सोर भयो ठाढ़ी थरहरै थौर सोचें कमला तहीं ॥ नाकलोक नागलोक ओक-ओक थोक-थोक ठाड़े थरहरें मुख से कहैं न बातहीं । हालो परयो लाकन में लालो परयो चक्रिन में चालो परयो लोगन में चाउर चबातही ॥२६॥

भौन भरो पकवान मिठाइन लोग कहैं निधि हैं सुखमा के ।
सांझ सबेरे पिता अभिलाषत दाख न चाखत सिंधु छमा के ॥
बांभन एक कोऊ दुखिया सेर-पावक चाउर लायो समा के ।
प्रीति की रीति कहा कहिये तिहि बैठि चबात हैं कंत रमा के ॥२७॥

मूठी तीसरी भरत ही, रुकुमिनि पकरी बांह ।
ऐसी तुम्हें कहा भई, संपति की अनचाह ॥२८॥
कही रुकुमिनी कान में, यह धौं कौन मिलाप ।
करत सुदामहिं आपसों, होत सुदामा आप ॥२९॥

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चित धारी ।
तन्दुल खाय मुठी दुइ दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी ॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहा निज बास की आस बिचारी ।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी ॥३०॥

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता, जीती जिन सोभा है सरदहू के चंद की । दूसरे पहिति भात सोंधो है सुरभि घृत, फूलेफूले फुलका प्रफुल्ल दुति मंद की ॥ पापर मुंगौरी बरा ब्यंजन अनेक प्रीति, देवता

बिलोकि रहे देवकी के नंद की। या बिधि सुदामाजू को आछेकै जेंवाय प्रभु पाछे तें पछयावरि परोसी आनि कंद की ॥३१॥

कह्यो विश्वकर्मा को हरि तुम जाय करि नगर सुदामाजी को रचौ वेग अबही। रतन जटित धाम सुवरणमयी सब, कोट औ बजार बाग फूलन के तबही॥ कल्पवृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे कीजिये अपार दास दासी देव छबही॥ इन्द्र औ कुबेर आदि देव बधू अपसरा गंधरब गुनी जहां ठाढ़े रहें सबही ॥३२॥

नित नित सब द्वारावती, दिखराई प्रभु आप।
भले बाग अनुराग सह, जहां न ब्यापै ताप ॥३३॥
परम कृपा दिन-दिन करी, कृपानाथ जदुराय।
मित्र-भावना बिस्तरी, दूनो आदर भाय ॥३४॥

दाहिने बेद पढ़ै चतुरानन सामुहे ध्यान महेस धरयो है।
बाएं दुऔ कर जोरे लिए सब देवन साथ सुरेस खरयो है॥
एतेइ बीच अनेक लिये धन पायन आय कुबेर परयो है।
देखि बिभौ अपनो सपनो बपुरो वह बांभन चौंकि परयो है ॥३५॥

देनो हुतौ सो दै चुके, विप्र न जानी गाथ।
चलती बेर गोपालजू, कछू न दीन्हो हाथ ॥३६॥
गोपुर लौं पहुंचाय कै, फिरे सकल दरबार।
मित्र वियोगी कृस्न के, नेत्र चली जल-धार ॥३७॥
हौ कब इत आवत हुतौ, वाही पठयो ठेलि।
कहिहौं धन सों जाइके, अब धन धरो सकेलि ॥३८॥
बालापन के मित्र हैं, कहा देउं मैं साप।
जैसो हरि हमको दियो, तैसो पइ हैं आप ॥३९॥
और कहा कहिये जहां, कञ्चन हो के धाम।
निपट कठिन हरिको हियो, मोकों दियो न दाम ॥४०॥
मि सोचत-सोचत झखत, आयो निज पुर तीर।
दीठि परी इकबारही, हय गयंद की भीर ॥४१॥

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन में, वेई सरवर हंस बोलन-मिलन कों। वेई हेम-हिरन दिसान दहलीजन में, वेई गजराज हय गरज-पिलन कों॥ द्वार द्वार छरी लिये द्वार-पौरिया जो खरे, बोलत मरोर-बरजोर त्यों झिलन कों। द्वारका तें चल्यौं भूलि द्वारिका ही आयों नाथ, मांगिया न मो पै चारि चाउर गिलन कों॥४२॥

जगर-मगर जोति छाय रही चहुं ओर अगर-बगर हाथी-घोरन को रोर है। चौपर को बनो है बजार पुनि सोनान के, महल दुकान की कतार चहुँ ओर है॥ भीरभार धकापेल चहुं दिशि देखियत, द्वरिका तें दूनो यहाँ प्यादन को जोर है। रहिबे को ठाम है न. काहू सों पिछान मेरी, बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है॥ ४३॥

फूटी एक थारी बिन टोटनी की झारी हुती, बांस की पिटारी औ कंथारी हुती टाट की। बेंटे बिन छुरी औ कमंडलु सौ टूक वहौ, फटे हुते पावौ पाटी टूटी एक खाट की। पथरौटा, काठ को कठौता कहूं दीसै नाहिं, पीतर को लोटो हो कटोरो हो न बाटकी। कामरी फटी-सी हुती डोंड़न की माला ताक, गोमती की माटी की न सुद्ध कहूं माट की॥४४॥

मीराबाई

मीराबाई जोधपुर मेड़ता के राठौर रतनसिंहजी की एकलौती बेटी थीं। इनका जन्म कुड़की नामक ग्राम में, संवत् १५५५ वि० और सं० १३६० वि० के बीच हुआ था। इनका विवाह उदयपुर के सीसोदिया राजकुल में महाराना सांगाजी के कुंवर भोजराज के साथ सं० १५७३ में हुआ था। इनका देहान्त कब हुआ—इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। स्वर्गवासी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनुमान है कि मीराबाई ने संवत् १६२० और १६३० वि० के बीच शरीर छोड़ा।

मीराबाई का समय कौन-सा है? इस विषय में बड़ा मतभेद है। संतबानी के सम्पादक ने इनका जीवन-समय सं० १५७३ से १६३० तक माना है और इनको जोधपुर के राठौर राव रञ्जीतसिंह की एकलौती

बेटी और उदयपुर के युवराज भोजराज की स्त्री लिखा है। मिश्रबन्धु लिखते हैं कि "यह बाईजी मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव ईदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं। इन्होंने १५७३ में चौकड़ी नामक ग्राम में जन्म लिया और इनका विवाह महाराना कुमार भोजराज के साथ हुआ। मीराबाई का देहान्त द्वारिकाजी में सं० १६०३ में हुआ। पहले बहुतों का मत था कि मीराबाई राजा कुम्भकरण की स्त्री थीं और बाईजी का जन्म-काल सं० १४७५ का लोग मानते थे। परन्तु जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी ने मीराबाई के बाबत उपर्युक्त बातें का पता लगाया है, जो अब सर्वसम्मत भी है।"

टाड साहब लिखते हैं कि "मैरता निबासी राठौर सरदार दूदाजी की मीराबाई नामक कन्या से महाराणा कुंभ का विवाह हुओ था।" महाराना कुंभ सं० १४७५ में चित्तौर के सिंहासन पर बैठे और दूदाजी के पिता जोधाजी का सं० १५४५ में ६१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो चुकी थी। दूदाजी अपने १४ भाइयों में चौथे थे। अतएव पिता के मरने के समय उनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की रही होगी अर्थात् १५१५ में वे उत्पन्न हुए होंगे। महाराजा कुंभ का देहान्त १५२५ में हुआ अतएव मीराबाई का राजा कुंभ की रानी होना ही नहीं बल्कि यह भी असम्भव जान पड़ता है कि वे उनके समय में पैदा हुई थीं।

रायबहादुर कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी, बी० ए० ने "गुजराती भाषानुं वृहद् व्याकरण" के "गुजराती भाषानों इतिहास" प्रकरण में २९वें पृष्ठ पर लिखा है कि "नरसिंह महेता अने मीराबाई ई० सं० ना १५ मा सैका मां थई गयाँ छे।" पर गुजरात के साहित्यिकों में भी मीराबाई के सम्बन्ध में बहुत मतभेद चल रहा है। मीराबाई के समय-संबन्ध में उनके पदों से जो कुछ पता चलता है वह यह है कि वे रैदास की शिष्या थीं। उनके कितने ही पदों में यह स्पष्ट लिखा हुआ मिलता है कि वे रैदासजी को गुरु मानती थीं। प्रमाण के लिए यहां कुछ पद मीराबाई की शब्दा-

वली से उद्धृत किये जाते हैं:—

१—रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी। पृष्ठ २०

२—गुरुमिलिया रैदासजी दीन्हों ज्ञान की गुटकी। पृष्ठ २५

३—गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे धुर से कलम भिड़ी। पृष्ठ ३६

४—मीरा ने गोविंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास। पृष्ठ ३७

रैदासजी कबीर साहब के गुरुभाई थे। कबीर साहब का जन्म सं० १४५५ में और मरण १५७५ में माना जाता है। इसीके आसपास रैदासजी का भी जीवनकाल रहा होगा। इसी समय के भीतर मीराबाई का भी जीवन-समय होना चाहिए, तभी रैदासजी का मीराबाई का गुरु होना प्रमाणित हो सकेगा। पता नहीं, उम्र में रैदास बड़े थे या कबीर। रैदास कब मरे, यह भी अनिश्चित है। यदि दोनों का जन्म-मरण-काल एक ही मान लिया जाय तो मीराबाई के जन्म के समय रैदास १०० वर्ष के रहे होंगे। विवाह के पहले ही मीराबाई को रैदास ने ज्ञानोपदेश किया होगा। क्योंकि १५७३ में मीराबाई का विवाह हो गया। विवाह के बाद १५७३ से १५७५ के भीतर रैदास को मीराबाई से मिलने का मौका मिलना, मेरी राय में असम्भव ही है। सौ सवासौ वर्ष की उम्र में रैदास का राजपूताने जाना यदि सम्भव हो तो मीराबाई का जन्म सं० १५५५ ही ठीक है। इस हिसाब से मिश्रबंधुओं ने और संतबानी के सम्पादक ने जो मीराबाई का समय निर्धारित किया है यह गलत ठहरता है। उस समय रैदास का मीराबाई से सत्संग होना असम्भव है।

कहा जाता है कि विवाह होने पर मीराबाई चित्तौड़ गईं, वहां विवाह होने से दस बरस के भीतर ही यह विधवा होगईं, परन्तु इनको इस बात का कुछ भी शोक न हुआ। क्योंकि इनके हृदय में गिरिधर गोपाल के लिए बड़ी भक्ति थी और ये रात दिन गिरिधर नागर के प्रेम में ही मतवाली रहती थीं। अपने कुलकी लज्जा छोड़कर जब यह बेधड़क साधु-सेवा करने लगीं, तब यह बात इनके देवर विक्रमाजीत को, जो महाराना रतनसिंह के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे थे, बहुत खटकी। उन्होंने

मीरा को बहुत समझाया और चम्पा और चमेली नाम की दो दासियां इस अभिप्राय से मीरा के पास रक्खीं कि वे साधु-संगति की ओर से मीरा का चित्त हटाती रहें; परन्तु मीरा की संगति से उन दोनों दासियों पर भी भक्ति का रंग चढ़ गया । तब राणा ने अपनी सगी बहन ऊदा का मीराबाई के पास समझाने के लिए भेजा। परन्तु मीरा अपने प्रण से नहीं टलीं, उलटे ऊदा का ही चित्त मीरा के प्रेम पर आसक्त होगया। वह मीरा की चेली हो गई । तब राणा ने मीरा को विष का प्याला भेजा। मीरा ने उसे भगवान् का चरणामृत समझकर पी लिया। कहते हैं कि उस विष का मीराबाई पर कुछ भी असर न हुआ । इतने पर भी जब राणा ने नहीं माना और वे बराबर उपाधि करते रहे, तब मीरा ने घबड़ाकर गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिखकर भेजा—

श्री तुलसी सुखनिधान दुख हरन गुसाई।
बारहिं बार प्रनाम करूं अब हरो सोक समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटतहिं नाहिं क्यों हूं लगी लगन बरियाई ॥
मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई ॥

इसके उत्तर में तुलसीदास ने यह लिख भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनिता, भये सब मङ्गलकारी ॥
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहा आंख जो फूटे बहुतक कहौं कहां लौं ॥

"तुलसी" सो सब भांति परमहित, पूज्य प्रानतें प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एही मतो हमारो॥

इस उत्तर के पाने पर मीराबाई चित्तौड़ छोड़कर रात के समय मेड़ता चली आई। यह कथा बिलकुल मनगढ़ंत है। मीराबाई का जन्म-काल सं०१५५५ या १५७३ मानने पर तो यह किसी तरह संभव नहीं कि १५८९ में पैदा होनेवाले गोस्वामी तुलसीदास से इनका यह पत्रव्यवहार हुआ हो और उनकी राय से इन्होंने गृहत्याग किया हो। मीरा और तुलसी के पदों को मिलाकर किसी ने यह नई घटना रच दी है।

वहां भी उनका मन न लगा तब वृन्दाबन चली गई। वृन्दाबन में मीराबाई जीव गोस्वामी का दर्शन करने गई। उन्होने कहा, हम स्त्रियों से नहीं मिलते। मीराबाई ने कहला भेजा—मै नहीं जानती थी कि गिरिधर लाल के सिवा यहां और भी पुरुष हैं। यह सुनते ही जीव गोस्वामी नंगे पैर बाहर आकर मीराबाई को आदरपूर्वक लेगये : वहां कुछ समय रहकर फिर द्वारका चली गई। राणाजी ने मीराबाई को वापस लाने के लिए कई ब्राह्मणों को द्वारका भेजा। मीराबाई ने आना अस्वीकार किया। तब ब्राह्मणों ने वहीं धरना दे दिया और अन्न-जल छोड़ दिया। तब कहा जाता है कि मीराबाई रणछोड़जी से मिलने के लिए मंदिर में गई और वहीं मूर्ति में समा गई।

मीराबाई के हृदय में अगाध प्रेम था। उनके पदों से उनकी हार्दिक-भक्ति प्रकट होती है। मीराबाई संस्कृत भो जानती थीं। उन्होंने गीत-गोविन्द की टीका लिखी है। इसके सिवा नरसीजी का मायरा और रागगोविन्द भी उनके रचे हुए कहे जाते हैं। हमने इन में से कोई पुस्तक नहीं देखी।

मीराबाई की कविता राजपूतानी बोली मिश्रित हिन्दी भाषा में है। गुजराती भाषा में भी मीराबाई ने मधुर कविता रची है। हम यहां उनके कुछ पद उद्धृत करते हैं—

(१)

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुमहो मेरे प्राण जी, कासूं जीवण होय॥
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूं रे, मेरा दरद न जाणे कोय॥
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरतां रे, नैण गमाई रोय॥
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढंढोरा फेरती रे, प्रीति करो मत कोय॥
पंथ निहारूं डगर बुहारूं, ऊबी मारग जोय।
"मीरा" के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियां सुख होय॥

(२)

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय॥
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय॥
जौहरीकी गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं, वैद मिल्या नहिं कोय॥
"मीरा" की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद संवलिया होय।

(३)

बंसीवारो आयो म्हारे देस, थांरी सांवरी सुरत वाली बैस॥
आऊं आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।
गिणते गिणते घिस गई उंगली, घिस गई उंगली की रेख॥
मैं बैरागिणि आदि की, थांरे म्हारे कद को संदेस।
बिन पाणी बिन साबुन सांवरा, हुइ गई धुई सपेद॥
जोगिण हुई जंगल सब हेरूं, तेरा नाम न पाया भेस।
तेरी सुरत के कारणे, धर लिया भगवा भेस॥

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूंघरवाला केस।
"मीरा" को प्रभु गिरिधर मिल गये, दूना बढ़ा सनेस॥

(३)

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊं बाटड़ियां।
दरसण बिन मोहि पल न सुहावै, कल न पड़त है आंखड़ियां॥
तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पड़ी बिरह की फांसड़ियां।
अब तो बेगि दया कर साहिब, मैं हूं तेरी दासड़ियां॥
नैण दुखी दरसण को तिरसे, नाभि न बैठे सांसड़ियां।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखे पासड़ियां॥
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यों कीजै आटड़ियां।
"मीरा" के प्रभु गिरिधर नागर, पूरौ मन की आसड़ियां॥

(५)

पायो जी, मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूंजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
"मीरा" के प्रभु गिरधरनागर, हरख हरख जस गायो॥

(६)

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनो मूरति सांवरि सूरति नैना बने बिसाल॥
अधर सुधारस मुरली राजित उर बैजन्ती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल॥
"मीरा" प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥

(७)

करमगति टारे नाहिं टरे।
सतबादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे।

पांच पांडु अरु कुन्ती द्रोपदी, हाड़ हिमालय गरे ॥
जज्ञ किया बलि लेण इंद्रासन, सो पाताल धरे ।
"मीरा" के प्रभु गिरधरनागर, विष से अमृत करे ॥

(८)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ॥
भाई छोड्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई ।
साध सङ्ग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई ॥
दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई ।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥
अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई ।
"मीरा" राम लगण लागी होणी होय सो होई ॥

(९)

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥
सांप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय ।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय ॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अंचाय ॥
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय ।
सांझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय ॥
"मीरा" के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय ।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय ॥

(१०)

नहिं ऐसो जन्म बारम्बार ।
क्या जानूं कछु पुन्य प्रकटे, मानुसा अवतार ॥

बढ़त पलपल घटत छिनछिन , चलत न लागे बार ।
बिरछ के ज्यों पात टूटे , लागे नहिं पुनि डार ॥
भौसागर अति जोर कहिये , विषय ओखी धार ।
सुरत का नर बांधे बेड़ा , बेगि उतरे पार ॥
साधु संता ते महंता , चलत करत पुकार ।
"दासमीरा" लाल गिरिधर , जीवना दिन चार ॥

(११)

मन रे परसि हरि के चरन ।
सुभग सीतल कमल कोमल , त्रिविध ज्वाला हरन ।
जे चरन प्रहलाद परसे , इन्द्र पदवी धरन ॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों , राखि अपने सरन ।
जिन चरन ब्रह्मांड भेंटचो , नख सिखौ श्री भरन ॥
जिन चरन प्रभु परसि लीने , तरी गौतम धरन ।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो , गोप लीला करन ॥
जिन चरन धारचो गोबर्द्धन , गरब मघवा हरन ।
"दास मीरा" लाल गिरिधर , अगम तारन तरन ॥

(१२)

नातो नाम को मो सूं तनक न तोड़चो जाय ॥
पाना ज्यों पीली पड़ी रे , लोग कहैं पिंड रोग ।
छाने लांघन मैं किया रे , राम मिलन के योग ॥
बाबल बैद बुलाइया रे , पकड़ दिखाई म्हारी बांह ।
मुरख वैद मरम नहिं जाने , करक कलेजे मांह ॥
जाओ बैद घर आपने रे , म्हारो नांव न लेय ।
मैं तो दाघी बिरह की रे , काहे कूं औषद देय ॥
मांस गलि गलि छीजिया रे , करक रह्या गल मांहि ।
आंगुलियां की मूंदड़ी म्हांरे , आवन लागी बांहि ॥

रहु रहु पापी पपीहा रे, पिव को नाम न लेय।
जे कोई बिरहिन साम्हले तो, पिव कारन जिव देय॥
खिन मन्दिर खिन आंगने रे, खिन खिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूं घूमूं खड़ी, म्हारी बिथा न बूझे कोय॥
काटि कलेजो मैं धरूं रे, कौआ तू ले जाय।
ज्यां देसां म्हारो पिव बसै रे, वे देखत तू खाय॥
म्हारे नातो नाम को रे, और न नातो कोय।
"मीरा" व्याकुल बिरहिनी रे, पिय दरसन दीजो मोय॥

हितहरिवंश

गोस्वामी हितहरिवंश का जन्म वैशाख बदी ११ सं० १५५९ में देवबंद (सहारनपुर) में और मरण सं० १६५९ के लगभग हुआ। इनके पिता का नाम व्यासजी, माता का तारावती और स्त्री का रुक्मिणी था।

हितहरिवंश जी राधाबल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक थे। ये संस्कृत और हिन्दी के अच्छे कवि थे। ये श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते ह। संस्कृत में इन्होंने "राधा सुधानिधि" नामक १७० श्लोकों का एक काव्य रचा। कुछ लोगों का कहना है कि यह ग्रन्थ श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य स्वामी प्रबोधानन्द का रचा हुआ है। इनकी कविता का मुख्य लक्ष्य भक्ति था। हिन्दी में इन्होंने ८४ पद कहे हैं। उनमें से कुछ चुने हुए पद हम नीचे उद्धृत करते हैं—

(१)

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी।
नख सिखलौं अँग अंग माधुरी मोहे श्याम धनी॥
यों राजत कवरी गूंथित कच कनक कञ्ज बदनी।
चिकुर चन्द्रिकनि बीच अरध बिधु मानहुं ग्रसत फनी॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी।
भकुटी काम कोदंड नैन सर कज्जल रेख अनी॥

भाल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी॥
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि सांवल विन्दु कनी।
प्रीतम प्रान रतन संपुट कुच कंचुकि कसित तनी॥
भुज मृनाल बल हरत वलय जुत परस सरस स्रवनी।
श्याम सीस तरु मनु मिडवारा रची रुचिर रवनी॥
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन को ह्रदिनी।
कृश कटि पृथु नितंब किंकिन बृत कदलि खंभ जघनी॥
पद अम्बुज जावक युत भूषन प्रीतम उर अवनी।
नव नव भाव विलोम भाम इभ विहरति बर करनी॥
"हितहरिबंस" प्रसंसित श्यामा कीरति बिसद घनी।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व दुरित दवनी॥

(२)

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर।
तो बिन कुंवर कोटि बनिता जुत मथत मदन की पीर॥
गदगद सुर बिरहाकुल पुलकित श्रवण विलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभाननंदिनी बिलपत विपिन अधीर॥
बंसी बिसिख ब्याल मालावलि पञ्चानन पिक कीर।
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपु चीर॥
"हितहरिबंस" परम कोमल चित सपदि चली पिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र को पिंजर सुरत सूर रनबीर॥

(३)

आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन बेनु बजायो॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो
जवतिन मंडल मध्य श्यामघन सारंग राग जमाया॥

ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायो ।
विविध विसद वृषभान नंदिनी अंग सुगन्ध दिखायो ।।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटी अनंग नचायो ।
ताताथेइ ताथेई धरि नवगति पति ब्रजराज रिझायो ।।
सकल उदार नृपति चूड़ामणि सुख बारिद बरखायो ।
परिरंभन चुम्बन आलिङ्गन उचित जुवति जन पायो ।।
बरखत कुसुम मुदित नभ नायक इन्द्र निसान बजायो ।
"हितहरिबंस" रसिक राधापति जस बितान जग छायो ।।

(४)

छप्पय

ना जानौं छिनु अंत कवन बुधि घटहिं प्रकासित ।
छुटि चेतन जु अचेत तेउ मुनिभय विष वासित ।।
पारासर सुर इद्र कलप कामिनि मम फंदा ।
परयो देह दुख द्वंद कौन क्रम काल निकन्दा ।।
इहि डर डरपहि "[illegible]" , जिन बिभ्रम गुन सलिल पर ।
जिहि नामनि मंगल लोक तिहुं , हरि पदु भजु, न बिलंब कर ।।

(५)

छप्पय

तैं भाजन कृत जटिल विमल चंदन कृत इंधन ।
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरषप बल रिंधन ।।
अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत ।
वारि करत पावारि मंद बोवन विष चाहत ।।
"हितहरिबंस" विचारि कै , यह मनुज देह गुरु चरन गहि ।
सकहि तो सब परपंच तजि , श्रीकृष्ण कृष्णगोविन्द कहि ।।

(६)

आरति कीजै श्याम सुन्दर की । नँद-नंदन श्री राधिका-वर की।

भक्ति को दीप प्रेम करि बाती । साधु संगति कर अनुदिन राती ॥
आरति ब्रज जुवतिन मन भावें । स्याम लीला "हितहरिबंस" गावें ॥

दोहा

(७)

तनहिं राखु सतसंग में, मनहिं प्रेमरस भेद ।
सुख चाहत "हरिबंसहित", कृष्ण कल्पतरु सेव ॥

(८)

निकसि कुञ्ज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस ।
राधा-वल्लभ मुख कमल, निरखत "हितहरिबंस" ॥

(९)

सब सों हित निहकाम मन, वृन्दावन विश्राम ।
राधा-वल्लभ लाल को, हृदय ध्यान मुख नाम ॥

(१०)

रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अनफुटौ नैन ।
श्रवन फुटौ जु अनसुनौ, बिनु राधा जसु बैन ॥

नरहरि

नरहरि का जन्म सं० १५६२ में फतेहपुर जिले के असनी गांव म हुआ । ये १०५ वर्ष तक जीवित रहे । अकबर के दरबार में इनका अच्छा मान था। एकबार एक कसाई एक गाय लिये जाता था। किसी तरह कसाई के हाथ से छूटकर गाय कांपती हुई नरहरि के घर में जा छिपी । नरहरि को गाय की दशा पर बड़ी दया आई । उन्होंने कसाई को गाय देने से इन्कार कर दिया, और एक छप्पय लिखकर गाय के गले में लटकाकर उसे अकबर के सामने उपस्थित किया । कहते हैं, इसके प्रभाव से अकबर ने उस गाय को ही नहीं छुड़वा दिया, बल्कि अपने राज में गोबध बन्द कर दिया था । वह छप्पय यह है—

अरिहुं दन्त तृन धरैं, ताहि मारत न सबल कोइ ।
हम संतत तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं ।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरुकहि न पियावहिं ॥

कह कवि "नरहरि" अकबर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोंहि मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥

इनके बनाये हुए नीति-विषयक दो ग्रन्थ सुने जाते हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

(१)

नरहरि धरहरि को करै, जननि सुतहिं विष देइ।
बेड़ा हठि खेती चरै, साधु परद्धन लेइ॥
साधु परद्धन लेइ, नाव करिया गहि बोरै।
सोइ पहरु सोइ चोर, प्रीति प्रियतम हठ तोरै॥
नृपति प्रजहिं दुख देइ, कौन समरथ करै धरहरि।
छितिपति अकबर साह, 'सुनो धरहरिकरै'नरहरि'॥

(२)

ज्ञानवान हठ करै, निधन परिवार बढ़ावै।
बंधुआ करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै॥
पण्डित किरिया हीन, रांड़ दुरबुद्धि प्रमाने।
धनी न समझै धर्म, नारि मरजाद न माने॥
कुलवंत पुरुष कुलविधि तजै, बन्धु न मानै बन्धु हित।
सन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग में मूरख विदित॥

(३)

को सिखवत कुलबधू, लाज गृह-काज रंग रति।
हसन को सिक्खवत, करन पय पान भिन्न गति॥
सज्जन को सिक्खवत, दान अरु शील सुलच्छन।
सिंहन को सिक्खवत, हनन गज कुंभ ततच्छन॥
विधि रच्योजानि "नरहरि" निरखि, कुल सुभाव को मिट्टवै।
गुण धर्म अकब्बर साह सुन, को नर काको सिक्खवै॥

(४)

सठन सनेह जु करै, मान बेचै सुलुब्ध कहं।

पिय वियोग सुख चहै, सांकरे तजै स्वामि कहं ॥
मन बन्धहि पर रमन, खेल दुर्जन संग खेलहिं।
नृपति मित्र करि गिनहिं, सर्प मुख अंगुलि मेलहिं ॥
चुक्क हित समै "नरहरि" निरखि, जड़ आगे बिस्तरहिं गुन।
पछताहिं सु ते नर भगति बिन, दौलत दलपति खान सुन ॥

(५)

बैर धनी निरधनी, बैर कायर अरु सूरहिं।
घृत मधु माखी बैर, बैर निम्मूहि कपूरहिं ॥
मूसे सर्पहि बैर, बैर पावक अरु पानी।
जरा जोबना बैर, बैर मूरख अरु ज्ञानी ॥
बड़ बैर मोर जिमि चन्द मन, बिरहिन बैर वसन्त सों।
नरहरि सुकब्बि कब्बित्त किय, मंगन बैर अदत्त सों ॥

(६)

न कछु क्रिया बिन विप्र, न कछु कायर जिय छत्री।
न कछु नीति बिन नृपति, न कछु अच्छर बिन मंत्री ॥
न कछु बाम विन धाम, न कछु गथ बिन गरुआई।
न कछु कपट को हेत, न कछु मुख आप बड़ाई ॥
न कछु दान सनमान बिन, न कछु सुभोजन जासु दिन।
जन सुनो सकल "नरहरि" कहत, न कछु जनम हरि-भक्ति बिन ॥

(७)

सरवर नीर न पीवहीं, स्वाति बूंद की आस।
केहरि कबहुं न तृन चरै, जो ब्रत करै पचास ॥
जो ब्रत करै पचास, विपुल गज्जूह बिदारै।
धन ह्वै गर्ब न करै, निधन नहिं दीन उचारै ॥
"नरहरि" कुल क सुभाव, मिटै नहिं जब लग जीवै।
बरु चातक मरि जाय, नीर सरवर नहिं पीवै ॥

(८)

सर सर हंस न होत, बाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफर न होत, नारि पतिव्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत, मलैगिर होत न बन बन।
फन फन मनि नहिं होत, मुक्त जल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत है, जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल "नरहरि" कहत, सब नर होत न एक सरि॥

(९)

भूमि परत अवतरत, करत बानक बिनोद रस।
पुनि जोबन मदमत्त, तत्व इन्द्री अनंग बस॥
विजय हेत जड़ फिरत, बहुरि पहुंच्यो बिरधप्पन।
गयो जन्म गुन गनत, अन्त कछु भयो न अप्पन॥
थिर रहत न कोउ नरपति न बल, रहत एक चहुं जुग्ग जस।
सुइ अजर अमर "नरहरि" निरखि, पिये भक्ति भगवन्त रस॥

(१०)

कबहुं द्वार प्रतिहार, कबहुं दर दर फिरंत नर।
कबहुं देत धन कोटि, कबहुं कर तर करंत कर॥
कबहुं नृपति मुख चहत, कहत करि रहत बचन बस।
कबहुं दास लघु दास, करत उपहास जिभ्य रस॥
कछु जानि न सम्पति गर्बिये, विपति न यह उर आनिये।
हिय हारि न मानत सतपुरुष, "नरहरि" हरिहिं संभारिये॥

हरिदास

स्वामी हरिदास ललिता सखी के अवतार समझे जाते हैं। मुलतान के समीप सारस्वत ब्राह्मण-कुल में इनका जन्म हुआ था। कोई-कोई इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं। ये बड़े त्यागी और विरक्त पुरुष थे। इनके प्रायः

सभी शिष्य महात्मा और सुकवि थे। इन्होंने निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी वाली वैष्णव सम्प्रदाय चलाई। गान-विद्या में ये बड़े प्रवीण थे। तानसेन और बैजू बावरे को गान-विद्या इन्हींने सिखलाई थी। ये वृन्दावन में रहा करते थे। अकबर बादशाह भी एक बार तानसेन के साथ भेस बदलकर इनका दर्शन करने के लिए आये थे।

इन्होंने सिद्धान्त के १९ पद और केलिमाल (११० पद) नामक दो ग्रन्थों की रचना की है। इनके जन्म-मरण का ठीक समय विदित नहीं है।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे लिखते हैं—

(१)

राग बिहाग

गहो मन सब रस को रस सार।
लोक वेद कुल कर्म्मै तजिये भजिये नित्य विहार॥
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ सुमिरो श्याम उदार॥
गति "हरिदास" रीति सतन की गादी को अधिकार॥

(२)

राग विभास

ज्यों ही ज्यों ही तुम राखत हौं त्यों हीं त्यों हीं रहियतु हों हो हरि।
और अचिरचै पाइ धरौं सु तौ कहौ कौन के पैंड़ भरि॥
जदपि हौं अपनो भायो कियो चाहौं कैसे करि सकौं जो तुम राखौ पकरि।
कहि "हरिदास" पिंजरा के जनारलौं तरफराइ रह्यौ उड़िबे कौंकितेउ करि॥

(३)

काहू को बस नाहिं तुम्हारी कृपा तें सब होय बिहारी बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे को भाखियै सो तो ह्वै हारनि॥
जाहि तुम सों हित तासों तुम हित करौ सब सुख कारनि।
"श्री हरिदास" के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी प्राननि के आधारनि॥

(४)

राग आसावरी

हित तौ कीजै कमल नैन सों जा हित के आगे और हित लागै फीको।
कै हित कीजै साधु संगति सौं जावै कलमष जीको॥
हरि को हित ऐसो जैसो रग मजीठ संसार हित कसूभि दिन दुतीको।
कहि "हरिदास" हित कीजे बिहारी सौं और न निबाहु जानि जीको॥

(५)

तिनका बयारि के बस।
ज्यों भावै त्यों उड़ाइ लै जाइ आपने रस॥
ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस।
कहि "हरिदास"बिचारि देख्यो बिना बिहारी नाही जस॥

(६)

हरि के नाम को आलस क्यों करत है रे काल फिरत सर साधे।
हीरा बहुत जवाहिर संचे कहा भयो हस्ती दर बांधे॥
बेर कुबेर कछू नहिं जानत चढ़े फिरत है कांधे।
कहि "हरिदास" कछू न चलत जब आवत अन्त की आंधे॥

(७)

राग कल्यान

हरि को ऐसोई सब खेल।
मृगतृस्ना जग ब्याप रही है कहूं बिजोरो न बेल॥
धनमद, जोबनमद औ राजमद ज्यों पंछिन में डेल।
कहि "हरिदास" यहै जिय जानौ तीरथ को सो मेल॥

(८)

प्रेम-समुद्र रूप-रस गहिरे कैसे लागै घाट।
बेकारयो दै जानि कहावत जाति पनों की कहा परी बाट॥
काहू को सर परै न सूधो मारत गाल गली गली हाट।
कहि "हरिदास" बिहारिहिं जानौ तकौ न औघट घाट॥

नन्ददास

नन्ददास को कुछ लोग तुलसीदासजी का सगा भाई बताते है। ये स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। अष्टछाप में इनका भी नाम है। २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि शिष्य होने के पहले ये एक बार द्वारिका जा रहे थे, पर राह भूलकर सीनन्द गांव मे पहुंचे। वहां एक खत्री की परम सुन्दरी स्त्री पर आसक्त हो गये। उस स्त्री के सम्बन्धी इनसे पिंड छुड़ाने के लिए उसे लेकर गोकुल चले गये, ये भी पीछे-पीछे लगे रहे। अन्त में विट्ठलनाथजी के उपदेश से इनका मोह भंग हुआ; और ये कृष्ण भगवान के प्रेम में फंस गए।

इन्होंने कई ग्रन्थ बनाये हैं। उनके नाम ये हैं—रासपंचाध्यायी, अनेकार्थ नाम माला, रुक्मिणी मंगल, हितोपदेश, दशमस्कंध भागवत, दानलीला, मानलीला, ज्ञानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, रूपमञ्जरी, नाम-मञ्जरी, नाम चिन्तामणि माला, रसमञ्जरी, विरहमञ्जरी, नाममाला, नामकेतु पुराण गद्य, और श्याम सगाई। भ्रमरगीत भी इन्हीं का रचित कहा जाता है। इनकी कविता भी बड़ी मनोहारिणी है। २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि इन्होंने समस्त श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद किया था, परन्तु मथुरा के कथावाचकों के आग्रह से इन्होंने उसे यमुना जी में प्रवाहित कर दिया। रासपञ्चाध्यायी की रचना इन्होंने अपने एक मित्र की सम्मति से की थी।

भ्रमरगीत, इनकी हिन्दी भागवत का अंश जान पड़ता है, क्योंकि उसके प्रारम्भ में पुस्तक प्रारम्भ का कोई लक्षण नहीं। उसमें कुल ७५ पद्य हैं।

रास पञ्चाध्यायी और भ्रमरगीत के कुछ सुन्दर पद हम यहां उद्धृत करते हैं—

रासपञ्चाध्यायी

बन्दन करौं कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी॥

हरि लीला रस मत्त मुदित नित विचरत जग में।
अद्‌भुत गति कतहूं न अटक ह्वै निकसत मग में॥
नीलोत्पलदल श्याम अंग नव जोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल मनो अलि अवलि विराजै॥
ललित बिसाल सुभाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण भगति प्रतिबन्ध तिमिर कहँ कोटि दिवाकर॥
कृपा रङ्ग रस ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूम घुमारे॥
श्रवण कृष्ण रसभवन गण्ड मण्डल भल दरसै।
प्रेमानन्द मिलिन्द मन्द मुसुकनि मधु बरसै॥
उन्नत नासा अधर बिम्ब शुक की छबि छीनी।
तिन मंह अद्‌भुत भांति जु कछुक लसित मसि भीनी॥
कम्बुकण्ठ की रेख देखि हरि धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिह निरखत नासै॥
उरवर पर अति छवि की भीर कछु बरनि न जाई।
जिहि भीतर जगमगत निरन्तर कुंअर कन्हाई॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हियो सरोवर रस भरि चली मनो उमगि पनारी॥
जिहि रस की कुण्डिका नाभि अस शोभित गहरी।
त्रिवली तामहं ललित भांति मनु उपजत लहरी॥
अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित सघनन अस।
जोबन मद आकरसत बरसत प्रेम सुधारस॥
गूढ़ जानु आजानु-बाहु मद-गज-गति लोलैं।
गंगादिकन पवित्र करत अवनी पर डोलैं॥
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगन तें दूरि भये दुरि।
पसरि परयो अंधियार सकल संसार घुमड़ि घिरि॥

तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक लखि दुखित दयाकर।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर॥
श्रीबृन्दाबन चिदघन कछु छबि बरनि न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज गहि रह्यो जड़ताई॥
जह नग खग मृग लता कुंज वीरुध तृन जेते।
नहिं न काल गुन प्रभा सदा सोभित रहै तेते॥
सकल जन्तु अविरुद्ध जहां हरि मृग संग चरहीं।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरहीं॥
सब दिन रहित बसन्त कृष्ण अवलोकनि लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा॥
ज्यों लक्ष्मी निज रूप अनूपम पद सेवित नित।
भूबिलसत जु बिभूति जगत जग मग रही जित कित॥
श्री अनन्त महिमा अनन्त को बरनि सकै कवि।
संकरषक सों कछुक कही श्रीमुख जाकी छबि॥
देवन में श्री रमारमन नारायन प्रभु जस।
बन में बृन्दाबन सुदेस सब दिन सोभित अस॥
या बन की बर बानिक या बन ही बन आवै।
सेस महेश सुरेस गनेस न पारहिं पावै॥
जहं जेतिक द्रुमजात कल्पतरु सम सब लायक।
चिन्तामणि सम सकल भूमि चिन्तित फल दायक॥
तिन महं इक जु कल्पतरु लगि रही जगमग ज्योती।
पात मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती॥
तहं मुतियन के गन्ध लुबध अस गान करत अलि।
बर किन्नर गन्धर्व अपच्छर तिन पर गइ बलि॥
अमृत फुही सुख गुही अति सुही परत रहत नित।
रास रसिक सुन्दर प्रिय को स्रम दूर करन हित॥

ता सुरतरु महं और एक अद्भुत छबि छाजै।
साखा दल फल फूलनि हरि प्रतिबिम्ब बिराजै॥
ता तरु कोमल कनक भूमि मनिमय मोहत मन।
दिखियतु सब प्रतिबिम्ब मनौ धर महं दूसर बन॥
जमुनाजू अति प्रेम भरी नित बहत सुगहरी।
मनि मण्डित महि मांह दोरि जनु परसत लहरी॥
तहं इक मनिमय अंक चित्र को सङ्ग सुभग अति।
तापर षोडश दल सरोज अद्भुत चक्राकृति॥
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर।
तहं राजत ब्रजराज कुंअर वर रसिक पुरन्दर॥
निकर विभाकर दुति मेंटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नन्द कुंअर उर पर सोइ लागति उडु जस॥
मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छबि ताकी।
अखिल खण्ड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी॥
परमातम परब्रह्म सबन के अन्तरजामी।
नारायन भगवान धरम करि सब के स्वामी॥
बाल कुमर पौगण्ड धरम आक्रान्त ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब को मन॥
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जहं।
याही ते बैकुण्ठ बिभव कुण्ठित लागत तहं॥

पद

नंदभवन को भूषण माई।
यसुदा को लाल बीर हलधर को, राधारमण परम सुखदाई॥
शिव को धन संतन को सरबस, महिमा वेद पुरानन गाई।
इन्द्र को इन्द्र देव देवन को, ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकाई॥
काल को काल ईश ईशन को, अतिहि अतुल तोल्यो नहिं जाई।
"नन्ददास" को जीवन गिरिधर, गोकुल गांव को कुंवर कन्हाई॥

भ्रमरगीत

ऊधव को उपदेश, सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य, सबै गुन आगरी॥
प्रेम धुजा रस रूपिनी, उपजावत सुख पुञ्ज।
सुन्दर श्याम बिलासिनी, नव वृन्दाबन कुञ्ज॥
सुनो ब्रजनागरी॥ १॥

कहन श्याम सन्देश, एक मैं तुम पै आयो।
कहन समै संकेत, कहूं अवसर नहि पायो॥
सोचत ही मन में रह्यो, कब पाऊं इक ठाउं।
कहि संदेस नन्दलाल को, बहुरि मधुपुरी जाउं॥
सुनो ब्रजनागरी॥ २॥

सुनत श्याम को नाम, ग्राम गृह को सुधि भूली।
भरि आनन्द रस हृदय, प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अङ्ग भये, भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन॥
व्यवस्था प्रेम की॥ ३॥

सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस, रही नाहीं सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रहीं सांवरे गात।
कल्मतरोरुह सांवरो, ब्रजवनिता भईं पात॥
उलहि अंग अंग तें॥ ४॥

टोडरमल्ल

टोडरमल खत्री थे। इनका जन्म सं० १५८० में और मरण सं० १६४६ में हुआ। ये बादशाह अकबर के भूमि-कर विभाग के प्रधान अमात्य थे। एक बार ये बंगाल के गवर्नर बनाये गये थे और इन्होंने कई बार पठानों को भी परास्त किया था। बही-खाते का सब के पहले इन्हों

ही ने प्रचार किया था । ये हिन्दी कविता भी करते थे । उसके कुछ नमूने नीचे देखिये—

सोहै जिन सासन में आगमानुमानन सु जीके दुखहारी सुखकारी सांची सासना । जाको गुन भद्रकार गुण भद्र जाको जानि भद्र गुन धारी भव्य करत उपासना । ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को बनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना । ताते देस भाषा अर्थ को प्रकास करु जाते मन्द बुद्धि हूं के हिये होवै अर्थ भासना ।। १ ।।

गुन बिनु धन जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे, मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है । कण्ठ बिन गीत जैसे, हित बिन प्रीत जैसे, वेश्या रस रीति जैसे, फल बिन तर है ।। तार बिन जन्त्र जैसे, स्याने बिन मन्त्र जैसे, पुरुष बिन नार जैसे, पुत्र बिन घर है । "टोडर" सुकवि तैसे मन में विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिना पर है ।। २ ।।

जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा, गदहा को पान कहा, आंधरे को आरसी । निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिदी को, सेवा कहा सूम की अरण्डन की डार सी ।। मदपी को सुचि कहा, सांच कहा लम्पट को, नीच को बचन कहा, स्यार की पुकार सी । "टोडर" सुकवि ऐसे हठी ते न टारे टरै, भावे कहो सूधी बात भावे कहो फारसी ।। ३ ।।

बीरबल

महाराज बीरबल का जन्म सं० १५८५ वि० में, तिकवांपुर जिला कानपुर में एक साधारण ब्राह्मण के घर में हुआ । इनके पिता का नाम गंगादास था । प्रयाग के किले में जो अशोक स्तम्भ है, उस पर यह खुदा हुआ है—

"संवत् १६३२ शाके १४९३ मार्ग बदी ५ सोमवार गंगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं ।"

शिवराज भूषण कवि ने इनका जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर लिखा है, जो यमुना के तट पर बसा है और वही भूषण का भी जन्मस्थान है ।

अतएव जो लोग बीरबल का जन्मस्थान नारनौल बताते हैं उन्हें भूषण का यह दोहा देखना चाहिये—

द्विज कनौज कुल कस्यपी , रतनाकर सुत धीर ।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा , तरनि तनूजा तीर ॥
बीर बीरबल से जहां , उपजे कवि अरु भूप ।
देव बिहारीश्वर जहां , विश्वेश्वर तद्रूप ॥

पर श्रीयुत विसेन्ट स्मिथ ने अकबर के इतिहास में लिखा है कि, "Birbal, originally a poor Brahman, named Mahesh Das, was born at Kalpi about 1528, and consequently was fourteen years older than Akbar. He was at first in the service of Raja Bhagwandas, who sent him to Akbar early in the reign." "अर्थात् बीरबल एक गरीब ब्राह्मण था, जिसका नाम महेशदास था। वह सन् १५२८ में कालपी में पैदा हुआ। वह अकबर से लगभग १५ वर्ष बड़ा था। नह पहले राजा भगवानदास की सेना में था। राजा ने उसे अकबर को दे दिया था।" डाक्टर ग्रियर्सन भी अपने The Modern Vernacular Literature of Hindustan में बीरबल का नाम महेशदास ही लिखते हैं। बदाऊनी ब्रह्मदास नाम बतलाता है। बीरबल के जन्मस्थान के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद चला आता है।

महाराज बीरबल अकबर के मन्त्री थे। अकबर इनको बहुत मानते थे। इन्होंने कई बार सेनापति का भी काम किया था और कई लड़ाइयां जीती थीं। यहां तक कि सं० १६४० में, उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश के युद्ध ही में इनका प्राणान्त भी हुआ। जब इनके मरने का समाचार बादशाह अकबर को मिला, तब अकबर ने अत्यन्य दुःखी होकर यह सोरठा पढ़ा—

दींन देखि सब दीन , एक न दीन्हों दुसह दुख ।
सो अब हम कहं दीन , कछुक न राख्यो बीरबर ॥

अकबर के दरबार में कट्टर मुसलमान वजीरों के बीच में रहकर भी इन्होंने हिन्दुओ का बड़ा हित-साधन किया था । इनके ही प्रभाव से हिन्दुओं की बहुत-सी कठिनाइयां दूर हुई थीं और हिन्दुओं को ऊंचे-ऊंचे पद मिले थे । अकबर बीरबल पर बड़ा विश्वास रखते थे । ये अपनी युक्तिपूर्ण बातों से बादशाह का मनोरंजन भी खूब करते थे। एक साधारण दशा से अपने बुद्धिबल के द्वारा उन्नति करके ये अकबर के नवरत्नों में होगये और शाहीदरबार से इन्होंने एक बड़ी जागीर और महाराजा की पदवी पाई । कविता में इनका उपनाम ब्रह्म था ।

ये स्वयं व्रजभाषा के अच्छे कवि थे और कवियों का बड़ा आदर करते थे । केशवदास को एक बार इन्होंने एक छन्द पर छः लाख रुपये दिये थे और ओरछा नरेश पर एक करोड़ का अर्थदण्ड क्षमा करा दिया था ।

इनका लिखा कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आता । केवल पुस्तकों में कहीं-कहीं इनके कुछ छन्द मिलते हैं । इनकी कविता बड़ी ही चमत्कार-पूर्ण और ललित होती थी । इसका नमूना देखिये—

उछरि उछरि भेकी झपटैं उरग पर उरग पै केकिन के लपटैं लहकि है । केकिन के सुरति हिये की ना कछू है भये एकी करी केहरि न बोलत बहकि है ।। कहै कवि "ब्रह्म" बारि हेरत हरिन फिरैं बैहर बहत बड़े जोर सों जहकि है । तरनि के तावन तवा-सी भई भूमि रही दसहू दिसान में दवारि सी दहकि है ।। १ ।।

एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मञ्जु रसालहि ।
डीठि गई चलि मोहन की वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि ।।
सो छबि "ब्रह्म" लपेटि हिए करसा कर लै कर कंज सनालहि ।
ईस के सीस कुसुम्भ की माल मनो पहिरावति व्यालिनि व्यालहि ।।२।।
सखि भोर उठी बिन कंचुकी कामिनि कान्हर तें करि केलि घनी ।
कवि "ब्रह्म" भनै छबि देखते ही कहि जात नहीं मुखते बरनी ।।

कुच अग्र नखच्छत कंत दयो सिर नाय निहारि लियो सजनी।
ससिसेखर के सिर से सु मनों निहुरे ससि लेत कला अपनी ॥३॥
पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक परोस लजाय न सारो।
बन्धु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ धुतारो ॥
साहब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो।
"ब्रह्म" भनै सुनु शाह अकब्बर बारहो बांधि समुद्र में डारो ॥४॥
पेट में पौंढ़ के पौंढ़े मही पर पालना पौंढ़ के बाल कहाये।
आई जबै तरुनाई त्रिया संग सेज पै पौंढ़ के रंग मचाये ॥
छीर समुद्र के पौंढ़नहार को "ब्रह्म" कबौं चित तें नहिं ध्याये।
पौंढ़त पौंढ़त पौंढ़त ही सा चिता पर पौंढ़न के दिन आये ॥५॥

बीरबल के नाम से कुछ पहेलियां भी प्रसिद्ध हैं। उन में से दो-एक ये हैं--

कर बोलै कर ही सुनै, स्रवन सुनै नहिं ताहि।
कहैं पहेली बीरबल, सुनिये अकबर साहि ॥
"नाड़ी"।

मारो तो वह जी उठै, बिन मारे मर जाय।
कहैं पहेली बीरवल, मुर्दा आटा खाय ॥
"तबला"।

तुलसीदास

हिन्दी-भाषा के अभूतपूर्व महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ वि० में, राजापुर में हुआ। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इनका पहला नाम रामबोला था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। लाला सीताराम इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण बतलाते हैं। इनका जन्म दरिद्र कुटुम्ब में हुआ था, जैसा कि इन्होंने कवितावली में "जायो कुल मंगन" आदि स्पष्ट ही लिखा है। इनके गुरु का नाम नरहरिदासजी था। रामायण के प्रारम्भ में "बन्दउं गुरु-

पद-कञ्ज, कृपासिंधु नररूप-हरि" इस सोरठ के "नररूप-हरि" पद से, लोग गुरु का नाम नरहरि निकालते है। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था। स्त्री पर इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह नैहर चली गई। इनसे पत्नी-वियोग न सहा गया। ये ससुराल जाकर स्त्री से मिले। स्त्री को लज्जा आई। उसने ये दोहे कहे—

लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मै नाथ॥
अस्थि चरममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महं, होति न तौ भव-भाति॥

यह बात गोसाई जी को ऐसी लगी कि वे वहां से उसी समय काशी चले आये और विरक्त हो गये। स्त्री बेचारी को क्या मालूम था कि उसकी साधारण बात का ऐसा परिणाम होगा। उसने बहुत विनती की, और भोजन करने को कहा, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। यह घटना तुलसीदास के प्रेम की प्रौढ़ता प्रगट करती है। इनके हृदय में प्रेम का समुद्र लहरें मार रहा था। प्रेम की अटूट धारा जो क्षण-भर पहले स्त्री की ओर बह रही थी उसी को दूसरे ही क्षण में इन्होंने श्रीराम की ओर फेर दी, जो इनके जीवन के अन्तिम दम तक बड़े वेग से बहती रही। उस प्रेम की धारा ने तुलसीदास को अजर अमर कर दिया। कौन जानता था कि एक छोटी-सी घटना से इनके जीवन का प्रवाह इस प्रकार बदल जायगा।

घर छोड़ने के पीछे एक बार स्त्री ने यह दोहा इनके पास लिख भेजा—

कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन संग सोय।
मोहि फटे को डर नहीं, अनत कटे डर होय॥

इसके उत्तर में गोसाईं जी ने लिखा—

कटे एक रघुनाथ संग, बांधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥

वृद्धावस्था में एक दिन तुलसीदास चित्रकूट से लौटते हुए बिना जाने अपने ससुर के घर टिके। इनकी स्त्री भी वृद्धा हो चुकी थी। उसने पहले तो इन्हें पहचाना नहीं, अतिथि-सत्कार के लिए चौका आदि लगा दिया। पीछे बातचीत होने पर उसने पहचाना कि ये मेरे पति हैं। उसकी इच्छा हुई कि मैं भी पति के साथ रहूं। रातभर आगा-पीछा सोचकर उसने सबेरे अपने को सबेरे तुलसीदास के सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनाई। परन्तु गोसाई जी ने अस्वीकार किया। इस अचानक भेंट का प्रभाव दोनों ओर कैसा पडा होगा, यह अनुमान करने पर बड़ा करुण जान पड़ता है। गोसाईं जी और उनकी स्त्री को अपनी युवावस्था के उस एक दिन की घटना याद आई होगी, जब उन दोनों का वियोग हुआ था।

गोसाईजी काशी और अयोध्या में बहुत रहा करते थे। परन्तु मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथजी और सोरों (शूकरक्षेत्र) में भी भ्रमण किया करते थे। काशीजी में इनके कई स्थान प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हनुमानजी की कृपा से इनको श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन हुआ था।

काशी में टोडरमल नाम के एक जमींदार से गोसाईजी का बड़ा प्रेम था। उनके मरने पर इन्होंने यह दोहे कहे थे—

महतो चारों गांव को, मन को बड़ो महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को, सिर धरि भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयननि सींचिहौं, समुझि समुझि अनुराग॥
रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥

अकबर के प्रसिद्ध वजीर नवाब खानखाना (रहीम) से भी गोसाईंजी

का बड़ा स्नेह था। ग्रामेर के राजा मानसिंह भी इनका बड़ा ग्रादर किया करते थे। कहते हैं कि ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी तुलसीदासजी के सगे भाई थे। तुलसीदासजी से, सूरदासजी, नाभाजी और केशवदासजी की भी भेंट हुई थी। तुलसीदास की कीर्ति भारत में ही नही, इंग्लैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया ग्रादि देशों में भी फैल चुकी है। इनके "रामचरित मानस" का ग्रंग्रजी में ग्रनुवाद हो चुका है। इनकी कविता पर ग्रंग्रेजी में कितने ही निबन्ध लिखे जा चुके हैं। तुलसीदासजी के विषय में ग्रंग्रेजों की क्या सम्मति है, इस सम्बन्ध में हम प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीयुत विंसेट स्मिथ की सम्मति यहां उद्धृत करते हैं :—

"वह कवि [illegible] में सबसे बड़ा वृक्ष है। उनका नाम न तो ग्राईन-ए अकबरी में मिलेगा ग्रौर न मुसलमान इतिहासकारों की पुस्तकों मे, ग्रौर न उनका पता किसी फारसी इतिहासकार के बयान से तैयार की हुई किसी योरोपीय लेखक की पुस्तक ही में लगेगा। तो भी वे ग्रपने समय में भारत में सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। यहां तक कि उन्हें ग्रकबर से बड़ा कहा जा सकता है। क्योंकि लाखों स्त्री ग्रौर पुरुषों के हृदय पर उन्होंने जो विजय प्राप्त की है, वह उस बादशाह की जीती हुई कितनी ही लड़ाइयों से चिरस्थायी है। यद्यपि इस कवि के मित्रों ग्रौर प्रशंसकों मे ग्रामेर के राजा मानसिह ग्रौर अब्दुर्रहीम खानखाना ऐसे पुरुष थे, पर तो भी ऐसा मालूम होता है कि बादशाह को या ग्रबुलफजल को उनका परिचय नहीं दिया गया। ग्रकबर और ग्रबुलफजल दोनों ही हिन्दुग्रों के गुण की कदर करते थे। यदि उनको काशी में शान्त जीवन व्यतीत करने वाले इस कवि का पता होता तो वे उसकी कदर करने में कभी न चूकते।"*

*सुप्रसिद्ध लाला सीताराम के पास तुलसीदास का एक चित्र हमने देखा है, जिसे वे ग्रकबर बादशाह का बनवाया हुग्रा बतलाते हैं। इस से मालूम होता है कि ग्रकबर को तुलसीदास का परिचय था। सम्भव

"यह कवि तुलसीदास थे। उनको धन या शिक्षा का कोई खास मौका नहीं मिला। वह एक गरीब ब्राह्मण माता-पिता की संतान थे, जिन्होंने उन्हें अमंगल नक्षत्र में पैदा होने के कारण अनाथ छोड़ दिया था। ईश्वरेच्छा से उन्हें एक भिक्षु ने पालापोसा और राम के सम्बन्ध में पौराणिक शिक्षाओं से अभिज्ञ किया।

"जिस ग्रंथ पर उनकी कीर्ति अवलम्बित है, उसका नाम 'रामायण" है। कवि ने उसे "रामचरितमानस" कहा है। यह ग्रंथ इतना बड़ा है कि ग्राउज का अंग्रेजी भाषान्तर ५६२ पृष्ट का है। इस ग्रंथ का ईश्वर-वाद ईसाई धर्म से इतना मिलता जुलता है कि उसमें से बहुत से प्रसंग राम के स्थान पर ईसु रखने से ईसाइयों के लिए उपयोगी हो सकते हैं। ग्रियर्सन कहते हैं और ठीक कहते हैं कि किसी प्रार्थना-संग्रह में उन्हें स्थान मिल सकता है। काव्य का ईश्वरवाद जितना उच्च है, उतनी ही उच्च उसकी नीति है। और आदि से अंत तक उसमें एक भी शब्द या विचार ऐसा नहीं पाया जा सकता, जो निर्मल न हो। राम की स्त्री सीता स्त्रीत्व का आदर्श बताई गई है। उत्तर हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को यह ग्रंथ उतना ही प्यारा है जितना ईसाइयों को बाइबिल। हिन्दी-साहित्य में यह ग्रंथ अद्वितीय है। इसके प्रभाव के विषय में कुछ कहना असंभव है। १९१९ की जनवरी में लिखे हुए एक पत्र में सर जार्ज ग्रियर्सन कहते है कि "तुलसीदास सारे हिन्दुस्तान के साहित्य मे सबसे श्रेष्ठ हैं।" इत्यादि;

देखिये, Vincent Smith's History of Akbar,, pp.4I7-420.

तुलसीदासजी ने इतने ग्रंथ बनाए—

१—रामचरितमानस, २—कवित्त रामायण, ३—दोहावली, ४—गीतावली, ५—रामाज्ञा, ६—विनय-पत्रिका, ७—बरवै रामायण, ८—

है, अबुलफजल की मृत्यु के बाद यह परिचय हुआ हो, इसी से आईन-ए-अकबरी में इनका कुछ जिक्र न आ सका। —सम्पादक।

रामलला नहछू, ९—वैराग्य संदीपनी, १०—कृष्ण-गीतावली, ११—पार्वती-मंगल, १२—राम सतसई, १३—हनुमदबाहुक, १४—जानकी मंगल ।

प्राय: ये सभी ग्रंथ मिलते हैं । तुलसीदासजी के ग्रंथों में रामचरित-मानस सब से बडा और बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है । भारत में अब तक इसकी करोड़ों प्रतियां छप चुकी हैं । यह एक ऐसा सर्वप्रिय ग्रंथ है कि गरीब को झोपड़ी से लेकर राजा के महल तक, नौ करोड मनुष्यों तक इसकी पूरी पहुंच है । इस एक ग्रन्थ ही ने तुलसीदासजी को तब तक के लिए अमर कर दिया, जब तक पृथ्वी पर हिन्दू जाति और हिन्दी-भाषा का अस्तित्व है । कौन कह सकता था कि एक गरीब के घर में उत्पन्न होकर, एक साधारण स्त्री द्वारा प्रतारित युवक इस असार संसार में अनन्त काल के लिए अपनी कीर्ति-ध्वजा स्थापित कर जायगा । हमने तुलसीदासजी के ग्रन्थों में से कुछ दोहे, चौपाई, बरवै, कवित्त, भजन आदि संग्रह कर दिये हैं; परन्तु इनकी कविता का पूरा आनन्द तो तभी मिलेगा, जब पूरा रामचरितमानस पढ़ा जाय । रामचरितमानस के समान भारत में और किसी ग्रन्थ का प्रचार नहीं है ।

रामचरितमानस की छन्द-संख्या इस प्रकार है:—

कांड	चौपाई	दोहा	सोरठा	अन्य छन्द	कुल छन्द-संख्या
बाल कांड	१४९४	३५९	३५	६८	१९५६
अयोध्याकांड	१३०६	३१४	१३	१६	१६४९
अरण्य कांड	२६३	५०	८	४५	३६६
किष्किन्धाकांड	१५४	३१	३	५	१९३
सुन्दर कांड	२७१	६२	१	९	३४३
लंका कांड	५७४	१५०	९	७४	८०७
उत्तर कांड	५९६	२०७	१६	५४	८७३
	४६५८	११७३	८५	२७१	६१८७

संवत् १६८० वि० श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदासजी ने असी और गंगा के संगम पर शरीर छोड़ा। उस समय का यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत्-सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

मृत्यु के समय गोसाईं जी ने यह दोहा पढ़ा था:—

रामनाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अबहीं तुलसी सोन॥

सीता की शोभा

जनम सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलङ्क।
सिय मुख समता पात्र किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क॥
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हें। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे॥
सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदंबिका रूप-गुन-खानी॥
उपमा सकल मोंहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग-अनुरागी॥
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई॥
जौ पटतरिय तीय महं सीया। जग अस जुवति कहां कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि वैदेही॥
जौं छबि सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदर-सिंगारू। मथइ पानिपंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि संकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल॥

रामचरितमानस से कुछ ऐसे दोहे और चौपाइयां हम यहां उद्धृत करते हैं, जिनका उपयोग बोलचाल में कहावतों की तरह प्रमाण रूप से किया जाता है—

बन्दौं सन्त असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दारुन दुख देहीं ॥
परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
काहु न कोउ दुख सुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥
सुमति कुमति सब के उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहां सुमति तहं सम्पति नाना । जहां कुमति तहं विपति निदाना ॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । मुनि मन मुदित करि भल जानी ॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू । धर्म जाइ सिर पातक भारू ॥

अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ॥

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ॥
राम भजनबिन मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुंकि जामा ॥
बिनु बिज्ञान कि समता आवइ । कोउ अवकासकि नभ बिन पावइ ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर बिसतारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिन बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं ॥
निज सुख बिन मन होइकि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कवनिउं सिद्धि कि बिन बिस्वासा । बिनु हरिभजन कि भवभय नासा ॥

बिन बिस्वास भक्ति नहिं, तेहि बिन द्रवहि न राम ।
रामकृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह विश्राम ॥

परद्रोही किं होइ निहसंका । कामी पुनि कि रहइ निकलंका ॥
भव कि परहिं परमातमविंदक । सुखी कि होहिं कबहुं परनिंदक ॥
राज कि रहइ नीति बिनु जाने । अघ कि रहइ हरि चरित बखाने ॥
पावन जस कि पुन्य बिन होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म हरिभक्ति अभंगा ॥

कवि कोविद गावहिं अस नीती । खल सन कलह नहीं भल प्रीती ॥
उदासीन नित रहिय गुसाईं । खल परिहरिय स्वान की नाईं ॥
फूलइ फलइ न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सत ॥
बायस पालिय अति अनुरागा । होइ निरामिष कबहुं कि कागा ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥
खल सन इव परबंधन करई । खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ॥
मुनि गन निकट विहंग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु, पच्छी जाना । मानुष तन गुन ज्ञान निधाना ॥
काटे पै कदली फरै, काटि जतन करि सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु, डांटे पै नव नीच ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ॥
तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तड़ागा ॥
का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछताने ॥
दुइ कि होइ इक संग भुवाला । हंसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥
आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ ॥
जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल ।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही ॥
कसे कनक मनि पारखि पाये । पुरुष परखिये समय सुभाये ॥
प्रभु अपने नीचहुं आदरहीं । अग्नि धूम गिरि तृन सिर धरहीं ॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

तनय मातु पितु पोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥
धन्य जन्म जगतीतल तासू । पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके ॥

गुरु श्रुति सम्मत धर्मफल, पाइय बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे, गालब नहुष नरेस ॥

सहज सुहृद गुरुस्वामिसिख, जो न करइ सिर मानि ।
सो पछताइ अघाइ उर, अवसि होय हित हानि ॥

सेवक सुख चह, मान भिखारी । व्यसनी धन,सुभगति व्यभिचारी ॥
लोभी जस चह, चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥
राज नीति बिनु,धन बिनु धर्मा । हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
विद्या बिनु विवेक उपजाये । श्रम फल पढ़े किये अरु पाये ॥
संग ते यती कुमन्त्र तें राजा । मान तें ज्ञान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रणय बिन मद तें गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
परहित बस जिनके मन माहीं । तिन्ह कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

सचिव वैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगही नास ॥

बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देहिं विधाता ॥
कादर मन कर एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ॥
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपिन सन सुन्दर नीती ॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी । अति लोभी सन विरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि-कथा । ऊसर बीज बये फल यथा ॥
कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोग बस संतत क्रोधी । विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी ॥
तन-पोषक निन्दक अघखानी । जीवत शव सम चौदह प्रानी ॥

राकापति षोड़श उगहिं, तारागन समुदाय ।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि बिन राति न जाय ॥

पर उपदेश कुशल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं
बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर जग थोरे
अति संघर्षन करै जो कोई । अनल प्रकट चदन ते होई
संत विटप सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्हि कै करनी
संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन पै कहइ न जाना
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं सो संत पुनीता
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख कछु नाहीं

मुखिया मुख सों चाहिये, खान-पान को एक ।
पालै-पोषै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥

बरवै रामायण

कुंकुम तिलक भाल श्रुति कुण्डल लोल ।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल ॥ १ ॥
केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥ २ ॥
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ॥ ३ ॥
सिअ मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय ।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाय ॥ ४ ॥
चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ॥ ५ ॥
सिअ तुअ अंग रंग मिलि अधिक उदोत ।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ॥ ६ ॥
का घूंघट मुख मूंदहु नवला नारि ।
चांद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥ ७ ॥
गरब करहु रघुनन्दन जनि मन मांह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छांह ॥ ८ ॥

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम ॥ ९ ॥
बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाय।
ए अंखियां दोउ बैरिनि देहिं बुताय ॥ १० ॥
डहकनि है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागै मोहिं बिनु राम ॥ ११ ॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुंदरी कंकन होइ ॥ १२ ॥
जान आदि कवि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत काल तें भये ऋषिराउ ॥ १३ ॥
केहि गनती महं गनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥ १४ ॥
नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनन्दन तुलसिहिं देहु ॥ १५ ॥

राम सतसई

आसन दृढ़ आहार दृढ़ सुमति ज्ञान दृढ़ होइ।
तुलसी बिना उपासना, बिन दूलह की जोइ ॥ १ ॥
रामचरण अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
चाहत बारिद बुंद गहि, तुलसी उड़न अकास ॥ २ ॥
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ॥ ३ ॥
जहां राम तहं काम नहिं, जहां काम नहिं राम।
तुलसी कबहूं होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ॥ ४ ॥
सम्पति सकल जगत्त की, स्वासा सम नहिं होइ।
सो स्वासा तजि राम पद, तुलसी अलग न खोइ ॥ ५ ॥
तुलसी सो अति चतुरता, राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन हरन को, गनिका परम प्रबीन ॥ ६ ॥

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास॥ ७ ॥
तुलसी सब छल छांड़ि कै, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह॥ ८ ॥
कोटि बिघ्न संकट बिकट, कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकै, जो सुदिष्ट रघुनाथ॥ ९ ॥
लगन महूरत योग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि॥ १० ॥
ऊंची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै यांचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर॥ ११ ॥
होइ अधीन यांचै नहीं, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनहिं, को बारिद बिनु देइ॥ १२ ॥
मान राखिबो मांगिबो, पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै, जब चातक मत लेहु॥ १३ ॥
गंगा यमुना सरसुती, सात सिन्धु भर पूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर॥ १४ ॥
एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश, चातक तुलसीदास॥ १५ ॥
राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाईं तें पौरिबो, धोखेहुं बूड़ि न जाय॥ १६ ॥
तुलसी बिलम्ब न कीजिये, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात है, स्वांस सारसो तीर॥ १७ ॥
असन बसन सुतनारि सुख, पापिहुं के घर होइ।
सन्त समागम राम धन, तुलसी दुर्लभ दोइ॥ १८ ॥
तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुं ओर।
बसीकरन यह मंत्र है, परिहरु बचन कठोर॥ १९ ॥

तुलसी अपने राम कहं, भजन करहु निरसङ्क।
आदि अन्त निर्वाहिबो, जैसे नव को अङ्क॥ २०॥
तुलसी राम सनेह करु, त्याग सकल उपचारु।
जैसे घटत न अङ्क नव, नव के लिखत पहारु॥ २१॥
तुलसी संत सुअंबु तरु, फूल फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥ २२॥
गोधन गजधन बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवत सन्तोष मन, सब धन धूरि समान॥ २३॥
काम क्रोध मद लोभ की, जौलों मन में खान।
तौ लों पण्डित मूरखौ, तुलसी एक समान॥ २४॥
प्रेम बैर अरु पुण्य अघ, यश अपयश जय हान।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहहि सुजान॥ २५॥
तौ लग योगी जगत गुरु, जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी, जग गुरु योगी दास॥ २६॥
उरग तुरंग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार॥ २७॥
दुर्जन दर्पन सम सदा, करि देखो हिय गौर।
सन्मुख की गति और है, बिमुख भये पर और॥ २८॥
सिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखाअनु सांच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मनरञ्जन पांच॥ २९॥
दीरघ रोगी दारिदी, कटु बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान जौ, तऊ त्यागिबे योग॥ ३०॥
बहुसुत बहुरुचि बहु बचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार॥ ३१॥
सहि कुवास सांसति असम, पाप अनट अपमान।
तुलसी धर्म न परिहरहिं, ते वर सन्त सुजान॥ ३२॥

तुलसी साथी विपत के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥ ३३॥

तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत सील सुभाव ऋजु, राम चरन आधार॥ ३४॥

राग रोष गुन दोष को, साखी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज॥ ३५॥

खग मृग मीत पुनीत किय, बनहुं राम नयपाल।
कुनय बालि रावण घरहिं, सुखद बन्धु किय काल॥ ३६॥

तुलसी जो कीरति चहहिं, पर कीरति को खोइ।
तिनके मुंह मसि लागि हैं, मुये न मिटि हैं धोइ॥ ३७॥

नीच चंग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास॥ ३८॥

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार॥ ३९॥

साहिब ते सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान।
राम बांधि उतरे उदधि, नांघि गये हनुमान॥ ४०॥

सूर समर करनि करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप॥ ४१॥

जूझे तें भल बूझिबो, भली जीति ते हारि।
डहके ते डहकाइबो, भलो जु करिय बिचार॥ ४२॥

मंत्री गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगिही नास॥ ४३॥

हृदय कपट बर वेषि धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि।
अबके लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि॥ ४४॥

अमिय गारि गारेउ गरल, नारि करि करतार।
प्रेम बैर की जननि युग, जानहिं बुध न गंवार॥ ४५॥

तुलसी अपनो आचरन , भलो न लागत कासु ।
तेहि न बसात जो खात नित , लहसुनहू की बासु ॥ ४६ ॥
मुखिया मुख सों चाहिये , खान पान को एक ।
पालै पोसै सकल अंग , तुलसी सहित विवेक ॥ ४७ ॥
हित पुनीत सब स्वारथहि , अरि असुद्ध बिनु जाड़ ।
निज मुख मानिक सम दसन , भूमि परे ते हाड़ ॥ ४८ ॥
तुलसी पावस के समै , धरी कोकिला मौन ।
अब तो दादुर बोलि हैं , हमैं पूछि हैं कौन ॥ ४९ ॥
तुलसी हमसों राम सों , भलो मिलो है सूत ।
छांड़े बनै न संग रहै , ज्यों घर मांहि कपूत ॥ ५० ॥
व्याधा बधो पपीहरा , परो गंग जल जाय ।
चोंच मूंदि पीवै नही , जल पिये मो पन जाय ॥ ५१ ॥
बार बार बर मांगहूं , हरषि देहु श्रीरङ्ग ।
पद सरोज अनपायिनी , भक्ति सदा सत्सङ्ग ॥ ५२ ॥
सात स्वर्ग अपवर्ग सुख , धरिय तुला इक अङ्ग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि , जो सुख लव सत्सङ्ग ॥ ५३ ॥
तुलसी रा के कहत ही , निकसत पाप पहार ।
फिरि भीतर आवत नहीं , देत मकार किवार ॥ ५४ ॥
तुलसी काया खेत है , मनसा भये किसान ।
पाप पुण्य दोऊ बीज हैं , बुवै सो लुनै निदान ॥ ५५ ॥
आवत ही हर्षै नहीं , नैनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहां न जाइये , कंचन बरसे मेह ॥ ५६ ॥
तुलसी कबहुं न त्यागिये , अपने कुल की रीति ।
लायक ही सों कीजिये , ब्याह बैर अरु प्रीति ॥ ५७ ॥
तुलसी जस भवितव्यता , तैसी मिलै सहाय ।
आप न आवे ताहि पै , ताहि तहां लै जाय ॥ ५८ ॥

जगते रहु छत्तीस ह्वै, रामचरन छः तीन।
तुलसी देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रबीन ॥ ५९ ॥
रैन को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भान।
दास को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन ज्ञान ॥ ६० ॥
ज्ञान को भूषन भक्ति है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांति पद, तुलसी अमल अदाग ॥ ६१ ॥
तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रवि कुल रवि राम ॥ ६२ ॥
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहैं, परसै बिना निकेत ॥ ६३ ॥
सोई ज्ञानी सोइ गुनी, जन सोइ दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि ॥ ६४ ॥

विनय-पत्रिका

(१)

गाइये गनपति जगबंदन, संकर सुवन भवानी नंदन।
सिद्धिसदन गजबदन बिनायक, कृपासिंधु सुंदर सब लायक ॥
मोदकप्रिय मुद मंगल-दाता, विद्या-वारिधि बुद्धिविधाता।
मांगत "तुलसिदास" कर जोरे, बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥

(२)

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी ॥
निज घर की बर बात बिलोकहु हो, तुम परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत हौं आयों नकबानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥

प्रेम प्रशंसा विनय व्यंग जुत सुनि विधि की वर बानी ।
"तुलसी" मुदित मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी ।।

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले ।
साहेब कहूं न राम से, तोसे न वसीले ।
तेरे देखत सिंह को सिसु, मेढ़क लीले ।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले ।
हांक सुनत दसकन्ध के भये बन्धन ढीले ।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्बगहीले ।
सेवक को परदा फटे तुम समरथ सीले ।
अधिक आपु ते आपनो सुनि, मान, सहीले ।
सांसति "तुलसीदास" की सुनि सुजस तुहीले ।
तिहूं काल तिनको भलो जे राम रंगीले ।

(४)

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुनं ।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुनं ।।
कन्दर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरं ।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि, सुचि, नौमि जनक सुतावरं ।।
भजु, दीनबन्धु दिनेस दानव दैत्यवंस निकंदनं ।
रघुनन्द आनंदकन्द कौसलचन्द दसरथ-नन्दनं ।।
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अङ्ग विभूषनं ।
आजानु भुज शर चाप धर, संग्राम जितु खर दूषनं ।।
इमि बदंत "तुलसीदास" शंकर शेष मुनि मनरंजनं ।
मम हृदय कंज निवास करु कामादि खल-दल गंजनं ।।

(५)

मेरो मन हरि हठ न तजै ।
निस दिन नाथ देउं सिख बहु, विधि करत सुभाव निजै ।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव प्रति दारुन दुख उपजै ।।

ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै।
लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों जहं तहं सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुं न मूढ़ लजै।
हौं हार्यो करि जतन विविध विध, अतिसय प्रबल अजै
"तुलसिदास" बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।

(६)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं॥
पायों नाम चारु चिन्तामनि उर करतें न खसैहौं।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं॥
परबस जानि हंस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हंसैहौं।
मन मधुकर पन करि "तुलसी" रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥

(७)

ऐसे राम दीन-हितकारी।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी॥
साधन हीन दीन निज अघ बस सिला भई मुनि नारी।
गृहते गवनि परसि पद पावन घोर सापते तारी॥
हिंसारत निषाद तामस वपु पसु समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस, नहिं कुल जाति बिचारी॥
यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाइ अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गये भय टारी॥
बिहंग योनि आमिष अहार-पर गीध कौन व्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भांति संवारी॥
अधम जाति सवरी जोषित जड लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि सोऊ रघुनाथ उधारी॥
कपि सुग्रीव बन्धु भय ब्याकुल आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी॥

रिपु को अनुज विभीषन, निसिचर, कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हो भेंट्यो भुजा पसारी॥
असुभ होइ जिनके सुमिरेते बानर रीछ बिकारी।
वेद विदित पावन्न किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी॥
कहं लगि कहों दीन अगनित जिनकी तुम बिपतिनिवारी।
कलि मल ग्रसित "दास तुलसी" पर काहे कृपा बिसारी॥

(८)

मन पछतैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम बचन अरु हीते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम हम करि धन धाम संवारे अन्त चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबहीते।
अन्तहुं तोहि तजेंगे पामर तू न तजै अबहीते॥
अब नाथहि अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि "तुलसी" कहुं विषय भोग बहु घीते॥

(९)

तू दयाल, दीन हूं, तू दानि, हूं भिखारी।
हूं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुञ्ज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसों॥
ब्रह्म तू, हूं जीव, तू ठाकुर, हू चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विध हित मेरो॥
तोहि मोहि नातो अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों "तुलसी" कृपाल चरण शरण आवै॥

(१०)

ममता तू न गई मेरे मन तें।
पाके केस जन्म के साथी, लाज गई लोकन ते।

तन थाके कर कम्पन लागे जोति गई नैनन तें ॥
सरवन बचन न सुनत काहु के बल गये सब इन्द्रिन तें ।
टूटे दसन बचन नहिं आवत सोभा गई मुखन तें ॥
कफ पित बात कंठ पर बैठे सुतहिं बुलावत कर तें ।
भाइ बन्धु सब परम पियारे नारि निकारत घर तें ॥
जैसे ससिमण्डल बिच स्याही छुटै न कोटि जतन तें ।
"तुलसिदास" बलि जाउं चरन तें लोभ पराये धन तें ॥

(११)

कबहुंक हौं इहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
पुरुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
'तुलसिदास' प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो ॥

गीतावली

(१२)

पौढ़िये लाल पालने हौं झुलावौं ।
बाल विनोद मोद मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं
तेह अनुराग ताग गुहिबे कहुं मति मृगनयनि बुलावौं
"तुलसी" भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चित लावौं

(१३)

ागिये कृपानिधान जानिराय रामचन्द्र
जननि कहै बार-बार भोर भयो प्या

राजिव लोचन बिसाल प्रीति वापिका मराल
ललित कमल बदन उपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित विगत सर्वरी ससांक किरिनहीन
दीन दीप ज्योति मलिन द्युति समूह तारे ।
मनहु ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भौबिलास
आस त्रास तिमिरतोम तरनि तेज जारे ॥
बोलत खग निकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु
श्रवन प्रान जीवन धन मेरे तुम वारे ।
मनहु वेद बन्दी मुनिवृन्द सूत मागधादि
बिरुद बदत जय जय जय जयति कैटभारे ॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल
भागे जञ्जाल विपुल दुख कदम्ब टारे ।
"तुलसिदास" अति अनन्द देख के मुखारबिन्द
छूटे भ्रम फन्द परम मन्द द्वन्द भारे ॥

(१४)

जननी निरखत बाल धनुहिआं ॥
बार बार उर नयननि लावति प्रभुजु की ललित पनहिआं ॥
कबहु प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सकारे ।
उठहु तात बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे ॥
कबहुं कहत बड़ वार भई ज्यों जाहु भूप पै भैया ।
बन्धु बोलि जेइयै जो भावै गई नेछावरि मैया ॥
कबहुं समुझि वन गमन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी ।
"तुलसिदास" या समय कहेते लागति प्रीति सिखी सी ॥

(१५)

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब अइहैं मेरे बाल कुशल घर कहहु काग फुरि बाता ॥

दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बुलाइ पाय परि पूछति प्रेम मगन मृदुबानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते समाचार लै आयौ।
प्रभु आगमन सुनत "तुलसी" मानो मीन मरत जल पायौ॥

कृष्ण-गीतावलि

(१६)

मोकह झूठहिं दोस लगावहिं।
मय्या इनहिं बानि परि गृह की नाना युक्ति बनावहिं॥
इन्ह के लिए खेलिबो छांड़्यो तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उलहनों आवहिं॥
कबहुंक बाल रोवाइ पानि गहि मिस यहि करि उठि धावहिं।
करहिं आपु शिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं॥
मेरी टेव बूझ हलधर सों संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहि काहू को ते शिशु मोहि न भावहिं॥
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि कलि कीरति "तुलसिदास" मुनि गावहिं॥

(१७)

अबहिं उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई।
सुनु मैय्या तेरी सौं करो याकी टेक लरन की सकुच बेचेसि खाई॥
या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्याई।
मुंह लाए मूड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनि तोहिं सूधी करि पाई॥

(१८)

छाड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहैं देखु कालि तेरे वै ब्याह की बात चलाई॥

डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि हँसि है नई दुलहिआ सुहाई ।
उबटि नहाहु गुहों चोटिया बलि देखि भलो बर करहिं बड़ाई ।।
मातु कह्यो करि कहत बोलि दे भइ बड़िबार कालि तो न आई।
जब सोइबो तात यों हां कहि नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई ।।
उठि कह्यो भोर भयो झंगुली दै मुदित महर लखि आतुरताई ।
बिहंसी ग्वालि जान "तुलसी" प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई ।।

(१९)

हरि को ललित बदन निहारु ।
निपटहीं डाटति निठुर ज्यों लकुट करते डारु ।।
मजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु ।
श्याम सारस मगन मनो शशि श्रवत सुधा सिंगारु ।।
सुभग उर दधि बुन्द सुन्दर लखि अपनपो वारू ।
मनहुं मरकत मृदु सिखर पर लसत विषद तुषारु ।।
कान्ह हूं पर सतर भौ है महरि मनहिं विचारु ।
"दासतुलसी" रहति क्यो रिस निरखि नन्दकुमारु ।।

(२०)

देखु सखी हरि बदन इन्दु पर ।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि कहि न जाय शोभा अनूपबर ।।
बाल भुअंगिनि निकर मनहुं मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर ।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन विचार डरहि उर ।।
अरुन बनज लोचन कपोल सुभ श्रुति मंडित कुंडल अति सुन्दर ।
मनहुं सिन्धु निज सुतहिं मनावन पठये युगल बसीठि बारिचर ।।
नंदनन्दन मुख की सुन्दरता कहि न सकहिं श्रुति शेष उमा वर ।
"तुलसीदास" त्रैलोक्य विमोहन रूप कपटनर त्रिविध शूल हर ।।

(२१)

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभं ।
चरणारबिन्दमहं भजे भजनीय सुर नर दुर्लभं ।।

घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क बसन किशोर मूरति भूरि गुन करुनाकरं॥
सिर केकिपच्छ बिलोल कुंडल अरुन बनरुह लोचनं।
गुञ्जावतंस विचित्र सब अंग धातु भव भय मोचनं॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयङ्क समाननं।
अपहरत "तुलसीदास" त्रास बिहार वृन्दा काननं॥

जानकी मङ्गल (पृ० २४)

(सोहर छन्द) दो० १००

(२२)

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप-समाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ॥
कौसिक जनकहिं कहेउ देहु अनुसासन।
लखहिं भानुकुल भानु इसान-सरासन॥
मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरन पांच भल बोलहिं॥
बान बान जिमि गयउ गँवहिं दसकन्धर।
को अवनीतल इन सम बीर धुरन्धर॥
पारबती मन सरिस अचल धनुघालक।
हैं पुरारि तेउ एक नारि व्रत पालक॥
सो धनु कहिय विलोकन भूप किसोरहिं।
बेध कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहिं॥
रोम रोम छबि निदरत सोम मनोजनि।
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सो जनि॥
मुनि हंसि कहेउ जनक यह मूरति सोहइ।
सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ॥

पार्वती मङ्गल पृ० १० दो ३८

(२३)

तजे भोग जिमि रोग लोग अहिगन जनु।
मुनि मनसहुं ते अगम तपहिं लायो मन ॥
सकुचहि बसन विभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर हेत अरंभेउ बड़ तप ॥
पूजहिं शिवहिं समय तिहुं करहिं निमज्जन।
देखि प्रेम व्रत नेम सराहहिं सज्जन ॥
नींद न भूख पियास सरिस निसि बासर।
नयन नीर मुख नाम पुलक तनु हिय हर ॥
कन्द मूल फल असन कबहुं जल पवनहिं।
सूख बेल के पात खात दिन गवनहिं ॥
नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ॥
देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवर मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुं काहू कहुं ॥
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय हृदय अस आयउ ॥

कवितावली

(१)

अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से ॥
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥

(२)

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग को दूरि धरैं ॥

दमकें दतियां दुति दामिन ज्यों किलकैं कल बाल विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं ॥

(३)

वर दंत की पंगति कुन्द कली अधराधर पल्लव बोलन की।
चपला चमकै घन बीच जुगै छवि मोतिन माल अमोलन की ॥
घुघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्राण करैं तुलसी बलि जाऊं लला इन बोलन की ॥

(४)

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों पंथ के साथी ज्यों लोगलुगाई ॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सोहाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाई ॥

(५)

पुरते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पटु सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिर बूझति हैं चलनोऽब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अंखियां अति चारु चलीं जल च्वै ॥

(६)

जल को गये लक्खन हैं लरिका परखो पिय छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछ पसेउ बयारि करौं अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ॥
तुलसी रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि विलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तन वारि विलोचन बाढ़े ॥

(७)

सीस जटा उर बाहु विशाल विलोचन लाल तिरीछीसी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिबार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामवधू सिय सों कहो सांवरो सो सखि रावरो को हैं ॥

(८)

कतहु विटप भूधर उपारि अरि सैन बरष्षत।
कतहुं बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करष्षत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
विकट कटक विद्दरत वीर वारिद जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि महि जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवननन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

(९)

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी। जीविका बिहीन लोग सिद्यमान सोचबस कहैं एक एकन सों कहां जाय का करी। वेदहुं पुरान कही लोकहुं बिलोकियत सांकरे समै के राम रावरे कृपा करो। दारिद दसानन दबाई दुनी दीन-बन्धु दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी।

बलभद्र मिश्र

बलभद्र मिश्र सनाढय ब्राह्मण ओडछा निवासी पंडित काशीनाथ के पुत्र और प्रसिद्ध कवि केशवदास के बड़े भाई थे। केशवदास ने अपनी कवि-प्रिया में इनका नाम लिखा है। इनका जन्मकाल सं० १६०० वि० के लगभग माना जाता है। इनके रचे हुए नखशिख, भागवत भाष्य, बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक टीका, गोबर्द्धन सतसई टीका और दूषण विचार आदि ग्रंथ कहे जाते हैं। इनमें से नखशिख और दूषण विचार आदि दो-तीन ग्रंथों के सिवा अन्य ग्रन्थ अभी तक नहीं मिले हैं। अब तक इनकी जितनी कविताएं मिलीं, उनके देखने से ये बड़े अच्छे कवि जान पड़ते हैं। नमूने के तौर पर इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं—

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ
बलभद्र बासर उनीदी लखी बाल में।
शोभा के सरोवर में बाड़व की आभा कैधौं
देवधुनि भारती मिली है पुन्य काल में॥

काम कैबरत कैधौं नासिका उडुप बैठ्यो
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल में।
लोचन सितासित में लोहित लकीर मानो
बांधे जुग मीन शाल रेसम के जाल मे ॥ १ ॥

मरकत सूत कैधौं पन्नग के पूत अति
राजत अभूत तमराज कैसे तार हैं।
मखतूल गुन ग्राम सोभित सरस श्याम
काम मृग कानन कै कोहू के कुमार हैं॥
कोप की किरनि कै जलज नल नील तंत
उपमा अनंत चारु चंवर शृंङ्गार हैं।
कारे सटकारे भीजे सोंधे सों सुगंध बास
ऐसे बलभद्र नवबाला तेरे बार हैं॥ २ ॥

दादूदयाल

दादूदयाल का जन्म फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, बृहस्पतिवार संवत १६०१ वि० में हुआ था। जन्मस्थान कहां था, इस विषय में बड़ा मतभेद पाया जाता है। दादूपंथी लोग कहते हैं कि इनका जन्म अहमदाबाद (गुजरात) में हुआ था। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने इनका जन्म स्थान जौनपुर बतलाया है। परन्तु दादूदयाल की कविता की भाषा देखने से गुजरात देश ही उनका जन्म-स्थान प्रतीत होता है।

ये किस जाति के थे, इसमें भी बड़ा झगड़ा है। कोई इन्हें गुजराती ब्राह्मण बतलाता है, कोई मोची और कोई धुनिया कहता है। सर्वसाधारण में ये धुनिया ही प्रसिद्ध हैं; परन्तु "जाति पांति पूछै ना कोई, हरि को भजै सो हरि का होई" इस कहावत के अनुसार हमें इनका गुण ही देखना चाहिये। गुण की कोई जाति नहीं है। जाति चाहे ऊंच हो या नीच गुण का आदर सर्वत्र होगा। कबीर ने कहा है--

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

दादूदयाल का गुरु कौन था, इसका भी ठीक-ठीक पता नहीं। लोग कहते हैं कि कमाल इनके गुरु थे। कमाल कबीर के पुत्र थे। दादूदयाल की पदावली में कबीर का नाम तो कई स्थानों पर आया है; परन्तु कमाल का एक स्थान पर भी नहीं। दादूदयाल ने गुरु की महिमा भी बहुत गाई है। ऐसी दशा में यदि कमाल इनके गुरु होते, तो उनका नाम भी कहीं न कहीं आता ही।

दादू पंथियों के कथनानुसार, कबीर साहब की तरह दादूदयाल भी बालक रूप में, लोदीराम नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी (अहमदाबाद) में बहते हुए मिले थे। इनके विषय में भी बहुत-सी चमत्कार की कहानियां प्रसिद्ध हैं। ये बड़े क्षमाशील थे। इसी से लोगों ने इन्हें "दयाल" की पदवी दी थी और ये सबको दादा कहा करते थे, इसीसे लोग इन्हें "दादू' कहने लगे।

दादूदयाल आमेर में जो जयपुर की पुरानी राजधानी है, १४ वर्ष तक रहे। वहां से जयपुर, मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानों में घूमते हुए सं० १६५९ में नराना में, जो जयपुर से २० कोस पर है, आकर ठहर गये। वहां से तीन चार कोस पर भराने की पहाड़ी है, वहां भी ये कुछ समय तक रहे, और सं० १६६० मे वहीं इन्होंने शरीर छोड़ा। इसी कारण से वह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है। समस्त दादू पंथियों के मुखिया वहीं रहते हे। वहां दादूदयाल का एक मन्दिर है। उसमें उनके कपड़े और पोथियां अब तक हैं। वहां प्रति वर्ष फागुन सुदी ४ से द्वादशी तक, नौ दिन बड़ा भारी मेला लगता है। इस पंथ में दो प्रकार के साधू पाये जाते हैं, एक भेसधारी विरक्त,दूसरे नागा। भेसधारी विरक्त गेरुआ वस्त्र पहनते हैं और कथा-कीर्तन में अपना समय बिताते हैं। नागा सफेद सादे कपड़े पहनते हैं और खेती, फौज की नौकरी तथा वैद्यक आदि करके जीविका चलाते हैं। जयपुर राज्य की नागों की सेना प्रसिद्ध ही है। दोनों प्रकार के साधू विवाह नहीं करते। गृहस्थों के लड़कों को चेला मूंड़कर अपना पंथ चलाते हैं। ये लोग न तो तिलक लगाते हैं और न गले में

कंठी पहनते है। प्राय:हाथ में एक सुमिरनी रखते हैं। सिर पर टोपी या पगड़ी पहनते हैं और आते जाते समय एक दूसरे से "सत्त राम" कहते हैं। दादूदयाल के शिष्यों मे सुन्दर दास, रज्जबजी, जनगोपाल और मोहनदास आदि अच्छे कवि हो गये है।

दादूदयाल निरञ्जन निराकार परब्रह्म के उपासक थे और उसी को सबमें रमनेवाला राम कहकर सुमिरन करते कराते थे।

ये हिंदी, फारसी, गुजराती, मारवाड़ी और मराठी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। गुजराती और हिंदी भाषा में इनकी कविताएं बड़ी ही हृदय-वेधक हुई हैं। जब मै इनकी कविता का अध्ययन कर रहा था, तब कई स्थानों पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि संसार-प्रसिद्ध महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के भावों से उनमें विशेष महीन और प्रेमाभि-सिक्त भाव है। दोनों के भाव और कहने के ढंग में कहीं-कहीं बड़ी समता पाई जाती है।

दादूदयाल की साखी में वह रस नही है जो कबीर साहब की साखी में पाया जाता है। परन्तु दादूदयाल के पदों में प्रेम का जो मनोहर रूप प्रकट हुआ है वह कबीर साहब के थोड़े ही भजनों मे पाया जाता है। कबीर साहब की तरह दादूदयाल भी हिन्दू मुसलमानों में भेद नहीं मानते थे, यह उनके पदों से साफ-साफ प्रकट होता है।

यहां हम दादूदयाल के कुछ चुने हुये दोहे और पद प्रकाशित करते हैं—

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और ॥ १ ॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर मे धरा न पाइये, जो कर दिया न होय ॥ २ ॥
यह मसीत यह देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदगी, बाहिर काहे जाइ ॥ ३ ॥

कहि कहि मेरी जीभ रहि , सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुरु बपुरा क्या करै , जो चेला मूढ़ अजान ।। ४ ।।
सुख का साथी जगत सब , दुख का नाहीं कोइ ।
दुख का साथी साइयां , दादू सतगुरु होइ ।। ५ ।।
दादू देख दयाल कौ , सकल रहा भरपूर ।
रोम रोम में रमि रह्यो , तू जिनि जानै दूर ।। ६ ।।
मिसरी मांहैं मेल करि , माल बिकाना बंस ।
यों दादू महिंगा भया , पारब्रह्म मिलि हंस ।। ७ ।।
केते पारिख पचि मुये , कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान है , गूगे का गुड़ खाइ ।। ८ ।।
जब मन लागै राम सों , तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लूण ज्यों , ऐसैं रहै समाइ ।। ९ ।।
क्या मुंह ले हंसि बोलिये , दादू दीजे रोइ ।
जनमं अमोलक आपणा , चले अकारथ खोइ ।। १० ।।
एक देस हम देखिया , जहं सत नहिं पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के , जहं सदा एकरस होइ ।। ११ ।।
सुरग नरक संसय नहीं , जिवण मरण भय नाहिं ।
राम बिमुख जे दिन गये , सो सालै मन माहिं ।। १२ ।।
मैं ही मेरे पोट सर , मरिये ताके भार ।
दादू गुरु परसाद सों , सिर थैं धरी उतार ।। १३ ।।
दादू मारग कठिन है , जीवत चलै न कोइ ।
सोई चलि है बापुरा , जे जीवत मिरतक होइ ।। १४ ।।
काया कठिन कमान है , खींचै विरला कोइ ।
मारे पांचौं मिरगला , दादू सूरा सोइ ।। १५ ।।
जे सिर सौंप्या राम कौं , सो सिर भया सनाथ ।
दादू दे ऊरण भया , जिसका तिसके हाथ ।। १६ ।।

कहतां सुनतां देखता , लेतां देतां प्राण ।
दादू सो कतहूं गया , माटी धरी मसाण ॥ १७॥
जिहि घर निंदा साधु की , सो घर गये समूल ।
तिनकी नींव न पाइये , नांव न ठांव न धूल ॥ १८ ॥

पद

हुसियार रहो मन मारैगा , साईं सतगुरु तारैगा ॥
माया का सुख भावै , मूरिख मन बौरावै रे ॥
झूठ सांच करि जाना , इन्द्री स्वाद भुलाना रे ॥
दुख कौं सुख करि मानै , काल झाल नहिं जानै रे ॥
दादू कहि समझावै , यह अवसर बहुरि न पावै रे ॥१॥

भाई रे ऐसा पंथ हमारा ।
द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा अबरण एक अधारा ॥
वाद विवाद काहू सौं नाहीं माहिं जगत थैं न्यारा ।
समदृष्टि सूं भाई सहज में आपहि आप विचारा ॥
मै, तैं, मेरी यहु मत नाहीं निरबैरी निरविकारा ।
पूरण सबै देखि आपा पर निरालम्भ निरधारा ॥
काहू के संगी मोह न ममिता संगी सिरजनहारा ।
मन ही मनसूं समझि सयाना आनंद एक अपारा ॥
काम कल्पना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहि पंथ पहुंचि पार गहि"दादू"सो तत सहजि संभारा ॥ २ ॥

आव रे सजणाँ आव, सिर पर धरि पांव ।
जानी मैंडा जिंद असाड़े ।
तू रावैं दा राव वे सजणां आव ॥
इत्थां उत्थां जित्थां कित्थां, हौं जीवां तो नाल वे ।
मीयां मैंडा आव असाड़े ।
तू लालों सिर लाल वे सजणां आव ॥

तन भी डेवां मन भी डेवां, डेवां प्यण्ड पराण वे ।
सच्चा साईं मिलि इत्थाई ।
जिन्दा कराँ कुरवाण वे सजणां आव ।।
तूं पाकौं सिर पाक वे सजणां तू खूबौ सिर खूब ।
दादू भावै सजणां आवै ।
तू मीठा महबूब वे सजणां आव ।। ३ ।।
(पञ्जाबी भाषा)

म्हारा रे व्हाला ने काजे रिदै जोवा ने हूं ध्यान धरूं ।
आकुल थाये प्राण म्हारा कोने कही पर करूं ।।
संभारयो आवे रे व्हाला व्हेला एहों जोइ ठरूं ।
साथी जी साथै थइनि पेली तीरे पार तरूं ।।
पीव पाखे दिन दुहेला जाये घड़ी बरसां सौं केम भरूं ।
दादू रे जन हरि गुण गातां पूरण स्वामी ते वरू ।। ४ ।।
(गुजराती भाषा)

बटाऊ रे चलना आजि कि काल ।
समझि न देखै कहा सुख सोवै रे मन राम संभालि ।।
जैसे तरवर बिरस बसेरा पङ्खी बैठे आइ ।
ऐसे यहु सब हाट पसारा आप आप कौं जाइ ।।
कोइ नहिं तेरा सजन संगाती जिन खोवे मन भूल ।
यहु संसार देखि जिन भूलै सब ही सेंवल फूल ।।
तन नहिं तेरा धन नहिं तेरा कहा रह्यो इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै काहे न देखे जागि ।। ५ ।।

जागि रे सब रैंणि बिहाणी । जाइ जनम अंगुली कौ पाणी ।।
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै । जे दिन जाइ से बहुरि न आवै ।।
सूरज चन्द कहैं समझाइ । दिन दिन आयू घटती जाइ ।।
सरवर पाणी तरुवर छाया । निसदिन काल गरासै काया ।।
हंस बटाऊ प्राण पयाना । दादू आतमराम न जाना ।।६।।

बातैं बादि जाहिंगी भइये ।
तुम जिन जानौ बातनि पइये ॥
जब लग अपना आप न जाणै , तब लग कथनी काची ।
आपा जाणि साई कूं जाणै , तब कथनी सब साची ॥
करणी बिना कन्त नहिं पावै , कहे सुने का होइ ।
जैसी कहै करै जे तैसी , पावेगा जन सोइ ॥
बातनि हीं जे निरमल होवै , तौ काहे कूं कसि लीजै ।
सोना अगिनि दहै दस बारा , तब यहु प्राण पतीजै ॥
यों हम जाणा मन पतियाना , करनी कठिन अपारा ।
"दादू" तन का आपा जारै , तौ तिरत न लागै बारा ॥ ७ ॥

गंग

गङ्ग बड़े प्रतिभाशाली और अकबर के दरबारी कवि थे । अब्दुर्रहीम खानखाना इनको बहुत चाहते थे । गङ्ग के जन्म और मरण की तिथि का ठीक पता नहीं चलता; परन्तु अनुमान से यह माना जा सकता है कि इनकी और रहीम की अवस्था में बहुत कम अन्तर रहा होगा । रहीम का जन्म १६१० में और मृत्यु १६८२ वि० में हुई । अतएव गङ्ग का जन्मकाल भी १६१० के आसपास होगा ।

गङ्ग और औरङ्गजेब के सम्बन्ध की एक कथा भी लोक में बहुत प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि औरङ्गजेब ने एक बार कविता से बहुत प्रसन्न होकर गङ्ग को एक हथिनी पुरस्कार में दी । हथिनी बुड्ढी थी । गङ्ग ने हथिनी का मजाक उड़ाते हुए यह छन्द रचा---

तिमिरलङ्ग लई मोल चली बब्बर के हलके ।
रही हुमायूं साथ गई अकबर के दल के ॥
जहांगीर जस लियो पीठि को भार छुड़ायो ।
शाहजहां करि न्याय ताहि को मांड़ चटायो ॥

बलरहित भई पौरुष थक्यो , भगी फिरत बन स्यार डर ।।
औरङ्गजेब करिनी सोई , लै दीन्हीं कवि "गङ्ग" घर ।।

इस कथा में सत्य का कुछ अंश हो या न हो, गङ्ग औरङ्गजेब के समय तक जीवित रहे हों या नहीं, पर एक बुढ़िया हथिनी के साथ मुगल खानदान का खासा मजाक उड़ाया गया है ।

गङ्ग बड़े ही धुरन्धर कवि थे । यद्यपि इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता परन्तु जो कुछ फुटकर छन्द मिलते है, उनसे इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है ।

इनका एक छप्पै सुनकर अब्दुर्रहीम खानखाना ने इनको ३६ लाख रुपये दिये थे । वह छप्पय यह है :—

चकित भंवर रहि गयौ गमन नहि करत कमल बन ।
अहि फनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन ।।
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति ।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहैं न करैं रति ।।
खलभलित सेस कवि "गङ्ग" भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो ।
खानानखान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तुंग कस्यो ।।

हम इनके कुछ छन्द नीचे लिखते हैं :—

बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो सुख के समूह मे वियोग आग भरकी । 'गग' कहै त्रिबिध सुगन्ध लै पवन बह्यो लागत ही ताके तन भई बिथा जर की ।। प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहं लागत ही औरै गति भई मानसर की । जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी ।। १ ।।

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास भागे देसपती धुनि सुनत निसान की । 'गङ्ग' कहै तिनहूं की रानी राजधानी छांड़ि फिरै बिललानी सुधि भूली खानपान की ।। तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरन तिनहुं की भली भई रच्छा तहां प्रान की । सची मिली करिन भवानी जानी केहरिन मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ।। २ ।।

प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी। कहै कवि 'गङ्ग' तहां भारी सूर वीरन के उमड़ि अखण्ड दल प्रलै पौन लहकी॥ मच्यो घमसान तहां तोप तीर बान चलै मंडि बलवान किरपान कोपि गहकी। तुण्ड काटि मुण्ड काटि जोसन जिरह काटि नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी॥ ३॥

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान एकन तें एक मनो सुखमा जरद की। कहैं कवि 'गङ्ग' तेरे बल की बयारि लागे फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरद की॥ एते मान सोनित की नदियां उमड़ि चलीं रही न निसान कहूं मंहि में गरद की। गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी गौरीपति गह्यो पूछ लपकि बरद की॥ ४॥

फूट गये हीरा की बिकानी कनी हाट हाट काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लयो। टूट गई लङ्का फूट मिल्यो जो विभीषन है रावन समेत बंस आसमान को गयो॥ कहैं कवि 'गङ्ग' दुरजोधन से छत्रधारी तनक में फूटें तें गुमान वाको नै गयो। फूटे तें नरद उठि जात बाजी चौसर को आपुस के फूटे कहु कौन को भलो भयो॥ ५॥

आवत हौं चले शिव शैलते गिरीश जांचे मिल्यो हुतो मोहि जहां सागर सगर को। कविन की रसना की पालकी पै चढ़ो जात संग सोहै रावरो प्रताप तेज वर को॥ कवि 'गङ्ग' पूछी तुम को हौ कित जैहौ, उन कह्यो मोसों हंसि कै सनेसो ऐसो थर को। जस मेरो नाम मेरो दसो दिसि काम मेरो कहियो प्रनाम हौं गुलाम बीरबर को॥ ६॥

देखत के बृच्छन में दीरघ सुभायमान कीर चल्यो चाखिबे को प्रेम जिय जग्यो है। लाल फल देखि कै जटान मड़रान लागे देखत बटोही बहुतेरे डगमग्यो है॥ 'गङ्ग' कवि फल फूटे भुआ उधिरान लखि सबन निराश ह्वै कै निज गृह भग्यो है। ऐसो फलहीन वृच्छ बसुधा में भयो यारो सेमर बिसासी बहुतेरन को ठग्यो है॥ ७॥

मृगहू ते सरस बिराजत बिसाल दृग देखिये न अति दुति कौलहु के दल में। "गङ्ग" घन दुज से लसत तन आभूषन ठाढ़े द्रुम छांह देख कै

गई बिकल में। चख चित चाय भरे शोभा के समुद्र मांझ रही ना संभार दसा औरे भई पल में। मन मेरो गरुओ गयोरी बूड़ि मे न पायो नैन मेरे हरुये तिरन रूप जल मैं ॥ ८ ॥

चकई बिछुरि मिली तू न मिली प्रीतम सो गंग कवि कहै ये तो कियो मान ठानरी। अथये नछत्र ससि अथई न तेरी रिस तू न परसन परसन भयो भान री। तू न खोली मुख खोलो कंज औ गुलाब मुख चली सीरी वायु तू न चली भो बिहान री। राति सब घटी नाहीं करनी ना घटी तेरी दीपक मलीन तेरो मान री ॥ ६ ॥

अधर मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि विधि मानो बिधु कीन्हों रूप को उदधि कै। कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्यो बदन छपाइ सखियान लीन्हीं मधि कै। मारि गई 'गङ्ग' दृग शर वेधि गिरिधर आधी चितवनि मैं अधीन कीन्हो अधिकै। बान बधि बधिक बधे को खोज लेत फेरि बधिक बधू ना खोज लीन्ही फेरि बधि कै ॥ १० ॥

मालती शकुन्तला सी को है कामकंदला सी हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरै। ऐल फैल फिरत खवास खास आसपास चोवन का चहल गुलाबन की गागरै। ऐसी मजलिस तेरी देखी बीरबर आज 'गंग' कहै गूंगी ह्वै कै रही है गिरा गरै। महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोर ना अगर रह्यो आगरै ॥ ११ ॥

राजे भाजे राज छोड़ि रन छोड़ि रजपूत रौतो छोड़ि राउत रनाई छोड़ि रानाजू। कहै कवि 'गङ्ग' हूल समुद के चहूं कूल कियो न करै कबूल तिय खसमाना जू। पश्चिम पुरतगाल कासमीर अवताल खक्खर को देस बाढ्यो भक्खर भागना जू। रूम साम लोम सोम बलक बदाखशान खैल फैल खुरासान खीझे खानखाना जू ॥ १२ ॥

कोप कसमीर तें चल्यो है दल साजि बीर धीर ना धरत गल गाजिबे को भीम है। सुन्न होत सांझे ते बजत दंत आधीरात तीसरे पहर दहल दै असीम है। कहै कवि 'गङ्ग' चौथे पहर सतावै आनि

निपट निगोरो मोहिं जानि कै यतीम है । बाढ़ी शीत शंखा कांपै कर ह्वै अतङ्का लघुशङ्का के लगे ते होत लंका की मुहीम है ॥१३॥

कहेते न समझे न समझाये समझे सुकवि लोग कहें ताहि मानत असार सी । काक को कपूर जैसे मरकट को भूषण ज्यों ब्राह्मण को मक्का जैसे मीर को बनारसी । बहिरे के आगे तान गाये तो सवाद जैसे हिजड़े के आगे नारि लागत अंगार सी । कहें कवि 'गंग' मनमांहि तो विचार देखो मूढ़ आगे विद्या जैसे अंधे आगे आरसी ॥ १४ ॥

तारा की जोत में चंद्र छिपे नहिं सूर छिपे नहिं बादर छाये ।
रन्न चढ़े रजपूत छिपे नहिं दाता छिपे नहिं मांगन आये ॥
चंचल नारि को नैन छिपे नहिं प्रीति छिपे नहिं पीठ दिखाये ।
'गंग' कहै सुन शाह अकब्बर कर्म छिपे न भभूत लगाये ॥ १५ ॥

बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को बासो ।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सों हासो ॥
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनी पर भाई ।
बुरी कुलच्छन नारि, सास घर बुरो जमाई ॥
बुरो पेट पंपाल है , बुरो युद्ध से भागनो ।
'गंग' कहे अकबर सुनो , सब से बुरो है मांगनो ॥ १६ ॥

दलहि चलत हलहलत भूमि थल थल जिमि चल दल ।
पल पल खल खलभलत बिकल बाला कर कुल कल ।
जब पटहध्वनि युद्ध धुंधु धुद्धुव धुद्धुव हुव ।
अरर अरर फटि दरकि गिरत धसमसति धुकन ध्रुव ।
भनि 'गंग' प्रबल महि चलत दल जहंगीरशाह तुव भार तल ।
फुंफुं फनिन्द फन फुंकरत सहस गाल उगिलत गरल ॥१७॥

मृगनैनी की पीठ पै बेनी लसै सुख साज सनेह समोइ रही ।
सुचि चीकनी चारु चुभी चित में भरि भौन भरी खुशबोइ रही ।
कवि 'गंग' जू या उपमा जो कियो लखि सूरति ता श्रुति गोइ रही ।
मनो कंचन के कदलीदल पै अति सांवरी सांपिनी सोइ रही ॥१८॥

मन घायल पायल मायल ह्वै गढ़ लंकते दूरि निसंक गयो।
तहं रूप नदी त्रिबली तरि कै करि साहस सागर पार भयो।
कवि 'गंग' भनै बटपार मनोज रुमावलि सो ठग संग लयो।
परि दोऊ सुमेरु के बीच मनोभव मेरो मुसाफिर लूट लयो ॥१०॥

हरिनाथ

हरिनाथ नरहरि के पुत्र थे। शाहजहां बादशाह की इन पर बड़ी कृपा रहती थी। शाहजहां के सिवा अन्य राजा महाराजाओं के यहां भी इनका अच्छा मान था, और इनको विदाई में घोड़े, हाथी, रथ, पालकी और गांव आदि मिलते थे।

एक बार आमेर के राजा सवाई मानसिंह की प्रशंसा में इन्होंने नीचे लिखे दोहे पढ़कर एक लाख रुपया दान पाया—

बलि बोई कीरति लता, कर्ण करी द्वैपात।
सींची मान महीप ने, जब देखी कुम्हिलात ॥ १ ॥
जाति जाति ते गुन अधिक, सुन्यो न कबहूं कान।
सेतु बांधि रघुबर तरे, हेला दे नृप मान ॥ २ ॥

जब रुपया लेकर हरिनाथ दरबार से घर की ओर चले तो मार्ग में एक ब्राह्मण मिला। उसनें यह दोहा कहा—

दान पाय दोई बढ़े, की हरि की हरिनाथ।
उन बढ़ि ऊंचे पग किये, इन बढ़ि ऊंचे हाथ ॥

इस दोहे से प्रसन्न हो हरिनाथ ने सब धनधान्य जो कुछ पाया था, उस ब्राह्मण को दे दिया और आप खाली हाथ घर चले गये। एक बार हरिनाथ बांधवगढ़ के बघेला रामचन्द्र के दरबार में गये। वहां राजा से दान सम्मान पाकर उन्होंनें अपनी विपत्ति को संबोधन करके यह सवैया पढ़ा—

आज लौं तोसों औ मोसों विपत्ति बढ़ी रही प्रीति की रीति सहेली।
तो हित झार पहार मझाय कै आय के देखी है भूमि बघेली ॥

श्री हरिनाथ सो मान करै मति मेरी कही यह मानि लै हेली।
भेंटत हौं राजा रामनरेसहिं भेंटि लै री फिर भेंट दुहेली॥

इस सवैया से प्रसन्न होकर राजा ने हरिनाथ को एक लाख रुपया पुरस्कार दिया।

अब जरा हरिनाथ के चिड़ीखाने का वर्णन सुनिये—

बाजपेयी बाज सम पांडे पच्छिराज सम,
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के।
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी,
जुर्रा सम मिसिर नवैया नहीं माथ के॥
नीलकण्ठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु,
चक्रवाक दुबे गुरु सुख शुभ साथ के।
येते द्विज जाने रङ्ग रङ्ग के मैं आने,
देस देस में बखाने चिरीखाने हरिनाथ के॥

रहीम

रहीम का पूरा नाम नवाब अब्दुल्रहीम खानखाना था। इनके बाप का नाम बैरम खां था। इनका जन्म सं० १६१० में हुआ। ये अकबर के प्रधान सेनापति, मन्त्री और दरबार के नवरत्नों में से एक रत्न थे। अकबर इनका बहुत आदर करते थे।

रहीम अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। इन की सभा सदा पंडितों से भरी रहती थी। ये बड़े दानी, परोपकारी, सज्जन और श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य उपासक थे। श्रीकृष्ण के लिए इनकी कविता में इनके विशुद्ध प्रेम की बड़ी ही मनोहर झलक दिखाई पड़ती है। इनका स्वभाव बहुत ही सरस और दयापूर्ण था। कहा जाता है कि जीवन भर में इन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। वर्ष में एक बार किसी नियत दिन पर ये अपने घर की सारी सम्पत्ति दान कर दिया करते थे। इनको संसार का बड़ा गहरा अनुभव था। सं० १६८२ में ये परलोक सिधारे।

जो मुगल साम्राज्य का उच्च पदाधिकारी, सहृद, विद्वान, सुकवि रसिक, दयालु दानवीर और भक्त था, उसके जीवन की घटनायें भी बड़ी मनोहर और अद्भुत होंगी, इसमें सन्देह ही क्या है? रहीम के विषय में बहुत सी किम्बदन्तियां लोगों में प्रचलित हैं। उनमें से कितनी सच और कितनी झूठी हैं, इसका निर्णय करना इतिहास के अभाव में बहुत कठिन है। अतएव सत्य असत्य का निर्णय समालोचकों पर छोड़कर पाठकों के मनोरंजन के लिए कुछ किम्वदन्तियों का उल्लेख यहां किया जाता है।

(१)

अकबर के दरबार में गंग बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। रहीम उनको बहुत चाहते थे। एक दिन गंग ने रहीम की प्रशंसा में यह छप्पय सुनाया—

चकित भंवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फन मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चहैं न करैं रति॥
खलभलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरम-सुवन जि दिन क्रोध करि तंग कस्यो॥

कहते हैं कि इस छप्पय से रहीम इतने प्रसन्न हुए कि उसी समय इन्होंने ३६ लाख की एक हुण्डी, जो खजाने में जमा होने के लिए आई थी, उठाकर गंग को दे दी। यदि घटना सच हो तो, सचमुच रहीम बड़े ही निस्पृह और दानवीर थे।

(२)

गोसाईं तुलसीदासजी से भी रहीम का परिचय था। एक दिन एक याचक ब्राह्मण को तुलसीदासजी ने इनके पास भेजा। उसको अपनी कन्या के विवाह के लिए कुछ धन की आवश्यकता थी। तुलसीदासजी ने यह आधा दोहा भी लिखकर उस ब्राह्मण के हाथ भेजा था—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।"

रहीम ने इस दोहे को इस तरह पूरा करके उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर तुलसीदासजी के पास भेज दिया—

"गोद लिए हुलसी[1] फिरैं, तुलसी से सुत होय॥"

(३)

रहीम रहाराणा प्रतापसिंह की देशभक्ति और उनके स्वाभिमान की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। एक बार इनके घर की बेगमें राजपूतों के हाथ पड़ गईं। राणाजी ने बड़े ही आदर के साथ उनको रहीम के पास भेज दिया। तब से राणाजी पर रहीम की बड़ी श्रद्धा रहने लगी। इसका बदला चुकाने के लिए इन्होंने एक बार अकबर को मेवाड़ पर एक बड़ी चढ़ाई करने से रोका भी था। राणाजी के विषय में इन्होंने राजपूतानी बोली में बहुत से दोहे बनाये थे, उनमें से एक यह है—

ध्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।
अमर बिसम्भर ऊपरैं, रखिऔ नहचौ राण॥

(४)

एक बार रहीम का एक नौकर छुट्टी लेकर घर गया। घर में उसकी नववधु का पहले पहल आगमन हुआ था। दम्पत्ति के नवीन प्रेम में छुट्टी के सारे दिन बात की बात में चले गये। स्त्री ने पति को घर में कुछ दिन और रहने के लिए बहुत आग्रह किया। किन्तु नौकरी छूट जाने के भय से पुरुष ने छुट्टी पूरी होने के बाद घर पर ठहरने का साहस नहीं किया। तब स्त्री ने एक बरवै लिखकर और लिफाफे में बन्द करके पुरुष को दिया और कहा कि इसे अपने मालिक को दे देना। पुरुष ने ऐसा ही किया। रहीम ने लिफाफा खोला तो उसमें केवल यह लिखा था—

प्रेम प्रीति को बिरवा, चल्यो लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो, मुरझि न जाय॥

[1] हुलसी तुलसीदासजी की माता का नाम था, और हुलसी का दूसरा अर्थ 'हर्ष से फूली हुई' भी होता है।

रीहम ने सारा रहस्य समझ लिया। इन्होंने नौकर को बुलाकर घर रहने के लिए एक लम्बी छुट्टी दी और उसकी स्त्री के लिए बहुत से गहने और कपड़े भेजे।

यह छन्द इतना पसन्द आया कि इन्होंने इसी छंद में बरवै नायिका भेद लिख डाला। यह नायिका भेद शृंगार रस की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है। घटना और उसका परिणाम दोनों ही बहुत सरस हैं।

(५)

अकबर के मरने पर जहांगीर ने रहीम को राजद्रोह के अभियोग में कैद कर दिया। कैद में इन्हें बड़े बड़े कष्ट झेलने पड़े। जेल से किसी तरह छुटकारा मिला, तब इन्हें आर्थिक कष्ट ने आ घेरा। क्योंकि जहांगीर ने इनका सम्पत्ति पहले ही जब्त कर ली थी। ये दुखी होकर चित्रकूट चले आये। इस हालत में भी याचक लोग इन्हें घेरे रहते थे। दानशक्ति की क्षीणता से इनको बड़ा मानसिक कष्ट होता था। इन्होंने याचकों को साफ साफ कह दिया कि—

ये रहीम दर दर फिरैं, मांगि मधुकरी खांहि।
यारो यारी छोड़ दो, वे रहीम अब नाहिं॥

किन्तु याचक कब मानने लगे। एक दिन एक याचक ने इन्हें बहुत विवश किया और इन्हीं का यह दोहा उसने पढ़ सुनाया—

रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जांचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुआं खनावत लाग॥

इससे विवश होकर इन्होंने रीवां-नरेश के पास यह दोहा लिख भेजा—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

इस दोहे पर मुग्ध होकर रीवां-नरेश ने एक लाख रुपया रहीम के पास भेज दिया। रहीम ने सब रुपया उस याचक को दे दिया।

(६)

दरिद्रावस्था से दुःखी होकर रहीम ने एक भड़भूजे के यहां भाड़ झोंकने

की नौकरी कर ली। एक दिन ये भार झोंक रहे थे। उसी समय रीवां-नरेश उधर से निकले। उन्होंने रहीम को पहचानकर कहा--

जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।

यह सुनकर रहीम ने सिर उठाकर देखा तो रीवां-नरेश खड़े दिखाई पड़े। इन्होंने तत्काल यह उत्तर दिया--

रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार म।[१]

रहीम की कविता नीति और ज्ञान के तत्व से पूर्ण है। छोटे छोटे दोहों में इन्होंने जो बड़े बड़े भाव भर दिये हैं, वे मन को मुग्ध कर लेते हैं। इनकी कविता का प्रधान गुण सरलता है। इन्होने कहीं कहीं ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करके भी अपने भाव व्यक्त किये हैं। हिन्दी ही में नहीं, संस्कृत और फारसी आदि भाषाओं में भी रहीम ने बड़ी सरस कविता की है। इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थों के नाम प्रसिद्ध हैं--

रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पंचाध्यायी, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक, दीवान फारसी और वाकयात बाबरी का फारसी अनुवाद तथा खेट कौतुक जातकम्।

इनमें "बरवै नायिका भेद" ही समूचा छपा हुआ मिलता है। शेष हिन्दी-ग्रंथों का पता ही नहीं। शृंगार सोरठ और मदनाष्टक के नमूने के छन्द मिलते हैं जो इस पुस्तक में दे दिये गये हैं। रहीम सतसई के अभी तक थोड़े ही दोहे मिलते हैं। हां, खेट कौतुक जातकम् पूरा मिलता है। रहीम ने "बरवै नायिका भेद" के प्रारम्भ में कहा है कि--

कवित कह्यो, दोहा कह्यो, तुल्यो न छप्पै छन्द।
बिरच्यो इहै विचारि कै, यह बरवै रस छन्द।

इससे जान पड़ता है कि रहीम ने कवित्त और छप्पे भी लिखे हैं। हिन्दी-मन्दिर प्रयाग ने "रहीम" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें

[१] यह घटना मुझे कोइरीपुर (जौनपुर) में बिन्दा नाम के एक अपढ़ भिक्षुक की जबानी मालूम हुई।

रहीम की सब कविताएं, जो अब तक मिलती हैं, संगृहीत हैं।

रहीम की जितनी कवितायें अब तक मिली हैं, वे उनको एक प्रतिभाशाली कवि प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। यहां रहीम की कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं—

रहीम सतसई

कहि रहीम इक दीपतें, प्रकट सब द्युति होय।
तनु सनेह कैसे दुरौ, दृग दीपक जरु दोय ॥ १ ॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान ॥ २ ॥

जिहि रहीम चित आपनों, कीन्हों चतुर चकोर।
निशिवासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥ ३ ॥

रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न सङ्गति होत ॥ ४ ॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटे बढ़े उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥ ५ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥ ६ ॥

को रहीम पर द्वार पर, जात न जिय पछितात।
संपति के सब जात हैं, विपति सबहिं लै जात ॥ ७ ॥

जो रहीम होती कहू, प्रभु गति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥ ८ ॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुं किन जाहिं।
जल में ज्यों छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥ ९ ॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पारतें, जो रहीम बढ़ि जाय ॥ १० ॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह शांति।
उबत चन्द्र जिहि भांति सो, अथवत वाही भांति ॥ ११ ॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और।
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपनो ठौर॥ १२॥
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जे कसे, तेई सांचे मीत॥ १३॥
तबही लग जीबो भलो, दीयो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥ १४॥
रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जांचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुवां खनावत लोग॥ १५॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहां काम आवै सुई, कहा करे तरवारि॥ १६॥
बड़ माया को दोष यह, जो कबहू घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिये बलाय॥ १७॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अंत बसि, कहा भौंर को भाय॥ १८॥
दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक रटनि, सरबर को कोउ नाहिं॥ १९॥
अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरये काहि॥ २०॥
रहिमन अति न कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सहिजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि॥ २१॥
सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीत न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम॥ २२॥
कहु रहीम केतिक रही, केती गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताय॥ २३॥
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहि दुख दियो, गिरिवरधर गोपाल॥ २४॥

दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिट कूदि कढ़ि जाहिं ॥ २५ ॥
जे रहीम विधि बड़ किए, को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ॥ २६ ॥
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूं को भयो, बावन आंगुर गात ॥ २७ ॥
ए रहीम घर घर फिरैं, मांगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥ २८ ॥
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डार दियो पुनि दूर ॥ २९ ॥
संतन संपति जानिके, सबको सब कुछ देइ।
दीनबन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेइ ॥ ३० ॥
समय दशा कुल देखि के, लोग करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥ ३१ ॥
सर सूखे पंछी उड़ैं, और सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहं जाहिं ॥ ३२ ॥
धूर धरत नित शीश पर, कहु रहीम किहि काज।
जिहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज ॥ ३३ ॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय ॥ ३४ ॥
राम न जाते हिरन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुं, होति आपने हाथ ॥ ३५ ॥
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केरु को संग।
वे डोलत रस आपनो, उनके फात अंग ॥ ३६ ॥
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ तितही इतराय।
प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥ ३७ ॥

खीरा को मुंह काटिके, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुवे मुखन की, चहिये यही सजाय ॥ ३८ ॥
नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन ॥ ३९ ॥
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, श्वान स्वाद सों खात ॥ ४० ॥
जो रहीमन दीपक दशा, तिथि राखत पट ओट।
समै परे ते होति है, वाही पटकी चोट ॥ ४१ ॥
रहिमन राज सराहिये, शशि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥ ४२ ॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥ ४३ ॥
रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीतें अनरीतें करत, भरे बिगारत दीठ ॥ ४४ ॥
जे गरीब सों हित करै, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई योग ॥ ४५ ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥ ४६ ॥
यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीत ॥ ४७ ॥
आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरै, रहिमन कूर बबूर ॥ ४८ ॥
रहिमन सूधी चाल सों, प्यादा होत वजीर।
फरजी मीर न हो सकै, टेढ़े की तासीर ॥ ४९ ॥
बड़े पेट के भरन में, है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि के, दये दांत द्वै काढ़ि ॥ ५० ॥

यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अंखियां निरखि, आंखिन को सुख होत ॥ ५१ ॥
ओछो काम बड़े करै, तौ न बडाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहै न कोय ॥ ५२ ॥
जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥ ५३ ॥
शशि संकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जाति है, घटत घटत घटि सीम ॥ ५४ ॥
यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास यश, होत होत ही होय ॥ ५५ ॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥ ५६ ॥
रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपिटाय।
पशु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाये खाय ॥ ५७ ॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढे हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥ ५८॥
प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छबि कहां समाय।
भरा सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय ॥ ५९ ॥
गुरुता फबे रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
डर पर कुच नीके लगे, अन्त बतौरी आहि ॥ ६० ॥
कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैननि करै, उरज उमेठे जाहिं ॥ ६१ ॥
कौन बडाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥ ६२ ॥
मानसरोवर ही मिलै, हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालकनहिं योग ॥ ६३ ॥

रहिमन बिगरी आदि की , बनै न खरचे दाम ।
हरि बाढ़े आकाश लौं , तऊ बावनै नाम ॥ ६४ ॥
रहिमन रिससहि तजत नहि , बड़े प्रीति को पौरि ।
मूंकन मारत आबई , नींद बिचारी दौरि ॥ ६५ ॥
मनसिज माली की उपज , कही रहीम न जाय ।
फूल श्याम के उर लगे , फल श्यामा उर आय ॥ ६६ ॥
जेहि रहीम तन मन दियो , कियो हिए बिच भौन ।
तासों दुख सुख कहन की , रही बात अब कौन ॥ ६७ ॥
जो पुरुषारथ ते कहूं , सम्पति मिलति रहीम ।
पेट लागि बैराट घर , तपत रसोई भीम ॥ ६८ ॥
सब कोऊ सब सों करै , राम जुहार सलाम ।
हित रहीम तब जानिये , जा दिन अटकै काम ॥ ६९ ॥
ज्यों रहीम गति दीप की , कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजियारो लगै , बढ़े अंधेरो होय ॥ ७० ॥
छोटेन सों सोहैं बड़े , कहि रहीम यहि लेख ।
सहसन को हथ बांधियत , लै दमरी की मेख ॥ ७१ ॥
सम्पति भरम गंवाइ के , हाथ रहत कछु नाहिं ।
ज्यों रहीम शशि रहत है , दिवस अकासहि माहिं ॥ ७२ ॥
अनुचित उचित रहीम लघु , करहिं बड़ेन को जोर ।
ज्यों शशि के संयोग ते , पंचवत आगि चकोर ॥ ७३ ॥
काम कछू आवै नहीं , मोल न कोऊ लेइ ।
बाजू टूटे बाज को , साहब चारा देइ ॥ ७४ ॥
धनि रहीम जल पंक को , लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन है , जगत पियासो जाय ॥ ७५ ॥
मांगे घटत रहीम पद , कितो करो बढ़ि काम ।
तीन पैग वसुधा करी , तऊ बावनै नाम ॥ ७६ ॥

नाद रीझि तन देत मृग , नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पशु ते अधिक , रीझेऊ कछू न देत ॥ ७७ ॥
रहिमन कबहुं बड़ेन के , नाहिं गर्व को लेश ।
भार धरें संसार को , तऊ कहावत शेष ॥ ७८ ॥
रहिमन नीचन संग बसि , लगत कलंक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि , मद समुझहिं सब ताहि ॥ ७९ ॥
रहिमन अब वे बिरछ कहं , जिनकी छांह गंभीर ।
बागन बिच बिच देखियत , सेहुंड़ कंज करीर ॥ ८० ॥
मुकता करै कपूर करि , चातक जीवन जोय ।
येतो बड़ो रहीम जल , ब्याल वदन विष होय ॥ ८१ ॥
शशि की शीतल चांदनी , सुन्दर सबहिं सुहाय ।
लगे चोर चित में लटी , घटि रहीम मन आय ॥ ८२ ॥
अमृत ऐसे बचन में , रहिमन रिस की गांस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली , निरस बाँस की फांस ॥ ८३ ॥
रहिमन मनहिं लगाय के , देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा , नारायन बस होय ॥ ८४ ॥
रहिमन अंसुवा नयन ढरि , जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते , कस न भेद कहि देइ ॥ ८५ ॥
गुन ते लेत रहीम जन , सलिल कूप तें काढ़ि ।
कूपहुं तें कहुं होत है , मन काहू को बाढ़ि ॥ ८६ ॥
रहिमन मन महाराज के , दृग सों नहीं दिवान ।
जाहि देखि रीझे नयन , मन तेहि हाथ बिकान ॥ ८७ ॥
बिरह रूप घन तम भयो , अवधि आस उदोत ।
ज्यों रहीम भादों निशा , चमकि जात खद्योत ॥ ८८ ॥
रहिमन लाख भली करो , अगुनी अगुन न जाय ।
राग सुनत पय पियत हू , सांप सहज धरि खाय ॥ ८९ ॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, शीत घाम औ मेह॥ ९०॥
शीत हरत तम हरन नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रविको कहा, जो घटि लखै उलूक॥ ९१॥
नहिं रहीम कुछ रूप गुण, नहिं मृगया अनुराग।
देशी श्वान जो राखिये, भ्रमत भूखही लाग॥ ९२॥
कागज को सो पूतरा, सहजहि में घुल जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खेंचत बाय॥ ९३॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को, मथै न माखन होय॥ ९४॥
मथत मथत मांखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय॥ ९५॥
होय न जाकी छांह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बाढ़ेहु सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर॥ ९६॥
यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार॥ ९७॥
रहिमन निज मनकी व्यथा, मनहीं राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बांटि न लैहैं कोय॥ ९८॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ हैं, बनत न लगि हैं देर॥ ९९॥
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछु उपाव॥१००॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुं मांगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥१०१॥
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छांड़त छोह॥१०२॥

धन दारा अरु सुतन में, रहत लगाये चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त ॥१०३॥
अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जिहि चितवत इक बार ॥१०४॥
कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोइ।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होइ ॥१०५॥
रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुस चून ॥१०६॥
जाय समानी उदधि में, गङ्ग नाम भयो धीम।
काकी महिमा ना घटी, पर घर गये रहीम ॥१०७॥
मानसरोवर ही मिले, हंसन मुक्ता भोग।
सफरी भरे रहीम ए, विपुल बिलोकन योग ॥१०८॥
बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनै धनी को जाइ।
घटे बढ़ै तिन को कहा, भीख मांगि जो खाइ ॥१०९॥
रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ॥११०॥
खैर खून खांसी खुशी, बैर प्रीति मधु पान।
रहिमन दाबे ना दबे, जानत सकल जहान ॥१११॥
गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै, रहिमन बहरी बाज।
फेरि आय बन्धन परै, पेट अधम के काज ॥११२॥
काल परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भांवर के भये, नदी सेरावत मौर ॥११३॥
रहिमन चाक कुम्हार को, मांगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि के, चहै नांद लइ लेइ ॥११४॥
अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥११५॥

रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखनहार है, माखन चाखनहार ॥११६॥
रहिमन बिपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥११७॥
साधु सराहै साधुता, यती जोखिता जान।
रहिमन सांचे सूर को, बैरी करै बखान ॥११८॥
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
मानो टेरत बिटप चढ़ि, मोहिं समान को कूर ॥११९॥
यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।
बांटनवारे के लगै, ज्यों मेहंदी को रंग ॥१२०॥
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखो तो एकै रूप ॥१२१॥
तैं रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥१२२॥
मांगे मुकुरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
मांगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥१२३॥
छिमा बड़ेन को चाहिये, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥१२४॥

सोरठा

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
जो विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥१२५॥

बरवै नायिका भेद

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ १ ॥
लागेउ आनि नबेलियहि, मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान ॥ २ ॥

कवन रोग दुहुं छतियां, उपजेउ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय॥ ३॥
औचक आय जोबनवां, मोहिं दुख दीन।
छुटि गो सङ्ग गोइयवां, नहिं भल कीन॥ ४॥
भोरहिं बोलि कोइलिया, बढ़वत ताप।
घरि घरि एक घरिअवा, रहु चुपचाप॥ ५॥
बाहर लैके दियवा, बावर जाय।
सासु ननद ढिग पहुंचत, देति बुझाय॥ ६॥
होइ कत आय बदरिया, बरखहि पाथ।
जैहौं घन अमरैया, सुगना साथ॥ ७॥
जैहौं चुनन कुसुमिआं, खेत बड़ि दूर।
नौवा केरि छोहरिया, मुहिं संग कूर॥ ८॥
जस मद मातल हथिया, हुकमत जाति।
चितवत जाति तरुनियां, मन मुसुकाति॥ ९॥
खीन मलिन विषभैया, औगुन तीन।
मोहिं कहत बिधुबदनी, पिय मतिहीन॥१०॥
ते अब जासि बेइलिया, बरु जरि मूल।
बिन पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल॥११॥
का तुम जुगल तिरियवा, झगरत आय।
पिय बिन मनहुं अटरिया, मुहिं न सुहाय॥१२॥
कासों कहौं संदेसवा, पिय परदेसु।
लगेहु चहत नहिं फूले, तेहि बन टेसु॥१३॥
पिय आवत अंगनैया, उठि कै लीन।
साथे चतुर तिरियवा, बैठक दीन॥१४॥
कठिन नींद भिनुसरवा, आलस पाय।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाय॥१५॥

सुभग बिछाइ पलंगिया, अंग सिंगार।
चितवति चौंकि तरुनियां, दै दृग द्वार ॥१६॥
बन घन फूलहि टेसुआ, बगियन बेलि।
चले बिदेश पियरवा, फगुआ खेलि ॥१७॥
पीतम इक सुमिरिनियां, मुहिं देइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा, करब निबाहु ॥१८॥
लखि अपराध पियरवा, नहिं रिस कीन।
बिहंसत चंदन चउकिया, बैठक दीन ॥१९॥
करत न हिय अपरधवा, सपनेहु पीय।
मान करन की बिरियां, रहिगो हीय ॥२०॥
लै कर सुघर खुरुपिया, पिय के साथ।
छइबे एक छतरिया, बरसत पाथ ॥२१॥
सघन कुंज अमरैया, सीतल छांह।
झगरत आइ कोइलिया, पुनि उड़ि जांह ॥२२॥
खेलत जानिसि टोलवा, नन्दकिसोर।
छुइ वृषभानु कुंअरिया, होइ गइ चोर ॥२३॥
पातम मिले सपनवां, भो सुखखानि।
आनि जगायेसि चेरिया, भइ दुखदानि ॥२४॥
पिय मूरति चितसरिया, चितवत बाल।
चितवत अवध सबेरवा, जपि जपि माल ॥२५॥
बिरहिन और बिदेसिया, भो इक ठौर।
पिय मुख तकत तिरियवा, चन्द चकोर ॥२६॥
सखियन कीन सिंगरवा, रचि बहु भांति।
हेरति नैन अरसिया, मुरि मुसुकाति ॥२७॥
छाकहु बइठ दुअरिया, मीजहु पाय।
पिय तन पेखि गरमियां, बिजन डुलाय ॥२८॥

टूटि खाट घर टपकत, टटिग्रो टूटि।
पिय कै बांह सिहंनवां, सुख कै लूटि ॥२९॥
ढील ग्रोखि जल ग्रंचवनि, तरुनि सुगानि।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकानि ॥३०॥
बालम ग्रस मन मिलयउं, जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया, लइ बिलगानि ॥३१॥
पथिक ग्राइ पनिघटवां, कहत "पियाव"।
पैयां परउं ननदिया, फेरि कहाव ॥३२॥

शृंगार सोरठ

पलटि चली मुसुकाय, दुति रहीम उजियाय ग्रति।
बाती सी उसकाय, मानो दीनी दीप की ॥१॥
दीपक हिये छिपाय, नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥२॥
गई ग्रागि उर लाय, ग्रागि लेन ग्राई जो तिय।
लागी नहीं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥३॥

मदनाष्टक

कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला, चांदनी में खड़ा था ॥
कटि तट बिच मेला, पीत सेला नवेला।
ग्रलि बन ग्रलबेला, यार मेरा ग्रकेला ॥

केशवदास

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम काशीनाथ था। इनका जन्म सं० १६१२ के लगभग हुग्रा। ग्रोड़छा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह इनका विशेष ग्रादर करते थे। महाराजा बीरबल ने इनको केवल एक छंद पर छः लाख रुपये दिये थे। वह छंद यह है—

केशवदास के भाल लिख्यो बिधि रंक को अंक बनाय संवारयो।
धोये धुवै नहि छूटो छुटै बहु तीरथ जाय कै नीर पखारयो॥
ह्वै गयो रक ते राव तबै जब वीरबली नृपनाथ निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो॥

केशवदास ने महाराजा बीरबल के द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना अकबर से माफ करा दिया था। इनका शरीरांत सं० १६७४ के लगभग हुआ।

ये सस्कृत के बड़े पंडित थे। इनकी कविता बहुत गूढ़ होती थी। इसी से प्रसिद्ध देव कवि ने इन्हें "कठिन काव्य का प्रेत" कहा है। और इनकी कविता के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि "कवि का दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई।"

इनके रचे हुय आठ ग्रंथ कहे जाते है—रसिक प्रिया, कवि प्रिया, राम चंद्रिका, विज्ञान गीता, वीर सिंहदेव चरित्र, जहांगीर चंद्रिका, नखशिख और रत्न बावनी। उनमे से चार बहुत प्रसिद्ध है—रामचंद्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया और विज्ञान गीता। लोग कहते है कि रामचन्द्रिका इन्होंने तुलसीदासजी के कहने से लिखी। रामचन्द्रिका महाकाव्य है। कविप्रिया अलंकार-प्रधान ग्रन्थ है। यह प्रवीणराय वेश्या के लिए लिखा गया था। प्रवीणराय काव्यकला मे इनकी शिष्या थी। रसिकप्रिया शृंगार-प्रधान ग्रन्थ है। इसमें रसों का वर्णन है। विज्ञान-गीता एक साधारण ग्रंथ है।

केशवदास महाकवि थे, इसमें सदेह नहीं। इनकी कोई-कोई कविता अन्य कवियों की कविता की तरह सुनते ही समझ में नहीं आ जाती। उसके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु जितना ही उसे अधिक विचारिये, उतनी ही मिठास भी बढ़ती जाती है।

केशवदास रसिक भी एक ही थे। वृद्धावस्था में इन्होंने केशों की सफेदी देखकर कहा—

केशव केसनि अस करी, जस अरिहूं न कराहिं।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं॥

इससे प्रकट होता है कि वृद्ध होने पर भी इनका मन वृद्ध नहीं हुआ था।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम यहां उद्धृत करते हैं—

(१)

विप्र न नेगी कीजिये, मूढ़ न कीजे मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये, दूषण सहित कवित्त॥

(२)

धीरज मोचन लोचन लोल विलोकि कै लोककी लीकति छूटी।
फूट गये श्रुति ज्ञान के केशव आंख अनेक विवेक की फूटी॥
छोडि दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति छूटी।
त्यों न करे करतार उबारक जो चितवै वह बारवधूटी॥

(३)

तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाइ सुधाधर पान कै पाइ गहे तस हौं न गहौंगी॥
केसव चूक सबै सहिहौं मुख चमि चले यह तो न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहि कै आपनी धाय सों जाय कहौंगी॥

(४)

भूषण सकल घनसारही के घनश्याम, कुसुम कलित केशरही छवि छाई सी। मोतिन की लरी सिर कंठ कंठ माल हार, और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी॥ चंदन चढ़ाये चारु सुन्दर शरीर सब, राखी जनु सुभ्र शोभा बसन बनाई सी। शारदा सी देखियत देखो जाइ केशोराइ ठाढ़ी वह कुंवरि जुन्हाई में अन्हाई सी॥

(५)

मन ऐसो मन मृदु मृदुल मृणालिका के, सूत कैसो सुर ध्वनि मननि हरित है। दारयो कैसो बीज दांत पांत से अरुण ओंठ, केशोदास देखि

दृग आनंद भरित है ।। येरी मेरी तेरी मोहिं भावत भलाई तातें, बूझति हौं तोहिं और बूझत डरति है । माखन सी जीभ मुख कंज सी कोमलता में काठ सी कठेटी बात कैसे निकरति है ।।

(६)

पंडित पुत्र, सुधी पतिनी जु पतिव्रत प्रेम परायन भारी ।
जानै सब गुण, मानै सबै जग, दान विधान दया उर धारी ।।
केशव रोगनही सो वियोग, संयोग सुभोगन सो सुखकारी ।
सांच कहे, जग मांह लहे यश, मुक्ति यहै चहुं वेद विचारी ।।

(७)

वाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित, मित्र मति हीन, सूम स्वामी उर आनिये । पर वश भोजन, निवास वास कुकुरन, वरषा प्रवास, केशोदास दुखदानि ये ।। पापिन के अङ्ग संग, अंगना अनंग वश, अपयश युत सुत, चित हित हानि ये । मूढ़ता बुढ़ाई, ब्याधि, दारिद, झुठाई आधि, यहई नरक नरलोकनि बखानिये ।।

(८)

कैटभसों नरकासुरसों पल में मधुसों मुरसों जिन मारयो ।
लोक चतुर्दश केशव रक्षक पूरण वेद पुरान विचारयो ।।
श्री कमला कुच कुंकुम मंडित पंडित देव अदेव निहारयो ।
सो कर मांगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो ।।

(९)

जौं हौं कहौं रहिये तो प्रभुता प्रकट होत चलन कहौं तौ हित हानि नाहीं सहनो । भावै सो करहु, तौ उदास भाव प्राणनाथ साथ लै चलहु कैसे लोकलाज बहनो ।। केशोदास की सों तुम सुनहु छबीलेलाल चलेही बनत जो पै नाहीं राज रहनो । जैसियै सिखाओ सीख तुमहीं सुजान प्रिय तुमहीं चलत मोहिं जैसो कछु कहनो ।।

(१०)

धिक मंगन बिन गुणहि गुण सु धिक सुनत न रीझिय ।

रीझ सु धिक बिन मौज मौज धिक देत सु खीझिय ॥
दीबो धिक बिन सांच सांच धिक धर्म न भावै।
धर्म सु धिक बिन दया दया धिक अरि कहं आवै॥
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहं न उदार मति।
मति धिक केशव ज्ञान बिनु, ज्ञान सु धिक बिनु हरिभगति॥

(११)

पातक हानि पिता संग हारिबो गर्व के शूलनि तें डरिये जू।
तालनि को बंधिबो बधरोर को नाथ के साथ चिता जरिये जू॥
पत्र फटैं ते कटे रिन केसव कैसहु तीरथ मे मरिये जू।
नीकी लगै ससुरारि की गारि औ डांड़ भलो जो गया भरिये जू॥

(१२)

पाप की सिद्धि सदा ऋण बृद्धि सुकीरति आपनी आप कही की।
दुःख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की संतति संतत फीकी॥
बेटी को भोजन भूषन रांड़ को केशव प्रीति दसा परती की।
युद्ध में लाज दया अरि को अरु ब्राह्मण जाति सों जीति न नीकी॥

(१३)

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनों सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै॥
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपन चित्त चले च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै॥

(१४)

दुरिहै क्यों भूषण बसन दुति यौवन की देह हूं की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति है। नाहक सुवास लागे ह्वै है कैसी केशव सुभावती की वास भौंर भीर फारे खाति है॥ देखि तेरी सूरत की मूरत बिसूरति हूं, लालनि के दृग देखिबे को ललचाति है। चालि है क्यों चदमुखी कुचन के भार भये कचन के भार ही लचकि लङ्क जाति है॥

(१५)

भूत की मिठाई कैसो साधु की झुठाई जैसी स्यार की ढिठाई ऐसी छीण छहू ऋतु है। धीरा कैसो हास केसोदास दासी कैसो सुख सूर की सी सङ्क अङ्क रङ्क कैसो वितु है॥ सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान गौरी गौरा कैसो मान मेरे जान समुदितु है। कौने है संवारी वृषभानु की कुमारी यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।

(१६)

किधौं मुख कमल ये कमला की ज्योति होति किधौं चारु मुखचन्द्र चन्द्रिका चुराई है। किधौ मृग लोचनि मरीचिका मरीचि कैधौं रूप की रुचिर रुचि सुचि सो दुराई है॥ सौरभ की सोभा की दसन घन दामिनी की केसव चतुर चित ही की चतुराई है। एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हांसी मेरी मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है॥

(१७)

बन मे वृषभानु कुमारि मुरारि रमे रुचि सों रस रूप पिये।
कल कूजत पूजत कामकला विपरीति रची रति केलि हिये॥
मणि सोहत श्याम जराई जरी अति चौकी चलै चल चार हिये।
मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शनि अङ्क लिये॥

(१८)

चंचल न हूजै नाथ अंचल न खैंचो हाथ, सोवै नेक सारिकऊ शुक तौ सुवायो जू। मन्द करो दीप द्युति चन्द मुख देखियत, दौर के दुराय आऊं द्वार तौ दिखायो जू॥ मृगज मराल बाल बाहिरै विड़ार देऊं, भायो तुम्हें केशव सु मोहूं मन भायो जू। छल के निवास ऐसे बचन विलास सुनि, सौगुनी सुरत हू तें श्याम सुख पायो जू॥

(१९)

पांइ परै मनुहार करै पलका पर पाइ धरै भय भीने।
सोइ गई कहि केशव कैसहूं कोर करोरहूं सौंहन कीने॥
साहस कै मुख सों मुख दै छिन में हरि मान महा सुख लीने।
एक उसांसही के उससे सिगरेई सुगन्ध विदा करि दीने॥

(२०)

प्रथम सकल शुचि मञ्चन अमल बास, जावक सुदेश केश पाश को सम्हारिबो। अङ्गराग भूषण विविध मुख वास राग, कज्जल कलित लोल लाचन निहारिबो ।। बोलनि हसनि मृदु चलनि चितौनि चारु, पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो। केशौदास सो बिलास करहु कुंवरि राधे, इहि बिधि सोरह शृङ्गारनि शृङ्गारिबो ।।

(२१)

भाव जहां व्यभिचारी वे पै रमै पर नारी, द्विजैगन दंडधारी चोरी पर पीर की। मानिनीनही के मन मानियत मान-भंग, सिन्धुहि उलांघि जाति कीरति शरीर की ।। भूलै तो अधोगति न पावत है केशौदास, माचही सों है वियोग इच्छा गंग नीर की ।। बन्ध्या बासनानि जानु बिधिना सो बाटिनिकी, ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ।।

(२२)

कवि कुल ही के श्रीफलन , उर अभिलाष समाज।
तिथिही को छय होत है , रामचन्द्र के राज ।।

(२३)

लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियत, तोरिबे को मोह तरु तोरि डारियतु है। घालिबे के नाते गर्व घालियत देवन के, जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है। बांधिबे के नाते ताल बांधियत केशौदास, मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है। राजा रामचन्द्रजू के नाम जग जोतियतु, हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ।।

(२४)

कुटिल कटाक्ष कठोर कुच , एकै दुःख अदेय।
द्विस्वभाव अश्लेष मे , ब्राह्मण जाति अजेय ।।

पृथ्वीराज और चम्पादे

पृथ्वीराज बीकानेर के राजा रार्जासह के भाई थे, और अकबर के दरबार में रहा करते थे। कहा जाता है कि इन्हीं की रानी किरणमयी अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसे नवरोज के अवसर पर अकबर ने एक दूती के द्वारा बहकाकर एक कोठरी में बन्द कर दिया और स्वयं कोठरी में घुसकर वह बलात्कार किया चाहता था। पर किरणमयी ने उस भारत के शाहंशाह को उठाकर पृथ्वी पर दे मारा और कटार निकालकर उसके गले पर रख दी। अकबर ने जब माता कहकर क्षमा मांगी तब कहीं उसके प्राण बचे।

प्रसिद्ध देशभक्त महाराणा प्रतापसिंह जब अकबर से विद्रोह कर के राज्य छोड़कर बनों में घूमते थे; तब एक दिन उनकी कन्या के हाथ से एक जङ्गली बिलाव घास की रोटी, जो वह खा रही थी, छीन कर ले गया। कन्या रोने लगी। इस घटना का राणाजी के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अकबर के पास संधि का प्रस्ताव लिख भेजा।

टाड साहब लिखते हैं—"प्रताप का पत्र पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा दी कि राज्यभर में नाच गान हो और आनन्द मनाया जावे। मारे हर्ष के उसने वह पत्र पृथ्वीराज को दिखलाया। पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश रार्जासह के छोटे भाई थे, जो दुर्भाग्य से मुग़लों के यहां कैद थे। वे बड़े वीर, साहसी और स्वदेश प्रेमी थे। वीर ही नहीं, बल्कि वे एक अच्छे कवि भी थे। वे अपनी कवित्व-शक्ति से मनुष्य का मन मोह सकते थे और आवश्यकता पड़ने पर तलवार लेकर युद्ध में भी विजय प्राप्त कर सकते थे। लड़कपन ही से वे प्रतापसिंह की वीरता, उदारता और स्वदेश-भक्ति पर मोहित होकर उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनको विश्वास नहीं था कि प्रतापसिंह ने अकबर को ऐसा पत्र लिखा होगा। अतएव स्वाभाविक निडरता से उन्होंने अकबर से कहा—"मैं प्रताप को भलीभांति जानता

हूं। यह पत्र उनका नहीं है। और तो क्या, यदि आप अपना ताज भी दे दें तो भी तेजस्वी प्रताप आपके वश में नहीं होंगे।" इसके पश्चात् उन्होंने अकबर की अनुमति से प्रतापसिंह को एक पत्र लिखा। पत्र कविता में था। उस कविता को अब भी कभी-कभी राजपूत लोग बड़े आनन्द से गाते हैं।

पत्र की मूल प्रति कहीं नहीं मिलती। उसके कुछ दोहे प्रसिद्ध हैं, उन्हें हम यहां उद्धृत करते हैं—

घर बांकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणां नरिन्दा घेरियो, रहै गिरिन्दां राण॥ १ ॥

जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है, और दिन अनुकूल है, जो वीर अभिमान को नही छोड़ता, वह महाराणा बहुत राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ी में निवास करता है।

पातल राण प्रवाड़ मल, बांकी घड़ा बिभाड़।
खूंदाडै कुण है खुरां, तो ऊभां मेवाड़॥ २ ॥

हे विकट सेनाओं के विध्वंस करनेवाले और युद्ध में मल्ल महाराणा प्रतापसिंह! तेरे खड़े रहते मेवाड़ को घोड़ों के खुरों से खुंदानेवाला कौन है?

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिरा पै सांप॥ ३ ॥

हे माता! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा राणा प्रताप है। जिसको अकबर सिरहाने का सांप जानकर सोता हुआ चौंक उठता है।

अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी॥ ४ ॥

हे अकबर, तेरा तेज देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, जिसके सामने महाराणा के सिवा सब राजा लोग झुक गये।

सह गावड़ियो साथ, एकण बाड़ै बाड़ियो।
राण न मानी नाथ, तांडै सांड़ प्रतापसी॥ ५ ॥

हे अकबर ! तूने गाय रूपी सब राजाओं को एक बाड़े में इकट्ठा कर लिया; परन्तु सांड़ रूपी प्रतापसिंह तेरी नाथ को नहीं मानकर गरज रहा है।

पातल पाघ प्रमाण , सांभी सांगा हर तणी।
रही सदा लग राण , अकबर सूऊभी अणी ॥ ६ ॥

महाराणा संग्रामसिंह के पोते प्रतापसिंह की पगड़ी ही गिनती में सच्ची है, जो अकबर के सामने अनम्र होकर उच्च रही।

चोथो चीतोड़ाह , बांटो बाजंती तणो।
माथै मेवाड़ाह , थारै राण प्रतापसी ॥ ७ ॥

हे चित्तौड़ के स्वामी महाराणा प्रतापसिंह ! हे मेवाड़पति ! पगड़ी तेरे ही सिर पर है।

अकबर समद अथाह , तिहं डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिड़ माहं , पोयण फूल प्रतापसी ॥ ८ ॥

अकबर रूपी अथाह समुद्र में हिन्दू तुरुक सब डूब गये; परन्तु मेवाड़ के स्वामी महाराणा प्रताप उसमें कमल के फूल के समान रहे।

अकबरिये इक बार , दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार , चेटक राण प्रतापसी ॥ ९ ॥

अकबर ने एक ही बार में सारी दुनिया को कलंकित कर दिया। परन्तु चेटक घोड़े के असवार राणा प्रताप निष्कलंक रहे।

अकबर घोर अंधार , ऊंघाणां हिन्दू अवर।
जागै जगदातार , पोहरे राण प्रतापसी ॥ १० ॥

अकबर रूपी घोर अंधकार में सब हिन्दू सो गये। परन्तु जगत् का दाता राणा प्रताप (धर्म-धन की रक्षा के लिए) पहरे पर खड़ा है।

हिन्दूपति परताप , पत राखो हिन्दुआणरी।
सहो विपत संताप , सत्यसपथ करि आपनी ॥ ११ ॥

हे हिन्दूपति प्रताप ! हिन्दुओं की लज्जा रक्खो। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सब कष्टों को सहो।

चम्पा चीतोड़ाह , पोरस तणो प्रतापसी ।
सौरभ अकबर साह , अलियल आभड़िया नहीं ।। १२ ।।

चित्तौड़ चम्पा है, प्रताप उसकी सुगन्ध है। अकबर रूपी भौंरा उसके पास नहीं फटकता। (चम्पा के फूल पर भौंरा नही बैठता)।

पातल जो पतसाह , बोलै मुखहूता बयण ।
मिहर पछम दिस मांह , ऊगै कासप राववत ।। १३ ।।

महाराणा प्रतापसिंह यदि बादशाह को अपने मुख से बादशाह कहें, तो कश्यप जी के संतान भगवान सूर्य पश्चिम दिशा मे उगे।

पटकूं मूछां पाण , कै पटकूं निज तन करद ।
दीजै लिख दीवाण , इण दो महली बात इक ।। १४ ।।

हे दीवान! मै अपनी मूंछ पर हाथ फेरूं, या अपने शरीर को तलवार से काट डालूं, इन दोनों मे से एक बात लिख दीजिए।

राठौर-वीर पृथ्वीराज की कविता पढ़कर प्रताप को इतना साहस हुआ कि मानों उन्हे दश हजार राजपूतों की सहायता मिल गई। वे अपनी प्रतिज्ञा[1] पर दृढ़ हुए। पत्र के उत्तर मे महाराणा प्रताप ने नीचे लिखे दोहे भेजे थे—

तुरुक कहासी मुख पतो , इण तनसूं इकलिंग ।
ऊगै जाहीं ऊगसी , प्राची बीच पतंग ।। १ ।।

भगवान एकलिंग की शपथ है, इस शरीर से अर्थात् प्रताप के मुख से बादशाह तुरुक ही कहलावेगा और सूर्य का उदय जहां से होता है, वहीं पूर्व ही में होगा।

[1] प्रतापसिंह की प्रतिज्ञा यह थी कि वे कभी किसी यवन को सिर न झुकावेंगे। एक बार एक भाट अकबर के सामने मुजरा करने गया। सामने पहुंचकर उसने पगड़ी उतार ली। उसको नंगे सिर देखकर अकबर ने कारण पूछा, तब उसने कहा—यह पगड़ी महाराणा प्रतापसिंह जी ने अपने हाथ से दी है। मैं इसे आपके सामने झुकाना नहीं चाहता। यह सुनकर अकबर ने प्रतापसिंह की बड़ी प्रशंसा की।

खुशी हूंत पीथल कमध , पटको मूछां पाण ।
पछटण है जेत पतो , कमला सिर केवाण ॥ २ ॥

हे वीर पृथ्वीराज, आप प्रसन्न होकर मूछों पर हाथ फेरिये । जब तक प्रतापसिंह है, तलवार को यवनों के सिर पर ही जानिये ।

सांग मूंड़ सहसी सको , सम जस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भलां , बैण तुरक सूं बाद ॥ ३ ॥

राणा प्रताप सिर पर भाला सहेगा, क्योंकि बराबरवाले का यश विष के समान होता है। हे भट पृथ्वीराज, आप तुरक से बातों के युद्ध में विजय पावें ।

अकबर के साथ विवाद होने का पता जब पृथ्वीराज की रानी को लगा, तब उसने यह दोहा लिखकर पृथ्वीराज के पास भेजा--

पति जिद की पतसाहसूं , यहै सुणी मैं आज ।
कहां पातल अकबर कहां , करियो बड़ो अकाज ॥

हे प्राणपति ! मैंने आज यह सुना कि आपने महाराणा के सम्बन्ध में अकबर से विवाद किया है । कहां अकबर और कहां प्रताप ! आपने बड़ा अनर्थ किया ।

इसके उत्तर में पृथ्वीराज ने यह कवित्त लिख भेजा—

जब तें सुने हैं बैन तब तें न मोको चैन पाती पढ़ि नैक सो बिलंब न लगावेगा । लेकै जमदूत से समस्त राजपूत आज आगरे मे आठों याम ऊधम मचावेगो ॥ कहै पृथिराज प्रिया नैक उर धीर धरो चिरजीवी राना श्री मलेच्छन भगावेगो । मन को मरद मानी प्रबल प्रतापसिंह बब्बर ज्यों तड़प अकब्बर पै आवेगो ॥

अर्थ स्पष्ट है ।

पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप के विषय में और भी बहुत-से पद्य रचे थे, उनमें से एक गीत नीचे दिया जाता है—

गीत

नर तेथ निमाणा निलजी नारी अकबर गाहक बट अबट ।

चौहटै तिण जायर चीतोड़ो बेचै किम रजपूत बट ॥
रोजायतां तणें नवरोजै जेथ मुसाणा जणा जण ।
हिन्दू नाथ दिलीचे हाटे पतो न खरचै क्षत्री पण ॥
परपच लाज दीठ नह ब्यापण खोटो लाभ अलाभ खरो ।
रज बेचबां न आवे राणो हाटे मीर हमीर हरो ॥
पेखे आपतणा पुरुषोत्तम रह अणियाल तणें बल राण ।
खत्र बेचियां अनेक खत्रियां खत्रवट थिर राखी खूमाण ॥
जासी हाट बात रहसी जग अकबर ठग जासी एकार ।
रह राखियो खत्री ध्रम राणै साराले बरतो संसार ॥

जहां पर मानहीन पुरुष और लज्जाहीन स्त्रियां हैं, और अकबर जैसा ग्राहक है, उस चौपड़ के बाजार में जाकर चित्तौड़ का स्वामी राजपूती का भाग कैसे बेचेगा ?

मुसलमानों के नवरोज के समय प्रत्येक व्यक्ति लुट गया । परन्तु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह उस दिल्ली के बाजार में अपना क्षत्रियपन क्यों खरचे ?

वंशलज्जा से भरी दृष्टि पर अन्य का प्रपंच नहीं व्यापता । इसी से पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा और अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रज बेचने के लिए हमीर का पोता राणा प्रतापसिंह कदापि नहीं आता ।

अपने पुरुषाओं का उत्तम कर्तव्य देखते हुये महाराणा ने भाले के बल से क्षत्रिय-धर्म को अचल रक्खा और अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को विक्रय कर डाला ।

ठग रूपी अकबर भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और हाट भी उठ जायगी । परन्तु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रिय-धर्म में रह कर उस धर्म को केवल राणा प्रताप ही ने रक्खा; अब सब उसे काम में लाओ ।

पृथ्वीराज बड़े रसज्ञ कवि थे । उनकी पहली रानी लालादे भी

कविता करती थी। ऐसी रसमयी रमणी के साथ कवि पृथ्वीराज का दिन बड़े चैन से कटता था। परन्तु दुर्भाग्य से लालादे का भरी जवानी में स्वर्गवास होगया। जब उसकी देह चिता पर जल रही थी तब पृथ्वीराज ने कहा—

तो रांध्यों नहि खावस्यां, रे! बासदे निसड्ड।
मो देखत तू बालिया, लाल रहंदा हड्ड॥

अर्थात्, ऐ आग! मैं तेरा रांधा हुआ कोई पदार्थ नहीं खाऊंगा। तूने मेरे देखते ही लालादे को जला दिया और उसका हाड़ ही शेष रहा!

उस दिन से वे आग की पकी हुई कोई चीज नहीं खाते थे। जब वे बहुत दुर्बल होगये, तब लोगों ने समझा बुझाकर उनका विवाह जैसलमेर के राव लहर राज की बेटी चम्पादे से कराया। चम्पादे बड़ी ही सुन्दरी और प्रसन्नमुखी थी। लालादे से भी वह गुण और रूप में बढ़कर थी। पृथ्वीराज उसको बहुत प्यार करते थे। पति की संगति से चम्पादे ने भी कविता करनी सीख ली थी।

एक दिन पृथ्वीराज बालों में कंघी कर रहे थे। चम्पादे उनके पीछे खड़ी थी। पृथ्वीराज ने दाढ़ी में से एक सफेद बाल निकालकर फेंक दिया। तब चम्पादे मुंह फेरकर हंसने लगी। पृथ्वीराज ने दर्पण में उसकी परछाईं देख कर पीछे देखा और फिर लज्जित होकर कहा—

पीथल[1] धोला[2] आवियां[3], बहुली लागी खोड़।
पूरे जोबन पदमणी, ऊभी[4] मूंह मरोड़॥
पीथल पली[5] टमक्कियां[6], बहुली लग गई खोड़।
स्त्रामीनी[7] हांसा करे, ताली दे मुख मोड़॥
पीथल पली टमक्कियां, बहुली लागी खोड़।
मरवण[8] मत्त गयंद ज्यों, ऊभी मुक्ख मरोड़॥

---

१ पृथ्वीराज। २ सफेद। ३ आगये। ४ खड़ी। ५ सफेद बाल। ६ चमक आये। ७ स्वामी की। ८ कामिनी स्त्री।

यह सुनकर चम्पादे ने पृथ्वीराज के मन की ग्लानि मिटाने के लिए कहा—

प्यारी कहे पीथल सुनो , धोलां दिस मत जोय ।
नरां, नाहरां,[1] डिगमिरां[2] , पाकां ही रस होय ।।
खेड़ज[3] पक्कां धोरियां[4] , पंथज गउधां[5] पाव ।
नरां तुरंगां बन फलां , पक्कां पक्कां साव ।।

इसी प्रकार दोनों, राजा रानी का जीवन बडे आनन्द से बीता । पथ्वाराज ने डिङ्गल भाषा में रुक्मणि-मङ्गल काव्य बनाया है ।

उसमान

उसमान गाजीपुर के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम शेखहुसन था । ये जहांगीर बादशाह के समय में हुए । संवत् १६७० में इन्होंने चित्रावली नाम की एक प्रेम-कहानी लिखी, जो दोहा चौपाइयों में है । सुनते हैं इन्होंने और भी कुछ ग्रन्थ लिखे हैं । इनके जन्म-मरण का ठीक-ठीक पता नहीं चलता । चित्रावली की कथा बड़ी मनोहर है । उसमें चित्रावली की बाटिका का वर्णन, उसका नखसिख, विरह, षट्ऋतु और बारहमासा आदि देखने योग्य है । कुंवर ढूंढ़न खंड में कवि ने कितने ही देशों और प्रदेशों का वर्णन किया है । सबसे अचम्भे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अंगरेजों का भी वर्णन किया है । ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् १६१२ में सूरत में अपना गुदाम बनाया था, और सन् १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है । गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रहकर अंगरेजों के विषय में इतनी जानकारी रखना कवि के लिए साधारण बात नहीं है । हम यहां का०ना०प्र०सभा द्वारा प्रकाशित चित्रावली से कुंवर ढूंढनखंड का कुछ अंश उद्धृत करते हैं और उसी पुस्तक से कुछ उत्तम दोहे भी प्रस्तुत करते हैं—

---

१ बैलों । २ दिगम्बर, योगी, यती । ३ खेती । ४ बैलों । ५ ऊंट ।

चौपाई

जिन पच्छूं दिस कीन्ह पयाना , पहिलहिं गा सो देस मुलताना।
देखेसि सिंधी लोग सबाईं , महिरावन सब सेवहिं साईं ॥
हेरेसि ठठ्ठा नगर सुहावा , विहंग हरिन सेवै गंजावा।
काबुल हेरि मोगल कर देसा , जहां पुहिम पति होइ नरेसा ॥
देखेसि रूम सिकदर केरा स्याम रहा होइ सकल अंधेरा।
देखेसि मक्का विधि अस्थाना , हीय अंध तें पाहन जाना ॥
हाजी संग मिलि गयउ मदीना , का भा गये जो साफ न सीना।
गा बगदाद पीर के तीरा , जेहि निहचै तेहि संग हमीरा ॥
इस्ताम्बोल मिसर पुनि हेरा , गा लदाख लहु कीन्हेसि फेरा।
दखिन देस को जे पग धारा , चला ताकि सो लंक पहारा ॥
पहिलेहि गै हेरिस गुजराता , सुन्दर धनी लोग सुख राता।
गयो जाम जहं कच्छी होई , लोग सुरूप सुखी सब कोई ॥
बलंदीप देखा अंगरेजा , जहां जाइ नहिं कठिन करेजा।
ऊंच नीच धन संपति हेरा , मद बराह भोजन जिन केरा ॥
जहां जाइ उहं बन्दर साजा , लगा संग चढ़ि गयउ जहाजा।

दोहे

"मान" करहु जो करि सकहु , कथनी अकथ अपार।
कथे न कर कछु आवइ , करनी करतब सार ॥ १ ॥
कौन भरोसा देह का , छाड़हु जतन उपाय।
कागद की जस पूतरी , पानि परे घुलि जाय ॥ २ ॥
तब लहु सहिये बिरह दुख , जब लगि आव सो वार।
दुःख गये तब सुक्ख है , जानै सब संसार ॥ ३ ॥
सब कहं अमिरित पांच है , बंगाली कहं सात।
केला, कांजी, पान, रस , साग, माछरी, भात ॥ ४ ॥
छत्री सुनि जो ना करे , तिय अरु गाय जोहारि।
पुहुमी कुल गारी चढ़ै , सरग होइ मुख कारि ॥ ५ ॥

लोयन जाहि कटाच्छ सर , मारि प्रान हरि लीन्ह ।
अधर बचन ततखिन दोऊ , अमिय सींचि जिव दीन्ह ॥ ६ ॥
कहां सो विक्रम सकबंधी , कहां सो राजा भोज ।
हम हम करत हेराइगे , मिला न खोजे खोज ॥ ७ ॥

मलूकदास

बाबा मलूकदासजी का जन्म लाला सुन्दरदास कक्कड़ खत्री के घर म, बैसाख बदी ५, सं० १६६१ में, गांव कड़ा, जिला इलाहाबाद में हुआ। इनकी भुजा इतनी लम्बी थी कि घुटने तक आ जाती थी। लड़कपन में ये गांव-गांव कम्बल बेचा करते थे। साधुओं को और गरीबों को बिना दाम लिये ही कम्बल दे दिया करते थे। कुछ दिनों के बाद ये अपना सारा समय भगवद्भजन में ही बिताने लगे। इनकी कीर्ति दूर दूर तक फैली और हजारों लोग दर्शन को आने लगे। इनके गुरु का नाम विठ्ठलदास था। वे द्रविड़ देश के महात्मा थे। बाबा मलूकदास सदा गृहस्थाश्रम में रहे। इनकी एक कन्या थी। थोड़ी ही अवस्था में स्त्री और पुत्री दोनों का देहान्त हो गया।

सवत् १७३९ में, १०८ वर्ष की अवस्था में मलूकदासजी ने चोला छोड़ा। शरीर छोड़ने से पहले ही इन्होंने अपनी मृत्यु का ठीक-ठीक समय अपने चेलों को बतला दिया था।

मलूकदासजी के पन्थ की मुख्य गद्दियां कड़ा (प्रयाग), जैपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, कलापुर, नैपाल और काबुल में हैं। जगन्नाथपुरी में भी मलूकदासजी का स्थान है। जहां इनके नाम का टुकड़ा अब तक मिलता है।

मलूकदासजी की कविता ज्ञान से भरी है। इनके कुछ चुने हुए पद और साखियां यहां उद्धृत की जाती है—

(१)

दर्द दिवाने बावरे , अलमस्त फकीरा ।
एक अकीदा लै रहे , ऐसे मन धीरा ॥

प्रेम पियाला पीवते , बिसरे सब साथी ।
आठ पहर यों झूमते , ज्यों माता हाथी ॥
उनकी नज़र न आवते , कोइ राजा रंका ।
बन्धन तोड़े मोह के , फिरते निहसंका ॥
साहब मिल साहब भये , कछु रही न तमाई ।
कह मलूक तिस घर गये , जहं पवन न जाई ॥

(२)

दीनदयाल सुनी जब ते तब ते हिय में कछु ऐसी बसी है ।
तेरो कहाय के जाउं कहां मैं तेरे हित की पट खैंच कसी है ॥
तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी है ।
एहो मुरारि पुकारि कहौं अब मेरी हंसी नहिं तेरी हंसी है ॥

(३)

भील कब करी थी भलाई जिय आप जान फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका ? गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ ब्याध और बधिक निसाफ कहु तिसका ? नाग कब माला लैके बंदगी करी थी बैठ मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका । एते बदराहों की बदी करी थी माफ जन मलूक अजाती पर एती करी रिस का ?

साखी

जहाँ जहां बच्छा फिरै , तहां तहां फिरै गाय ।
कहें मलूक जहँ संतजन , तहां रमैया जाय ॥ १ ॥
अजगर करै न चाकरी , पंछी करै न काम ।
दास मलूका यों कहै , सब के दाता राम ॥ २ ॥
गर्व भुलाने देह के , रचि रचि बांधे पाग ।
सो देही नित देखि के , चोंच संवारे काग ॥ ३ ॥
मलुका सोई बीर है , जो जानै पर पीर ।
जो पर पीर न जानई , सो काफ़िर बेपीर ॥ ४ ॥

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पायो विसराम ॥ ५ ॥
जग लगि थो अंधियार घर, मूस थके सब चोर।
जब मन्दिर दीपक बरयो, वही चोर धन मोर ॥ ६ ॥
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊंचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥ ७ ॥
आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
ये चारों तब ही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥ ८ ॥
प्रभुताही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
को कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥ ९ ॥

(४)

ना वह रीझै जपतप कीन्हे ना आतम के जारे।
ना वह रीझै धोती नेती ना काया के पखारे ॥

दया करै धरम मन राखै घर मे रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जानै ताहि मिलै अविनासी।
सहै कुसबद बादहू त्यागै छाड़ै गर्व गमानी।
यही रीझ मेरे निरंकार की कहत मलूक दिवानी।

(५)

गर्ब न कीजै बावरे, हरि गर्ब अहारी।
गर्बहिं तें रावन गया, पाया दुख भारी ॥
जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सुहाती।
जाके जिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती ॥
एक दया और दीनता, ले रहिये भाई।
चरन गहो जाय साधु के, रीझै रघुराई ॥
यही बड़ा उपदेश है, परद्रोह न करिये।
कहि मलूक हरि सुमिरि के, भौसागर तरिये ॥

प्रवीणराय

प्रवीणराय वेश्या थी। यह ओड़छा के महाराज इन्द्रजीतसिंह के यहां रहती थी। केशवदास जी ने इसी के लिए "कवि-प्रिया" बनाई थी। यह उनकी शिष्या थी। कवि-प्रिया में इसकी प्रशंसा मे उन्होंने लिखा है—

रतनाकर लालित सदा, परमानंदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि राय प्रवीन॥
राय प्रवीन कि सारदा, सुचि रुचि राजत अंग।
बीना पुस्तक धारिनो, राजहंस सुत संग॥

यह बड़ी सुन्दरी थी। वेश्या होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पढ़ी-लिखी थी। कविता भी अच्छी करती थी। इन्द्रजीतसिंह ने संगीत का एक अखाड़ा बनवाया था, जिसमें परम रूपवती, हाव भाव कटाक्ष में कुशल छ:पातरें थीं—प्रवीणराय, रंगराय, नवरंगराय, तीनतरंग, विचित्र नयना और ललित लोचना। और सब तो गाने-बजाने और नाचने में प्रवीण थीं, किन्तु प्रवीणराय इन गुणों के सिवा काव्य-रचना में भी बड़ी निपुण थी। इसीसे इन्द्रजीतसिंह के हृदय में इसे सर्वोच्चस्थान प्राप्त था। इसके गुणों की प्रशंसा सुन कर अकबर बादशाह ने इसे बुला भेजा। तब इसने इन्द्रजीतसिंह के पास जाकर यह सवैया कहा—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज स्वासनसों सिगरी मति गोई।
देह तजौं की तजौं कुलकानि हिये न लजौं लजिहै सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

इन्द्रजीतसिंह ने प्रवीणराय को अकबर के पास नहीं जाने दिया। इससे रुष्ट होकर अकबर ने इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया और प्रवीणराय को जबरदस्ती बुला भेजा। तब प्रवीणराय अकबर के दरबार में गई। वहां उसने अकबर से इस प्रकार प्रार्थना की—

बिनती राय प्रबीन की , सुनिये शाह सुजान ।
जूठी पतरी भखत हैं , बारी बायस स्वान ।।
अंग अनंग तहीं कुच संभु सु केहरि लक गयंदहिं घेरे ।
भौंह कमान तहीं मृग लोचन खंजन क्यों न चुगै तिल नेरे ।।
है कच राहु तहीं उदै इन्दु सु कीर के बिम्बन चोंचन मेरे ।
कोऊ न काहू सों रोस करै सु डरै डर साह अकब्बर तेरे ।।

प्रवीणराय की प्रवीणता देखकर अकबर बहुत प्रसन्न हुये और उसने उसे इन्द्रजीत ही के पास रहने दिया । केशवदास के उद्योग और महाराजा बीरबल की प्रेरणा से अकबर ने इन्द्रजीतसिंह का एक करोड़ जुरमाना भी माफ कर दिया ।

प्रवीणराय का लिखा कोई ग्रन्थ नही मिलता । कुछ फुटकर छंद मिलते हैं । उनमें से कुछ यहां लिखे जाते है—

(१)

सीतल समीर ढार, मंजन कै घनसार अमल अंगौछे आछे मन से सुधारिहौं । दैहौं ना पलक एक लागन पलक पर मिलि अभिराम आछी तपनि उतारिहौं ।। कहत "प्रवीनराय" आपनी न ठौर पाय सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौं । जबही मिलेंगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान प्यारे दाहिनो नयन मूंदि तोही सौं निहारिहौं ।।

(२)

ऊंचे ह्वै सुर बस किये , सम ह्वै नर बस कीन ।
अब पताल बस करन को , ढरकि पयानो कीन ।।

(३)

कमल कोक श्रीफल मंजीर कलधौत कलश हर ।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नील धर ।।
सरवर शरवन हेम मेरु कैलाश प्रकाशन ।

इमि कहि प्रवीन जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि संग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल इदु शीश इमि उरज ढंग॥

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौ चुनि दै चिरैयन को मूंदि राखों जलियों। सारंग में सारंग सुनाइ के "प्रबीन" बीना सारग दै सारंग की जोति करों थलियों॥ बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं करोंगी अधर पान मैन मत्त मिलियो। मोहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय एहो चंद आज नेकु मंद गति चलियो॥

मुबारक

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म स० १६४० में हुआ। ये अरबी, फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनकी कविता बड़ी सरस है। इनका रचा हुआ "अलक शतक" और "तिल शतक" प्रकाशित हो चुका है। और भी इनके बहुत-से स्फुट छन्द मिलते हैं।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये :—

कान्ह की बांकी चितौनि चुभी झुकि कालिह ही झांकी है ग्वालि गवाछनि।
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि ओछे फिरै उभरै चित जा छनि॥
मारयो संभार हिये मे "मुबारक" य सहजै कजरारे मृगाछनि।
सींक लै काजर दे री गंवारिन आंगुरी तेरी कटैगी कटाछनि॥ १॥

पानिप के पुञ्ज सुघराई के सदनमुख सोभा के समूह और सावधान मोज के। लाजन के बोहित प्रमोहित प्रमोदन के नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के॥ दया के दिवान पतिव्रता के प्रधान पूरे नैन थे मुबारक विधान नवरोज के। सफरी के सिरताज मृगन के महाराज साहब सरोज के मुसाहब मनोज के॥ २॥

कनक बरन बाल नगन लसत भाल मोतिन के माल उर सोहैं भली भांति है। चन्दन चढ़ाई चारु चंदमुखी मोहिनी सी प्रात ही अन्हाइ पगु धारे मुसकाति है॥ चूनरी विचित्र स्याम सजि कै मुबारक जू ढांकि नख सिख ते निपट सकुचाति है। चन्द्रमैं लपेटि कै समेटि के नखत माना दिन को प्रणाम किये रात चली जाति है॥३॥

अलक वर्णन

अलक मुबारक तिय बदन , लटकि परी यों साफ़ ।
खुसनवीस मुनसी मदन , लिख्यो कांच पर क़ाफ़ ॥ १ ॥
अलक डोर मुख छबि नदी , बेसरि बंसी लाइ ।
दै चारा मुकतानि को , मो चित चली फंसाइ ॥ २ ॥
जगी मुबारक तिय बदन , अलक ओप अति होइ ।
मनो चन्द के गोद में , रही निसा सी सोइ ॥ ३ ॥
लगि दृग अंजन ढिग अलक , देत मुबारक मोद ।
जनु सांपिन सुत आपनो , भेंटति भरि भरि गोद ॥ ४ ॥
चिबुक कूप मे मन परयो , छबि जल तृषा विचारा ।
कढ़ मुबारक ताहि तिय , अलक डोर सी डारि ॥ ५ ॥

तिल वर्णन

सब जग पेरत तिलन को , थक्यो चित्त यह हेरि ।
तव कपोल को एक तिल , सब जग डारयो पेरि ॥ १ ॥
चिबुक कूप रसरी अलक , तिल सु चरस दृग बैल ।
बारी बैस शृंगार की , सीचत मनमथ छैल ॥ २ ॥
मन योगी आसन कियो , चिबुक गुफा मे जाय ।
रह्यो समाधि लगाय कै , तिल सिल द्वारे लाय ॥ ३ ॥
चिबुक सरूप समुद्र में , मन जान्यो तिल नाव ।
तरन गयो बूड़यो तहां , रूप कहर दरयाव ॥ ४ ॥
गोरी के मुख एक तिल , सो मोहिं खरो सुहाय ।
मानहुं पङ्कज की कली , भौंर बिलंब्यो आय ॥ ५ ॥

रसखान

रसखान दिल्ली के पठान थे । इन्होंने अपने को बादशाही खान्दान का लिखा है। कुछ लोग सैयद इब्राहीम पिहानी वाले को ही रसखान समझते हैं। इनका जन्म सं० १६४० और मरण १६८५ के लगभग कहा जाता है ।

युवावस्था में ये एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। रात-दिन उसके साथ फिरा करते थे, यहां तक कि उसका जूठा भी खाते थे। लोग इनकी हंसी उड़ाते थे, परन्तु ये किसी की परवाह न करते थे। एक बार चार वैष्णव आपस में बात-चीत करते समय कहते थे कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगाना चाहिए, जैसा रसखान ने बनिये के लड़के मे लगाया है। रसखान ने इसे सुन लिया। ये वैष्णवों से मिले। वैष्णवों ने इनके सामने ही श्रीकृष्ण का गुण-कीर्तन किया। उसी समय से ये श्रीकृष्ण के उपासक हो गये। मुसलमान होने पर भी गोस्वामी विठ्ठल-नाथजी ने इनको अपना शिष्य कर लिया और इनकी गिनती गोसाईंजी के २५२ मुख्य शिष्यों में होने लगी। २५२ वैष्णवों की वार्ता में इनका भी चरित्र लिखा है।

ये बड़े प्रेमी जीव थे। इश्क का लुत्फ तो इन्होंने नौजवानी ही से उठाया था, इससे प्रेम की महिमा ये भलीभांति समझते थे। इन्होंने सं० १६७१ में प्रेमवाटिका नामक दोहों का एक ग्रन्थ बनाया। उसके कुछ दोहे सुनिये—

दम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनतें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान॥ १॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नही, अकथ कथा सविसेह॥ २॥
इक अंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहिं सरबस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥ ३॥
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानौं सोय॥ ४॥
अति सूछम कोमल अतिहिं, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस भरपूर॥ ५॥

अपने विषय में इन्होंने यह लिखा है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छोड़ि रसखान॥ १॥
प्रेमनिकेतन श्री बनहिं, आय गोबर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम॥ २॥

इनकी कविता में प्रेम की प्रधानता है। भक्त और प्रेमी होकर शृंगार रस पर भी इन्होंने बड़ी ललित कविता की है। इनकी दो पुस्तकें मिलती हैं---सुजान रसखान और प्रेमवाटिका। सुजान रसखान में १२९ छन्द हैं। प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं। इनके रचे हुये सुजान रसखान में से कुछ चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

(१)

मानस हौं तो वही रसखानि बसों ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरा करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूंपुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवौनिधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आंखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूं कलधौत के धाम करीर के कुञ्जन ऊपर वारौं॥

(३)

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहूं तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै कुछ चेटक सो जुकरयो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥

(४)

सोहत हैं चंदवा सिर मोर के जैसियै सुन्दर पाग कसी है।
तैसियै गीरज भाल विराजति जैसी हिये बनमाल लसी है॥

रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूंदि कै ग्वालि पुकारि हंसी है
खोलिरी घूंघट खोलौं कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है ।।

(५)

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावै ।।
जाहि हिये लखि आनन्द ह्वै जड़ मूढ़ हिये रसखानि कहावै ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछियां भरि छाछ पै नाच नचावैं ।।

(६)

तेरी गलीन में जा दिन तें निकसे मनमोहन गोधन गावत ।
ये व्रज लोग सों कौन सी बात चलाइ कै जो नहिं नैन चलावत ।।
वे रसखानि जो रीझि हैं नेकु तौ रीझि कै क्यों बनवारि रिझावत ।
बावरी जोपै कलंक लग्यो तौ निसंक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत ।।

(७)

दानी भये नये मांगत दान हो जानि है कंस तौ बन्धन जैहौ ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहौ ।।
रोकत हो बन मे रसखानि चलावत हाथ घनो दुःख पैहौ ।
जैहौ जो भूषण काहू तिया को तो मोल छला के लला न बिकैहौ ।।

सेनापति

सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । ये अनूपशहर जिला बुलन्दशहर के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम गंगाधर पितामह का परशुराम और गुरु का नाम हीरामणि था । इनका जन्मकाल सं० १६४६ के आसपास माना जाता है । इनके मृत्युकाल का ठीक ठीक पता नहीं चलता । सेनापति ने स्वयं अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम
जिन कीने यज्ञ जाकी जग में बड़ाई है ।
गंगाधर पिता गगाधर के समान जाके
गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है ।।

महाजान मनि विद्या दानहू ते चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित ते पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है।।

सेनापति ने "काव्य-कल्पद्रुम" और "कवित्त-रत्नाकर" नामक दो ग्रन्थ रचे थे। कवित्त-रत्नाकर स० १७०६ में सम्पूर्ण हुआ। इन्होंने अपनी कविता की स्वयं अपने मुह से प्रशसा की है। वास्तव में इनकी कविता बड़ी चमत्कारपूर्ण होती थी। इनका षट्ऋतु-वर्णन तो बड़ा ही अद्भुत हुआ है। हम इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत करते है:—

केतो करो कोय पैये करम लिखोय ताते दूसरी न होय उर सोय ठहराइये। आधी ते सरस बीति गई है बरस अब दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये। चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये। चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छ के पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये।। १ ।।

महा मोह कन्दिन मे जगत जकन्दनि मे दिन दुख ददनि मे जात है बिहाय कै। सुख को न लेस है कलेस सब भांतिन को सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै। आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं डारौ लोक लाज के समाज बिसराय कै। हरिजन पुञ्जनि मै वृन्दावन कुञ्जनि मै रहौं बैठि कहुं तरवर तर जाय कै।। २ ।।

पान चरनामृत को गान गुन गानन को हरि कथा सुने सदा हिये को हुलसिबो। प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की भाल भुज कंठ उर छापन को लसिबो।। सेनापति चाहत है सकल जनम भरि वृन्दाबन सीमा तें न बाहर निकसिबो। राधा मन रंजन की सोभा नैन कंजन की माल गरे गुञ्जन की कुञ्जन को बसिबो।। ३ ।।

धातु सिलदारु निरधारु प्रतिमा को सार सो न करतार है बिचार बीच गेह रे। राखि दीठि अन्तर जहां न कुछ अन्तर है जीभ को निरन्तर जपावत हरे हरे। अञ्जन विमल सेनापति मन रञ्जन दै जपि के निरञ्जन

परम पद लेह रे। करि न सन्देह रे वही है मन देहरे कहा है बीच देहरे कहा है बीच देहरे ॥ ४ ॥

नाहीं नाहीं करै थोरे मांगे सब देन कहै मंगन को देखि पट देत बार बार है। जिनके लखत भली प्रापति की घरी होत सदा सब जन मन भाय निरधार है॥ भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य कन कन जोरे दान पाट परिवार है। सेनापति बचन की रचना बिचारि देखो दाता और सूम दोऊ कीन्हे एक सार है॥ ५॥

नूतन जोबन वारी मिली हो जोबन वारी, सेनापति बनवारी मन म बिचारिये। तेरी चितवन ताके चुभी चित वनिता के उचित वनिता के मया के पग धारिये॥ सुधि न निकेतन की चढ़ी उनके तन की पीर मीन केतन की जाइ कै निवारिये। तो तजि अनवरत वाके और न वरत कीजै लाल नव रत बाल न बिसारिये॥ ६॥

फूलन सों बाल को बनाइ गुही बेनी लाल भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है। अङ्ग अंग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू बीरी निज कर तै खवाई अतिहित है॥ ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है। चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आंखिन सों कही प्रानपति! यह अनुचित है॥ ७॥

जो पै प्रानप्यारे परदेस को पधारे तातें विरह तें भई ऐसी ता तिय की गति है। करि कर ऊपर कपोलहिं कमल नैनी सेनापति अनमनि बैठियै रहति है॥ कागहिं उड़ावै कबौं कबौं करै सगुनौती कबौं बैठि अवधि के बासर गिनति है। पढ़ी पढ़ी पाती कबौं फेरि कै पढ़ति कबौं बैठि प्रीतम के चित्र में स्वरूप निरखति है॥ ८॥

जनक नरिन्द नन्दिनी को बदनारविन्द सुन्दर बखानो सेनापति बेद चारि कै॥ बरनी न जाइ जाकी नेकहू निकाई लोनुराई करि पंकज निसंक डारे मारि कै॥ बार बार जाकी बराबरि को विधाता अब रचि पचि विधु को बनावत सुधारि कै। पूनो का बनाय जब जानत न वैसो भयो कुहू के कपट तब डारन बिगारि कै॥ ९॥

चल्यो हनुमान रामबान के समान जान सीता सोध काज दसकंधर नगर को। राम को जुहारि बाहुबल को संभारि करि सब ही के संसै निरवारी डारि डर को ।। लागी है न वार फांदि परचो पारावार कौन सेनापति कविता बखाने वेगचर को । खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच दृगनि को तारो दौरि मिलै दिनकर को ।। १० ।।

रावन को वीर सेनापति रघुबीर जू की आयो है सरन छांड़ि ताही मद अंध को । मिलत ही ताको राम कोप कै करी है ओप नाम जोय दुर्जन दलन दीनबंधु को ।। देखो दानवीरता निदान एक दान ही में कीन्हे दोऊ दान को बखाने सत्य संध को। लंका दसकंदर की दीनी है विभीषन को संका विभीषन की सो दीनी दसकंध को ।। ११ ।।

बसंत

लाल लाल टेसू फूलि रहे हे विलास संग श्याम रंग भई मानो मसि में मिलाये हें । तहां मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंज मलय पवन उपवन वन धाये हे ।। सेनापति माधव महीना में पलास तरु देखि देखि भाव कविता के मन आये हैं । आधे अंग सुलगि सुलगि रहे आधे मानो विरही दहन काम क्वैला परचाये हैं ।। १२ ।।

केतक असोक नव चंपक बकुल कुल कौन धौं वियोगिन को ऐसो बिकरालु है । सेनापति सांवरे की सुरत की सुरति को सुरति कराय करि डारतु बिहालु है ।। दच्छिन पवन एती ताहू की दवन जऊ सूनो है भवन परदेज प्यारो लालु है । लाल हैं प्रबाल फूले देखत बिसाल जऊ फूले और साल पै रसाल उर सालु है ।। १३ ।।

ग्रीष्म

वृष को तरनि तेज सहसौ किरनि कर ज्वालन के जाल विकरालु बरसतु हैं । तचति धरनि जग जरत धरनि सीरी छांह को पकरि पथी पंछी विरमतु हैं ।। सेनापति नेक दुपहरी के ढरत होतु धमका विषम यों न पातु खरकतु हैं । मेरे जान पौनो सीरी ठौर को पकरि कोनो घरी एकु बैठि कहूं वा में बितवतु हैं ।। १४ ।।

सेनापति तपन तपत उतपति तैसो छायो रतिपति तातें विरह बरतु है। लुवन की लपटैं तें चहुं ओर लपटैं पै ओढ़े सलिल पटैं न चैन उपजतु है॥ गगन गरद धूंधि दसौ दिसा रही रूंधि मानो नभ भारकी भसम बरसतु है। बरनि बताई छिति व्योम की तताई जेठ आयो आतताई पुटपाक सो करतु है॥ १५॥

पावस

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियां। धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी औ दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियां॥ आई सुधि बर की हिये में आनि खरकी सुमिरि प्रान प्यारी यह प्रीतम की बतियां। बीती औधि आवन की लाल मन भावन की डग भई बावन की सावन की रतियां॥ १६॥

सेनापति उनये नये जलद सावन के चारि हूं दिसान घुमरत भरे ताइ के। सोभा सरसाने न बखाने जात कहुं भांति आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ के॥ घन सो गगन छयो तिमिर सघन भयो देखि न परत गयो मानो रवि खोइ के। चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि मेरे जान याही तें रहत हरि सोइ के॥ १७॥

शरद

विविध बरन सुर चाप ते न देखियत मानो मनि भूषन उतारि धरे भेष हैं। उन्नत पयोधर बरसि रसु गिरि रहे नीके न लगत फीके सोभा के न लेस हैं॥ सेनापति आये तें सरदरितु फूलि रहे आसपास कास खेत खेत चहुं देस हैं। जीवन हरन कुंभजोनि के उदै ते भए बरषा विरिध ताके सेत मानो केस हैं॥ १८॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन हैं। फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन वन फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं॥ उदित विमल चंद चांदनी छिटकि रही राम कैसो जस अध ऊरध गगन है। तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब मानहुं जगत छीरसागर मगन है॥ १९॥

हेमंत

सूरे तजि भाजी बात कातिक में जब सुनी हिम की हिमाचल ते चमू उतरति है। आये अगहन कीनो गहन दहन हू को तितहुंते चली कहूं धीर न धरित है॥ हिय में परी है हूल दौरि गहि तजी तूल अब निज मूल सेनापति सुमिरति है। पूस में तिया के ऊंचे कुच कनकाचल में गढ़ वै गरम भई सीत सों लरति है॥ २०॥

आयो सखी पूसो भूलि कंत सों न रूसो केलिही सौं मन मूसौ जीव ज्यो सुख लहतु है। दिन की घटाई रजनी की अघटाई सीतताई हू को सेनापति बरनि कहतु है॥ याही ते निदान प्राप्त वेगि उदै होत नाहिं द्रोपदी के चीर कैसो राति को महतु है। मेरे जान सूरज पताल तपतालै मांझ सीत को सतायो कहलाइ कै रहतु है॥ २१॥

शिशिर

सिसिर में ससि को सरूप पावे सबिताऊ धामहुं में चांदनी की दुति दमकति है। सेनापति होति सीतलता है सहस गुनी रजनी की झांई बासर में झमकति है॥ चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि चकवा की छाती तजि धीर धसकति है। चंद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को ससि संक पंकजनी फूलि न सकति है॥ २२॥

सिसिर तुषार के बुखार से उखारतु है पूस बीते होत सून हाथ पाइ ठिरिकै। द्योस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ सेनापति गाई कछू सोचि कै सुमिरि कै॥ सीत ते सहमकर सहस चरन ह्वै के ऐसे जातु भाजि तम आवत है घिरि कै। जौलों कोक कोकी को मिलत तौलों होत राति कोक अधबीच ही तें आवतु है फिरिकै॥ २३॥

सुन्दरदास

सुन्दरदास जातिके "बूसर" गोती खंडेलवाल बनिये थे। इनके पिता का नाम परमानन्द और माता का सती था। इनका जन्म चैत्रसुदी ९ सं० १६५३ वि० को द्यौसा (जयपुर राज्य) में हुआ। जब सुन्दरदास छः

बरस के हुये, तब दादूदयाल द्यौसा में पधारे थे। उसी समय से दादूदयाल के शिष्य होगये और उनके साथ रहने लगे। संवत् १६६० में दादूदयाल का शरीरान्त होने तक ये नाराणा में रहे। फिर जगजीवन साधु के साथ अपने माता-पिता के घर द्यौसा में आ गये। वहां सं० १६६३ तक रहकर फिर जगजीवन के साथ काशी चले आये। काशी में ये उन्नीस बरस अर्थात् तीस बरस की अवस्था तक संस्कृत,वेदान्त, दर्शन और पुराण आदि पढ़ते रहे। संस्कृत के अतिरिक्त सुन्दरदासजी हिन्दी, फारसी गुजराती और मारवाड़ी आदि भाषायें भी अच्छी तरह जानते थे।

सं० १६८२ में सुन्दरदासजी काशी लौटे। उस समय इनके साथ और भी साधू थे। उनमें एक फतहपुर (शेखावाटी) का भी था। ये उसी के साथ फतहपुर चले गये। फतहपुर में इनके गुरुभाई प्रागदास पहले ही से मौजूद थे। अतएव फतहपुर के साधु-भक्त महाजनों की प्रार्थना से ये भी वहीं ठहर गये। फतहपुर के नवाब अलिफ खां, दौलत खां और ताहिर खां के साथ भी इनका बड़ा मेल हो गया था। अलिफ खां भी भाषा के कवि थे।

सं० १६८८ में प्रागदास का देहान्त होजाने पर इनका चित्त फतहपुर में बहुत कम लगता था। इससे ये प्रायः देशाटन के लिए चले जाया करते थे।

सुन्दरदासजी डीलडौल में बड़े सुन्दर, गोरे रङ्ग के, तेजस्वी और लम्बे थे। आंखें बड़ी सुन्दर और चमकदार थीं। बोलते बहुत मधुर थे। स्वभाव ऐसा अच्छा था कि जो इनसे मिलता, बस, वह इनका भक्त ही हो जाता। बालकों से ये बड़ा प्रेम रखते थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे। स्त्री-चर्चा से इनको बड़ी घृणा थी। ये स्वच्छता को बहुत पसंद करते थे। इसीसे देश-देश के मलिन व्यवहार की इन्होंने खूब ही दिल्लगी उड़ाई है। गुजरात के लिए —"आभड़ छोत अतीतसों कीजिये, बिलारि कूकुर चाटत हांड़ी," मारवाड़ के लिये—"वृच्छन नीर न उत्तम

चीर सुदेशन में गत देश है मारू," दक्षिण के लिए—"रांधत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करें सब भच्छन," पूर्व के लिये—"ब्राह्मण क्षत्रिय बैसरु सूदर चारोहि बर्न के मच्छ बघारत" फतहपुर की स्त्रियों के लिए—"फूहड़ नार फतेहपुर की" आदि वाक्यों से इनका मनोभाव प्रकट होता है। मालवा और उत्तरा खंड इन्हें बहुत प्रिय थे।

सुन्दरदास बाल-कवि थे। इनकी कविता से प्रकट होता है कि ये अच्छे ज्ञानी और काव्य-कला मर्मज्ञ थे। अन्य संतों की बानी की अपेक्षा मुझे इनकी कविता में अधिक भाव समझ पड़ा है। इन्होंने वेदान्त पर अच्छी कविता की है। इनके रचे छोटे-मोटे ग्रंथों की संख्या ४० से अधिक है।

कुछ के नाम ये हैं---हरिबोल चितावनी, साखी, सवैया, सुन्दर सांख्य, तर्कचिन्तामणि, ज्ञान विलास, सुन्दर विलास, सहजानन्द, अद्-भुत उपदेश आदि।

सुन्दरदास ने कार्तिक सुदी ८ बृहस्पतिवार संवत् १७४६को सांगानेर (जयपुर के पास) में शरीर छोड़ा। शरीर छोड़ते समय इन्होंने ये दोहे कहे थे :—

मान लिये अंतःकरण, जे इन्द्रन के भोग।
सुन्दर न्यारो आतमा, लगो देह को रोग॥
वैद्य हमारे राम जी, औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब, सुमिरण आठो जाम॥
सुन्दर संसय को नहीं, बड़ो महुच्छव एह।
आतम परमातम मिलो, रहो कि बिनसो देह॥
सात बरस सौ में घटै, इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है, देह खेह की खेह॥

सुन्दरदासजी की जहां दाह-क्रिया की गई थी, वहां एक गुमटी बनी है। उसमें सफेद पत्थर पर यह लिखा है—

संवत सत्रह सै छीयाला। कार्तिक सुदी अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरस्पति बार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

फतहपुर के आश्रम में अब भी सुन्दरदास के कपड़े और उनके हाथ की लिखी पुस्तकें आदि चीजें रक्खी हैं। जब मैं फतहपुर में था, तब एक दिन मेरे सुहृदय मित्र बाबू केशवनागजी नेटविया मुझे सुन्दरदास का आश्रम और इनके वस्त्र आदि दिखाने ले गये थे।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं—

कौन कुबुद्धि भई घट अन्तर तू अपने प्रभु सूं मन चोरै।
भूलि गयो विषया सुख में सठ लालच लागि रह्यो अति थोरै॥
ज्यूं कोउ कंचन छार मिलावत लेकरि पत्थर सूं नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमूलक तीर लगी नवका कित बोरै॥ १॥

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह संवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप समै जु पंचागिनि बारी॥
भूख सहै रहि रूख तरे पर सुन्दरदास समै दुख भारी।
डासन छाड़िके कासन ऊपर आसन मारिपै आस न मारी॥ २॥

काहू सों न रोष तोष काहू सों न राग द्वेष काहू सों न बैर भाव काहू सों न घात है। काहू सों न बकवाद काहू सों नहीं विषाद काहू सों न सङ्ग न तौ काहू पच्छपात है॥ काहू सों न दुष्ट बैन काहू सों न लेन देन ब्रह्म को विचार कछू और न सुहात है। सुन्दर कहत सोई ईसन को महाईस सोई गुरुदेव जाके दूसरी न बात है॥ ३॥

बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिये। जोरिये तौ तब जब जोरिबे की जानि परै तुक छन्द अरथ अनूप जामें लहिये॥ गाइये तौ तब जब गाइबे को कण्ठ होइ स्रौन के सुनत ही मन जाइ गहिये। तुक भंग छन्द भंग अरथ मिलै न कछु सुन्दर कहत ऐसी बानी नहीं कहिये॥ ४॥

पतिही सूं प्रेम होइ पतिही सूं नेम होइ पतिही सूं छेम होइ पति ही सूं रत है। पति ही है जज्ञ जोग पतिही है रस भोग पति ही सूं

मिटै सोग पतिही को जत है ।। पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुन्य दान पतिही है तीर्थ न्हान पति ही को मत है । पति बिनु पति नाहिं पति बिनु गति नाहिं सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है ।। ५ ।।

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहंकार है । अहंकार हूते तीन गुण सत रज तम तमहू तें महाभूत विषय पसार है ।। रजहू ते इन्द्री दस पृथक पृथक भई सत्तहूं तें मन आदि देवता बिचार है । ऐसे अनुक्रम करि सिष्य सूं कहत गुरु सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है ।। ६ ।।

सुनत नगारे चोट बिकसै कमल मुख अधिक उछाह भूल्यो मायहू न तन में । फेरे जब सांग तब कोई नहिं धीर धरै कायर कंपायमान होत देखि मन में ।। कूदि के पतग जैसे परत पावक माहिं ऐसे टूटि परै बहु सावंत के घन में । मारि घमसान करि सुन्दर जुहारै स्याम सोई सूर-बीर रोपि रहै जाइ रन में ।। ७ ।।

पांव रोपि रहै रण माहिं रजपूत कोऊ हय गज गाजत जुरत जहां दल है । बाजत जुझाऊ सहनाई सिन्धु राग पुनि सुनतहि कायर की छूटि जात कल है ।। झलकत बरछी तिरीछी तरवार बहै मार मार करत परत खलभल है । ऐसे जुद्ध में अडिग्ग सुन्दर सुभट सोई घर माहिं सूरमा कहावत सकल है ।। ८ ।।

आसन बसन बहु भूषण सकल अङ्ग सम्पति विविध भांति भरयो सब घर है । श्रवण नगारो सुनि छिनन में छांडि जात ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहां मर है ।। तन मे उछाह रण माहिं टूक टूक होइ निर्भय निसंक वाके रंचहूं न डर है । सुन्दर कहत कोऊ देह को ममत्व नाहिं सूरमा को देखियत सीस बिनु धर है ।। ९ ।।

कामिनी की देह अति कहिये सघन बन जहां सु तौ जाय कोऊ भूलि कै परत है । कुञ्जर है गति कटि केहरि की भय यामें बेनी कारी नागिन सी फन को धरत है ।। कुच हैं पहार जहां काम चोर बैठो तहां

साधि कै कटाक्ष बान प्रान को हरत है ॥ सुन्दर कहत एक और अति भय तामें राक्षसी बदन खांव खांव ही करत है ॥ १० ॥

देखहु दुरमति या ससार की ।
हरि सों हीरा छांड़ि हाथ तें, बांधत मोट बिकार की ॥
नाना विधि के करम कमावत, खबरि नहीं सिर भार की ।
झूठे सुख में भूलि रहे हैं, फूटी आंख गंवार की ॥
कोइ खेती कोइ बनजी लागै, कोइ आस हथ्यार की ।
अंध धुंधमें चहुं दिसि ध्यायै, सुधि बिसरी करतार की ॥
नरक जानि कै मारग चाले, सुनि सुनि बात लबार की ।
अपने हाथ गले में बाही, पासी माया जार की ॥
बारम्बार पुकार कहत हौं, सोंहैं सिरजनहार की ।
सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक मे छार की ॥११॥
पुरुष प्रकृति संयोग जगत उपजत है ऐसे ।
रवि दर्पण दृष्टान्त अग्नि उपजत है तैसे ॥
सुई होंहि चैतन्य यथा चुम्वक के संगा ।
यथा पवन संयोग उदधि में उठहिं तरंगा ॥
अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्षु रूप कौं गहत है ।
यों जड़ चेतन संयोग तें सृष्टि उपजती कहत है ॥१२॥
गज क्रीड़त अपने रङ्गा, बन में मदमत्त अनङ्गा ।
बलवन्त महा अधिकारी, गहि तरवर लेइ उपारी ।
इक मनुष तहां कोउ आवा, तिहि कुञ्जर देखन पावा ।
उन ऐसी बुद्धि विचारी, फिर आवा नग्र मझारी ।
तब कह्यो नृपति सौं जाई, इक गज बन मांझ रहाई ।
जो लै आवै गज भाई, देहौं तब बहुत बधाई ।
तब विदा होइ घर आवा, मन में कछु फिकिर उपावा ।
तब बुद्धि विधाता दीनी, कागद की हथिनी कीनी ।
तब दूत तहां लै जाहीं, गज रहत जहां बन माहीं ।

तहं खन्दक कीना जाई, पतरे तृन दीन छवाई।
तृन ऊपर मृतिका नाखी, तब ऊपर हथिनी राखी।
हथिनी को देख स्वरूपा, सठ धाय परचो अंधकूपा।
धाइ परचो गज कूप में, देखा नहिं विचारि।
काम-अंध जानै नहीं, कालबूत की नारि ॥१३॥

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेजरी।
जिनके संग न पीव बिरहिनी सेजरी ॥
बिरहै संकल वाहि विचारी सेजरी।
सुन्दर दुःख अपार न पाऊं सेजरी ॥१४॥

तो सही चतुर तूं जान परबीन अति
परै जानि पिंजरे मोह कूवा ॥
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन
गाइ गोविन्द गुन जीति जूवा ॥
आपही आपु अज्ञान नलिनी बंध्यो
विना प्रभु विमुख कै बेर मूवा।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै
राम हरि राम हरि बोल सूवा ॥१५॥

सुन्दर जो गाफिल हुआ, तो वह साईं दूर।
जो बन्दा हाजिर हुआ, तो हाजरां हजूर ॥१६॥
रसु सोई अमृत पिवै, रन सोई जिहि ज्ञान।
सुप सोई जो बुद्धि बिन, तीनौं उलटे जान ॥१७॥
लालन मेरा लाड़ला, रूप बहुत तुझ माहिं।
सुन्दर राखै नैन में, पलक उघारैं नाहिं ॥१८॥
सुन्दर पंछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यों कुटुम्ब सब जानि ॥१९॥
लौन पूतरि उदधि में, थाह लेन कों जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिचही गई बिलाइ ॥२०॥

बिहारीलाल

कविवर बिहारीलाल ककोर कुल के चौबे ब्राह्मण थे। उनका जन्म अनुमान से सं० १६६० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर में हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सं० १७२० म इनकी मृत्यु हुई।

बिहारीलाल जयपुर के महाराज जयसिंह के यहां रहा करते थे। एक बार जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम मे इतने अनुरक्त हो गये कि उन्होंने बाहर निकलना ही बन्द कर दिया। इससे दरबारियों में बड़ी व्याकुलता फैली। तब उनकी प्रेरणा से बिहारीलाल ने यह दोहा लिखकर किसी तरह महाराज के पास भिजवाया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहि विकास यहि काल।
अली कली ही में विध्यो, आगे कवन हवाल॥

दोहे का गूढ़ अभिप्राय समझकर महाराज बाहर चले आये। उस दिन से दरबार में बिहारीलाल का सम्मान बढ़ चला। इनको एक अशरफी प्रति दिन मिला करती थी। जयपुर में ही इन्होंने सतसई बनाई, जो अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। शृङ्गार रस का ऐसा मनोहर ग्रंथ अभी तक हिन्दी-साहित्य मे दूसरा नहीं है। इसकी लगभग तीस टीकाएं हो चुकी हैं। इतने पर भी रसिकों की तृप्ति नहीं हुई है। अब इसकी एक और टीका पंडित पद्मसिंह शर्म्मा की लिखी हुई प्रकाशित हो रही है। दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। यह टीका अब तक की सब टीकाओं से उत्तम मानी जाती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इस टीका के लिए टीकाकार पंडित पद्मसिंह को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया है। कहा नहीं जा सकता कि शर्म्मा जी की इस टीका से रसिकों की प्यास बुझेगी या बढ़ेगी। अभी हाल में लाला भगवान-दीन ने "बिहारी बोधिनी" नाम से सतसई की एक और टीका प्रकाशित की है। अभी अयोध्या जी में, सुनते हैं बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर बिहारी सतसई की एक विस्तृत टीका और तैयार कर रहे हैं।

सतसई में कुल ७१९ दोहे हैं। एक-एक दोहे में बिहारीलाल ने इतना चमत्कार भर दिया है कि उसमें कवियों की कल्पना-शक्ति की खासी झलक दिखाई पड़ती है। यों तो बिहारीलाल के सभी दोहे अशर्फियों के मोल के हैं, परन्तु स्थानाभाव से हम उन सब को प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। उनमें से कुछ चुने हुए दोहे नीचे लिखे जाते हैं—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झांई परे, श्याम हरित द्युति होय ॥ १ ॥
मकराकृत गोपाल के, कुडल सोहत कान।
धस्यो मनो हियधर समर, ड्योढ़ी लसत निसान ॥ २ ॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति।
हरित बास की बांसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति ॥ ३ ॥
अपने अग के जानिके, यौवन नृपति प्रबीन।
स्तन मन नयन नितम्ब को, बड़ो इजाफा कीन ॥ ४ ॥
बिहँसि बुलाय बिलोकिउत, प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को, पिय चूम्यो मुख चूमि ॥ ५ ॥
कजनयनि मजन किये, बैठे ब्यौरति बार।
कच अंगुरिन बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार ॥ ६ ॥
पहुंचति डटि रन सुभट लौं, रोकि सकै सब नाहिं।
लाखनहूं की भीर में, आंखि वही चलि जाहिं ॥ ७ ॥
छिनकु उघारति छिन छुवति, राखति छिनकु छिपाय।
सब दिन पिय खंडित अधर, दर्पन देखति जाय ॥ ८ ॥
चाह भरी अति रिस भरी, विरह भरी सब बात।
कोरि संदेसे दुहुनि के, चले पौरि लौं जात ॥ ९ ॥
युवति जोन्ह मे मिल गई, नेकु न होति लखाइ।
सौंधे के डोरे लगी, अली चली संग जाइ ॥ १० ॥
तू रहि सखि हौंही लखौं, चढ़ि न अटावलि बाल।
बिनही ऊगे ससि समुझि, , देहै अर्घ अकाल ॥ ११ ॥

नाक चढ़े सीबी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूल उहै गहै, पिय कंकरीली गैल॥ १२॥
अलि इन लोयन को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय॥ १३॥
इन दुखिया अंखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥ १४॥
लरिका लेबे के मिसुनि, लंगर मों ढिग आय।
गयो अचानक आंगुरी, छाती छैल छुवाय॥ १५॥
डग कुडगति सी चलि ठठकि, चितई चली निहारि।
लिये जात चित चोरटी, वहै गोरटी नारि॥ १६॥
फेर कछू करि पौरते, फिर चितई मुसक्याय।
आई जामन लेन को, नेहै चली जमाय॥ १७॥
यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरिये जितो सनेह॥ १८॥
जो चाहत चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त॥ १९॥
अनियारे दीरघ नयनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछू, जिहि बस होत सुजान॥ २०॥
बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मे न।
हरिनी के नैनान तें, हरिनी के ये नैन॥ २१॥
बेसर मोती धनि तुही, को पूछै कुल जाति।
पीबो कर तियो अधर को, रस निधरक दिन राति॥ २२॥
तो लखि मो मन जो गही, सो गति कही न जात।
ठोड़ी गाड़ गड़्यो तऊ, उड़्यो रहत दिन रात॥ २३॥
जहां जहां ठाड़्यो लख्यो, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूं बिन छिन गहि रहत, दृगनि अजहुं वहि ठौर॥ २४॥

चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥ २५ ॥
सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमन सैल पर, आतप परयो प्रभात ॥ २६ ॥
छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अङ्ग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपत ताफ़ता रंग ॥ २७ ॥
दृगन लगत बेधत हियो, विकल करत अंग आन।
ये तेरे सब तें बिषम, ईछन तीछन बान ॥ २८ ॥
झूठे जानि न संग्रहे, मन मुंह निकसे बैन।
याही ते मानो किये, बातन को बिधि नैन ॥ २९ ॥
जटित नीलमनि जगमगति, सींक सुहाई नांक।
मनो अली चंपक कली, बसि रस लेत निसांक ॥ ३० ॥
बेसरि मोती दुति झलक, परी ओठ पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोंछो जाय ॥ ३१ ॥
ललित स्याम लीला ललन, चढ़ी चिबुक छवि दून।
मधु छाक्यो मधुकर परयो, मनो गुलाब प्रसून ॥ ३२ ॥
दुरत न कुच बिच कंचुकी, चुपरी सादी सेत।
कवि अंकन के अर्थ लौं, प्रगट दिखाई देत ॥ ३३ ॥
अजौं तरयो नाही रह्यो, स्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसर लह्यो, बसि मुकतन के संग ॥ ३४ ॥
वाहि लखे लोयन लगै, कौन युवति की जोति।
जाके तन की छांह ढिग, जोन्ह छाह सी होति ॥ ३५ ॥
दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥ ३६ ॥
क्यों बसिये क्यों निबहिये, नीति नेह पुर नाहिं।
लगा लगी लोयन करें, नाहक मन बंधि जाहिं ॥ ३७ ॥

नैना नेकु न मानहीं, कितो कहौं समझाय।
तन मन हारे हू हंसे, तिन सों कहा बसाय॥ ३८॥
लटकि लटकि लटकत चलत, डटत मुकुट की छांह।
चटक भर्‌यो नट मिलि गयो, अटक भटक बट माह॥ ३९॥
लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुंहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं॥ ४०॥
सन सूखौ बीत्यो बनी, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहरि अजौं, धर धरहरि हिय नारि॥ ४१॥
कहा कहौं वाकी दसा, हरि प्रानन के ईस।
बिरह ज्वाल जरिबो लखे, मरिबो भयो असीस॥ ४२॥
निस अंधियारी नीलपट, पहिरि चली पिय गेह।
कहो दुराई क्यों दुरै, दीप सिखा सी देह॥ ४३॥
ल्याई लाल बिलोकिये, जिय को जीवनमूलि।
रही भौन के कोन मे, सोन जुही सी फूलि॥ ४४॥
कोटि जतन कोऊ करौ, तन की तपनि न जाय।
जौ लौं भीजे चीर लौं, रहै न प्यौ लपटाय॥ ४५॥
भौंहनि त्रासति मुख नटति, आंखिन सों लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर इंची, आगे आवति जाति॥ ४६॥
बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौहन हसै, देन कहै नटि जाय॥ ४७॥
मिलि मिलि चलि चलि मिलि चलत. आंगन अथयो भानु।
भयो मुहूरत भोर के, पौरिहि प्रथम मिलानु॥ ४८॥
तनक झूठ निसवादिली, कौन बात पर जाय।
तिय मुख रति आरम्भ की, नहिं झूठिये मिठाय॥ ४९॥
छतो नेह कागद हिये, भई लखाइ न टांक।
बिरह तचे उघर्‌यो सु अब, सेहुंड़ को सो आंक॥ ५०॥

करके मीड़े कुसुम लौं, गई विरह कुम्हिलाय।
सदा समीपिन सखिन हू, नीठि पिछाना जाय॥ ५१॥
औंधाई सीसी सुलखि, बिरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छींटौं छुयो न गात॥ ५२॥
तच्यो आंच अति विरह की, रह्यो प्रेमरस भीजि।
नैनन के मग जल बहै, हियो पसीजि पसीजि॥ ५३॥
बिछुरे जिये सकोच यह, बोलत बने न बैन।
दोऊ दौरि लगे हिये, किये निचौहे नैन॥ ५४॥
अहे दहेंड़ी जिनि धरै, जिनि तू लेहि उतारि।
नीके है छींके छुये, ऐसी ही रहि नारि॥ ५५॥
तौ लगि या मन सदन में, हरि आवैं केहि बाट।
विकट जटे जौं लौं निपट, खुलै न कपट कपाट॥ ५६॥
पत्राही तिथि पाइये, वा घर के चहुं पास।
नितप्रति पून्यो ही रहत, आनन ओप उजास॥ ५७॥
पांय महावर देन को, नायन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एंड़ी मीड़त जाय॥ ५८॥
मानहुं विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोंछन को कियो, भूषन पायनदाज॥ ५९॥
बाल छबीली तियन में, बैठी आप छिपाय।
अरगटही फानूससो, परगट होत लखाय॥ ६०॥
पहिर न भूषन कनक के, कहि आवत यहि हेत।
दर्पन कैसे मोरचे, देह दिखाई देत॥ ६१॥
कागज पर लिखत न बनत, कहत संदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात॥ ६२॥
जब जब वे सुधि कीजिये, तब तब सब सुधि जाहिं।
आंखिन आंख लगी रहैं, आंखैं लागति नाहिं॥ ६३॥

सघन कुंज छाया सुखद , सीतल मन्द समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वही , वा जमुना के तीर ॥ ६४ ॥
इत आवत चलि जात उत , चली छः सातिक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै , लगी उसासनि साथ ॥ ६५ ॥
करी विरह ऐसी तऊ , गैल न छांड़त नीच ।
दीन्हे हूं चसमा चखनि , चाहै लखै न मीच ॥ ६६ ॥
नासा मोरि नचाय दृग , करी ककाकी सौंह ।
कांटेसी कसकत हिये , गड़ी कटीली भौंह ॥ ६७ ॥
रस सिंगार मञ्जन किये , कंजन भंजन दैन ।
अंजन रंजन हूं बिना , खंजन गंजन नैन ॥ ६८ ॥
भूषन भार संभारहीं , क्यों यह तनु सुकुमार ।
सूधो पांय न परत महि , सोभा ही के भार ॥ ६९ ॥
मैं बरजी कै बार तूं , उत कत लेत करोंट ।
पंखुरी लगे गुलाब की , परिहैं गात खरोंट ॥ ७० ॥
गोरी गदकारी परत , हंसत कपोलन गाड़ ।
कैसी लसत गंवार यह , सुन किरवा की आड़ ॥ ७१ ॥
भिर घर को नूतन पथिक , चले चकित चित भागि ।
फूल्यो देखि पलास बन , समुहै समुझि दवागि ॥ ७२ ॥
कहलाने एकत रहत , अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोवनसों कियो , दीरघ दाघ निदाघ ॥ ७३ ॥
प्यासे दुपहर जेठ के , थके सबै जल सोधि ।
मरुधर पाय मतीरहू , मारू कहत पयोधि ॥ ७४ ॥
बिखम बृखादित की तृखा , जियत मतीरनि सोधि ।
अमित अपार अगाध जल , मारो मूंड़ पयोधि ॥ ७५ ॥
पावस घन अंधियार में , रहो भेद नहिं आन ।
राति दिवस जान्यो परे , लखि चकई चकवान ॥ ७६ ॥

अरुन सरोरुह कर चरन, दृग खंजन मुख चंद।
समय आय सुन्दर शरद, काहि न करत अनंद ॥ ७७ ॥
जेती सम्पति कृपन की, तेती तू मति जोर।
बढ़त जाय ज्यों ज्यों उरज, त्यों त्यों हियो कठोर ॥ ७८ ॥
कोटि यतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहि बीच।
नल बल जल ऊंचो चढ़ै, अन्त नीच को नीच ॥ ७९ ॥
तन्त्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ॥ ८० ॥
कैसे छोटे नरन तें, सरत बड़नि के काम।
मढ़ो दमामो जात है, कहिं चूहे के चाम ॥ ८१ ॥
अति अगाध अति ऊथरो, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहां, जाकी प्यास बुझाय ॥ ८२ ॥
जगत जनायो जिहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आंखिन सब देखिये, आंख न देखी जाहिं ॥ ८३ ॥
मीत न नीति गलीत ह्वै, जो धरिये धन जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तौ जोरिये करोरि ॥ ८४ ॥
दुसह दुराज प्रजान में, क्यों न करै दुख द्वन्द।
अधिक अंधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चन्द ॥ ८५ ॥
घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन याचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाय ॥ ८६ ॥
बसै बुराई जासु मन, ताही को सन्मान।
भलो भलो कहि छांड़िये, खोटे ग्रह जप दान ॥ ८७ ॥
कहै यहै श्रुति समृतिहूं, सबै सयाने लोग।
तीन दबावत निकट ही, राजा पातक रोग ॥ ८८ ॥
इक भीजे चहले परे, बूड़े बहे हजार।
कितने अवगुन जग करत, नै वै चढ़ती बार ॥ ८९ ॥

बुरो बुराई जो तजै, तौ मन खरो सकात।
ज्यों निकलंक मयक लखि, गनै लोग उतपात ॥ ९० ॥
सीतलताऽरु सुगन्ध की, महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥ ९१ ॥
बढ़त बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ ९२ ॥
सगति सुमति न पावई, परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर मे, हीग न होय सुगंध ॥ ९३ ॥
सबै हंसत करतार दै, नागरता के नांव।
गयो गरब गुन को सबै, बसे गमेले गांव ॥ ९४ ॥
को कहि सकै बड़ेन सों, लखे बड़ीयो भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारन ये फूल ॥ ९५ ॥
चले जाहु ह्यां को करै, हाथिन को व्योपार।
नहिं जानत यहि पुर बसै, धोबी ओड़ कुम्हार ॥ ९६ ॥
नर की अरु नल नीर की, एकै गति करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊंचो होय ॥ ९७ ॥
गिरितें ऊंचे रसिक मन, बूड़े जहां हजार।
वहै सदा पमु नरन को, प्रेम-पयोधि पगार ॥ ९८ ॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कटीली डार ॥ ९९ ॥
इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
हुइ है बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥१००॥
पट पांखें भख कांकरे, सदा परेई सङ्ग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही बिहंग ॥१०१॥
भरत प्यास पिंजरा परयो, सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियतु, बायस बलि की बेर ॥१०२॥

नहिं पावस ऋतुराज यह , तज तरुवर मति भूल ।
अपत भये बिन पाइ है , क्यों नव दल फल फूल ॥१०३॥
वे न यहां नागर बड़े , जिन आदर तो आब ।
फूल्यो अनफूल्यो भयो , गंवई गांव गुलाब ॥१०४॥
कर ले सूंघि सराहि कै , रहे सबै गहि मौन ।
गन्धी गन्ध गुलाब को , गंवई गाहक कौन ॥१०५॥
करि फुलेल को आचमन , मीठो कहत सराहि ।
चुप करि रे गन्धी चतुर , अतर दिखावत काहि ॥१०६॥
कनक कनक तें सौगुनी , मादकता अधिकाय ।
वहि खाये बौराय जग , यहि पाये बौराय ॥१०७॥
बड़े न हूजें गुनन बिन , बिरद बड़ाई पाय ।
कहत धतूरै सों कनक , गहनो गढ़ो न जाय ॥१०८॥
कन देब्यो सौंप्यौ ससुर , बहू थुरहथी जानि ।
रूप रहिचढ़े लखि लग्यो , मांगन सब जग आनि ॥१०९॥
गुरुजन दूजे ब्याह को , नित उठि रहत रिसाय ।
पति की पति राखत बधू , आपुन बांझ कहाय ॥११०॥
परतिय दोष पुरान सुनि , हंसि मुलकी सुखदानि ।
कसकरि राखी मिश्र हूं , मुंह आई मुसुकानि ॥१११॥
बहुधन ले अहसान के , पारो देत सराहि ।
वैदबधू हंसि भेद सों , रही नाह मुख चाहि ॥११२॥
या अनुरागी चित्त की , गति समझै नहिं कोय ।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रंग , त्यों त्यों उज्जल होय ॥११३॥
दीरघ सांस न लेइ दुख , सुख साईं मति भूल ।
दई दई क्यों करत हैं , दई दई सु कबूल ॥११४॥
थोरेई गुन रीझते , बिसराई वह बानि ।
तुमहू कान्ह मनो भये , आज काल के दानि ॥११५॥

अरे हंस या नगर में , जैयो आप बिचारि ।
कागन सों जिन प्रीति कर , कोयल दई बिड़ारि ॥११६॥
यदपि पुराने बक तऊ , सरवर निकट कुचाल ।
नये भये तो का भये , ये मनहरन मराल ॥११७॥
संगति दोष लगे सबन , कहे जु सांचे बैन ।
कुटिल बंक भ्रूसंग में , कुटिल बंक गति नैन ॥११८॥
सतसैया के दोहरे , ज्यों नावक के तीर ।
देखत के छोटे लगें , घाव करैं गम्भीर ॥११९॥
ब्रज भाषा बरनी कविन , बहु बिधि बुद्धि बिलास ।
सब की भूषन सतसई , करी बिहारीदास ॥१२०॥
संवत ग्रहससि जलधि छिति , छठ तिथि बासर चन्द ।
चैत मास पख कृष्ण में , पूरन आनन्द कन्द ॥१२१॥
जन्म लियो द्विजराज कुल , प्रगट बसे ब्रज आय ।
मेरो हरो कलेस सब , केसव केसवराय ॥१२२॥
माहू दीजै मोष , ज्यों अनेक अधमनि दियो ।
जो बांधे ही तोष , तौ बांधो अपने गुनन ॥१२३॥
मैं समुझो निरधार , यह जग काचो कांच सो ।
एकै रूप अपार , प्रतिबिंबित लखिये जहां ॥१२४॥
सीस मुकुट कटि काछनी , कर मुरली उर माल ।
यहि बानिक मो मन बसो , सदा बिहारीलाल ॥१२५॥

चिन्तामणि

चिन्तामणि महाकवि भूषण के बड़े भाई थे । इनका जन्मकाल सं० १६६६ के लगभग अनुमान किया जाता है । ठाकुर शिवसिंह ने इनके बनाये पांच ग्रन्थ लिखे हैं—छन्द विचार, काव्य विवेक, कवि कुल कल्पतरु, काव्य प्रकाश और रामायण । ये कुछ दिनों तक नागपुर के सूर्यवंशी भोंसला मकरन्दशाह के यहां रहे । राजा महाराजाओं के यहां इनका अच्छा मान था ।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहां देखिये—

चोखी चरचा ज्ञान की, आछी मन की जीति।
संगति सज्जन की भली, नीकी हरि की प्रीति ॥ १ ॥

सरद ते जल की ज्यों दिन तें कमल की ज्यों, धन तें ज्यों थल की निपट सरसाई है। घन तें सावन को ज्यों आप तें रतन की ज्यों, गुन त सुजन की ज्यों परम सुहाई है ॥ चिन्तामनि कहै लाछे अच्छरन छन्द की ज्यों, निसागम चन्द की ज्यों दृग सुखदाई है। नगतें ज्यों कंचन बसन्त तें ज्यों बन की, यों जोबन तें तनकी निकाई अधिकाई है ॥ २ ॥

कोटि बिलास कटाक्ष कलोल बढ़ावै हुलास न प्रीतम हीतर।
यों मनि यामे अनूपम रूप जो मैनका मैन बधू कहि ईतर ॥
सुन्दरि सारी सुफेद ये सोहत यों छवि ऊंचे उरोजन की तर।
जोबन मन्त गयन्द के कुम्भ लसै जनु गंग तरंगनि भीतर ॥३॥

आंखिन मूंदिबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
केहू कहू मुसुकाइ चितै अगराइ अनूपम अंग दिखावै ॥
नाह छुई छल सों छतियां हंसि भौंह चढ़ाइ आनन्द बढावै।
जोबन के मद मत्त तिया हित सों पति को नित चित्त चुरावै ॥४॥

भूषण

कानपुर जिले में यमुना नदी के बाएं किनारे पर तिकवांपुर एक गांव है। उस गांव के पास ही "अकबरपुर बीरबल" नाम का एक अच्छा-सा मौजा है। जहां अकबरशाह के सुप्रसिद्ध मंत्री बीरबल का जन्म हुआ था। उसी तिकवांपुर गांव में रत्नाकर त्रिपाठी नाम के एक कान्यकुब्ज कश्यप-गोत्री ब्राह्मण रहते थे। उनके चार पुत्र हुए—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, और नीलकंठ (उपनाम जटाशङ्कर) चारों भाई कवि थे। उनमें भूषण वीररस के बड़े प्रतिभा-शाली कवि हुए। इनके रचे हुए चार ग्रंथ सुने जाते हैं— शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास। परन्तु अब केवल शिवराज भूषण और कुछ स्फुट छंद ही मिलते

हैं। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने भूषण की जितनी कवितायें मिल सकी हैं, सबको "भूषण-ग्रंथावली" के नाम से टीकासहित प्रकाशित किया है।

भूषण बड़े प्रतिभाशाली और वीर कवि थे। ये हिन्दुओं के जातीय कवि थे। हिन्दू-जाति की उन्नति और ऐश्वर्य के ये उत्कट अभिलाषी थे। इनके समान अपनी कविता में जातीयता का ध्यान रखनेवाला हिन्दी के पुराने कवियों में कोई नहीं हुआ और इनके समान वीर-कवि तो अब तक कोई न हुआ। यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि भूषण पहले बहुत निकम्मे थे। इनके भाई चिन्तामणि कमाते थे और ये घर बैठे मौज उड़ाया करते थे। एक दिन भोजन करने के समय इन्होंने अपनी भावज से नमक मांगा। भावज ने ताना मारकर कहा—क्या नमक कमाकर लाये हो, जो उठा करके दूं? यह बात इनको ऐसी लगी कि ये उसी समय भोजन छोड़कर घर से निकल गये। चलते समय इन्होंने भावज से कहा—अच्छा अब नमक कमाकर लावेंगे, तभी भोजन करेंगे। कहा जाता है कि इसके पश्चात् साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने में इन्होंने बड़ा परिश्रम किया। और जब अच्छी कविता करने लगे तब ये चित्रकूटाधिपति हृदयराम सोलंकी के पुत्र रुद्रराम के पास गये। ये प्रतिभावान् थे ही, रुद्रराम ने इनकी कविता का चमत्कार देख इन्हे कवि भूषण की उपाधि दी। इस नाम से ये इतने प्रसिद्ध हुए कि अब इनके मुख्य नामका पता ही नही चलता। वहां से ये औरंगजेब के दरबार में गये, जहां इनके बड़े भाई चिन्तामणि रहते थे। चिन्तामणि ने बादशाह से इनका परिचय कराया। औरङ्गजेब ने इनको कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। इस पर इन्होंने कहा—आप हाथ धोकर बैठिये, तब मैं कविता सुनाऊंगा, क्योंकि शृङ्गार रस की कविता सुनकर आपका हाथ ठौर कुठौर पड़ा होगा, इससे वह अपवित्र होगया है। मेरी कविता सुनकर आप का हाथ मोछों पर चला जायगा। हाथ न धोने से मोछ अपवित्र हो जायगी। औरङ्गजेब ने यह सुनकर क्रोध से कहा—यदि हाथ मोछ पर न गया तो तेरा सिर कटवा लूंगा। भूषण ने निर्भयता से कहा—हां। निदान औरंङ्गजेब हाथ धोकर बैठा और

भूषण ने कविता पढ़नी प्रारम्भ की। भूषण की वीररसमयी ओजस्विनी कविता सुनकर औरङ्गजेब को सचमुच जोश आया और वह मोछ पर ताव देने लगा। बस, भूषण की प्रतिज्ञा पूरी हुई। औरङ्गजेब ने भूषण को बहुत पुरस्कार दिया। उस दिन से दरबार में इनकी प्रतिष्ठा बढ़ चली। सं० १७२३ मे शिवाजी दिल्ली गये। उस समय भूषण दिल्ली ही में थे। औरङ्गजेब का हिन्दू-द्वेष देखकर उनका चित्त उससे बहुत विरक्त था। परन्तु शिवाजी को हिन्दू-जाति और धर्म की रक्षा के लिए खड़ा देखकर उनको बड़ी आशा हुई। शिवाजी के दिल्ली से चले जाने पर एक दिन औरङ्गजेब ने कवियों से कहा—तुम लोग मेरी झूठी बड़ाई किया करते हो, सच्ची बात कहो। अन्य कवि तो चुप रहे, परन्तु भूषण से न चुप न रहा गया। इन्होंने दो कवित्त में उसकी खासी निन्दा की। इससे औरङ्गजेब बहुत ही बिगडा और वह भूषण को मारने उठा। परन्तु दरबारियों के समझाने से रुक गया। भूषण उसी समय से दिल्ली छोड़कर शिवाजी के दरबार मे चले गये। वहां इनका बड़ा सम्मान हुआ। लाखों रुपये,घोड़े, हाथी और गाव इनको मिले। ये शिवाजी के साथ कई लड़ाइयों में भी उपस्थित थे। ऐसी कहावत है कि वहां से इन्होंने एक लाख रुपये का नमक खरीदकर अपनी भावज के पास भेजा था।

शिवाजी के यहां से भूषण सं० १७३१ में घर लौटे। राह में आते समय महाराज छत्रसाल बुन्देला के यहां भी गये थे। छत्रसाल ने चलते समय इनकी पालकी का डंडा अपने कंधे पर रखकर इनका सम्मान बढ़ाया था। शिवाजी और छत्रसाल जैसे स्वाभाविक वीर थे, वैसे भूषण भी सोने में सुगंध होगये। कविता द्वारा जितना सम्मान भूषण को मिला, उतना हिन्दी के किसी कवि को नहीं मिला।

भूषण का जन्म अनुमान से सं० १६७० में और मरण १७७२ में हुआ। भूषण अब इस संसार में नहीं हैं। सैकड़ों वर्ष पहले ही वे विधि-विधान से विवश हो चले गये। परन्तु उनके हृदय का चित्र कविता-रूप

में अब भी हमारे सम्मुख है। भूषण अजर और अमर की भांति हमारे साथ चल रहे हैं। वे एक पुष्प की तरह विकसित होकर अनन्त काल के लिए सुगंध छोड़ गए। भगवान् फिर इस देश में शिवाजी ऐसे वीर और भूषण ऐसे सुकवि उत्पन्न करें।

हिन्दी में भूषण ही वीर रस के सर्वोत्तम कवि हैं। इससे हमने इन की कुछ अधिक कविताएं उद्धृत की हैं। भूषण की कुछ चुनी हुई कविताएं आगे दी जाती हैं—

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहार नेकहूं न मनके। भूषण भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े बाजे भए उमराय तुजक करन के॥ साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि और चाहि रह्यो चकि बने ब्योंत अनबन के। ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूंदि तुरकन के॥ १॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है। पौन बारिबाह पर सम्भु रतिनाह पर ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥ दावा द्रुम दंड पर चीता मृगझुण्ड पर भूषण बितुण्ड पर जैसे मृग-राज है। तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलिच्छ बस पर सेर सिवराज है॥ २॥

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज भूषण जे बाज की समाजें निदरत हैं। पौन पाय हीन, दृग घूंघट में लीन, मीन जल में बिलीन क्यों बराबरी करत हैं॥ सब ते चलाक चित्त तेऊ कुलि आलम के रहै उर अन्तर में धीर न धरत हैं। जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं॥ ३॥

अफजलखान को जिन्होंने मयदान मारा बीजापुर गोलकुण्डा मारा जिन आज है। भूषण भनत फरासीस त्यों फिरंगी मार हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है॥ देखत में रुसतमखां को जिन खाक किया सालकी सुरति आजु सुनी जो अवाज है। चौंकि चौंकि चकता कहत चहुंघा ते यारो लेत रहो खबरि कहां लौं सिवराज है॥ ४॥

पेंज प्रतिपाल भूमिभार को हमाल चहु चक्क को अमाल भयो दंडक जहान को। साहिन को साल भयो ज्वाल को जवाल भयो हर को कृपाल भयो हार के विधान को ॥ वीर रस ख्याल शिवराज भुवपाल तुव हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को। तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो हिन्द को दिवाल भयो काल तुरकान को ॥ ५ ॥

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द तें। भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दतें ॥ बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द तें। दृगजल कज्जल कलित बढ़्यो कढ़्यो मानो दूजा सोत तरनितनूजा को कलिन्द तें ॥ ६ ॥

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो हरम सरम एक संग बिनु ढग ही। नैनन ते नीर धीर छूट्यो एक सग छूट्यो सुख रुचि मुख रुचि त्योंही बिन रंग ही ॥ भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललाने न गहत बल अंगही। दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं उत्तर की आस जीव आस एक संगही ॥ ७ ॥

बचैगा न समुहाने बहलोल खां अयाने भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा। तुझते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा ॥ साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हें गढ़ जिसका तू चाकर औ जिसकी तू परजा। साहि का ललन दिली दल का दलन अफजल का मलन सिवराज आया सरजा ॥ ८ ॥

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाह हूं के सब बादशाहन के गढ़ कोट हरते। भूषन कहैं यों अवरंग सो वजीर, जीति लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥ सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते। चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥ ९ ॥

बैर कियो सिव चाहत हो तबलों अरि बाह्यो कटार कठैठो।
यों ही मलिच्छहिं छांड़ै नहीं सरजा मन तापर रोस में पैठो ॥

भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पांव उमैंठो।
बीछू के घाय धुक्योई धरक्क ह्वै तो लग धाय धराधर बैठो ॥१०॥

बिना चतुरंग संग वानरन लै कै बांधि वारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है। पारथ अकेले द्रोन भीषम सों लाख भट जीति लीन्हीं नगरी विराट में बड़ाई है ॥ भूषन भनत ह्वै गुसलखाने में खुमान अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है। तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा वीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ॥ ११ ॥

लोमस की ऐसी आयु होय कौन हू उपाय तापर कवच जो करनवारा धरिये। ताहू पर हूजिये सहसबाहु, तापर सहसगुनो साहस जो भीमहु ते करिये ॥ भूषन कहें यों अवरंगजू सों उमराव नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन में मरिये। चलै न कछू इलाज भेजियत वे ही काज ऐसो होय साज तौ सिवा सों जाय लरिये ॥ १२ ॥

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूं पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु व्यास के अग सोहानी ॥
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥१३॥

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है। साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर सिव की कथान में सनेह झलकत है ॥ भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को तुरकान मारिबे को बीर बलकत है। साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि सरजा के दृगन उछाह छलकत है ॥ १४ ॥

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहें ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत है। कहे ते कहत बात कहे ते पियत खात भूषन भनत ऊंची सांसन जहत हैं ॥ पौढ़े हैं तो पौढ़े, बैठे बैठे, खरे खरे, हमको हैं, कहा करत, यों ज्ञान न गहत हैं। साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि साहि सब रात-दिन सोचत रहत हैं ॥१५॥

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही जगदेव जनक जजाति अम्ब-

रीक सों । भूषन भनत तेरे दान जल-जलधि में गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सों ।। चंद कर कंजलक, चांदनी पराग, उड़ वृन्द मकरन्द बुन्द पुज के सरीक सों । कन्द सम कयलास, नाक गंग नाल, तेरे जस पुण्डरीक को अकास चंचरीक सों ।।१६।।

चित अनचैन आंसू उमगत नैन देखि बीबी कहें बैन मियां कहियत काहिनै । भूषन भनत बूझे आये दरबार तें कंपत बार बार क्यों सम्हार तन नाहिनै ।। सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत बाएं दाहिनै । सिवाजी की सङ्क मानि गयेहौ सुखाय तुम्हें जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै ।।१७।।

मार करि पातसाही खाकसाही कीन्हीं जिन जेर कीन्हीं जोर सों लै हद्द सब मारे की । खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब हिसि गई हिम्मति हजारों लोग सारे की ।। बाजत दमामे लाखों धौंसा आगे घहरात गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की । दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारै दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की ।।१८।।

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है । बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है ।। थर थर कांपत कुतुबशाह गोलकुण्डा हहरि हबस-भूप भीर भरकति है । राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते बादसाहन की छाती दरकति है ।।१९।।

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन सहर सिरोज लौं परावने परत है । गोंड़वानो तिलंगानो फिरंगानो करनाट रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं ।। साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत हैं । बीजापूर गोलकुण्डा आगरा दिली के कोट बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ।।२०।।

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं । राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं ।। भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की

देस देस कीरति बखानी तव सुनी में । साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी में ॥२१॥

सारस से सूबा करवानक से साहजादे मोर से मुगल मीर धीर हीं धचैं नहीं । बगुला से बंगस बलूचियो बतक ऐसे काबुली कुलङ्ग याते रन में रचैं नही ॥ भूषन जू खेलत सितारे में शिकार शिवा साहि को सुवन जाते दुवन सचैं नहीं । बाजी सब बाज से चपेटैं चंगु चहू ओर तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचैं नहीं ॥२२॥

"सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों कहत बार बार" कहि पातसाह गरजा । सुनिये "खुमान हरि तुरुक गुमान महिदेवन जे वायो" कवि भूषन यों अरजा ॥ तुम वाको पाय कै जरूर रन छोरो वह रावरे वजीर छोरि देति करि परजा । मालुक तिहारो होत याहि मे निबेरो रन कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा ॥२३॥

फिरगाने फिकिरि औ हद्द सुनि हबसाने भूषन भनत कोऊ सोवत न घरी है । बीजापुर बिपति बिडारि सुनि भाज्यो सब दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है ॥ राजन के राज सब साहिन के सिरताज आज सिवराज पातसाही चित धरी है । बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार धाम धाम धूम धाम रूम साम परी है ॥२४॥

दारा की न दौर यह रार नहीं खजुवे की बांधिबो नहीं है कैधों मीर सहबाल को । मठ विस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ॥ गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलान कीन्हें ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को । बूड़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिल्लीपति धक्का आनि लायो सिवराज महा-काल को ॥२५॥

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि कीन्हीं सिवराज वीर अकह कहानियां । भूषन भनत तिहुं लोक में तिहारी धाक दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियां ॥ आगरे अगारन ह्वै फांदत कगारन छ्वै

बांधती न बारन मुखन कुम्हलानियां। कीबी कहै कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियां ॥२६॥

छूटत कमान और तीर गोली बानन के मुसकिल होत मुरचान हू की ओट में। ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो दावा बांधि पर हला बीर भट जोट में ॥ भूषन भनत तेरी किस्मत कहां लौ कहौं हिम्मत यहां लगि है जाकी भट झोट मे। ताव दै दै मूछन कगूरन पै पांव दै दै अरि मुख घाव दै दै कूदे परें कोट मे ॥२७॥

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि सुनि असुरन के सु सीने धरकत हैं। देव लोक नाग लोक नर लोक गावें जस अजहू लौं परे खग्ग दांत खरकत हैं। कटक कटक काटि कोट से उड़ाय केते भूषन भनत मुख मोरे सरकत हैं। नरभूमि लेटे अध कटे कर लेटे परे रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं ॥२८॥

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोगताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे। जानि गैरमिसिल गुमीले गुसा धारि उर कीन्हों ना सलाम ना बचन बोले सियरे॥ भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो सारी पात-साही के उड़ाय गये जिगरे। तमकते लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥२९॥

देवल गिरावते फिरावते निशान अलि ऐसे डूबे राव राने सबे गए लब की। गौरी गनपति आप औरन को देत ताप आपके मकान सब मार गये दबकी ॥ पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी। कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवा जी न होतो तौ सुनति होति सब की ॥३०॥

ऊंचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी ऊंचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती हैं। कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करै तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं। भूषन सिथिल अङ्ग भूखन सिथिल अङ्ग बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती हैं। भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं ॥३१॥

सोधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अंक लंक चन्द सरमाती हैं। ऐसी अरि नारी सिवराज बीर तेरे त्रास पायन में छाले परे कन्द मूल खाती हैं॥ ग्रीषम तपनि एती तपती न सुनी कान कंज कैसी कली बिनु पानी मुरझाती है। तोरि तोरि आछे से पिछौरा सों निचोरि मुख कहै "अब कहां पानी मुकतौ मै पाती है" ॥३२॥

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ो सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की। कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की। भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की। मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय मुण्ड खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की ॥३३॥

बेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत राम नाम राख्यो अति रसना सुधर में। हिन्दुन का चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की कांधे मे जनेऊ राख्यौ माला राखी गर मै॥ मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मै। राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में ॥३४॥

मतिराम

मतिराम भूषण के सगे भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग और मरण सं० १७७३ के लगभग हुआ। ये बूंदी के महाराज राव भाऊसिंह के यहां रहा करते थे। ये शृङ्गार रस के अच्छे कवि थे।

इनके रचे ललित ललाम, रसराज, छन्दसार पिंगल और साहित्य-सार आदि ग्रन्थ हैं।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं:—

जगत विदित बूंदी नगर, सुख सम्पति को धाम।
कलिजुगहू में सत्यजुग, तहां करत विश्राम॥ १॥
पढ़त सुनत मन दै निगम, आगम स्मृति पुरान।
गीत कवित्त कलान के, जहं सब लोग सुजान॥ २॥

सरद बारिधर के लसत, अमल धौरहर धौल।
चित्रित चित्रित सिखर जहं, इन्द्रधनुष से नौल ॥ ३ ॥
महलनि ऊपर जहं बने, कंचन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौं करत हैं, गगन पीत अनुरूप ॥ ४ ॥
जहं बिमान-बनितान के, श्रमजल हरत अनूप।
सौंध पताकनि के बसन, होइ बिजन अनुरूप ॥ ५ ॥
बीना बेनु निनाद मृग, मोहि अचल करि चन्द।
सौंध सिखर ऊपर जहां, दम्पति करत अनन्द ॥ ६ ॥
जहां छहौं ऋतु में मधुर, सुनि मृदङ्ग मृदु सोर।
सङ्ग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह मोर ॥ ७ ॥
मरकत लाल प्रबाल मनि, मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ में जहां, जरकस बसन बिकात ॥ ८ ॥
मद जल बरषत भूमि के, जलधर सम मातङ्ग।
बिना परनि के खग जहां, सुन्दर तरल तुरङ्ग ॥ ९ ॥
सदा प्रफुल्लित फलित जहं, द्रुम बेलिन के बाग।
अलि कोकिल कलधुनि सुनत, लहत श्रवन अनुराग ॥१०॥
कमल कुमुद कुबलयन के, परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहां, वापी कूप तड़ाग ॥११॥
शुक चकोर चातक चुहिल, कोक मत्त कलहंस।
जहं तरवर सरवरन के, लसत ललित अवतंस ॥१२॥
अक्षैबट बालक उदर, ज्यों संसार समाय।
सकल जगत पानिप रह्यौ, बूंदी में ठहराय ॥१३॥
तामें प्रतिबिम्बित मनौं, सम्पति जुत सुरलोक।
घर घर नर नारी लसैं, दिव्य रूप के ओक ॥१४॥
चन्द्रमुखिन के भौंह जुग, कुटिल कठोर उरोज।
बाननि सौं मन कौं जहां, मारत एक मनोज ॥१५॥

जहां चित्त चोरी करै, मधुर बदन मुसकानि।
रूप ठगत है दृगन कौं, और न दूजो जानि ॥१६॥
ता नागरी को प्रभु बड़ो, हाड़ा सुरजनराव।
रच्यो एक सब गुननि को, बर बिरंचि समुदाव ॥१७॥

बाजत नगारे जहां गाजत गयन्द, तहां सिंह सम कीनो बीर संगर बिहार हैं। कहै मतिराम कवि लोगनि कौं रीझि करि, दीने ते दुरद जे चुवत मदधार हैं॥ शत्रुसाल नन्दराव भावसिंह तेग त्याग, तोसे और औनितल आजु न उदार हैं। हाथिन बिदारिबे को हाथ है हथ्यार तेरे, दारिद बिदारिबे को हाथियै हथ्यार है ॥१८॥

चरन धरै न भूमि बिहरै तहाईं जहां, फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है। भार के डरनि सुकुमार चारु अंगनि मे, करत न अंगराग कुंकुम को पंक है। कहै मतिराम देखि बातायन बीच आयो, आतप मलीन होत बदन मयंक है। कैसे वह बाल लाल बाहर बिजन आवै, बिजनबयार लागे लचकत लङ्क है ॥१९॥

जूथपति बैठ्यो पानी पोषत प्रबलमद कलभ करेनु कनि लीनै संग सुखतें। ग्रह गह्यो गाढ़े बैर पीछले के बाढ़े भयो बलहीन बिकल करन दोह दुखतें। कहै मतिराम सुमिरत ही समीप लखे ऐसी करतूति भई साहिब सुरुख तें। दोऊ बातें छूटी गजराज की बराबर ही पांव ग्राह मुख ते पुकार निज मुखतें ॥२०॥

सोने कैसे बेली अति सुन्दर नवेली बाल, ठाढ़ी ही अकेली अलबेली द्वार महियां। मतिराम अंखियां सुधा की बरषासी भईं, गई जब दीठि वाके मुखचन्द्र पहियां॥ नेक नीरे जाइ करि बातनि लगाय करि, कछू मन पाइ हरि वाकी गही बहियां। सैननि चरचि लई गौननि थकित भई नैननि में चाह करै बैननि में नहियां ॥२१॥

गुच्छनि के अवतंस लसै सिखिपच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर-पल्लव में मतिराम सुहायो॥

गुञ्जनि के उर मंजुल हार निकुञ्जनि ते कढ़ि बाहिर आयो ।
आज को रूप लखे ब्रजराज को आजही आंखिन को फल पायो ॥२२॥
कुन्दन को रंग फीको लगै झलकै असि अंगनि चारु गोराई ।
आंखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई ॥
कोटिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसुकान मिठाई ।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सुनिकाई ॥२३॥
खेलत चोर मिहीचनी आजु गई हुती पाछिले द्योस की नाईं ।
आली कहा कहौं एक भई मतिराम नई यह बात तहांईं ॥
एकहि भौन दुरे एक संगही अंगसो अंग छुवायो कन्हाई ।
कम्प छूट्यो तन स्वेद बढ़यो तनुरोम उठयो अखियां भरि आई ॥२४॥
केलि की राति अघाने नहीं दिनही में लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोउ पानी देजाइयो भीतर बैठि के बात सुनाई ॥
जेठ पठाई गई दुलही हंसी हेरे हरैं मतिराम बुलाई ।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्हीं सु गेह की देहरि पै धरि आई ॥२५॥
आपने हाथ सों देत महावर आपहि बार शृंगारत नीके ।
आपनहीं पहिरावत आनि कै हारि संवारि के मौलसिरी के ॥
हौं सखि लाजन जात गड़ी मतिराम स्वभाव कहा कहौं पीके ।
लोग मिलें घर घेरे कहैं अबहीं ते ये चेरे भये दुलही के ॥२६॥
प्यार पगी पगरी पियकी बसि भीतर आपने सीस सवारी ।
एते में आंगन ते उठिकै तहं आइ गये मतिराम बिहारी ॥
देखि उतारनि लागि तिया पिय सौंहनि सों बहुरी न उतारी ।
नैन नचाइ लजाइ रही मुसुकाइ लला उर लाइ पियारी ॥२७॥

पियत रहै अधरानि को, रस अति मधुर अमोल ।
तातें मीठो कढ़त है, बाल बदन तें बोल ॥२८॥
नैन जौरि मुख मोरि हंसि, नैसुक नेह जनाय ।
आग लेन आई हिये, मेरे गई लगाय ॥२९॥

प्रीतम को मन भावती, मिलत प्रेम उत्कण्ठ।
बांहि न छूटै कंठ ते, नाहिं न छूटै कण्ठ ॥३०॥

कुलपति मिश्र

कुलपति मिश्र आगरे के रहनेवाले चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। चतुर्वेदी ब्राह्मणों में मिश्र, शुक्ल आदि सभी आस्पद होते हैं। इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था। इनका जन्म अनुमान से संवत् १६७७ विक्रम में हुआ। इनका रचा हुआ एक ग्रंथ "रस रहस्य" मिलता है, वह सं० १७२७ में समाप्त हुआ था। इनके मरण-काल का कुछ पता नहीं चलता।

कुलपति मिश्र सस्कृत के बड़े विद्वान् थे। मम्मट के आधार पर रस-रहस्य में इन्होंने काव्य के कई अङ्गों की विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। काव्य के दोष, गुण, अलङ्कार, रस आदि का वर्णन रस-रहस्य में अच्छा है। यह ग्रंथ इडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है, परन्तु बहुत अशुद्ध है। इसके सिवा द्रोण-पर्व, गुण-रस-रहस्य, संग्रह-सार, युक्ति-तरङ्गिणी और नखशिख नामक ग्रथ भी इनके रचे हुए बतलाये जाते हैं; परन्तु अभी तक कहीं से वे प्रकाशित नही हुए।

ये जयपुर के महाराजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के यहां रहते थे। रसरहस्य मे अलङ्कारों के उदाहरण में रामसिंह की प्रशंसा के ही छन्द अधिक हैं। कुलपति ने अपनी कविता में प्राकृत-मिश्रित और उर्दू-मिश्रित हिन्दी-भाषा का प्रयोग किया है।

इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१)

डर बेधत पानिप हरत, मुक्ता जनि बिलखाय।
नाक वास लहि है गुनी, दे अधरन सिर पाय॥

(२)

दान बिन धनी सनमान बिन गुनी ऐसे विष बिन फनी अनी सूर न सहत हैं। मंत्र बिन भूप ऐसे जल बिन कूप जैसे लाज बिन कामिनि के

गुननि कहत हैं ॥ वेद बिन यज्ञ जप जोग मन बस बिन ज्ञान बिन योगी मन ऐसे निबहत हैं । चंद बिन निशा प्राणप्यारी अनुराग बिन सील बिन लोचन ज्यों सोभा को लहत हैं ॥

(३)

दिसि पूरि प्रभा करिकै दसहू गुन कोकन के अति मोद लहै ।
रंगि राखी रसा रंग कुंकुम के अलि गुञ्जत ते जस पुञ्ज कहै ॥
निस एक ह्वै पङ्कज की पतनीन के वाके हिये अनुराग रहै ।
मनो याही ते सूरज प्रात समै नित आवत है अरुनाई लहै ॥

(४)

नीति विना न बिराजत राज न राजत नीति जु धर्म बिना है ।
फीको लगै बिन साहस रूप रु लाज बिना कुल की अबला है ॥
सूर के हाथ बिना हथियार गयंद बिना दरबार न भा है ।
मान बिना कविता की न ओर है दान बिना जस पावै कहा है ॥

जसवन्तसिंह

जसवन्तसिंह जोधपुर के महाराज, महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र और अमरसिंह के छोटे भाई थे । इनका जन्म सं० १६८२ में हुआ । ये सं० १६९५ में अपने पिता के स्वर्गवासी होने पर सिंहासनासीन हुए। औरंगजेब के इतिहास से जसवन्तसिंह के जीवन का बहुत सम्बन्ध है जो इतिहास पढ़नेवालों से छिपा नहीं है । इनका देहान्त सं० १७३८ में, काबुल में हुआ । कहते हैं, औरङ्गजेब ने इन्हें विष दिलाकर मरवा डाला था ।

जसवन्तसिंह भाषा के बड़े मर्मज्ञ कवि थे । इन्होंने इन ग्रन्थों की रचना की है—भाषा-भूषण, अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्द-विलास, सिद्धान्त-बोध, सिद्धान्त-सार, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक । भाषा-भूषण के सिवा इनके शेष ग्रन्थ वेदान्त सम्बन्धी है। भाषा-भूषण २९१ दोहों का अलंकार का ग्रन्थ है ।

जसवन्तसिंह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

मुख शशि वा शशि सों अधिक , उदित जोति दिन राति ।
सागर तें उपजी न यह , कमला अपर सोहाति ॥ १ ॥
नैन कमल ये ऐन हैं , और कमल केहि काम ।
गमन करत नीकी लगै , कनक-लता यह बाम ॥ २ ॥
धरक दुरै आरोप तें , सुद्धापन्हुति होय ।
उर पर नाहिं उरोज ये , कनक-लता फल दोय ॥ ३ ॥
परजस्ता गुन और को , और विषे आरोप ।
होय सुधाधर नाहिं ये , बदन सुधाधर ओप ॥ ४ ॥

बनवारी

बनवारी सं० १६९० के लगभग हुए । शाहजहां के दरबार में सलाबतखां ने अमरसिंह को "गंवार" कह दिया था । इसी पर क्रुद्ध होकर अमरसिंह ने उसे दरबार ही में मार डाला ।

अमरसिंह जोधपुर के महाराज गजसिंह के बड़े पुत्र और औरङ्गजेब के सुप्रसिद्ध सहायक जसवन्तसिंह के बड़े भाई थे । उद्धत स्वभाव होने के कारण सं० १६९१ में अमरसिंह को गजसिंह ने राज पाने के अधिकार से च्युत करके राज से निकाल दिया था । इसीसे गजसिंह के बाद जसवन्तसिंह को जोधपुर की गद्दी मिली। अमरसिंह शाहजहां के पास चले आये। शाहजहां ने उन्हें अपने दरबार में अच्छा पद दिया था । एक बार अमरसिंह ने शाहजहां से कुछ दिनों की छुट्टी ली । पर रानी के प्रेम ने उन्हें ऐसा विवश किया कि वे ठीक समय पर छुट्टी समाप्त करके दरबार में हाजिर न हो सके । शाहजहां का एक मुख्य दरबारी अमरसिंह से कुछ द्वेष रखता था । उसने अमरसिंह के प्रति बहुत-सी बे-सिर-पैर की शिकायतें सुनाकर बादशाह के कान खूब भरे । और जब वे दरबार में हाजिर हुए तब उनकी सलाह से गैरहाजिरी के लिए उन पर एक बड़ा जुरमाना किया गया । अमरसिंह इस अपमान को सह न सके । और उन्होंने भरे दरबार में क्षत्रियोचित निर्भयता के साथ बादशाह की आज्ञा का प्रतिवाद किया । बादशाह तो चुपचाप सुनता रहा, पर सलाबतखां ने

जोश में आकर अमरसिंह को "गंवार" कह दिया। अमरसिंह ने तलवार निकालकर भरे दरबार में सलाबतखां का सिर काट लिया। शाहजहां सिंहासन छोड़ भागा। दरबारी भी रफूचक्कर हुए। जिन्होंने कुछ रोक-थाम की, अमरसिंह ने उन्हें तलवार के घाट उतारा। वहां से निकलकर अमरसिंह अपने महल में आये और कुछ दिनों तक फिर दरबार में न गये।

शाहजहां तो क्रुद्ध था ही, दरबारियों ने उसके कान और भरे। सब ने मिलकर अमरसिंह के एक निकट सम्बन्धी को इसलिये तैयार किया कि वह किसी तरह से अमरसिंह को दरबार में लावे। दरबार में उन पर यथाविधि अपराध लगाकर, उन्हें दंड दिया जायगा। उसने अमरसिंह से मिलकर बहुत ऊंचा-नीचा समझाकर, उन्हें दरबार में आकर शाहजहां से मिलने के लिए राजी किया। उसने झूठमूठ यह भी कहा कि शाहजहां ने तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया है।

अमरसिंह उसकी बातों मे आगये। वे उसके साथ दरबार की ओर चले। शाहजहां के सामने पहुंचने के लिए जो द्वार था, वह इतना नीचा था कि बिना सिर झुकाये कोई उसके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता था। शाहजहां को यह भय था कि शायद अमरसिंह उसे सलाम न करेंगे। इसलिए यह युक्ति की गई थी कि जब अमरसिंह द्वार में प्रवेश करने के लिये सिर झुकावेंगे,तब उसे सलाम समझकर शाहजहां की ओर से उसकी स्वीकृति जाहिर कर दी जायगी।

अमरसिंह ताड़ गये। उन्होंने पहले द्वार के अन्दर सिर न डालकर पैर डाला। इतने में पीछे से उनके सम्बन्धी (शायद अर्जुनसिंह) ने तलवार मारकर उनका सिर धड़से जुदा कर दिया। वह अमरसिंह का सिर लेकर खुशी-खुशी शाहजहां के सामने हाजिर हुआ और कोई बड़ा पुरस्कार पाने की आशा से शाहजहां और उसके दरबारियों की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखने लगा। शाहजहां को उस पर बड़ा क्रोध आया। क्योंकि यद्यपि वह अमरसिंह से रुष्ट हो गया था, पर उनकी वीरता पर वह हृदय से मुग्ध भी था। उसने अमरसिंह की हत्या करनेवाले को घोर तिरस्कार और यन्त्रणायुक्त मृत्यु दण्ड दिया।

अमरसिंह की विधवा रानी ने सती होने की इच्छा प्रकट की। लाश मांगने पर शाहजहां ने कहला भेजा कि अमरसिंह के पुत्र में कुछ शक्ति हो तो वह आकर लाश ले जाय।

अमरसिंह के एक ही पुत्र था। उसका नाम रामसिंह था। रामसिंह की अवस्था उस समय १५ वर्ष से अधिक नहीं थी। शाहजहां का व्यंग सुनकर रानी चुप हो रही, पर रामसिंह ने माता के चरणों पर सिर रख कर कहा,—"मां, अब तो मुझे यह प्रमाणित करना ही होगा कि मैं वीर-पिता का वीर-पुत्र हूं।" यह कहकर रामसिंह कुछ विश्वस्त और वीर राजपूतों को साथ लेकर राजमहल की ओर चला, जहां शाहजहा ने लाश को कड़े पहरे में रखवा दिया था। वीर बालक रामसिंह ने पहरे वालों को एक कड़ी लड़ाई में परास्त करके लाश को घोड़े पर रक्खा और मां के सामने लाकर रख दिया। शाहजहां अपने महल की खिड़की से यह सब हाल देख रहा था। रामसिंह की वीरता पर वह हृदय से मोहित हो गया। उसने उसी वक्त रानी के पास सवार भेजकर कहलाया कि बादशाह खुद अमरसिंह की रथी के साथ स्मशान तक आरहे हैं। शाहजहां अपने सब दरबारियों को साथ लेकर धूमधाम से शरीक हुआ। उसने रामसिंह को गोद में लेकर कहा,—"तुम्हारा तेज देखने के लिए ही मैंने लाश को रोकवा रक्खा था। तुम वीर-पिता के वीर-पुत्र हो, तुमको दरबार में अमरसिंह का स्थान दिया जायगा।" शाहजहां अमरसिंह को याद करके कुछ समय तक आंसू गिराता रहा। रानी उसके सामने ही अमरसिंह की लाश के साथ सती होगई।

अमरसिंह के सम्बन्ध की यह कथा लोक में ऐसी ही प्रसिद्ध है। इस घटना को लेकर दो एक काव्य भी रचे गये हैं। बनवारी ने अपने छन्दों में सलाबतखां के मारे जाने भर का जिक्र किया है।

बनवारी ने शृङ्गाररस की कविता भी की है, और लोग उसे भी पसन्द करते हैं। इनका लिखा कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया। यहां इनके कुछ छन्द लिखे जाते हैं—

(१)

धन्य अमर छिति छत्रपति , अमर तिहारो नाम ।
शाहजहां की गोद में , हत्यो सलाबत खान ।।

(२)

उत गंवार मुख ते कढ़ी , इत निकसी जमधार ।
"वार" कहन पायो नहीं , कीन्हों जमधर पार ।।

आनि कै सलाबत खां जोरि कै जनाई बात तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी । दिल्लीपति साह को चलन चलिबे को भयो गाज्यो गजसिंह को सुनी हैं बात बर की ।। कहै बनवारी बादसाहि के तखत पास फरकि फरकि लोथ लोथिन सों अरकी । करकी बड़ाई कै बड़ाई बाहिबे की करौं बाढ़ि की बड़ाई कै बडाइ जमधर की ।। ३ ।।

नेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि यह बरसाने वर मुरली बजावेंगे । साज लाल मारी लाल करें लालसारी देखिबे की लालसारी लाल देखे सुख पावेंगे ।। तू ही उरबसी उर बसी नहिं और तिय कोटि उरबसी तजि तोसों चित्त लावेंगे । सेज बनवारी बनवारी तन आभरन गोरे तनवारी बनवारी आज आवेंगे ।। ४ ।।

गोपालचन्द्र मिश्र

गोपालचन्द्र मिश्र का जन्म छत्तीसगढ़ में सं० १६९० के लगभग माना जाता है । इनके पिता का नाम गंगाराम और पुत्र का माखनचन्द्र था । माखनचन्द्र भी अच्छे कवि थे । रामप्रताप-काव्य का आधा गोपाल-चन्द्र ने लिखा था, और शेष उनकी आज्ञा से माखनचन्द्र ने लिखकर ग्रन्थ को पूर्ण किया ।

छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रतनपुर के हैहयवंशी राजा राजसिंह के दरबार में गोपालचन्द्र का बड़ा मान था । कहा जाता है कि इनको राजा राजसिंह ने अपना दीवान बना लिया था । राजा की इच्छानुसार इन्होंने सं० १७४६ में "खूब तमाशा" नामक काव्य की रचना की ।

इनके रचे हुए ग्रन्थों के नाम ये हैं—

खूब तमाशा (१७४६), जैमिनी अश्वमेध (१७५२), सुदामाचरित्र (१७५५), भक्ति चिन्तामणि (१७५९), रामप्रताप, छन्दविलास (पिंगल)।

यहां इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

सोई नैन नैन जो बिलोके हरि मूरति को, सोई बैन बैन जे सुजस हरि गाइये। सोई कान कान जामें सुनिये गुनानुवाद, सोई नेह नेह हरि जू सों नेह लाइये॥ सोई देह देह जामें पुलकित रोम होत, सोई पांव पांव जामें तीरथन जाइये। सोई नेम नेम जे चरन हरि प्रीति बाढ़े, सोई भाव भाव जो गोपाल मन भाइये॥

(२)

दान सुधा जल तें जिन सींच सतोगुन बीच बिचार जमायो।
बाढ़ि गयो नभमंडल लौं महिमंडल घेर दसों दिसि छायो॥
फूल घने परमारथ फूलनि पुण्य बड़े फल तें सरसायो।
कीरति वृक्ष बिसाल गुपाल सु कोविद वृन्द बिहंग बसायो॥

चारों दिशाओं के सुख दुःख

दोहा

रूप विशेष विशेष धन, भूमि सुहावन देस।
जाय करौं याते अबै, पूरब को परदेस॥

कवित्त

ताफ़ताऽरु बाफ़ता मुसज्जर औ साफ़ मखमलऽरु मुकेसी पट नाना सुखदाइये। सरस कृपान तरकसऽरु कमान बान जरकसी चीरा हीरा जहां जाइ लाइये॥ सुकवि "गुपाल" फुलवारी धाम धाम अम्ब श्रीफल कदम्ब पौंड़ा पानन को खाइये। बड़े होत केस, मिलै तन्दुल असेस, प्यारी पूरब के देस में विशेष सुख पाइये॥

सोरठा

लगैं चोर ठगवाइ, पेट चलै पानी लगै।
कीजै कबहुं न जाइ, पूरब के परदेस को॥

कबित्त

पानी लगि जात बहु फूलि जात गात पुनि पेट चलि जात कछु खाइ जात जबहूं। जादू करि करिकै संभोग सुख काज पशु पच्छी करि राखैं नारि नरन को अबहूं॥ ब्राह्मन बनिक मीन मांस मधु खात तेल हरद लगाय न्हात नारी नर सबहूं। फांसी देकै हाल मारि डारैं ठगजाल यातें जैये न "गुपाल" दिसि पूरब की कबहूं॥

दोहा

दयावान धनवान पुनि, लोग बड़े गुनवान।
यातें दच्छिन देस को, करिये सदा पयान॥

कबित्त

चीरा चीर सालू सेला समला बहारदार जरकसी काम जहां होत नाना भांति है। सुकवि "गोपाल" लाल रतन प्रबाल मन मानिक बिसाल मोती मंहगी सुजाति है॥ मेवा औ मिठाई फल फूल मूल मुक्त गज तरुनी अनूप रूप झलकत गात है। देखे बनै बात सदा सोभा सरसात प्यारी दच्छिन दिसा के गुन कहे नहिं जात है॥

दोहा

दक्षिण पिय सुन कान दे, दक्षिण दक्षिण जात।
लक्षण लक्षण गक्षि के, लक्षण ही लगि जात॥

कबित्त

घोटूं लौं उघारी निरलज्ज रहें नारी मांस मदिरा अहारी द्विज होइं अनाचारी हैं। सुकवि "गुपाल" प्याज लहसुन खात बहु लूटें ठग चोर प्रजा रहै न सुखारी हैं॥ लोग निरहेत भानिजे को ब्याहिं बेटी देत रीति बिपरीति सब देखत में न्यारो है। बढ़त अगारी होति बड़ी बड़ी ख्वारी दिसि दक्षिण मझारी जात होत दूख भारी है॥

दोहा

राखे दक्षिण तें अबै, जो दिसि पश्चिम जात ।
ताके अब सुन लीजिये, प्यारी ! सुख अवदात ॥

कबित्त

लोग दयावान तिय सुन्दर सुजान मीठी बोलनि निदान नीर लगै न तहां कहूं । वृषभ बिसाल ऊंचे पुलकार वस्त्र विधि विविध प्रकारन है सूत के जहां कहूं ॥ सुकवि "गुपाल" ताते तरल तुरंग मिलैं, मधुर मतीर भूख लगत जहां कहूं । पार नहीं लहूं जिय सोचत ही रहूं प्यारी पच्छिम दिसा के सुख बरनि कहा कहूं ॥

दोहा

मरत रैन दिन बारि बिन, भटकि भटकि नर नारि ।
करिये नहीं पयान पिय, पश्चिम ओर निहारि ॥

कबित्त

धूरिन के थल सावें ढोल के ढमक्के जल तरु बिन थल तहां सोभा नहीं यामे हैं । चावरऽरु गेहूं रस गोरस न फूल फल मोठ बाजरी को खाय दिवस बितामे हैं ॥ रहत मलीन धर्म कर्म करि हीन लोग पहरत पीन पट ऊनन के जामे हैं । सुकवि "गुपाल" कछु कहत न आवे जात जेते दुख होत सदा पश्चिम दिसा में है ॥

दोहा

हरिद्वार ते कै परसि, बद्रिनाथ केदार ।
होत कृतारथ जीव यह, उत्तर खंड मंझार ॥

कबित्त

लायची लवंग दाख दाड़िम बदाम सेव सालम अगूर पिस्ता खैये उठि भोर को । कस्तूरी केसर जावित्री जायफल दालचीनी देवदारु की सुगंधि चहुंओर को ॥ साल औ दुसाले धुस्सा नाना पसमीना ओढ़ि देखत रहत आछि तियन की मोर को । कहत "गुपाल" प्यारी सुनिये निहोर मोपै कह्यो नहिं जात सुख उत्तर की ओर को ॥

दोहा

सदा सीत भयभीत नर , व्याघ्र सिंह वृष घोर ।
कीजै नहीं पयान पिय , उत्तर दिसि की ओर ॥

कबित्त

बिकट पहार झार घने सिंह स्यार निरबाह नहीं होत रथ बहल को जामे हैं । गिलटी रुगिल्लर अनेक रोग होत जहां चारिहुं बरन जीव हिंसक हरामें हैं ॥ सुकवि "गोपाल" सदा सीत भयभीत लोग बरफ के मारे दुरे रहत गुफा में है । राह में न गामे चल्यो जात न निसा में याते बहु दुख यामें जात उत्तर दिसा में है ॥

दोहा

गाम इजारो छाड़ि के , खेती करिहौं बाम ।
सब जग जाके करे ते , खात पियत निज धाम ॥

कबित्त

सांझहू सबेरे दही दूध के रहत सुख लीयो करै स्वाद ये रसाल नई नई को । नित प्रति रहै सातो पौंनि पै हुकुम सरकार में रहत भलो बस्सा ठकुरई को ॥ जीवैं जग जाते जग जीव को कनूका मिलै मिलै भली बात यह कार्म मरदई को । कहत "गुपाल" बीस नह की कमाई यात सबहीते भला यह पेसा किसनई को ॥

दोहा

खेती करत किसान के , मोते दुःख सुनि लेउ ।
हर लै कै पिय खेत में , भूलि पांव मति देउ ॥

कबित्त

कारो होत देह सहे सीत घाम मेह नित रहै लेह देह सुख नहीं खान पान को । बरहे में वास राखे ब्यौहरे की आस ईतिभीति तें उदास गिरि मान नय मान को ॥ राजै देत पोता हर जोता सुख सोता नाहिं खोता दिन योंही रहै लेसन सयान को । देह में न चाम रहै हाथ मे न दाम याते कहत "गुपाल" काम कठिन किसान को ॥

बेनी

बेनी नाम के दो तीन कवि होगये हैं। एक बेनी असनी के बन्दीजन थे। उनका समय सं० १६९० कहा जाता है। वे दिल्लगी की कविताएं बनाने में बड़े निपुण थे। दूसरे बेनी जि० रायबरेली में बेंती गांव के बन्दीजन थे। शिवसिंह सरोज में उनका समय सं० १८४४ लिखा है। और तीसरे बेनी लखनऊ के बाजपेयी थे। उनका समय शिवसिंह सरोज में सं० १८७६ लिखा है। तीसरे बेनी कविता में अपना नाम "बेनी प्रबीन" रखते थे। दिल्लगी की कविताएं प्राय: सब असनीवाले बेनी की बनाई हुई है। पहले और दूसरे बेनी की बहुत सी कविताओं में यह निर्णय करना कठिन है कि कौन किसकी बनाई हुई है। तीसरे बेनी की कविता "बेनी प्रबीन" के नाम से सहज मे ही पहचानी जा सकती है। यहां हम पहले और दूसरे बेनी की कुछ कविताएं और नमूने के लिए एक कवित्त "बेनी प्रबीन" का भी उद्धृत करते है:—

कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो लीनी दाम थोरो जानि नई सुघरई है। रायजू को रायजू रजाई दई राजी ह्वै के सहर में ठौर ठौर सोहरत भई है। बेनी कवि पाय के अघाय रहे घरी द्वैक कहत न बने कछु ऐसी मति ठई है। सांस लेत उड़िगो उपल्ला और भितल्ला सबै दिन द्वै के बातां हेत रूई रह गई है॥ १॥

आध पाव तेल में तयारी भई रोशनी की आध पाव रूई मे पोशाक भई बर की। आध पाव छाले के गिनौरां दियौ भाइन को मांगि मागि लायो है पराई चीज घर की। आधी आधी जोरि बेनी कवि की बिदाई कीनी ब्याहि आयो जब तं न बोले बात थिरकी। देखि देखि कागद तबीअत सुमादी भई सादी कहा भई बरबादी भई घर की॥ २॥

सेर चार चाउर पसेरिक पिसान माड्यो तापै खरे डाटे कोउ साने बड़ी घानी ना। बहू को बुलाय मसलहत सिखाय कान पैठ जा रसोई कोऊ परसे बेगानी ना॥ बेनी कवि कहै कहा आये आज याके यहां देखि

सुनि परे कहूं अन्न की निसानी ना। कीनी मेहमानी जुरचो पान औ न पानी बकै आपै बड़ो दानी कोऊ जानी कोऊ जानी ना ॥ ३ ॥

हावभाव विविध दिखावे भली भांतिन सों मिलत न रतिदान जागे संग जामिनी। सुबरन भूषण संवारे ते विफल होत जाहिर किये ते हंसे नर गजगामिनी ॥ रहे मन मारे लाज लागत उघारे बात मन पछतात न कहत कहूं भामिनी। बेनी कवि कहै बड़े पापन ते होत दोउ सूम को सुकवि औ नपुंसक को कामिनी ॥ ५ ॥

संभु नैन जाल औ फनी को फूतकार कहा जाके आगे महाकाल दौरत हरौलीतें। सातो चिरजीवी पुनि मारकंडे लोमस लों देख कम्पमान होत खोलें जब झोलीतें ॥ गरल अनल औ प्रलै को दावानल भल बेनी कवि छेदि लेत गिरत हथोलीतें। बचन न पावें धनवन्तरि जो आवें हर गोविन्द बचावै हरगोविन्द की गोली तें ॥ ५ ॥

बार-बार लीखे लगीं लाखन जुआ के जोट आंखिन बरौनिन में कीचर छुपानो है। कानन कनोई नाक चपटी चुवत टरें कारे कारे दंतन मे कीट लपटानो है ॥ मूड़ पै मकर जारो दौलत अंधारो लगै ओढ़े मैलवारो फटो बसन पुरानो है। बोलत हा थूक के फुहारे चले फूहरि के पाद पाद पीसत पिसान हू उड़ानो है ॥ ६ ॥

गड़ि जात बाजी औ गयन्द गन अड़ि जात सुतुर अकड़ि जात मुस-किल गऊ की। दावन उठाय पाय धोखे जो धरत होत आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की ॥ बेनी कवि कहै देखि थर थर कांपे गात रथन के पथ न विपद बरदऊ की। बार बार कहत पुकार करतार तोसों मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की ॥ ७

चूक सो लगत चाखे लूक सो लगावै कंठ ताप सरसावै है अपूरब अराम के। रस का न लेस चोपी रेसा है बिसेस छांड़ि दीन्हें सब देस पकसाने परे घाम के ॥ बुरे बदसूरत बिलाने बदबोयदार बेनी कहै बकला बनाये मानो चाम के। कौड़ी के न काम के सु आये बिन दाम के हैं निपट निकाम हैं ये आम दयाराम के ॥ ८ ॥

चींटी की चलावैं को मसा के मुख आय जांय सांस की पवन लागे कोसन भगत है। ऐनक लगाय मरू मरू कै निहारे परै अनु परमानु की समानता खगत है। बेनी कवि कहै हाल कहां लौं बखान करौं मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत हैं। ऐसे आम दीन्हें दयाराम मन मोद करि जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगत है ॥ ९ ॥

बियत बिलोकत ही मुनि मन डोलि उठे बोलि उठे बरही बिनोद भरे बन बन। अकल बिकल ह्वै बिकाने रे पथिक जन ऊर्द्ध मुख चातक अधोमुख मराल गन ॥ बेनी कवि कहत मही के महाभाग भये सुखद संयोगिन बियोगिन के ताप तन। कंज-पुञ्ज गंजन कृषीदल के रजन सो आये मानभंजन ये अंजन बरन घन ॥ १- ॥

करि की चुराई चाल सिंह को चुरायो लक शशि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की। पिक को चुरायो बैन मृग को चुरायो नैन दसन अनार हांसी बीजरी गम्भीर की ॥ कहै कवि बेनी बेनी ब्याल को चुराइ लीनी रती-रती शोभा सब रति के शरीर की। अब तो कन्हैया जू को चितहू चुराइ लीन्ही छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की ॥ ११ ॥

ऊंची चोली चिक्क मिसी दांतन मे बातन में बार बार हेरि हेरि मन मुसकाने हैं। मुख के न दरस परस मरदूमिन के लैं रहैं मुकुर और अतर अंग साने हैं ॥ बेनी कवि कहै आहिऊहि में प्रवीन बड़े निपट निकाम कहूं काहू के न माने हैं। अजस के खाने जिन्हें कवि न बखाने जिन ऐसे धरे बाने ते जनाने सम जाने हैं ॥ १२ ॥

पृथु नल जनक जजाति मानधाता ऐसे केते भये भूप यश छिति पर छाइगे। काल चक्र परे सक्र सैकरन होत जात कहां लौ गनावों विधि बासर बिताइगे ॥ बेनी साज सम्पति समाज साज सेना कहां पायन पसारि हाथ खोले मुख बाइगे। छुद्र छितिपालन की गिनती गिनावै कौन रावन से बली तेऊ बुल्ला से बिलाइगे ॥ १३ ॥

बेद मत सोधि सोधि देखि कै पुरान सबै सन्तन असन्तन को भेद को बतावतो। कपटी कपूत कूर कलि के कुचाली लोग कौन रामनाम हू

की चरचा चलावतो ।। बेनी कवि कहै मानो मानो रे प्रमान यही पाहन से हिये कौन प्रेम उमगावतो । भारी भवसागर में कैसे जीव होते पार जो पै रामायण न तुलसी बनावतो ।। १४ ।।

बदन सुधाकरै उघारत सुधाकरै प्रकास बसुधा करु सुधाकरै सुधा करै । चरन धरा धरै मृणालऊ धराधरै सू ऐसे अधराधरै ये बिम्ब अधराधरै ।। बैनी दृग हा करै निहारत कहा करै सु बेनी कविता करै त्रिबेनी समता करै । सुरत में सी करै सु मोहनै बसी करै विरंचिहुं यसी करै सु सौतिन मसी करै ।। १५ ।।

मानव बनाये देव दानव बनाये यक्ष किन्नर बनाये पशु पक्षी नाग कारे हैं । दुरद बनाये लघु दीरघ बनाये केते सागर उजागर बनाये नदी नारे हैं । रचना सकल लोक लोकन बनाये ऐसी जुगुति में बेनी परबीनन के प्यारे हैं । राधे को बनाय विधि धोयो हाथ जाम्यो रंग ताको भयो चन्द्र कर झारे भये तारे हैं ।। १६ ।।

बाजी के सुपीठ पै चढ़ायो पीठि आपनी दै कवि हरिनाथ को कछोहा मान सादरै। चक्कवै दिल्ली के जे अथक्क अकबर सोऊ नरहरि पालकी को आपने कंधा धरै ।। बेनी कवि देनी की (औ) न देनी की न मोको सोच नावै नैन नीचे लखि बीरन को कादरै । राजन को दीबो कविराजन को काज अब राजन को लाज कविराजन को आदरै ।। १७ ।।

सुखदेव मिश्र

सुखदेव मिश्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म सं० १६९० के लगभग माना जाता है । ये कम्पिला के रहने वाले थे, और उसी नगर में इनका विवाह भी हुआ था । इनके वंशधर अब भी दौलतपुर, जिला रायबरेली में वर्तमान हे । स्वरचित वृत्तविचार नामक ग्रन्थ में इन्होंने अपने जन्मस्थान कम्पिला का और अपने पूर्वजों का विस्तृत वर्णन लिखा है ।

कुछ दिन तक कम्पिला में विद्याध्ययन करने के बाद ये काशी चले

गये और वहाँ एक संन्यासी से साहित्य पढ़ने लगे । वहां से संस्कृत और भाषा-साहित्य के पूर्ण विद्वान् होकर ये असोथर जिला फतेपुर के राजा भगवतराय खीची के यहां चले गये । वहां इनका बड़ा सम्मान हुआ । वहां कुछ दिन रहने के बाद ये क्रमशः औरङ्गजेब के मन्त्री फाजिल अली, अमेठी के राजा हिम्मतसिंह, मुरारिमऊ के राजा देवीसिंह के यहां गये और सर्वत्र इन्होंने पूरा सन्मान पाया । राजा देवीसिंह के कहने ही से ये कम्पिला छोड़कर सकुटुम्ब दौलतपुर में आगये ।

इन्होंने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की है—

वृत्त-विचार, छन्द-विचार, फाजिलअली-प्रकाश, रसार्णव, शृङ्गारलता, अध्यात्म-प्रकाश, दशरथराय और नखशिख । वृत्त-विचार और छन्द-विचार पिङ्गल के ग्रंथ हैं । मिश्र जी ने संस्कृत और प्राकृत में भी कविताएं रची थीं, परन्तु अब उनका कहीं पता नहीं चलता ।

इनकी कुछ कवितायें यहां उद्धृत की जाती हैं—

ननंद निनारी सासु मायके सिधारी अहै रैनि अंधियारी भरी सूझत न करु है । पीतम को गौन सुखदेव न सुहात भौन दारुन बहत पौन लाग्यो मेघ झरु है । सङ्ग ना सहेली, बैस नवल अकेली, तन परी तलबेली महा लायो मैन सरु है । भई अधरात, मेरो जियरा डेरात, जागु जागु रे बटोही इहां चोरन को डरु है ॥१॥

जोहैं जहां मगु नन्दकुमार तहां चली चन्दमुखी सुकुमार है ।
मोतिन ही को कियो गहनो सब फूलि रही जनु कुन्द की डार है ॥
भीतर ही जु लखी सु लखी अब वाहर जाहिर होत न दार है ।
जोन्हसी जोन्है गईमिलि यों मिलिजात ज्यों दूध में दूधकी धार है॥२॥

यों कछु कीन्हीं अचानक चोट जु ओट सखीन सकी कै दुकूल है ।
देह कंपै मुँह पीरी परी सो कह्यो नहिं जो ह्वै गयो हिय सूल है ॥
मांझ उरोज में आनि लग्यो अंगिरात जहीं उचक्यो भुजमूल है ।
कौन है ख्याल ? खेलार अनोखे! निसंक ह्वै ऐसे चलैयत फूल है ॥३॥

मीन की बिछुरता कठोरताई कच्छप की हिये वाय करिबे को कोल

ते उदार हैं। बिरह बिदारिबे का बली नरसिंह जू सों बामन सों छली बलिदाऊ अनुदार हैं ॥ द्विज सों अजीत बज़बीर बलदेव ही सों राम सों दयाल सुखदेव या विचार है। मौनता में बौध कामकला में कलंकी चाल प्यारी के उरोज ओज दसौ अवतार हैं ॥४॥

मन्दर महिन्द गंधमादन हिमालय में जिन्हें चल जानिये अचल अनुमाने ते। भारे कजरारे तैसे दीरघ दंतारे मेघ मंडल बिहूंडे जेवै शुण्डा दंड ताने ते ॥ कीरति विशाल छितिपाल श्री अनूप तेरे दान जो अमान का बनत बखाने ते। इतै कवि मुख जस आखर खुलत उतै पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते ॥५॥

सबलसिंह चौहान

सबलसिंह चौहान का जन्म संवत् १७०० के लगभग और मरण संवत् १७९२ के लगभग अनुमान किया जाता है। शिवसिंह ने इनको "इटावा के किसी गांव का जमींदार" लिखा है। इन्होंने महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा दोहे चौपाई में लिखी है। कई पर्वों में इन्होंने उनके रचे जाने का संवत् भी दिया है। भीष्म पर्व सं० १७१८ में, स्वर्गारोहण १७८१ में रचा गया। इससे मालूम होता है कि सारा महाभारत इन्होंने ६५ वर्षों में समाप्त किया होगा। इन्होंने लगातार परिश्रम नहीं किया होगा, जब जी में कुछ उमङ्ग उठी, तब कुछ लिख डाला। भाषा महाभारत के सिवा इनका लिखा हुआ रूपविलास पिङ्गल, षटऋतु बरवे और भाषा ऋतूपसंहार भी कहे जाते हैं। महाभारत में इन्होंने युद्धों का वर्णन बड़ा रोचक किया है। महाभारत में चक्रव्यूह युद्ध में अभिमन्यु के अन्तिम प्रयास की कथा का वर्णन सुनिये, ये कैसा करते हैं :--

अभिमनु घेरे आय सब, मारत अस्त्र अनेक।
जिमि मृगगण के यूथ महं, डरत न केहरि एक ॥

लैके सूल कियो परिहारा। वीर अनेक खेत महं मारा ॥
जूझी अनी भभरि कै भागे। हंसिके द्रोण कहन अस लागे ॥

धन्य धन्य अभिमनु गुनआगर । सब क्षत्रिन महं बड़ो उजागर ॥
धन्य सहोद्रा जग में जाई । ऐसे वीर जठर जनमाई ॥
धन्य धन्य जग में पितु पारथ । अभिमनु धन्य धन्य पुरुषारथ ॥
एक वीर लाखन दल मारे । अरु अनेक राजा संहारे ॥
धनु काटे शङ्का नहिं मन में । रुधिर प्रवाह चलत सब तन में ॥
यहि अन्तर बोले कुरुराजा । धनुष नाहिं भाजत केहि काजा ॥
एक वीर को सबै डरत हैं । घेरि क्यों न रथ धाय धरत हैं ॥
बालक देखु करि यह करणी । सेना जूझि परी सब धरणी ॥

दुर्योधन या विधि कह्यो , कर्ण द्रोण सों बैन ।
बालक सब सेना बधी , तुम सब देखत नैन ॥

यह कहि कै दुर्योधन आये । शब्द वीर आगे ह्वै धाये ॥
क्षत्री घेरो अभिमनु रन में । मानहुं रवि आच्छादित घन में ॥
लै के खड्ग फरी गहि हाथा । काट्यो बहु क्षत्रिन को माथा ॥
अभिमनु धाइ खड्ग परिहारे । सम्मुख ज्यहि पावै त्यहि मारे ॥
भूरिश्रवा बाज दश छांटे । कुंवर हाथ को खड़गहि काटे ॥
तीन बाण सारथि उर मारे । आठ बाण तें अश्व संहारे ॥
सारथि जूझि गिरे मैदाना । अभिमनु वीर चित्त अनुमाना ॥
यहि अन्तर सेना सब धाये । मारु मारु कै मारन आये ॥
रथ को खैंच कुंवर कर लीन्हें । ताते मारु भयानक कीन्हें ॥
अभिमनु कोपि खम्भ परिहारे । यक यक घाव वीर सब मारे ॥

अर्जुनसुत इमि मारु किय , महावीर परचंड ।
रूप भयानक देखियतु , जिमि जम लीन्हें दण्ड ॥

क्रोधित होइ चहूं दिशि धाये । मारि सबै सेना बिचलाये ॥
यहि विधि किये भयानक भारत । साहस धन्य धन्य पुरुषारथ ॥
ऐसी मारु खम्भ सों कीन्हें । दश सहस्र राजा बध लीन्हें ॥
मारि सबै राजा बिचलाये । कर लै गदा कुरूपति धाये ॥
शत बान्धव नृप संगहि आये । अरु अनेक राजा मिलि धाये ॥

चहुं दिशि महारथी सब घेरे । क्षत्री सबै वीर बहुतेरे ॥
नाना अस्त्र सबहिं परिहारे । निकट न जाहिं दूरि ते मारे ॥
दुर्योधन कहं देखन पाये । गहे खम्भ अभिमनु तब धाये ॥
जुरे वीर क्षत्री बहुतेरे । खम्भ घाव ते बधेउ घनेरे ॥
जब नरेस के निकटहिं आये । द्रोण गुरू दश बाण चलाये ॥
गुरू द्रोण अति क्रोध कै, मारे बाण अचूक ।
कुंवर हाथ को खम्भ तब, काटि कियो दो टूक ॥
खम्भ कटे अभिमनु भे कैसे । मणि बिनु फणिक विकल जग जैसे ॥
क्रोधित भये सहोद्रानन्दन । चरण घात कै तोरेउ स्यन्दन ॥
रथतें कूदि कुंवर कर लीन्हे । चका उठाय रणहिं शुभ कीन्हे ॥
चका कुंवर कर शोभित कैसे । हरि कर चक्र सुदर्शन जैसे ॥
रुधिर प्रवाह चलत सब अङ्गा । महा शूर मन नेकु न भङ्गा ॥
गहि कैं चका चहूं दिशि धावै । जेहि पावै तेहि मारि गिरावै ॥
दुर्योधन पर चका चलाये । गमा रोपि कुरुनाथ बचाये ॥
क्षत्री घेरि लगे शर मारन । जुरे आइ केते हथियारन ॥
दुस्सासनसुत गदा प्रहारे । अभिमनु के शिर ऊपर मारे ॥
जूझे कुंअर परे तब धरनी । जग महं रही सदा यह करणी ॥
धन्य धन्य सब कोउ कहे, कुंअर रहो मैदान ।
पै गुरु द्रोण मलीन मुख, कहें बचन परिमान ॥

कालिदास त्रिवेदी

कालिदास त्रिवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म अनुमान से सं० १७१० के लगभग बनपुरा गांव (जिला कानपुर) में हुआ । इनकी पुस्तकों से इनके जन्म का कुछ पता नहीं चलता । इनके पुत्र कवीन्द्र और पौत्र दूलह भी बड़े प्रसिद्ध कवि हुये । कालिदास औरंगजेब के दल में किसी राजा के साथ सं० १७४५ की बीजापुर-गोलकुण्डा वाली लड़ाई में गये थे । इनके लिखे हुए केवल तीन ग्रन्थों का अभी तक पता चला

है—बधू-विनोद, कालिदास-हजारा, जजीरा। बधू विनोद नायिका-भेद का ग्रन्थ है। हजारा में हिन्दी के पुराने २१२ कवियों के एक हजार छन्द संग्रह किये गये हैं। जंजीरा में ३२ घनाक्षरी छंद बड़े अद्भुत हैं। इनके रचे हुए राधा माधव बुधमिलन विनोद नामक एक और ग्रन्थ का भी नाम सुना जाता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे लिखे जाते हैं—

गढ़न गढ़ी से गढ़ि महल मढ़ी से मढ़ि बीजापुर ओप्यो दलि मलि सुघराई में। "कालिदास" कोप्यो वीर औलिया अलमगीर तीर तरवारि गह्यो पुहुमी पराई में॥ बूंद तें निकसि महिमंडल घमंड मची लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई में। गाड़ि कै सु झंडा आड़ कीन्ही बादशाहत तातें डकरी चमुण्डा गोलकुण्डा की लड़ाई में॥ १॥

चूमों कर कंज मंजु अमल अनूप तेरो रूप के निधान कान्ह मो तन निहारि दे। कालिदास कहै मेरे पास हरि हेरि हरि माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दे॥ कुंवर कन्हैया मुख चन्द की जुन्हैया चारु लोचन चकोरन की प्यासन निवारिदे। मेरे कर मेहंदी लगी है नंदलाल प्यारे लट उरझी है नकबेसर संभारि दे॥ २॥

प्रथम समागम के औसर नवेली बाल सकल कलानि पिय प्यारे को रिझायो है। देखि चतुराई मन सोच भयो प्रीतम के लखि परनारि मन संभ्रम भुलायो है। कालिदास ताही समै निपट प्रवीन तिया काजर लै भीतिहूं में चित्रक बनायो है। व्यात लिखी सिंहिनी निकट गजराज लिख्यो योनि ते निकसि छौना मस्तक पै आयो है॥ ३॥

आलम और शेख

ठाकुर शिवसिंह ने आलम को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है, और इनका जन्म सं० १७१२ बतलाया है। ये औरंगजेब के समय में थे, और औरंगजेब के पुत्र शाहजादा मुअज्जम के पास रहा करते थे। एक बार आलम ने शेख नामक रंगरेजिन को अपनी पगड़ी रंगने को दी। भूल

से एक कागज का टुकड़ा, जिसमें आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिए बांध दिया था, बंधा ही रह गया। पगड़ी धोते समय शेख ने उस कागज के टुकड़े को खोल कर पढ़ा। उसमें यह लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।"

शेख ने उसके नीचे "कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन" लिखकर, पगड़ी धोकर उसी में बांध दिया। जब आलम को वह पगड़ी मिली और उन्होंने दोहे की पूर्ति हुई देखी, तब उसी समय वे शेख के घर गये, और उन्होंने उसे एक आना पगड़ी की रंगाई और एक हजार रुपये दोहे की पूर्ति कराई दी। उसी दिन से दोनों में प्रेम हो गया। यहां तक कि आलम न मुसलमानी मत ग्रहण करके शेख से विवाह कर लिया। आलम और शेख दोनों की कविताएं प्रेम के चमत्कार से पूर्ण हैं। शेख के गर्भ से आलम के एक पुत्र भी था, जिसका नाम जहान था। एक दिन मुअज्जम ने हंसी मे शेख से पूछा—"क्या आलम की औरत आपही हैं?" शेख ने तुरन्त उत्तर दिया—हां "जहांपनाह, जहान की मा मैं ही हू"। मुअज्जम इससे बहुत लज्जित हुआ।

कोई-कोई ऊपर के दोहे के स्थान पर शेख द्वारा नीचे लिखे कवित्त के चतुर्थ चरण की पूर्ति होनी बतलाते है। तीन चरण आलम ने बनाये थे, चौथे चरण की पूर्ति शेख ने की—

प्रेम रंग पगे जगमगे जगे जामिनि के जोबन की जोति जगि जोर उमगत हैं। मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं झूमत है झुकि झुकि झंपि उघरत हैं। ।। आलम सो नवल निकाई इन नैननि की पांखुरी पदुम पै भंवर थिरकत हैं। चाहत है उड़िबे को देखत मयङ्कमुख जानत हैं रैनि ताते ताहि में रहत हैं ।।

पंडित नकछेदी तिवारी ने इसी घटना-सम्बन्धी एक और ही कवित्त लिखा है। वह यह है—

घट जमानिका है कारे कारे केश निशि खुटिला जराय जरे दीपक

उजारी है। बाजत मधुर मृदबानी सो मृदङ्ग धुनि नैना नटनागर लकुट लट धारी है ॥ आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै श्रम विन्दु अंजुलि पुहुप भरि डारी है। अधर सु रङ्गभूमि नृपति अनंग आगे नृत्य करै बसर की मोती नृत्यकारी है ॥

इनमें से चाहे जिस छन्द की पूर्ति पर आलम रीझे हों, परन्तु इसमे संदेह नहीं कि दोनों बड़े प्रेमी जीव थे। इन दोनों प्रेमियों की जितनी कविताएं मिलती हैं, सब में बड़ा चमत्कार है। शेख के कवित्तों मे श्री कृष्णचंद्र के प्रति उसकी बड़ी भक्ति झलकती है। आलम और शेख की कविताओ का एक संग्रह "आलमकेति" नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके सिवा माधवानल-कामकंदला नामक ग्रंथ भी इन्ही का रचा हुआ कहा जाता है। इधर उधर पुस्तकों में कुछ फुटकर छन्द भी मिलते है। पाठकों के विनोदार्थ कुछ छन्द हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

रति रन विषे जे रहे है पति सनमुख तिन्है बकसीस बकसी है मै बिहंसि कै। करन को कंकन उरोजन को चन्द्रहार कटि माहि किंकिनी रही है अति लसि कै ॥ "शेख" कहै आदर सों आनन को दीन्हों पान नैनन में काजर बिराजै मन बसि कै। एरे बैरी बार ये रहे है पीठि पाछे तातें बार बार बांधति हौं बार-बार कसि कै ॥१॥

कैधों मोर सोर तजि गये री अनत भाजि कैधों उत दादुर न बोलत हैं ये दई। कैधो पिक चातक बधिक काहू मारि डारे कैधों बक पांति उत अंतगति ह्वै गई ॥ "आलम" कहत आली अजहूं न आये कंत कैधों उत रीति विपरीति विधि ने ठई। मदन महीप की दोहाई फिरिबे ते रही जूझि गये मेघ कैधों बीजुरी सती भई ॥२॥

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करे।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करे ॥
आलम जौन से कुंजन में करीं केलि तहां अब सीस धुन्यो करें।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करे ॥३॥

चंद को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै, चंद बिन दिन छवि

लागत अंधयारी है। "आलम" कहत आली अलि फूल हेत चलै, कांटे सी कटीली बेलि ऐसी प्रीति प्यारी है॥ कारो कान्ह कहत गंवारी ऐसी लागति है, मोहिं वाकी स्यामताई लागत उज्यारी है। मन की अटक तहां रूप को बिचार कहां, रीझिबे को पैडों तहां बूझि कछु न्यारी है॥४

पैंडों सम सूधो बेडो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नहीं तहां सबल भगति है। "शेख" भनि तहां मेरे त्रिभुवन राय हैं जु दीनबंधु स्वामी सुरपतिन को पति है॥ बैरी को न बैर बरियाई को न परबेस हीने का हटक नाहीं छीने को सकति है। हाथी की हंकार पल पाछे पहुँचन पावै चींटा की चिघार पहले ही पहुंचति है॥ ५॥

लाल

लाल का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था। भूषण की तरह ये भी बड़े वीर-कवि थे। इनका जन्म सं० १७१४ के लगभग माना जाता है। ये महाराजा छत्रसाल के दरबार में रहा करते थे। बुन्देलखंड में प्रसिद्ध है कि महाराजा छत्रसाल के साथ किसी लड़ाई में गये थे, और वहीं लड़ कर मारे गये। इन्होंने छत्रप्रकाश, विष्णुविलास और राजविनोद नामक तीन ग्रंथ रचे। "छत्रप्रकाश" में दोहा चौपाइयों में महाराज छत्रसाल की जीवनी बडी ही उत्तमता से लिखी गई है। यह पुस्तक काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हुई है। महाराज छत्रसाल शिवाजी महाराज के समय में बुन्देलखण्ड में हुए थे। ये एक साधारण स्थिति से बढ़ते-बढ़ते बुन्देलखण्ड के राजा हो गये। इन्होंने पांच सवार और २५ पयादों को लेकर औरगजेब ऐसे कट्टर बादशाह का सामना किया और अपने साहस के बल पर यवनों का बुन्देलखण्ड से पैर उखाड़ दिया। लाल की कविता के कुछ नमूने देखिये—

दान दया घमसान में, जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिये, ज्यों छत्ता छितिनाह॥

जिन में छिति छत्री छवि जाये। चारिहु युगन होत जे आये॥

भूमि भार भुज दंडिन थम्भे । पूरन करे जु काज अरम्भे ॥
गाय वेद द्विज के रखवारे । जुद्ध जीति जे देत नगारे ॥
छत्रिन की यह वृत बनाई । सदा जग की खांय कमाई ॥
गाय वेद विप्रन प्रतिपालैं । घाउ ऐंड़धारिन पर घालैं ॥
उद्यम तें संपति घर आवै । उद्यम करै सपूत कहावै ॥
उद्यम करै संग सब लागै । उद्यम तें जग में जस जागै ॥
समुद उतरि उद्यम तें जैये । उद्यम तें परमेश्वर पैयें ॥
जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई । जंग वृति क्षत्रिन तब पाई ॥
यह संसार कठिन रे भाई । सबल उमड़ि निर्बल को खाई ॥
छनिक राजसंपति के काजै । बंधुन मारत बंधु न लाजै ॥
कछू कालगति जानि न जाई । सब में कठिन कालगति भाई ॥
सदा प्रबुद्धि बुद्धि है जाकी । तासों कैसे चले कजाकी ॥
साहस तजि उर आलस मांड़ै । भाग भरोसे उद्यम छाडै ॥
ताहि तजै जग संपति ऐसे । तरुनी तजै वृद्धपति जैसे ॥
विपति मांह हिम्मत ठिक ठाने । बढ़ती भये छिमा उर आने ॥
बचन सुदेस सभनि में भाखै । सुजस जोरिबे में रुचि राखै ॥
जुद्धनि जुरे अकेले जैसे । सहज सुभाय बड़ेन के ऐसे ॥
जाकी धरम रीति जग गावै । जो प्रसिद्ध बलवन्त कहावै ॥
जाहि जोट भैयन की भावै । करत अनारबीन बनि आवै ॥
लै अवतार बड़े कुल आवै । जद्ध न जुरै जगत जस गावै ॥
सत्य बचन जाके ठिक ठाये । प्रीति जोग ये सात गनाये ॥

गुरु गोविन्दसिंह

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खों के दसवें गुरु थे। इनका जन्म सं० १७२३ जेष्ठ शुक्ला सप्तमी, शनिवार को अर्द्धरात्रि के समय पटना नगर में हुआ। इनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का गूजरी जी था। इनका विवाह सात ही वर्ष की अवस्था में लाहौर निवासी हरियश खत्री की कन्या से हुआ।

किसी समय गुरु गोविन्दसिंह हिन्दू जाति की ढाल हुए थे। इन्होंने पंजाब में, हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा के लिये एक वीर जाति ही उत्पन्न करदी। विद्वानों का ये बड़ा आदर करते थे। स्वयं भी बड़े मेधावी, देशकालज्ञ और रणनिपुण थे। भादों बदी ४ सं० १७६४ की आधी रात में सोते समय अताउल्ला और गूलखां नामक दो सगे भाई पठानों ने गोदावरी नदी के किनारे अविचल नामक नगर में इनके पेट में कटार भोंक दी। क्योंकि उन पठानों के पिता को गुरु ने युद्ध में मार डाला था। गुरु साहब चीखकर जाग उठे, और उन्होंने उसी समय तलवार उठाकर लपककर ऐसा हाथ मारा कि खां के दो टुकड़े हो गये। घाव से अधिक रक्त निकलने के कारण वहीं इनके भी प्राण गये।

गुरु गोविन्दसिंह संस्कृत और फारसी के विद्वान् और हिन्दी के कवि थे। इन्होंने जाप, सुनीतिप्रकाश, ज्ञानप्रबोध, प्रेम, सुमार्ग, बुद्धि सागर, विचित्र नाटक और ग्रंथ साहब के कुछ अंश की रचना की। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है —

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो कि भूपन से भूप हो कि दाता महा दान हो। प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया रोग सोग के मिटैया किधौ मानी महामान हो॥ विद्या के विचार हो कि अद्वैत अवतार हो कि सिद्धता का सूर्त हो कि सिद्धता की सान हो। जोबन के जाल हो कि कालहू के गाल हो कि सत्रुन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो॥१॥

खूक मलहारी गज गदह विभूति धारी गिदुआ मसान बास करयोई करत हैं। घूघू मठ बासी लगे डोलत उदासी मृग तरवर सदीव मोन साधेई मरत हे॥ बिन्दु के सिधैया ताहि ताज की बड़ैया देत बन्दरा सदीव पाय नागे ही फिरत है। अगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे के तरत हैं॥२॥

धन्य जियो तिहं को जग मुख ते हरि चित्त में युद्ध बिचारे।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढ़े भवसागर तारे॥

धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक ज्यों उजियारै।
ज्ञानहिं की बढ़नी मनो हाथ लै कायरता कतवार बुहारै ॥३॥
का भयो जो सबही जग जीत सु लोगन को बहु त्रास दिखायो।
और कहा जु पै देश विदेसन मांहि भले गज गाहि बधायो॥
जो मन जीतत हैं सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो।
लाज गई कछु काज सरचो नहिं लोक गयो परलोक गमायो ॥४॥

घनआनन्द

घनआनन्द जाति के कायस्थ और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे। दिल्ली में रहते थे और मुहम्मदशाह के मुंशी थे। गानविद्या और काव्य-रचना में बड़े प्रवीण थे। सं० १७९६ में जब नादिरशाह ने मथुरा को लूटा, ये उसी समय मारे गये। इनका जन्म स० १७४६ के लगभग माना जाता है। ये नागरीदासजी के समकालीन थे। बृन्दावन में दोनों का सत्संग हुआ करता था।

श्रीकृष्णचन्द्र में इनका सच्चा प्रेम था।

मीरमुंशी की हालत में घनआनन्दजी सुजान नाम की एक वेश्या पर आसक्त थे। एक दिन बादशाह ने इन्हें ध्रुपद गाने को कहा। इन्होंने इन्कार कर दिया, पर सुजान के कहने से भरे दरबार में गा दिया। गाते समय पीठ बादशाह की तरफ और मुंह सुजान की तरफ कर लिया था। गाने से बादशाह खुश तो बहुत हुआ, पर बेअदबी माफ न कर सका। उसने घनआनन्द को दिल्लीसे निकाल दिया। चलते समय इन्होंने सुजान से साथ चलने को कहा। उसने अस्वीकार किया। ये उसके विरह में व्याकुल बृन्दावन पहुंचे, वहा राधाकृष्ण के रग में रंग गये। इनके प्रायः सभी छन्दों में सुजान शब्द आया है। इनके सवैये छन्द बड़े ही मनोहर हैं। इनके रचे हुए ग्रन्थों के नाम ये हैं - सुजानसागर, घनानन्द कवित्त, रस-केलिबल्ली, कृपाकाण्ड निबन्ध, कोकसार, विरहलीला। इनकी कविता में प्रेम और विरह का वर्णन बड़ा मनोहर हुआ है। भक्तिरस की कविता

भी इन्होंने अच्छी की है। इनकी कुछ कविताओं का संग्रह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "सुजान-शतक" नाम से किया है। उसमें सौ से अधिक सवैया, कवित्त, छप्पय और दोहे हैं।

यहां इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

(१)

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिर नेह को तोरियै जू।
निरधार आधार दै धार मझार दई गहि बांह न बोरियै जू॥
घनआनंद आपने चातक को गुन बांधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास में क्यों विष घोरियै जू॥

(२)

अति सूधो सनेह को मारग है जहां नेको सयानप बांक नहीं।
तहां सांचे चलै तजि आपनपौ झिझकें कपटी जो निसांक नहीं॥
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरों आंक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं॥

(३)

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा समान करौ सब हौ विधि सज्जनता सरसौ॥
घनआनंद जीवन दायक हौ कछू मोरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूं वा बिसासी सुजान के आंगन मो असुवान को लै बरसौ॥

(४)

तब तो दुरि दूरहि ते मुसकाय वचाय कै और की दीठि हंसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैनन में सरसे॥
अब तो उर मांहि बसाय कै मारत एजू बिसासी कहां धौ बसे।
कछू नेह निबाहन जानत है तो सनेह की धार मे काहे धंसे॥

(५)

हमसौं हित कै कित कौ नित ही चित बीच बियोगहि पोइ चले।
सु अखैबट बीज लौं फैलि परचो बनमाली कहां धौ समोइ चले॥

घनआनंद छांह बितान तन्यो हमें ताप के आतप खोइ चले।
कबहूं तेहि मूल तौ बैठिये आइ सुजान जो बीजहि बोइ चले॥

(६)

गुरनि बतायो राधामोहन हू गायो सदा सुखद सुहायो बृन्दावन गाढे गहुरे। अद्‌भुत अभूत महि मंडन परे तो परे जीवन को लाहु हाहा क्यों न ताहि लहुरे॥ आनद को घन छायो रहत निरन्तर ही सरस सुदेय सों पपीहा पन बहुरे। जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी पावन पुलिन पै पतित परि रहुरे॥

देव

देव बड़े प्रेमी कवि थे। इनका जन्म सं० १७३० वि० में इटावे में हुआ। ये सनाढच ब्राह्मण थे। ये ७२ ग्रंथों के रचयिता कहे जाते हैं। हिन्दी के पुराने कवियों में इतनी अधिक संख्या मे ग्रंथ किसी ने नही रचे। अबतक इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रंथों का पता लगा है—

(१) भाव विलास, (२) अष्टयाम, (३) भवानी विलास, (४) सुन्दरी सिन्दूर, (५) सुजान विनोद, (६) प्रेम तरङ्ग, (७) राग रत्नाकर, (८) कुशल विलास, (९) देव चरित्र, (१०) प्रेम चन्द्रिका (११) जाति विलास, (१२) रसविलास, (१३) काव्य रसायन, (१४) सुखसागर तरङ्ग, (१५) देव माया प्रपंच (नाटक) (१६) वृक्ष विलास, (१७) पावस विलास, (१८) ब्रह्म दर्शन पचीसी, (१९) तत्व दर्शन पचीसी, (२०) आत्मदर्शन पचीसी, (२१) जगदर्शन पचीसी, (२२) रसानन्द लहरी, (२३) प्रेम दीपिका, (२४) सुमिल विनोद, (२५) राधिका विलास, (२६) नीति शतक, (२७) नखशिख।

इनके ग्रन्थ प्रायः सब शृङ्गार रस पर हैं। इनकी भाषा विशुद्ध ब्रज-भाषा है। इनकी रचना में प्रसाद, माधुर्य, अर्थ[illegible] और ओज आदि गुणों का अच्छा चमत्कार देखने में आता है। इनकी कविता में कहीं-कहीं बहुत गूढ़-बारीक भाव ऐसे मिलते हैं जो पढ़ते ही समझ में न आने से कुछ रूखे से जान पड़ते हैं। परन्तु कुछ विचार करने से उनमें मनोहर

रहस्य भरा हुआ मिलता है। उर्दू कवियों में गालिब की कविता में भी ऐसी ही विलक्षणता पाई जाती है। देव का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार दिखाई पड़ता है।

देव की कविता से ऐसा बोध होता है कि इन्होंने सारे भारतवर्ष की यात्रा की थी। क्योंकि इनकी कविता मे भारत की प्रत्येक जाति की—प्रत्येक प्रान्त की स्त्रियों का विलास वर्णित है, जो प्रत्यक्ष देखे बिना नहीं हो सकता।

इन्होंने सं० १७४६ के लगभग औरंगजेब के बड़े पुत्र आजमशाह को भाव विलास और अष्टयाम सुनाया था। आजमशाह ने इन ग्रन्थों की प्रशंसा भी की थी। फिर ये क्रमशः भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह (फफूंद इटावा निवासी) राजा उद्योतसिंह, राजा भोगीलाल, पिहानी के अकबर-अली खां आदि के आश्रय में रहे। परन्तु किसी आश्रयदाता ने इनका यथोचित सम्मान नहीं किया। मेरी राय में आश्रयदाताओं से सम्मान न पाने के कारण इनकी कविता का जटिल होना ही है।

देव बड़े विलासी और रसिक थे। शोभा और शृंगार के बड़े चाहक थे। इसमें सन्देह नहीं कि इनकी प्रतिभा ऊंचे दरजे की थी, परन्तु खेद है कि सिवा प्यारी और प्यारे के हाव भाव, कटाक्ष, संयोग, वियोग, हास-परिहास वर्णन के लोक-हित-साधन की चर्चा ये बहुत कम कर सके। इसी कारण से इनकी पुस्तकों का आदर और प्रचार भी हिन्दू समाज में कम हुआ। जीवन के अन्त समय में इन्होंने वैराग्य पर भी कुछ कविताएं लिखीं। परन्तु वे इन्द्रिय-शैथिल्य के कारण लिखी गईं जान पड़ती हैं, समाज-हित की स्वाभाविक कामना से नहीं। देव की जीवनी का निचोड़ हमें यही जान पड़ता है कि ये विषयी और शृंगारी कवि थे, परन्तु थे सूक्ष्मदर्शी। इनको गाने-बजाने का भी बड़ा शौक था। इनका मरणकाल सं० १८०२ के लगभग अनुमान किया जाता है। नमूने के तौर पर इनके कुछ छन्द यहां लिखे जाते हैं—

कुल की सी करनी कुलीन की सी कोमलता सील की सी संपति

सुसील कुल कामिनी । दान को सो आदर उदारताई सूर की सी, गुन की लुनाई गज गति गजगामिनी ।। ग्रीषम को सलिल सिसिर कैसो घाम "देव" हेमंत हंसत जलदागम की दामिनी । पूनो को सो चन्द्रमा प्रभात को सो सूरज सरद को सो बासुर बसन्त की सी जामिनी ।। १ ।।

सूरजमुखी सों चन्द्रमुखी को बिराजै मुख कंदकली दन्त नासा किंशुक सुधारी सी । मधुप से लोयन मधूक दल ऐसे ओंठ श्रीफल से कुच कच बेलि तिमिरारी सी ।। मोती बेल कैसे फूली मोतिन में भूषण सुचीर गुल-चांदनी सों चंपक की डारी सी । केलि के महल फूलि रही फुलवारी "देव" ताही में उज्यारी प्यारी भूली फुलवारी सी ।। ४ ।।

डार द्रुम पालन बिछौना नव-पल्लव के सुमन झंगूला सोहे तन छवि भारी दै । पवन झुलावें केकी कीर बतरावें "देव" कोकिल हलावें हुल-सावें करतारी दै ।। पूरति पराग सों उतारा करें राई नोन कंज कली नायिका लतानि सिर सारी दै । मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि प्रात हिये लावत गुलाब चटकारी दै ।। ३ ।।

नीलपट तन पर घन से घुमाय राखौं दन्तन की चमक छटा सी बिचरित हौं । हीरन की किरन लगाइ राखौं जुगुनू सी कोकिला पपीहा पिक बानी सों भरति हौं ।। कीच अंसुवान के मचाय कवि "देव" कहै बालम बिदेश को पधारिबो हरति हौं । इन्द्र कैसो धनु साज बेसर कसत आज रहु रे बसन्त तोहि पावस करति हौं ।। ४ ।।

आवन सुनो है मनभावन को भावती ने आंखिन अनन्द आंसू ढरकि ढरकि उठें । "देव" दृग दोउ दौरि जात द्वार देहरी लों केहरी सी सांसें खरी खरकि खरकि उठें ।। टहलैं करति टहलै न हाथ पांय रंगमहलै निहारि तनी तरकि तरकि उठें । सरकि सरकि सारी दरकि दरकि आंगी औचक उच्चै हैं कुच फरकि फरकि उठें ।। ५ ।।

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेमन रचा है चित और अरचा है चित चारी को । छोड़यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरख न सोक ना अलोक नरनारी को ।। घाम सित मेंह न बिचारै सुख देहहु को प्रीति ना

सनेह उरु बन ना अंध्यारी को। भूलेहु न भोग बड़ी ... व्यथा जाग हू ते कठिन संयोग परनारी को ।। ६ ।।

दुहूं मुख चंद ओर चितवें चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितैबो ललचात हैं। हांसनि हंसत बिन हांसी बिहंसत मिले गातनि सों गात बात बातनि में बात हैं ।। प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नेकहूं न अनखात हैं। देखि ना थकत देखि देखि ना सकत "देव" देखिबे की घात देखि देखि न अघात हैं ।। ७ ।।

बरुनी बघम्बर में गूदरी पलक दोऊ कोये राते बसन भगोहे भेख रखियां । बूड़ी जलही में दिन जामिनी रहति भौंहें धूम शिर छायो बिरहानल बिलखियां ।। आंसू ज्यों फटिक माल लाल डोरे सेल्ही सजि भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियां । दीजिये दरस "देव" लीजिये संजोगिन कै जोगिन ह्वै बैठी वा बियोगिन की अंखियां ।। ८ ।।

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि रिसानी पियसों जु उन नेकु हंसि छुयो गात । देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गये यहि सिसिक सिसिक निसि खोई रोय पायो प्रात ।। को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह बिथा हाय हाय करि पछिताय न कछू सोहात । बड़े बड़े नैनन सों आंसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात ।। ९ ।।

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं। कैसो नर लोक परलोक बर लोकनि मै लीन्हीं में अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौ ।। तन जाउ, मन जाउ, "देव" गुरुजन जाउ, प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं। वृन्दावन वारी बनवारी की मुकुट वारी पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौं ।। १० ।।

जब ते कुंवर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहूं सुजस कहानी सी । तब ही ते देव देखी देवता सी हंसति सी रीझति सी खीझति सी रूठति रिसानी सी ।। छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी छिन सी जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी । बींधी सी बंधी सी बिष बूड़ति बिमोहित सी बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी सी ।। ११ ।।

बालम बिरह जिन जान्यो न जनम भरि बरि बरि उठे ज्यों ज्यों बरसै बरफ राति । बीजनो ढुरावती सखी जन त्यों सीतहूं मे सौति के सराप तन तापनि तरफराति । देव कहै स्वासन हो अंसुवा सुखात मुख निकसे न बात ऐसी सिसकी सरकराति । लोटि लोटि परत करोट पट पाटी लै लै सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति ॥ १२ ॥

देव जू जो चित चाहिये नाह तो नेह निबाहिये देह हरयो परै ।
जो समझाइ सुझाइये राह अमारग में पग धोखे धरयो परै ॥
नीके मे फीके ह्वै आंसू भरो कत उचे उसास गरयो क्यों भरयो परै ।
रावरो रूप पियो अंखियान भरयो सो भरयो उबरयो सो ढरयो परै ॥१३॥

चोट लगी इन नैनन की दिनहूं इन खोरिन सो कढ़ती हो ।
देखन में मन मोहि लियो छिपि ओट झरोखन के झंकती हो ॥
"देव" कहै तुम हो कपटी तिरछी अंखियां करि कै तकती हो ।
जानि परै न कछू मन की मिलिहौ कबहूं कि हमै ठगती हो ॥१४॥

भेस भये विष भावते भूखन भूख न भोजन की कछु ईछी ।
मीचु की साध न सोंधे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी ॥
चंदन तो चितयो नहि जात चुभी चित माहिं चितौनि तिरीछी ।
फूल ज्यों सूल सिलासम सेज बिछौननि बीच बिछी जनु बीछी ॥१५॥

जाके न काम न क्रोध विरोध न लोभ छ्वै नहि छोभ को छाहौं ।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर मोल जवाहिर ता अति चाहौं ॥
बानी पुनीत त्यों देवधुनी रस आरद सारद के गुन गाहौं ।
सील ससी सविता छविता कविता हि रचै कवि ताहि सराहौं ॥१६॥

कंचन बेलि सी नौल बधू जमुनाजल केलि सहेलिनि आनी ।
रोमवली नवली कहि देव सु गोरे से गात नहात सुहानी ॥
कान्ह अचानक बोलि उठे उर बाल के ब्यालबधू लपटानी ।
धाइ कै धाइ गही ससवाइ दुहूं कर झारति अंग अयानी ॥१७॥

बारे बड़े उमड़े सब जैबे को तौन तुम्हें पठवो बलिहारी ।
मेरे तो जीवन देव यही धनु या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी ॥

जानै न रीति अथाइन की नित गाइनि में बन भूमि निहारी।
याहि कोऊ पहिचानै कहा कछु जानै कहा मेरो कुंजबिहारी ॥१८॥
प्रेमपयोधि परो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहिरे मन।
कोप तरंगनि सों बहिरे पछिताय पुकारत क्यों बहिरे मन॥
देव जू लाज जहाज तें कूदि रह्यो मुख मूंदि, अजौं रहिरे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन ॥१९॥

आई हुती अन्हवावन नाइनि सोंधे लिये वह सूधे सुभायनि।
कंचुकी छोरी उतै उपटैबे को ईंगुर से अंग की सुखदायनि॥
"देव" सरूप की रासि निहारति पाय ते सीस लौं सीस तेपायनि।
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी, हंसै कर ठोड़ी धरे ठकुरायनि ॥२०॥

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग एरे मन मेरे, हाथ पाव तेरे तोरतो। आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाही सुनि, नेह सों निहारि हारि बदन निहारतो॥ चलन न देतों "देव" चचल अचल करि, चाबुक चितावनीन मारि मुंह मोरतो। भारी प्रेम पाथर नगारो है गरे सो बांधि राधावर विरुद के बारिधि में बोरतो॥ २१॥

श्रीपति

श्रीपति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका निवासस्थान काल्पी था। इन्होंने स० १७७७ में 'काव्य सरोज' नामक ग्रंथ बनाया। इसके सिवा विक्रमविलास, कवि कल्पद्रुम, सरोज कलिका, अलंकार गंगा आदि ग्रंथ भी इनके रचे हुये कहे जाते हैं। ये अच्छे कवि थे। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

उर्द के पचाइबे को हींग अरु सोंठ जैसे केरा को पचाइबे को घिव निरधार है। गोरस पचाइबे को सरसों प्रबल दण्ड आम के पचाइबे को नीबू को अचार है॥ श्रीपति कहत परधन के पचाइबे को कानन छुआय हाथ कहिबो नकार है। आज के जमाने बीच राजा राव जाने सबै रीझि के पचाइबे को वाह वा डकार है॥ १॥

सारस के नादन को बाद न सुनात कहूं नाहक की बकबाद दादुर महा करै। श्रीपति सुकवि जहां ओज ना सरोजन की फूल ना फुलत जाहि चित दै चहा करै॥ बकन की बानी की विराजत है राजधानी काई सो कलित पानी फेरत हहा करै। घोघन के जाल जामे नरई सेवाल व्याल ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै ॥२॥

ताल फीको अजल कमल बिन जल फीको कहत सकल कवि हवि फीको रूम को। बिन गुन रूप फीको ऊसर को कूप फीको परम अनूप भूप फीको बिन भूम को॥ श्रीपति सुकवि महावेग बिन तुरी फीको जानत जहान सदा जोह फीको धूम को। मेह फीको फागुन अबालक को गेह फीको नेह फीको तिय को सनेह फीको सूम को ॥३॥

तेल नीको तिल को फुलेल अजमेर ही को साहब दलेल नीको सैल नीको चद को। विद्या को विवाद नीको रामगुण नाद नीको कोमल मधुर सदा स्वाद नीको कंद को॥ गऊ नवनीति नीको ग्रीषम को शीत नीको श्रीपति जू मीत नीको बिना फरफंद को। जातरूप घट नीको रेशम को पट नीको बंसीवट नट नीको नन्द को ॥४॥

चोरी नीकी चोर की सुकवि की लबारी नीकी गारी नीकी लागती ससुरपुर धाम की। नाहीं नीकी मान की सयान की जबान नीकी तान नीकी तिरछी कमान मुलतान की। तातहू की जीति नीकी निगम प्रतीति नीकी श्रीपति जू प्रीत नीकी लागे हरिनाम की। रेवा नीकी बानखेत मुंदरी सुवा की नीकी मेवा नीकी काबुल की सेवा नीकी राम की ॥५॥

कीरति किशोरी गोरी तेरे गात की गुराई बीज सी सुहाई तेरे विधु-कर जाल सी। सहज सुवास सखी केसर सी केतकी सी कौल सी सुखद अति अमल मराल सी। "श्रीपति" निदाघ नवनीति मखमल सम सर्व ऋतु गरम परम मिही साल सी। कनक प्रवाल सी नवीन दिनपाल सी कपूर की मसाल सी सलोनी लाल माल सी ॥६॥

रोहिनी रमन की मरीची सी सुखद सीची मोहनी सरस महा मोहनी के थल सी। "श्रीपति" सुकवि छवि रवि बाल कर सी है मैन के

मुकुर सो अमलगंग जल सी ।। गोरी गरबीली तेरे गात की गुराई आगे चपला निकाई अति लागत सहल सी । माखन महल सी पराग के चहल सी गुलाब के पहल सी नरम मखमल सी ।।७।।

हारिजात धारिजात मालती बिदारि जात वारि जात पारिजात सोधन में करी सी । माखन सो मैन सी मुरारी मखमल सम कोमल सरस तन फूलन की छरी सी ।। गहगही गरुवी गुराई गोरी गोरे गात श्रीपति बिल्लौर सीसी ईंगुर सौं भरीसी । विज्जु थिर धरी सी कनक रेख करी सी प्रबाल छविहरी सी लसत लाल लरी सी ।।८।।

कैस रतिरानी के सिधोरे कवि "श्रीपति" जू जैसे कलधौत के सरोरुह सवारे हैं । कैसे कलधौत के सरोरुह सवारे कहि जैसे रूपनट के बटा से छवि ढारे हैं ।। कैसे रूप नटके बटा से छवि ढारे कहु जैसे काम भूपति कै उलटे नगारे हैं । कैसे काम भूपति के उलटे नगारे कहु जैसे प्राणप्यारी ऊंचे उरज तिहारे हैं ।।९।।

वृन्द

वृन्द औरङ्गजेब के दरबारी कविथे। औरङ्गजेब का पोता अजीमुश्शान ब्रजभाषा और उर्दू का अच्छा कवि और कवियों का आश्रयदाता था । उसने वृन्द को औरङ्गजेब से माग लिया था । वह बङ्गाल, बिहार और उड़ीसे का सूबेदार था, और ढाके में रहा करता था । वृन्द को भी वह अपने साथ ढाके ही मे रखता था ।

वृन्द ने सात सौ दोहों की दृष्टान्त सतसई या वृन्दविनोद सतसई नाम की पुस्तक लिखी है । उसके अन्त मे कवि ने स्वय लिखा है—

समय सार दोहानि को , सुनत होय मन मोद ।
प्रकट भई वह सतसई , भाषा बृन्दविनोद ।।
अति उदार, रिझवार जग , शाह अजीमुश्शान ।
सतसैया सुनि बृन्द को , कीनी अति सनमान ।।
संवत ससि रस बार ससि , कातिक सुदि ससिवार ।
सातें ढाका सहर में , उपज्यो यहै विचार ।।

अन्तिम दोहे से सतसई का निर्माणकाल सं० १७६१, कार्तिक शुक्ला सप्तमी, सोमवार निकलता है। और यह भी पता चलता है कि सतसई ढाका शहर में लिखी गई।

वृन्दावननिवासी गोस्वामी किशोरीलाल जी ने वृन्द कवि के विषय में कांकरौली-नरेश स्व० श्री गोस्वामी बालकृष्णलालजी से सुनी हुई कुछ बातें प्रकाशित की हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

'यह कवि गौड़ ब्राह्मण कुल में मथुरा प्रांत के किसी गांव में पैदा हुआ था। इसने कहां और कितनी शिक्षा पाई, इसका कुछ पता नहीं। किसी तरह यह औरङ्गजेब के दरबार में पहुंच गया, और दरबारी कवि बना लिया गया। एक दिन यह मथुरा के उस पार श्रीगोकुल जी के ठाकुर श्री गोकुलनाथ जी के दर्शनों को गया। और वहां के तत्कालीन गोस्वामीजी का शिष्य हो गया। इसीसे इसने अपनी सतसई के मङ्गलाचरन में "श्री गुरुनाथ प्रभाव तें" इत्यादि कहकर वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया है। श्री गोकुलनाथजी की गद्दी के आरभ से लेकर आज तक जितने शिष्य हुये हैं, उन सब का संक्षिप्त इतिवृत वहां के बही-खातों में लिखा हुआ है। सिहोर के श्रीयुत गोविन्द गिल्लाभाई कहते हैं कि "वृन्द का जन्म मारवाड़ में जोधपुर तावा के मेड़ता गांव में हुआ है। उनके वंशज आजकल मेड़ता में जयपुर में, और किसनगढ़ में रहते हैं।" उन्होंने वृन्द कवि के बनाये सब ग्रन्थों के नाम और चित्र देकर उनका जीवनचरित्र छपाया है।

"वृन्द कवि ने दृष्टान्त सतसई के अतिरिक्त और भी कोई काव्य-ग्रंथ बनाया होगा। कारण, उसकी छाप के कवित्त, सवैये और पद आदि भी सुनने में आते हैं।"

सतसई के सिवा वृन्द-रचित "भाव पंचासिका" नाम की एक और पुस्तक सुनी जाती है। इसका नाम हमें भारतजीवन प्रेस की पुस्तकों के सूचीपत्र में मिला था। पर पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। याद पड़ता है कि भारतजीवन के सूचीपत्र में यह भी जिक्र था कि पुस्तक

सवैया छन्दों में है। मिश्रबन्धुओं ने अपने विनोद में वृन्द-रचित "शृङ्गार-शिक्षा" नाम की एक और पुस्तक का उल्लेख किया है।

वृन्द का जन्म-संवत् १७४२ के लगभग माना जाता है। क्योंकि वृन्द ने १७६१ में सतसई लिखी। १७४२ को जन्म-संवत् मानने से उस समय उनकी आयु १९ वर्ष की हुई। सतसई लिखने के पहले वे शिक्षा पाकर औरंगजेब के दरबार में पहुंचे। वहां कुछ दिन रहकर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर ही वे अजीमुश्शान के कृपापात्र हुए होंगे। इतना सब १९ वर्ष की आयु में किसी दैवी शक्ति ही से संभव है। दृष्टान्त-सतसई जैसा अनुभवपूर्ण ग्रंन्थ लिखने के समय वृन्द की आयु ३० वर्ष से कम न रही होगी। अतएव वृन्द का जन्म संवत् १७३० के लगभग मानना चाहिये।

वृन्द की कविता नीति-विषयक है। हिन्दी में वृन्द के समान किसी कवि ने नीति पर सुंदर दोहे नहीं लिखे। दोहों की भाषा बड़ी सरल है, और बोलचाल में दृष्टान्त के ढङ्ग पर शहरों से लेकर गांवों तक उनका प्रचार भी बहुत है। दोहों के सिवा वृन्द की अन्य कविता भी बहुत सरस है। उनका एक प्रसिद्ध सवैया यहां लिखा जाता है--

जो कछु वेद पुरान कही सुनि लीनी सबै जुग कान पसारे।
लोकहु में यह ख्यात प्रथा छिन में खल कोटि अनेकन तारे॥
"बृन्द" कहै गहि मौन रहै किमि हौं हठ कै बहु बार पुकारे।
बाहर ही के नहीं सुनौ हे हरि! भीतर हू ते अहो तुम कारे॥

यह सवैया भावपंचासिका का जान पड़ता है। आगे दृष्टान्त-सतसई से कुछ दोहे चुनकर लिखे जाते हैं—

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस शृंगार न सुहात॥ १॥
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय बिचारि।
सब को मन हर्षित करै, ज्यौं विवाह में गारि॥ २॥

जो जाको गुन जानही, सो तिहि आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निबोरी हेत ॥ ३ ॥
जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ ४ ॥
गुन हो तऊ मंगाइये, जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तऊ, आग न आनत कौन ॥ ५ ॥
रस अनरस समझै न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मन्त्र न जानहीं, सांप पिटारे हाथ ॥ ६ ॥
कैसे निबहै निबल जन, कर सबलन सों गैर।
जैसे बस सागर विषै, करत मगर सों बैर ॥ ७ ॥
दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥ ८ ॥
अपनी पहुंच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पांव पसारिये, जेती लांबी सौर ॥ ९ ॥
पिसुन छल्यो नर सुजन सों, कसत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छांछहिं फूंकि ॥ १० ॥
विद्याधन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखा की पौन ॥ ११ ॥
ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत घटत घट जाय ॥ १२ ॥
बुरे लगत सिख के बचन, हिये विचारो आप।
करुवी भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप ॥ १३ ॥
गुरुता लघुता पुरुष की, आश्रय वशते होय।
करी वृन्द में विंध्य सों, दर्पन में लघु सोय ॥ १४ ॥
रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सबही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल ॥ १५ ॥

होय बड़ेरु न हूजिये , कठिन मलिन मुख रङ्ग ।
मर्दन बंधन छत सहत , कुच इन गुननि प्रसंग ॥ १६ ॥
कहूं जाहु नाहिं न मिटत , जो विधि लिख्यो लिलार ।
अंकुश भय करि कुंभ कुच , भये तहां नख मार ॥ १७ ॥
फेर न ह्वै है कपट सों , जो कीजे व्यौपार ।
जैसे हांडी काठ की , चढ़ै न दूजी बार ॥ १८ ॥
करिये सुख को होत दुख , यह कहो कौन सयान ।
वा सोने को जारिये , जासों टूटे कान ॥ १९ ॥
नयना देय बताय सब , हिय को हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी , भली बुरी कहि देत ॥ २० ॥
अति परचै ते होत है , अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी , चंदन देति जराय ॥ २१ ॥
भले बुरे सब एक सो , जौ लौ बोलत नाहिं ।
जानि परत् है काक पिक , ऋतु बसंत के माहिं ॥ २२ ॥
निष्फल श्रोता मूढ़ पै , कविता बचन विलास ।
हाव भाव ज्यों तीयके , पति अंधे के पास ॥२३॥
हितहू की कहिये न तिहि , जो नर होय अबोध ।
ज्यों नकटे को आरसी , होत दिखाये क्रोध ॥ २४ ॥
सबै सहायक सबल के , कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को , दीपहिं देत बुझाय ॥ २५ ॥
कछु बसाय नहिं सबलसों , करै निबल पर जोर ।
चले न अचल उखार तरु , डारत पवन झकोर ॥ २६ ॥
रोष मिटै कैसे कहत , रिस उपजावन बात ।
ईंधन डारे आगमों , कैसे आग बुझात ॥ २७ ॥
जो जाहि भावे सो भलौ , गुन को कछु न विचार ।
तज गजमुकता भीलनी , पहिरति गुंज्जा हार ॥ २८ ॥

दुष्ट न छांड़े दुष्टता, कैसे हूं सुख देत।
धोये हूं सौ बेर के, काजर होत न सेत ॥ २९ ॥
कहुं अवगुन सोइ होत गुन, कहुं गुन अवगुन होत।
कुच कठोर त्यों हैं भले, कोमल बुरे उदोत ॥ ३० ॥
जाको जैसो उचित तिहि, करिये सोइ विचारि।
गीदर कैसे ल्याइ है, गजमुक्ता गज मारि ॥ ३१ ॥
जैसे बंधन प्रेम को, तैसो बंध न और।
काठहि भेदै कमल को, छेद न निकरै भौंर ॥ ३२ ॥
जे चेतन ते क्यों तजैं, जाकों जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥ ३३ ॥
जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौं, अस्त होतु है भान ॥ ३४ ॥
जिहि प्रसंग दूषन लगे, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥ ३५ ॥
जाके संग दूषण दुरै, करिये तिहि पहिचानि।
जैसे समझे दूध सब, सुरा अहीरी पानि ॥ ३६ ॥
मूरख गुन समझै नहीं, तो न गुनी में चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ, देखै जो न उलूक ॥ ३७ ॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक की, आम कहां ते होइ ॥ ३८ ॥
बहुत निबल मिल बल करैं, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥ ३९ ॥
सांच झूठ निर्णय करै, नीति निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै, छीर नीर को दोय ॥ ४० ॥
दोषहिं को उमहै गहै, गुन न गहै खललोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लागि पयोधर जोंक ॥ ४१ ॥

कारज धीरै होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर॥ ४२॥
क्यों कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परबत पर खोदै कुंआ, कैसे निकसै तोय॥ ४३॥
वीर पराक्रम ना करे, तासों डरत न कोइ।
बालकहू को चित्र को, बाघ खिलौना होइ॥ ४४॥
उत्तम जन सों मिलत ही, अवगुन सो गुन होय।
घनसंग खरो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥ ४५॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर परत निसान॥ ४६॥
भली करत लागति बिलम, बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगत न बार॥ ४७॥
कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात॥ ४८॥
छोटे मन मे आय हैं, कैसे मोटी बात।
छेरी के मुह मे दियौ, ज्यों पेठा न समात॥ ४९॥
होत निबाह न आपनो, लीने फिरे समाज।
चूहा बिल न समात है, पूछ बांधिये छाज॥ ५०॥
अपनी प्रभुता को सबै, बोलत झूंठ बनाय।
वेश्या बरस घटावही, योगी बरस बढ़ाय॥ ५१॥
कछु कहि नीच न छेड़ियै, भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच मे, उछरि बिगारै अंग॥ ५२॥
ऊपर दरसै सुमिल सा, अन्तर अनमिल आंक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फांक॥ ५३॥
सब सों आगे होय कै, कबहुं न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात॥ ५४॥

बुरौ तऊ लागत भलौ, भली ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीकौ लगे, काजर जदपि मलीन॥ ५५॥
गुरुमुख पढ़्यो न कहतु है, पोथी अर्थ विचारि।
सो शोभा पावै नहीं, जार-गर्भ-युत नारि॥ ५६॥
छमा खड्ग लीने रहै, खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृनरहित थल, आपहि ते बुझि जाय॥ ५७॥
ओछे नर के पेट में, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात॥ ५८॥
बचन रचन का पुरुष के, कहै न छिन ठहराय।
ज्यों कर पद मुख कछुप के, निकसि निकसि दुर जाय॥ ५९॥
जूवा खेले होतु है, सुख सम्पति को नास।
राजकाज नल ते छुट्यो, पांडव किय बनवास॥ ६०॥
सरस्वति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों त्यों बढ़ै, बिन खरचै घट जात॥ ६१॥
बिरह पीर ब्याकुल भए, आयो पीतम गेह।
जैसे आवत भाग ते, आग लगे पर मेह॥ ६२॥
भले बंस को पुरुष सो, निहुरै बहु धन पाय।
नवै धनुष सदबंश को, जिहिं द्वै कोटि दिखाय॥ ६३॥
लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के बैन॥ ६४॥
कहा कहौं विधि को अविधि, भूले परे प्रबीन।
मूरख को सम्पति दई, पंडित संपतिहीन॥ ६५॥
वह संपति केहि काम की, जिन काहू पै होउ।
नित्य कमावै कष्ट करि, बिलसै औरहि कोउ॥ ६६॥
तूनहूं ते अरु तूलते, हरुवो याचक आहि।
जानतु है कछु मांगि है, पवन उड़ावत नाहिं॥ ६७॥

सेइय नृप गुरुतिय अनिल , मध्य भाग जग माहिं ।
है विनाश अति निकट तें , दूर रहे फल माहिं ॥ ६८ ॥

बैताल

बैताल कवि का जन्म सं० १७३४ में हुआ । ये विक्रमशाह के दरबार में रहते थे । इन्होंने अपने छन्द प्राय: विक्रम को सम्बोधन करके बनाये हैं । ये नीति-विषयक बड़ी अच्छी कविता करते थे । इनका रचा हुआ कोई ग्रंथ नहीं मिलता । केवल थोड़े-से स्फुट छन्द मिलते हैं । उनमे से कुछ छन्दों को हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

जीभि जोग अरु भोग जीभि बहु रोग बढ़ावै ।
जीभि करै उद्योग जीभि लै कैद करावै ॥
जीभि स्वर्ग लै जाय जीभि सब नरक दिखावै ।
जीभि मिलावै राम जीभि सब देह धरावै ॥
निज जीभि ओठ एकत्र करि बाट सहारे तोलिये ।
बैताल कहै विक्रम सुनो जीभि संभारे बोलिये ॥१॥

टका करै कुलहूल टका मिरदङ्ग बजावै ।
टका चढ़े सुखपाल टका सिर छत्र धरावै ॥
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया ।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़ लड़ैया ॥
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रात दिन ।
बैताल कहै विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन ॥२॥

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू ।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू ॥
बाभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै ।
पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै ॥
अरु बे नियाब राजा मरै तबै नींद भरि सोइये ।
बैताल कहै विक्रम सुनो एते मरे न रोइये ॥ ३ ॥

राजा चंचल होय मुलुक को सर करि लावै ।
पंडित चंचल होय सभा उत्तर दै ग्रावै ॥
हाथी चंचल होय समर में सूंड़ि उठावै ।
घोड़ा चंचल होय झपटि मैदान दिखावै ॥
है ये चारों भले राजा पंडित गज तुरी ।
बैताल कहै विक्रम सुनो तिरिया चंचल ग्रति बुरी ॥ ४ ॥

दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरन में ।
पुण्य गयो पाताल पाप भो बरन बरन में ॥
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुवारी ।
घर घर में बेपीर दुखित भे सब नर नारी ॥
ग्रब उलटि दान गजपति मगै सील संतोष कितै गयो ।
बैताल कहै विक्रम सुनो यह कलजुग परगट भयो ॥ ५ ॥

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै ।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहिं मानै ॥
मर्द देय ग्रौ लेय मर्द को मर्द बचावै ।
गाढ़े संकरे काम मर्द के मर्दै ग्रावै ॥
पुनि मर्द उनहिं को जानिये दुखसुख साथी दर्द के ।
बैताल कहै विक्रम सुनो लच्छन है ये मर्द के ॥ ६ ॥

चोर चुप्प ह्वै रहै रैन ग्रंधियारी पाये ।
संत चुप्प ह्वै रहै मढ़ी में ध्यान लगाये ॥
बधिक चुप्प ह्वै रहै फांसि पंछी लै ग्रावै ।
छैल चुप्प ह्वै रहै सेज पर तिरिया पावै ॥
बर पिपर पात हस्ती स्रवन कोइकोइ कवि कुछकुछ कहै ।
बैताल कहै विक्रम सुनो चतुर चुप्प कैसे रहै ॥ ७ ॥

ससि बिन सूनी रैन ज्ञान बिन हिरदै सूनो ।
कुल सूनो बिन पुत्र पत्र बिन तरुवर सूनो ॥

गज सूनो इक दंत ललित बिन सायर सूना ।
बिप्र सून बिन वेद और बिन पुहुप बिहूनो ।।
हरिनाम भजन बिन संत अरु घटा सून बिन दामिनी ।
बैताल कहै विक्रम सुनो पति बिन सूनी कामिनी ।। ८ ।।

बुधि बिन करे बेपार दृष्टि बिन नाव चलावे ।
सुर बिन गावे गीत अर्थ बिन नाच नचावे ।।
गुन बिन जाय विदेश अकल बिन चतुर कहावे ।
बल बिन बांधे युद्ध हौंस बिन हेत जनावे ।।
अनइच्छा इच्छा करे, अनदीठी बार्ता कहे ।
बैताल कहै विक्रम सुनो, यह मूरख की जात है ।। ९ ।।

पग बिन कटे न पंथ बाहु बिन हटे न दुर्जन ।
तप बिन मिले न राज्य भाग्य बिन मिले न सज्जन ।।
गुरु बिन मिले न ज्ञान द्रव्य बिन मिले न आदर ।
बिना पुरुष सिंगार मेघ बिन कैसे दादुर ।।
बैताल कहै विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे ।
धिक्क धिक्क ये पुरुष को मन मिलाइ अन्तर कटे ।। १० ।।

उदयनाथ [कवीन्द्र]

कवीन्द्र उदयनाथ कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १७३६ के लगभग हुआ । ये अमेठी के राजा हिम्मतसिंह और उनके पुत्र गुरुदत्तसिंह के पास रहा करते थे । ये भगवन्त राय खीची और बूंदी के राव बुद्धसिंह के यहां भी गये थे, और वहां इन्हें बड़ा सम्मान भी मिला था । इनका रस चन्द्रोदय नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है । इनकी कविता ब्रजभाषा में शृंगार विषयक अच्छी है ।

इनके कुछ छन्द यहां उद्धृत किये जाते है—

कुंजन ते मग आवत गावत राग बनावत देवगिरी को ।

तार थकै नहिं नैनन तें सजनी अंसुआन की धार झिरी को ।
मार मनोहर नन्दकुमार के हार हिये लखि मौलसिरी को ॥

छिति छमता की परमिति मृदुता की कैधों ताकी है अनीति सौति जनता की देह की । सत्य की सता है, सील तरु की लता है रसता है कै विनीत परनीत निज नेह की ॥ भनत कविन्द सुर नर नाग नारिन की सिच्छा है कि इच्छा रूप रच्छन अछेह की । पतिव्रत पारावार बारी कमला है साधुता की कै सिला है कै कला है कुल गेह की ॥ २ ॥

कैसी ही लगन जामे लगन लगाई तुम प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसके । केतिको छपाय के उपाय उपजाय प्यारे तुमतें मिलाप के बढ़ाये चोप चसके ॥ भनत कविन्द हमें कुंज में बुलाय कर बसे कित जाय दुख देकर अबस के । पगनि में छाले परे नांघिबे को नाले परे तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ।। ३ ॥

ऐसे मै न मैन के न देखे ऐन सैन के जगैया दिन रैन के जितैया सौति सीन के । कमल कलीन मुकलित जु करनहार कानन की कोरन लौं कोरन रंगीन के ॥ भनत कविन्द भावती के नैन चायक से देखे मैन पायक से नायक नवीन के । सांचे है अमीन के अमीन मानो मीन के बखानै को मृगीन के खगीन पन्नगीन के ॥ ४ ॥

राजै रस मै री तैसी बरसा समै री चढ़ी चंचला नचैरी चकचौधा कौंधा वारै री । व्रती व्रत हारै हिये परत फुहारै कछू छोरै कछू धारै जलधर जलधारें री ॥ भनत "कविन्द" कुंज भौन पौन सौरभ सों काके न कंपाय प्रान परहथ पारैं री । काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारे मन औरे किये डारैं ये कदम्बन की डारैं री ॥ ५ ॥

सहर मझारत पहर एक लाग जैहैं छोर में नगर के सराय है उतारे की । कहत कविन्द मृग मांझि ही परैगी सांझ खबर उड़ानी है बटोही द्वैक मारे की ॥ घर के हमारे परदेस को सिधारे याते दया के बिचारे हम रीति राह बारे की । उतरो नदी के तीर बर के तरे ही तुम चौंको जिन चौकी तहां पाहरू हमारे की ॥ ६ ॥

नेवाज

नेवाज नाम के दो-तीन कवि पाये जाते हैं। एक नेवाज महाराज छत्रसाल बुदेला के यहां थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। दूसरे नेवाज बिलग्राम के जुलाहे थे। तीसरे नेवाज शिवसिंह के कथनानुसार गाजीपुर के भगवंत राय खीची के यहां थे। दूसरे और तीसरे नेवाज साधारण कवि थे। अतएव हम यहां प्रथम नेवाज ही की चर्चा करते है।

ठाकुर शिवसिंह ने इनका जन्म सं० १७३९ माना है और जन्मस्थान अंतर्वेद बतलाया है। ये छत्रसाल के समय में थे, इसके प्रमाण में ठाकुर साहब ने एक दोहा लिखा है--

तुम्है न ऐसी चाहिये, छत्रसाल महराज।
जहं भगवत गीता पढ़ी, तहं कवि पढ़त नेवाज॥

यह दोहा मालूम होता है, भगवत के स्थान पर नेवाज के नियत हो जाने पर बना था।

नेवाज ब्राह्मण थे। शकुन्तला नाटक के सिवा इनका रचा हुआ कोई ग्रथ नही मिलता। कहीं-कही पुस्तकों में इनके फुटकर छद मिलते है। नेवाज बड़े रसिक कवि थे। कही-कहीं भावों मे इन्होंने बड़ी अश्लीलता भर दी है। इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं—

देखि हमै सब आपस मे जो कुछ मन भावे सोई कहती है।
ए घरहाई लोगाई सबै निसि द्योस नेवाज हमैं दहती है॥
बातें चबाव भरी सुनि कै रिसि आवत पै चुप ह्वै रहती है।
कान्ह पियारे तिहारे लिए सिगरे ब्रज को हंसिबो सहती है॥ १॥

पीठि दै पौढ़ि दुराय कपोल को मानै न कोटि पिया उत पोढ़त।
बांहन बीच हिये कुच दोऊ गहे रसना मन ही मन सोचत॥
सोवत जानि निवाज पिया कर सों कर दै निज ओर करोटत।
नीबा विमोचत चौंकि परी मृगछौना सी बाल बिछौना पै लोटत॥२

पारथ समान कीन्हों भारत मही मै आनि बांधि सिर बाना ठान्यो

सरम सपूती को। कोर कोर कटि गयो हटि कै न पग दयो लयो रन जीति किरवान करतूती को॥ भनत "नेवाज" दिल्लीपति सों सहादत खां करत बखान एती मान मजबूती को। कतल मरद्द नद्द सोनित सों भरि गयो करि गयो हद्द भगवन्त रजपूती को॥ ३॥

आगे तौ कीन्हीं लगालो लोयन कैसे छिपे अजहू जौ छिपावति।
तू अनुराग कौ सोध कियो ब्रज की बनिता सब यों ठहरावति॥
कौन सकोच रह्यो है "नेवाज" जो तू तरसै उनहूं तरसावति।
बवरी जो पै कलंक लग्यो तौ निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावति॥४

रसलीन

सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी का उपनाम रसलीन था। बिलग्राम जिला हरदोई में एक मशहूर कस्बा है। वहां बहुत दिनों से बड़े-बड़े विद्वान मुसलमान होते आये है,और अब भी वर्तमान है। रसलीन वहीं के रहने वाले थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १७४६ के लगभग हुआ था। इनके रचे हुए दो ग्रंथ मिलते है, अंग-दर्पण और रस-प्रबोध। अंग-दर्पण में नखशिख का वर्णन है और रस-प्रबोध में रसों का। मुसलमान होकर ब्रजभाषा में ऐसी सुन्दर रचना करने के लिए रसलीन धन्यवाद के पात्र है। शिवसिंह ने इनको अरबी-फारसी का आलम फाजिल और भाषा कविता में बड़ा निपुण बताया है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

मुखससि निरखि चकोर अरु, तन पानिप लखि मीन।
पद पंकज देखत भंवर, होत नयन रसलीन॥ १॥
धरति न चौकी नग जरी, यातें उर में लाइ।
छांह परे पर पुरुष की, जिन तिय धरम नसाइ॥ २॥
चख चलि श्रवन मिल्यो चहत, कच बढ़ि छुवन छवानि।
कटि निज दरब धरयो चहत, वक्षस्थल में आनि॥ ३॥
सौतिन मुख निसि कमल भो, पिय चख भये चकोर।
गुरुजन मन सागर भये, लखि दुलहिनि मुख ओर॥ ४॥

रमनी मन पावत नहीं, लाज प्रीति को अंत ।
दुहूं ओर ऐंचो रहै, ज्यों बिबि तिय को कंत ।। ५ ।।
लिखी बिरंचि राख्यो हुतो, यह संयोग इक संग ।
कुच उतंग तिय उर चढ़ै, पिय उर चढै अनंग ।। ६ ।।
यों तिय नैननि लाज ज्यों, लसत काम के भाय ।
मिल्यो सलिल में नेह ज्यों, ऊपर ही दरसाय ।। ७ ।।
मुकुत भये घर खोय कै, कानन बैठे जाय ।
घर खोवत है और को, कीजै कौन उपाय ।। ८ ।।

घाघ

घाघ कन्नौज निवासी थे । इनका जन्म सं० १७५३ में कहा जाता है । ये कब तक जीवित रहे, न तो इसका ठीक-ठीक पता है, और न इनका या इनके कुटुम्ब ही का कुछ हाल मालूम है । इन्होंने कविता का कोई ग्रन्थ लिखा या नहीं, यह भी अभी तक अज्ञात है । पर इनके सामयिक नीति-सम्बन्धी छंद इतने लोक-प्रिय हैं कि गांवों में बातचीत करते समय लोग उन्हें कहावतों की तरह प्रयोग करते हैं । किसानों में खेतीबारी के बहुत-से काम इनके छंदों के आधार पर ही होते हैं । इनसे यह जान पड़ता है कि ये बड़े अनुभवी और प्रतिभावान् कवि थे ।

कहते हैं कि घाघ का गांव गंगा जी के जिस किनारे पर था, ठीक उसके सामने दूसरे किनारे पर लालबुझक्कड़ का गांव था ।

घाघ बुद्धिमान्, अनुभवी और प्रत्युत्पन्नमति थे । उनके गांव वाले उनका आदर भी बहुत करते थे । घाघ ने भी लोगों की साधारण बोल-चाल में छंद रचकर उनमें ज्ञान का विकास किया था । घाघ की प्रतिष्ठा और यश देखकर लाल बुझक्कड़ से न रहा गया । वे भी उनके समान अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए उद्योग करने लगे । पर उनमें घाघ की-सी प्रतिभा नहीं थी । संयोग से उनके गांव वाले भी वैसे ही समझ-बूझ के थे । उन्हें कोई भी नई बात देखकर आश्चर्य होता था और वे

लालबुझक्कड़ के पास यह बूझने के लिए दौड़े जाते थे कि "यह क्या है ?" लालबुझक्कड़ को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ बूझना ही पड़ता था; इसलिये उनके नाम के साथ बुझक्कड़ उपाधि जुड़ गई। लाल उनका असली नाम था,

एक बार लालबुझक्कड़ के गांव वाले को राह में हाथी के पैर के चिह्न मिले। वह चकराया कि "यह क्या है, जो लगातार दूर तक चला गया है ?" इतनी बड़ी शंका का समाधान लालबुझक्कड़ के सिवा और कौन कर सकता था ? वह अपना कामकाज छोड़कर इस शंका की निवृत्ति के लिए लालबुझक्कड़ के पास पहुंचा। लालबुझक्कड़ ने शङ्का सुनते ही हंसते हुए तत्काल उत्तर दिया—

लालबुझक्कड़ बूझते, और न बूझै कोय।
पैर में चक्की बांध के, हरिना कूदा होय॥

इस तरह उन्होंने अपनी प्रखर-बुद्धि से गांव वाले का समाधान कर दिया।

एक दिन एक गांव वाले को कहीं राह में एक कोल्हू पड़ा हुआ मिला। कोल्हू पुराना होकर काम का न रहा होगा और किसी ने उसे लापरवाही से फेंक दिया होगा। गांव वाले की समझ में यह बात न आई कि यह क्या पदार्थ है। वह लालबुझक्कड़ के घर पहुंचा। लाल-बुझक्कड़ ने सर्वज्ञ की तरह मुसकुराते हुए कहा—

लालबुझक्कड़ बूझते, वे तों हैं गुरु ज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पड़ी, खुदा की सुर्मादानी॥

इसी तरह लालबुझक्कड़ ने अपनी आशु कविता का चमत्कार दिखा कर घाघ को परास्त करने का प्रयत्न किया। पर आज हम घाघ को जहां किसानों में एक मित्र की भांति सम्मति देते हुए पाते हैं, वहां लालबुझक्कड़ को विदूषक की तरह अपना बेसिर-पैर की बातों से हंसा-हंसाकर उनकी थकावट मिटाने और जी बहलाते हुए देखते हैं।

पर कविता की भाषा से घाघ कन्नौज के निवासी नहीं जान पड़ते।

कुछ लोग इन्हें फतहपुर जिले के किसी गांव का निवासी बतलाते हैं, उनका यह भी कहना है कि घाघ की पुत्र-बधू कन्नौज की थी । उसने भी कुछ रचनाएं की हैं, और घाघ की बातों का मजाक उड़ाते हुये खंडन किया है । कहा जाता है कि उससे ही झेंपकर घाघ घर छोड़ कर कन्नौज जा बसे । यहां घाघ के कुछ छन्द लिखे जाते हैं—

बनियक सखरज ठकुरक हीन । बयदक पूत व्याधि नहिं चीन ।
पंडित चुपचुप बेसवा मइल । कहै घाघ पांचों घर गइल ॥ १ ॥
नसकट खटिया दुलकन घोर । कहे घाघ यह बिपत क ओर ॥
बाछा बैल पतुरिया जोय । ना घर रहे न खेती होय ॥ २ ॥
भुइयां खेड़े हर ह्वै चार । घर ह्वै गिहिथिन गऊ दुधार ॥
अरहर की दाल जड़हन का भात । गागल निबुआ औ घिव तात ॥
सहरस खंड दही जो होय । बांके नैन परोसै जोय ॥
कहे घाघ तब सब ही झूठा । उहां छांड़ि इहवे बैकुंठा ॥ ३ ॥
कुच कट पनहीं बतकट जोय । जो पहलौंठी बिटिया होय ॥
पातरि कृषी बौरहा भाय । घाघ कहैं दुख कहां समाय ॥ ४ ॥

मुये चाम से चाम कटावे, भुइं संकरी मां सोवै ।
घाघ कहैं ये तीनों भकुआ, उड़रि गये पर रोवैं ॥ ५ ॥
सुथना पहिरे हर जोतैं, औ पौला पहिरि निरावै ।
घाघ कहैं ये तीनों भकुआ, सिर बोझा औ गावैं ॥ ६ ॥
उधारि काढ़ि व्यौहार चलावैं, छप्पर डारें तारो ।
सारे के संग बहिनी पठवें, तीनिउ का मुंह कारो ॥ ७ ॥
आलस नींद किसानै नासै, चोरै नासै खांसी ।
अंखियां लीबर बेसवै नासै, तिरमिर नासै पासी ॥ ८ ॥

ना अति बरखा ना अति धूप । ना अति बकता ना अति चूप ॥
लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान, ममिला बिगरे सांझ बिहान ॥ ९ ।
माघ क ऊखम जेठ क जाड़ । पहिले बरिखे भरिगै गाड़ ॥

सावन सुकला सत्तमी, जो गरजे अधरात।
तू पिय जैहो मालवा, हौं जैहों गुजरात॥ ११॥
सावन सुकला सत्तमी, चन्दा उगे तुरन्त।
की जल मिले समुद्र में, की नागरि कूप भरन्त॥ १२॥
सावन सुकला सत्तमी, छिपि के ऊगे भानु।
तब लगि देव बरीसिहै, जब लगि देव उठान॥ १३॥
सावन कृष्ण एकादसी, जेतो रोहिन होय।
तेतो समया जानियो, खरी घसै जिनि कोय॥ १४॥
बहु बजार बनिहार बनि, बारी बेटा बैल।
ब्योहर बढ़ई बन बबुर, बात सुनो यह छैल॥ १५॥
जो बकार बारह बसैं, सौं पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दै सदा, आप रहै अलमस्त॥ १६॥
सावन पछिवां भादों पुरवा, आसिन बहै इसान।
कातिक कन्ता सींक न डोले, गाजें सबै किसान॥ १७॥
गया पेड़ जब बकुला बैठा। गया गेह जब मुड़िया पैठा॥
गया राज जहं राजा लोभी। गया खेत जहं जामी गोभी॥१८॥
घर घोड़ा पैदल चलै, तीर चलावे बीन।
थाती धरै दमाम घर, जग में भकुआ तीन॥ १९॥
सदां न बागां बुलबुल बोलैं, सदां न बाग बहारां।
सदां न ज्वानी रहती यारो, सदां न सोहबत यारां॥ २०॥
नीचे ओद ऊपर बदराई, कहैं घाघ अब गेरुई खाई॥
पछिवां हवा ओसावै जोई, घाघ कहै घुन कबहुं न होई॥२१॥
सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान॥ २२॥
जेठ मास जो तपै निरासा, तो जानो बरसा की आसा॥
दिवस बादरा रात को तारे, चलो कन्त जहं जीवें वारे॥२३॥

ताका भैंसा गादरे बैल । नारि कुलच्छनि बालक छैल ॥
इनसे बाचें चातुर लोग । राज छोड़ के साधें जोग ॥२४॥
सावन घोड़ी भादों गाय , माघ मास जो भैंस बिआय ॥
कहैं घाघ यह सांची बात , आपै मरै कि मालिकै खाय ॥२५॥
बिन बैलन खेती करै , बिन भैयन को रार ।
बिन मेहरुआ घर करै , चौदह साख लबार ॥ २६ ॥
बूढा बैल बिसाहै , भीना कपड़ा लेय ।
आपुन करै नसौनी , दैवै दूषण देय ॥ २७ ॥
बैल चौंकना जोत में , औ चमकीली नार ।
ये बैरी हैं जान के , कुशल करै करतार ॥ २८ ॥

दास

दास का पूरा नाम भिखारीदास था । जि० प्रतापगढ़ के ट्योंगा गांव में सं० १७५५ के लगभग इनका जन्म हुआ था । ये जाति के कायस्थ थे । इनके पिता का नाम कृपालदास और पितामह का वीरभान था । इनके रचे हुए काव्य निर्णय, रससारांश, विष्णुपुराण, नामप्रकाश, छन्दोर्णव और शृङ्गारनिर्णय काव्य के उत्तम ग्रन्थ हैं । इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते हैं—

सुजस जनावैं भगतनहीं से प्रेम करैं चित्तअति ऊजरे भजति हरि नाम हैं । दीन के दुखन देखैं आपनो सुखन लेखैं बिप्र पापरत तन मैन मोहै धाम हैं ॥ जग पर जाहिर है धरम निबाहि रहै देव दरसन ते लहत बिसराम हैं । दास जू गनाये जे असज्जन के काम हैं समुझि देखो एई सब सज्जन के काम हैं ॥ १ ॥

धूरि चढै नभ पौन प्रसंग तें कीच भई जल-संगति पाई ।
फूल मिलै नृप पै पहुंचै कृमि-कीटनि संग अनेक बिथाई ॥
चन्दन संग कुदारु सुगन्ध ह्वै नीच प्रसंग लहै करुआई ।
दास जू देख्यो सही सब ठौरनि संगति को गुन-दोषन जाई ॥ २ ॥
पंडित पंडित सों सुखमंडित सायर सायर कै मन मानै ।

संतहिं संत भनंत भलौ गुनवंतनि को गुनवंत बखानै ॥
जा पहं जा सह हेतु नहीं कहिये सु कहा तिहि की गति जानै ।
सूर को सूर सती को सती अरु दास जती को जती पहचानै ॥ ॥३॥
प्रानबिहीन के पाइ पलोटि अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो ।
आरसी अंधके आगे धरयो बहिरे को मतो करि उत्तर जोयो ॥
ऊसर में बरस्यो बहु बारि पखान के ऊपर पङ्कज बोयो ।
दास बृथा जिन साहब सूम की सेवनि में अपनो दिन खोयो ॥४॥
दृग नासा न तो तप जाल खगी, न सुगंध सनेह के ख्याल खगी ।
स्रुति जीहा बिरागै न रागै पगी मति रामै रंगी औ न कामै रंगी ॥
तप में ब्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न विभूति जगी ।
जग जन्म वृथा तिनको जिनके गरे सेली लगी न नवेली लगी ॥५॥
कंज सकोच गड़े रहे कीच में मीनन बोरि दियो दह नीरन ।
दास कहै मृगहू को उदास कै बास दियो है अरन्य गंभीरन ॥
आपुस में उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निन्दित हैं कवि धीरन ।
खंजनहूं को उड़ाय दियो हलुके करि डारे अनङ्ग के तीरनै ॥ ६ ॥
नैनन को तरसैये कहां लौं कहां लौं हिये बिरहागि में तैये ।
एक घरी न कहूं कल पैये कहां लगि प्रानन को कलपैये ॥
आवै यही अब जी में विचार सखी चल सौतिहुं के घर जैये ।
मान घटे ते कहा घटिहै जु पै प्रानपियारे को देखन पैये ॥ ७ ॥

रसनिधि

रसनिधि का असली नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया राज्य के अन्तर्गत जागीरदार थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है; परन्तु सं० १७६० में इनका होना माना जाता है।

इनका रचा हुआ रतनहजारा अद्भुत ग्रंथ है। हजारा में कुल दोहे ही दोहे हैं। भावों को झलकाने में इन्होंने बड़ी बारीक बुद्धि से काम लिया है। इनके दोहे बिहारी के दोहों से टक्कर लेते है। नीचे इनके कुछ दोहे लिखे जाते हैं। देखिये कैसे लुभावने हैं—

रसनिधि वाको कहत हैं , याही तें करतार ।
रहत निरन्तर जगत कौ , वाही के कर तार ॥ १ ॥
आये इसक लपेट में , लागी चसम चपेट ।
सोई आया जगत में , और भरे सब पेट ॥ २ ॥
सज्जन पास न कहु अरे , ये अनसमझी बात ।
मोम रदन कहुं लोह के , चना चबाये जात ॥ ३ ॥
हित करियत यहि भांति सों , मिलियत है वहि भांत ।
छीर नीर तें पूंछ लै , हित करिबे की बात ॥ ४ ॥
पसु पच्छीहू जानहीं , अपनी अपनी पीर ।
तब सुजान जानौं तुम्हें , जब जानौ पर पीर ॥ ५ ॥
रूप नगर बस मदन नृप , दृग जासूस लगाइ ।
नेहनि मन कौ भेद उन , लीनौ तुरत मंगाइ ॥ ६ ॥
सुन्दर जोबन रूप जो , बसुधा में न समाइ ।
दृग तारन तिल बिच तिन्हें , नेही धरत लुकाइ ॥ ७ ॥
सरस रूप को भार पल , सहि न सकै सुकुमार ।
याही तें ये पलक जनु , झुकि आवें हर बार ॥ ८ ॥
सुनियत मीननि मुखलगै , बंसी अबै सुजान ।
तेरी ये बंसी लगै , मीनकेत कौ बान ॥ ९ ॥
जिहि मग दौरत निरदई , तेरे नैन कजाक ।
तिहि मग फिरत सनेहिया , किये गरेबां चाक ॥ १० ॥
चतुर चितेरे तुव सबी , लिखत न हिय ठहराइ ।
कलम छुवत कर आंगुरी , कटी कटाछन जाइ ॥ ११ ॥
मन गयंद छवि मद छके , तोर जंजीरन जात ।
हित के झीने तार सों , सहजै ही बंधि जात ॥ १२ ॥
उड़ौ फिरत जो तूल सम , जहां तहां बेकाम ।
ऐसे हरुये को धरयो , कहा जान मन नाम ॥ १३ ॥

लेउ न मजनू गोर ढिग, कोऊ लै लै नाम।
दरदवन्त को नेक तौ, लैन देउ बिसराम ॥ १४ ॥
चसमन चसमा प्रेम कौ, पहिले लेहु लगाइ।
सुन्दर मुख वह मीत कौं, तब अवलोकौ जाइ ॥ १५ ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की, बैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागे दृगन, भूखहि देह भगाइ ॥ १६ ॥
प्रेम नगर में दृग बया, नोखे प्रगटे आइ।
दो मन को करि एक मन, भाव देत ठहराइ ॥ १७ ॥
न्यारो पैंड़ो प्रेम को, सहसा धरो न पाव।
सिर के पैंड़े भावते, चलौ जाय तौ जाव ॥ १८ ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की, लखौ सनेही आइ।
जुरै कहूं टूटै कहूं, कहूं गांठि पर जाइ ॥ १९ ॥
अद्भुत बात सनेह की, सुनौ सनेही आइ।
जाकी सुध आवै हिये, सबही सुध बुध जाइ ॥ २० ॥
कहनावत मै यह सुनी, पोषत तनु को नेह।
नेह लगाये अब लगी, सूखन सिगरी देह ॥ २१ ॥
बोलन चितवन चलन में, सहज जनाई देत।
छिपत चतुरई कर कहूं, भरे हिये को हेत ॥ २२ ॥
यह बूझन को नैन ये, लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी, पिय आवन की बात ॥ २३ ॥
कञ्चन से तन में यहां, भरो सुहाग बनाइ।
विरह आंच तापै कहो, सहो कौन विधि जाइ ॥ २४ ॥

नागरीदास और बनीठनीजी

नागरीदास नाम के ब्रजभाषा के चार कवि हुए है। पहले नागरीदास श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे। दूसरे नागरीदास स्वामी हरिदास की शिष्य-परम्परा में थे। तीसरे नागरीदास गोस्वामी हितहरि-

वंश वा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की सम्प्रदाय में हुए। और चौथे नागरी-दास कृष्णगढ़ (राजपूताना) के राजा थे । इनके पिता का नाम राजसिंह था। इनका असली नाम सावंतसिंह था। ये कविता में अपना उपनाम नागर, नागरिया अथवा नागरीदास रखते थे । इनकी रचना कृष्णगढ़ में अभी तक सुरक्षित है। ये राठौर क्षत्रिय थे । इनका जन्म पौष कृष्ण १२ सं० १७५६ को हुआ। कवि होने के सिवा ये वीर भी थे। इन्होंने दस वर्ष ही की अवस्था में एक उन्मत्त हाथी को विचलित कर दिया था, और तेरह वर्ष की अवस्था में बूंदी के राव जैतसिंह का समर में वध किया था। बीस वर्ष की अवस्था में अकेले ही एक सिंह को मारा था। कई घराऊ झगड़ों के कारण स० १८१४ में ये राजपाट छोड़कर वृन्दावन चले गये और वहीं रहने लगे। ये महाप्रभु बल्लभाचार्य सम्प्रदाय के शिष्य थे। सं १८२१ में भादव सुदी३ को बृन्दाबन में इन्होंने शरीर छोड़ा। वहां इनकी छतरी है, जिसमे लेख भी है।

वृन्दावन इन्हें बहुत प्रिय था। वहां इनका सम्मान भी बहुत था। वहाँ के भक्तों में इनकी कविता का आदर इनके जीवनकाल ही में बहुत होगया था। इन्होंने ७५ ग्रन्थों की रचना की। इनमें से अन्त के दो अब नहीं मिलते। ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) सिङ्गारसार, (२) गोपी प्रेमप्रकाश, (३) पद प्रसङ्गमाला, (४) ब्रजवैकुण्ठ तुला, (५) ब्रजसार, (६) भोरलीला, (७) प्रातरस-मञ्जरी, (८) विहारचद्रिका, (९) भोजनानन्दाष्टक, (१०) जुगलरस-मञ्जरी, (११) फूलविलास, (१२) गोधन आगमन, (१३) दोहनआनन्द, (१४) लग्नाष्टक (१५) फागविलास, (१६) ग्रीष्मविहार, (१७) पावस पचीसी, (१८) गोपी बैनविलास, (१९) रासरसलता, (२०) रैनरूपरस, (२१) शीतसार, (२२) इश्कचमन, (२३) मजलिस मंडन, (२४) अरिलाष्टक, (२५) सदा की मांझ, (२६) वर्षाऋतु की मांझ, (२७) होरी की मांझ, (२८) कृष्णजन्मोत्सव कबित्त, (२९) प्रिया जन्मोत्सव कबित्त, (३०) सांझी के कबित्त (३१) रास के कबित्त, (३२) चांदनी के कवित्त,

(३३) दिवारी के कबित्त, (३४) गोवर्द्धनधारन के कबित्त, (३५) होरी के कबित्त, (३६) फाग गोकुलाष्टक, (३७) हिंडोरा के कबित्त, (३८) वर्षा के कबित्त (३९) मार्ग मगदीपिका, (४०) तीर्थानन्द, (४१) फागबिहार, (४२) बालविनोद, (४३) सुजनानन्द, (४४) बनविनोद (४५) भक्तिसार, (४६) देहदसा, (४७) वैरागबल्ली, (४८) रसिक रत्नावली, (४९) कलि वैराग बल्लरी, (५०) अरिल्ल पचीसी (५१) छूटकविधि, (५२) पारायण विधि प्रकाश (५३) सिखनख, (५४) नखसिख, (५५) छूटक कबित्त, (५६) चरचरियां, (५७) रेखता, (५८) मनोरथ मञ्जरी, (५९) रामचरित्र माला, (६०) पद प्रबोधमाला, (६१) जुगल भक्ति बिनोद, (६२) रसानुक्रम के दोहे, (६३) शरद की मांझ, (६४) सांझी फूल बीनन समेत सम्बाद, (६५) बसन्त वर्णन, (६६) फाग खेलन समेतानुक्रम कबित्त, (६७) रसानुक्रम कबित्त, (६८) निकुञ्ज विलास, (६९) गोविन्द परचई, (७०) बनजन प्रशंसा, (७१) छूटक दोहा, (७२) उत्सव माला, (७३) पद मुक्तावली, (७४) बैनविलास, (७५) गुप्तरस प्रकाश।

अन्त की दो पुस्तकें अब नहीं मिलतीं। इनकी पुस्तकों का एक संग्रह 'नागर समुच्चय' नाम से ज्ञानसागर छापाखाना बम्बई ने प्रकाशित किया है। पर वह बहुत अशुद्ध है। उसमें अन्य कवियों के भी बहुत-से छन्द मिल गये हैं।

ये वल्लभ-सम्प्रदाय के थे। इनकी कविता बड़ी सरस, भक्तिरसपूर्ण होती थी। हिन्दी काव्य के रसिकों को इनकी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिएं। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

उज्जल पख की रैन चैन उज्जल रस दैनी।
उदित भयो उड़राज अरुन दुति मन हर लैनी॥
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहिं छोड़्यो मनु।
प्राची दिसितें प्रजुलित आवति अगिनि उठी जनु॥
दहन मानपुर भये मिलन कों मन हुलसावत।
छावत छपा अमन्द चन्द ज्यो ज्यों नभ आवत॥

जगमगाति बन जोति सोत अमृतधारा से।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से॥
स्वेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी।
तैसी मन्द सुगन्ध पौन दिन मनि दुख दहनी॥
मधि नायक गिरिराज पदिक बृन्दावन भूषन।
फटिक सिला मनि शृङ्ग जगमगति दुति निर्दूषन॥
सिला सिला प्रति चन्द चमकि किरननि छबि छाई।
बिच बिच अम्ब कदम्ब झम्ब झुकि पायनि आई॥
ठौर ठौर चहुं फेर ढेर फूलन के सोहत।
करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत॥
बिमल नीर निर्झरत कहूं झरना सुख करना।
महा सुगन्धित सहज बास कुमकुम मद हरना॥
कहुं कहुं हीरन खचित रचित मण्डल सुरासि के।
जटित नगन कहुं जुगल खम्भ झूलनि विलास के॥
ठोर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी।
बिहरत विविध बिहार तहां गिरि पर गिरधारी॥ १॥
इश्क चमन महबूब का, जहां न जावे कोय।
जावे सो जीवे नहीं, जिये सो बौरा होय॥ २॥
जामें रस सोई हरयो, यह जानत सब कोय।
गौर स्याम द्वै रंग बिन, हरयो रंग नहिं होय॥ ३॥
ऐ तबीब उठि जाहु घर, अवस छुवै का हाथ।
चढ़ी इश्क की कैफ यह, उतरै सिर के साथ॥ ४॥
अरे पियारे का करौं, जाहि रहो है लाग।
क्यों करि दिल बारूद में, छिपै इश्क की आग॥ ५॥
फूले फूलनि स्वेत बिच, अलि बैठे मधु लैन।
दम्पति हित वृन्दा विपिन, धारे अगणित नैन॥ ६॥

कलह कलपना काम कलेस निवारनो।
परनिन्दा परद्रोह न कबहुं बिचारनो॥
जग प्रपंच चटसार न चित्त चढ़ाइये।
ब्रजनागर नंदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ७॥
अन्तर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों।
तिनके गृह नहिं रहै सन्त सनमान सों॥
उनकी संगति भूलि न कबहूं जाइये।
ब्रजनागर नंदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ८॥
कहूं न कबहूं चैन जगत दुखकूप है।
हरि भक्तन को संग सदा सुखरूप है॥
इनके ढिग आनन्दित समै बिताइये।
ब्रजनागर नंदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ९॥

महाराजा नागरीदास की दासी बनीठनीजी भी कविता करती थी और कविता में अपना उपनाम रसिकबिहारी रखती थी। ये सदा नागरी दासजी की सेवा में रहती थीं। इनका देहान्त सं० १८२२ में हुआ। इनके बनाये कुछ पद नीचे लिखे जाते हैं—

रतनारी हो थारी आंखड़ियां।
प्रेम छकी रस बस अलसाणी जाणि कमल की पांखड़ियां॥
सुन्दर रूप लुभाई गति मति हौं गई ज्यूं मधु मांखड़ियां।
रसिकबिहारी वारी प्यारी कौन बसी निस कांखड़िया॥ १॥

हो झालो दे छे रसिया नागर पना।
सासां देखै लाज मरां छां आवां किण जतना॥
छैल अनोखो कयो न मानै लोभी रूप सनां।
रसिकबिहारी नणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मनां॥ २॥

पावस रितु वृन्दाबन की दुति दिन दिन दूरी दरसै है, छबि सरसै है। लूम झूम सावन घनो घम बरसै है॥

हरिया तरवर सरवर भरिया जमुना नीर कलोलै है, मन मोलै है।
प्यारी जा रो बाग सुहावणो मोर बोलै है ॥

आभा आया बीज चिमंकै जलधर गहरो गाजै है, रितुराजे है।
स्यामा सुन्दर मुरली रली बन बाजै है ॥

रसिकबिहारीजी रो भीज्यों पीताम्बर प्यारी जी री चूनर सारी है,
सुखकारी है। कुंजा कुंजा झूल रया पिय प्यारी है ॥

चरनदास

चरनदास जी ढूसर बनियां थे। इनका जन्म भाद्रपद्र शुक्ला तृतीया मंगलवार सं० १७६० वि० में राजपूताना के देहरा नामी गांव में हुआ। इन्होंने ७९ वर्ष की अवस्था में, संवत् १८३९ में, दिल्ली म शरीर छोड़ा। इनका पहले का नाम रनजीतसिंह था। इनके पिता का नाम मुरलीधर, माता का कुंजो और गुरु का शुकदेव था। चरनदासजी ने सात वर्ष की अवस्था में घर छोड़ा। घर से ये दिल्ली चले आये और वहाँ अपने नाना के घर रहने लगे। वहीं १९ वर्ष की अवस्था में इन्हें वैराग्य हुआ। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म सं० १५३७ और जन्मस्थान पंडितपुर, जिला फैजाबाद लिखा है; और उसी के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने भी वैसा ही लिखा है जो नितान्त अशुद्ध है। हमने सहजोबाई की बानी और ज्ञान-स्वरोदय से इनके जीवन चरित्र का संग्रह किया है।

उस समय इनके ५२ शिष्य थे, जिनकी ५२ गद्दियां अलग-अलग आजकल वर्तमान हैं, और उनके हजारों अनुयायी है। इनकी चेलियों में सहजोबाई और दयाबाई बड़ी प्रेमिणी थीं। वे बराबर इनकी सेवा में लगी रहती थीं। इन दोनों चेलियों ने भी कविता की है, जो उनकी बानी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

चरनदास के दो ग्रंथ मिलते हैं, एक ज्ञानस्वरोदय और दूसरा चरनदास की बानी। यहां इनके दोनों ग्रन्थों में से कुछ पद्य चुनकर लिखे जाते हैं—

दोहा

चार वेद का भेद है, गीता का है जीव।
चरनदास लखु आपको, तो मैं तेरा पीव ॥ १ ॥
सब योगन को योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान।
सबै सिद्धि को सिद्धि है, तत्व सुरन को ध्यान ।, २ ॥
इंगला पिंगला सुखमणा, नाड़ी तीन बिचार।
दहिने बायें स्वर चलै, लखै धारना धार ॥ ३ ॥
पिंगला दहिने अंग है, इड़ा सु बायें होय।
सुषुमण इनके बीच है, जब स्वर चालै दोय ॥ ४ ॥
जब स्वर चालै पिंगला, मध्य सूर्य तहं बास।
इड़ा सु बायें अंग है, चन्द्र करत परकास ॥ ५ ॥
चित्त अपनो स्थिर करै, नासा आगे नैन।
स्वांसा देखै दृष्टि सों, जब पावै स्वर बैन ॥ ६ ॥
भोरहिं जो सुषुमण चलै, राज होय उत्पात।
देखनवालो बिनसिहै, और काल पर नात ॥ ७ ॥

चौपाई

बिवाह दान तीरथ जो कहै। बस्तर भूषण घर पग धरै।
बायें स्वर में यह सब कीजै। पोथी पुस्तक जो लिख लीजै ॥ ८ ॥
योगाभ्यास अरु कीजै प्रीति। औषध नाड़ी कीजै मीत।
दीक्षा मन्त्र बोवे नाज। चन्द्रयोग थिर बैठे राज ॥ ९ ॥
चन्द्रयोग में स्थिर पुनि जानो। थिर कारज सबही पहिचानो।
करै हवेली छप्पर छावै। बाग बगीचा गुफा बनावै ॥१०॥
हाकिम जाय कोट में बरै। चन्द्रयोग आसन पग धरै।
चरणदास शुकदेव बतावै। चन्द्रयोग थिर काज कहावै ॥११॥
जो खांड़ो कर लीयो चाहै। जाकर बैरी ऊपर बाहै।
युद्ध बाद रण जीते सोई। दहिने स्वर म चालै कोई ॥ १२ ॥

भोजन करै करै अस्नान । मैथुन कर्म भानु परधान ।
बही लिखै कीजै व्योहारा । गज घोड़ा बाहन हथियारा ।। १३ ।।
विद्या पढ़ै नई जो साधै । मन्त्रसिद्धि औध्यान अराधै ।
बैरी भवन गवन जो कीजै । अरुकाहू को ऋण जो दीजै ।। १४ ।।
ऋण काहू पै तू जो मांगे । विष औ भूत उतारन लागे ।
चरनदास शुकदेव विचारी । ये चर कर्म भानु की नारी ।। १५ ।।

दोहा

गांव परगने खेत पुनि, इधर उधर मै मीत ।
सुषुमण चलत न चालिये, बरजत हैं रणजीत ।। १६ ।।
छिन बांएं छिन दाहिने, सोई सुषुमण जानि ।
ढील लगै कै ना मिलै, कै कारज की हानि ।। १७ ।।
होय क्लेश पीड़ा कछू, जो कोई कहिं जाय ।
सुषुमण चलत न चालिये, दीन्हों तोहिं बताय ।। १८ ।।
पूरब उत्तर मत चलो, बायें स्वर परकाश ।
हानि होय बहुरे नहीं, आवन की नहिं आश ।। १९ ।।
दहिने चलत न चालिये, दक्षिण पश्चिम जानि ।
जो रै जाय बहुरे नहीं, औ होवे कछु हानि ।। २० ।।
दहिने स्वर में जाइये, पूरब उत्तर राज ।
सुख सम्पति आनंद करै, सभी होय सुख काज ।। २१ ।।
बायें स्वर में जाइये, दक्षिण पश्चिम देश ।
सुख आनंद मंगल करै, जो रे जाय परदेश ।। २२ ।।
दहिने सेती आयकर, बाएं पूछे कोय ।
जो बायें स्वर बन्द है, सफल काज नहिं होय ।। २३ ।।
बायें सेती आयकर, दहिने पूछै धाय ।
जो दहिने स्वर बन्ध है, कारज अफल बताय ।। २४ ।।
जब स्वर भीतर को चलै, कारज पूंछै कोय ।
पैज बांध वासों कहो, मनसा पूरण होय ।। २५ ।।

जब स्वर बाहिर को चलै, तब कोई पूछै तोर।
वाको ऐसे भाषिये, नहिं कारज विधि कोर॥ २६॥
बाई करवट सोइये, जल बायें स्वर पीव।
दहिने स्वर भोजन करै, तो सुख पावै जीव॥ २७॥
बाये स्वर भोजन करै, दहिने पीवै नीर।
दस दिन भूला यों करै, पावै रोग शरीर॥ २८॥
दहिने स्वर झाड़े फिरै, बायें लघु शंकाय।
युक्ती ऐसी साधिये, तीनों भेद बताय॥ २९॥
आठ पहर दहिनों चलै, बदलै नहिं जो पौन।
तीन वर्ष काया रहै, जीव करै फिर गौन॥ ३०॥
दिन को तो चन्दा चलै, चलै रात को सूर।
यह निश्चय करि जानिये, प्रान गमन बहु दूर॥ ३१॥
राति चले स्वर चन्द्र में, दिन को सूरज बाल।
एक महीना यों चलै, छठे महीना काल॥ ३२॥
जब साधू ऐसी लखै, छठे महीना काल।
आगेही साधन करै, बैठ गुफा तत्काल॥ ३३॥
ऊपर खैंचि अपान कों, प्राण अपान मिलाय।
उत्तम करै समाधि कों, ताकों काल न खाय॥ ३४॥
पवन पिये ज्वाला पचे, नाभि तलै कर राह।
मेरुदण्ड को फोरि के, बसे अमरपुर मांह॥ ३५॥
जहां काल पहुंचे नहीं, यम की होय न त्रास।
नभ मण्डल को जायकर, उनमें करै निवास॥ ३६॥
जहां काल नहिं ज्वाल है, छूटै सकल सन्ताप।
होय उनमनी लीन मन, बिसरै आपा आप॥ ३७॥
तीनों बंध लगाय के, या बायें को साध।
योग सुषुमणा ह्वै चले, देखै खेल अगाध॥ ३८॥

शक्ति जाय शिव सों मिलैं, जहां होय मन लीन।
महा खेचरी जो लगै, जाने जान प्रबीन॥ ३९॥
आसन पद्म लगाय कर, मूल बन्ध को बांध।
मेरुदण्ड सीधो करै, सुरन गगन को साध॥ ४०॥
चन्द्र सूर्य दोउ सम करै, ठोढ़ी हिये लगाय।
षट चक्कर को बेधकर, शून्य शिखर को जाय॥ ४१॥
इड़ा पिंगला साधकर, सुषुमण में करै बास।
परमज्योति झिलमिलि वहां, पूजैं मन विश्वास॥ ४२॥
सूर्य उत्तरायन लखै, शुक्ल पक्ष क मांहि।
योगी काया त्यागिये, यामे संशय नाहिं॥ ४३॥
मुक्त होय बहुरै नहीं, जीव खोज मिटि जाय।
बुन्द समुन्दर मिलि रहै, दुनिया ना ठहराय॥ ४४॥
जो रण ऊपर जाइये, दहिने स्वर परकास।
जीत होय हारै नहीं, करै शत्रु को नाश॥ ४५॥
सूक्षम भोजन कीजिये, रहिये ना पड़ सोय।
जल थोरा सा पीजिये, बहुत बोल मत खोय॥ ४६॥
पावक पानी वायु है, धरती और अकाश।
पांच तत्व के कोट में, आय कियो तै वास॥ ४७॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट॥ ४८॥
मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान।
चरनदास घायल गिरे, तन मन बीधे प्रान॥ ४९॥
धन नगरी धन देस है, धन पुर पट्टन गांव।
जहं साधू जन उपजियो, ताकी बलि बलि जांव॥ ५०॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सर मांहि।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं॥ ५१॥

दया नम्रता दीनता, छिमा सील सन्तोष।
इन कूं लै सुमिरन करै, निहचै पावै मोख ॥ ५२ ॥
चरनदास यों कहत है, सुनियो सन्त सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान ॥ ५३ ॥
पहिले पहरे सब जगै, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोरही, चौथे जोगी जान ॥ ५४ ॥

तोष

तोष का पूरा नाम तोषनिधि है। ये सिंगरौर, जिला इलाहाबाद के रहनेवाले चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे। सं० १७९१ में इन्होंने सुधानिधि नामक नायिका-भेद का एक ग्रंथ रचा। इनके जन्ममरण के ठीक-ठीक संवत् का पता नहीं चलता। इनके रचे हुए विनय शतक और नखशिख नामक दो ग्रंथों का और भी नाम सुना जाता है। इनकी कविता कहीं-कहीं बड़ी सरस हुई है। हम नीचे कुछ उदाहरण उद्धृत करते हैं—

एक कहै हंसि ऊधवजी ब्रज की जुवती तजि चन्द्र प्रभा सी।
जाइ कियो कहि तोष प्रभू एक प्रानप्रिया लहि कंस की दासी॥
जो हुते कान्ह प्रवीन महा सो हहा मथुरा मै कहा मति नासी।
जीव नहीं उबि जात जबै ढिग पौढ़ति है कुबजा कछुहा सी ॥१॥
श्रीहरि को छवि देखिबे को अंखियां प्रति रोमन मै करि देतो।
बैनन के सुनिबे कहं श्रौन जितै तित सो करतो करि हेतो॥
मो ढिग छोड़ि न काम कछू कहि तोष यहै लिखितो विधि एतो।
तौ करतार इती करनी करि कै कलि मै कलकीरति लेतो ॥२॥
भूषण भूषित दूषणहीन प्रबीन महा रस में छबि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जिहि में परमारथ स्वारथ पाई॥
औ उकतै मुकतै उलही कवि तोष अनोख भरी चतुराई।
होति सबै सुख की जनिता बनि आवति जो बनिता कबिताई ॥३॥

रघुनाथ

रघुनाथ बन्दीजन महाराज काशिराज बरिबंड सिंह के राजकवि थे। महाराज ने इनको काशी के समीप चौरा गांव दिया था, उसी में ये सकुटुम्ब रहते थे।

इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—काव्य-कलाधर, रसिक-मोहन और इश्कमहोत्सव। काव्य-कलाधर की रचना सं० १८०२ में हुई। ठाकुर शिवसिंह ने लिखा है कि इन्होंने सतसई की टीका भी बनाई है।

रघुनाथ ब्रजभाषा में कविता करते थे, परन्तु इश्कमहोत्सव में इन्होंने आजकल की सी हिन्दी भाषा मे कविता लिखी है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

देख हे देख या ग्वालिन की मग नेकु नही थिरता गहती है।
आनंद सों "रघुनाथ" पगी पगी रंगन सों फिरतै रहती है॥
छोर को छोर तरौना को छवै कर ऐसी बड़ी छवि को लहती है।
जोबन आइबे की महिमा अंखियां मनों कानन सों कहती है॥१॥

सूखति जाति सुनी जब सों कछु खात न पीवति कैसे धौं रैहै।
जाकी है ऐसी दसा अबही "रघुनाथ" सो औधि अधार क्यों पैहै॥
ताते न कीजिए गौन बलाइ ल्यों गौन करे यह सीस बिसैहै।
जानति हौ दृग ओट भये तिय प्रान उ सासहि के संग जैहै॥२॥

सम्पति के बढ़े सों प्रतिष्ठा बाढ़ै बाढ़ै सोच कहै रघुनाथ ताके राखिबे के रुख को। मन मांगे स्वादनि लपेटि पेट परचो तासों अङ्ग मे अपार सङ्ग प्रगटो कलुष को॥ दारा सुत सखा को सनेह सों संतापकारी भारी है बचन यह बड़न के मुख को। जगत को जितनो प्रपंच तितनो है दुख सुख इतनो जो सुख मानि लेनो दुख को॥३॥

देखिबो को दुति पूनो के चंद की हे रघुनाथ श्री राधिका रानी।
आई बलाय के चौतरा ऊपर ठाढ़ी भई सुख सौरभ सानी॥

ऐसी गई मिलि जोन्ह की जोति में रूप की रासि न जाति बखानी।
बारन ते कछु भौंहन तें कछु नैनन की छबि त पहिचानी ॥४॥

ग्वालन संग जैबो ब्रज गायन चरैबो ऐबो अब कहा दाहिने ये नैन फरकत हैं। मोतिन की माल वारि डारों गुंज माल पर कुंजनि की सुधि आये हियो धरकत हैं॥ गोबर को गारो "रघुनाथ" कछू याते भारो कहा भयो पहलन मनि मरकत है। मन्दिर हैं मन्दर ते ऊँचे मेरे द्वारिका के ब्रज के खरिक तऊ हिये खरकत हैं ॥५॥

सुधरे सिलाह राखै, वायु बेगी बाह राखै, रसद की राह राखै, राखे रहै बन को। चोर को समाज राखै, बजा औ नजर राखै, खबरि को काज बहुरूपी हरफन को॥ अगम भखैया राखै, सकुन लेवैया राखै, कहै रघुनाथ औ विचार बीच मन को। बाजी राखै कबहूं न औसर के परे जौन ताजी राखै प्रजन को राजी सुभटन को ॥६॥

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन कहैं रघुनाथ भरे चैन रस सियरे। दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे॥ सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के हियरे। धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आजु भोर कैसे नखत नरिन्द भये पियरे ॥७॥

आप दरियाव पास नदियों के जाना नहीं दरियाव पास नदी होंयगी सो धावैगी। दरख्त बेलि आसरे को कभी राखत ना दरख्त ही के आसरे को बेलि पावैगी। मेरे लायक जो था कहना सो कहा मैंने रघुनाथ मेरी मति न्यावही को गावैगी। वह मोहताज आपकी है आप उसके न आप कैसे चलो वह आसपास आवैगी ॥८॥

गुमान मिश्र

गुमान मिश्र के जन्म-मरण का समय अभी तक ठीक-ठीक निश्चित नहीं हो सका। इनके विषय में केवल इतना ही पता चलता है कि इन्होंने

से श्रीहर्ष कृत नैषध काव्य का विविध छन्दों में अनुवाद किया। इन बातों का पता इनके अनुवादित ग्रन्थ से ही चलता है। अब इनके रचे हुए अलंकार, नायिका-भेद, काव्य-रीति आदि विषयों के कई ग्रन्थ तथा कृष्णचन्द्रिका का पता लगा है, परन्तु नैषध काव्य के सिवा और सब ग्रन्थ अप्रकाशित है।

इसमें सन्देह नहीं कि गुमान संस्कृत भाषा काव्य के अच्छे ज्ञाता थे, परन्तु नैषध का अनुवाद उनसे अच्छा नहीं हो सका। कहीं-कहीं तो मूल से भी अधिक जटिल होगया है। आजकल जो वेंकटेश्वर प्रेस का छपा हुआ गुमानकृत नैषध काव्य मिलता है, वह तो नितान्त अशुद्ध है। संभवत: गुमान ने ऐसी अशुद्ध रचना न की होगा।

नैषध में से इनकी कविता के कुछ नमूने यहां दिये जाते हैं—

नल के यश तेज विराजत है। शशि भानु वृथा छवि छाजत हैं॥
जब ही जब यों विधि चित्त धरै। तब छेकन को परिवेश करै॥१॥
विधि भाल दरिद्र लिख्यो जेहि के। नहिं कीजत अंक वृथा तेहि के॥
नल येतिकु ताहि तुरन्त दियो। जिमि टारि दरिद्र को दूरि कियो॥२॥

दूलह

दूलह कवीन्द्र के पुत्र और कालिदास त्रिवेदी के पौत्र थे। इनके जन्म-मरण के ठीक-ठीक समय का अभी तक पता नहीं चला। अनुमान से इनका जन्मकाल विक्रम सं० १९६१ के लगभग ठहरता है। दूलह का "कविकुल कंठाभरण" नामक केवल एक ही ग्रन्थ मिलता है। उसमें कुल एक्यासी छन्द हैं। इनके सिवा कुछ स्फुट छन्द भी मिलते है। दूलह का काव्य-गुण पैतृक है। कालिदास से कवीन्द्र की कविता अच्छी है और कवीन्द्र से दूलह की।

दूलह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

फल बिपरीत को जतन सों "विचित्र" हरि ऊंचे हेत बामन में बलि के सदन में। आधार बड़े तें बड़ो आधेय "अधिक" जानो चरन समानो

नाहि चौदहो भुवन में ।। आधेय अधिक तें आधार की अधिकताई दूसरो अधिक आयो ऐसो गणनन में । तीनो लोक तन मे अमान्यो ना गगन में बसें ते संत मन में कितेक कहो मन में ।।१।।

उत्तर उत्तर उतकरष बखानो "सार" दीरघ ते दीरघ लघू तें लघू भारी को । सब तें मधुर ऊख ऊख तें पियूष ना पियूष हूं ते मधुर है अधर पियारी को ।। जहां कमिकन को क्रमें तें यथा क्रम "यथा संख्य" बैन, नैन, नैनकोन ऐसे धारी को । कोकिल तें कल, कंजदल तें अदल भाव जीत्यो जिन काम की कटारी नोकवारी को ।।२।।

धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं पाइ दियौ पलिकाहीं नाहीं नाहीं कै सुहाई हो । बोलत में नाहीं पट खोलत में नाहीं कवि दूलह उछाही लाख भांतिन लहाई हो ।। चुम्बन मे नाहीं परिरम्भन मे नाहीं सब आसन विलासन में नाहीं ठीक ठाई हो । मेलि गलबाहीं केलि कीन्हीं चित चाही यह हां से भली नाहीं सो कहां ते सीख आई हो ।।३।।

माने सनमाने तेई माने सनमाने सनमाने सनमाने सनमान पाइयतु है । कहैं कवि दूलह अजाने अपमाने अपमान सों सदन तिनहीं को छाइयतु है ।। जानत हैं जेऊ तेऊ जात है बिराने द्वार जान बूझ भूले तिनको सुनाइयतु है । काम बस परे कोऊ गहत गरूर तो वा अपनी जरूर जाजरूर जाइयतु है ।।४।।

गिरिधर कविराय

गिरिधर कविराय का जन्म सं० १७७० में हुआ कहा जाता है। इन्होंने बहुत-सी कुण्डलियां बनाई हैं, जो बड़ी लोकप्रिय हैं। इनकी कविता की भाषा से इनका जन्म-स्थान कहीं अवध में जान पड़ता है । इनके विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार इनके पड़ोस में एक बढ़ई आ बसा । उसने एक ऐसा पलङ्ग बताया, जिसके चारों पावों पर पंखे लगे थे । जब कोई उस पलङ्ग पर लेटता, तो पंखे आप से आप चलने लगते थे । बढ़ई ने वह पलङ्ग ले जाकर राजा को दिया । राजा ने उससे

वैसे ही और भी कई पलङ्ग बना लाने को कहा। गिरिधर के आंगन में बेर का एक बड़ा सुन्दर वृक्ष था। बढ़ई और गिरिधर से कुछ खटपट होगई थी। इसलिए बढ़ई ने राजा से वही बेर का पेड़ लकड़ी के लिए मांगा। राजा ने आज्ञा देदी। गिरिधर ने राजा से बहुत प्रार्थना की, कि वह पेड़ न दिया जाय, परन्तु राजा ने नहीं सुनी। इससे रुष्ट होकर गिरिधर उस राज्य को त्यागकर भ्रमण करने लगे। उसी भ्रमण के समय में स्त्री-पुरुष ने मिलकर कुंडलियों की रचना की। कहा जाता है कि जिन कुंडलियोंके प्रारम्भ में "साईं" शब्द है, वे सब गिरिधरकी स्त्री की बनाई हुई हैं। गिरिधर की कुंडलियां नाम से इनकी कुंडलियों का संग्रह छपा हुआ मिलता है।

हम गिरिधर की कुछ कविता यहां उद्धृत करते हैं—

साईं बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कंस को, गयउ दुहुन को राज॥
गयउ दुहुन को राज, बाप बेटा में बिगरी।
दुस्मन दावागीर, हंसै महिमंडल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय, युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर, नफा कहु कौने पाई॥ १॥

बेटा बिगरे बाप सों, करि तिरियन सों नेहु।
लटापटी होने लगी, मोंहि जुदा करि देहु॥
मोंहि जुदा करि देहु, घरीमा माया मेरी।
लेहौं घर अरु द्वार, करौं मैं फजिहत तेरी॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो गदहा के लेटा।
समय पर्यो है आय, बाप से झगरत बेटा॥ २॥

साईं ऐसे पुत्र से, बांझ रहे बरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से, जाय रहे ससुरारि॥
जाय रहै ससुरारि, नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नसायं, और परिवार नसाने॥

कह गिरिधर कविराय, मातु झंखै वहि ठाईं।
असि पुत्रनि नहिं होय, बांझ रहतिउं बरु साईं॥ ३ ॥
काची रोटी कुचकुची, परती माछी बार।
फूहर वही सराहिये, परसत टपकै लार॥
परसत टपकै लार, झपटि लरिका सौंचावै।
चूतर पोंछै हाथ, दोउ कर सिर खजुवावै॥
कह गिरिधर कविराय, फुहर के याही धैना।
कजरौटा बरु होइ, लुकाठन आंजै नैना॥ ४ ॥
शुक ने कह्यो संदेस, सेमर के पग लागिहौ।
पग न परै वहि देस, जब सुधि आवै फलन की॥ ५ ॥
साईं बैर न कीजिये, गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पंवरिया, यज्ञ करावनहार॥
यज्ञ करावनहार, राजमन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप को तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय, युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह, दिये बनि आवै साईं॥ ६ ॥
सोना लादन पिय गये, सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिय मिले, रूपा ह्वै गये केश॥
रूपा ह्वै गये केश, रोय रंग रूप गंवावा।
सेजन को बिसराम, पिया बिन कबहुं न पावा॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौं लै सोना॥ ७ ॥
जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै संग।
जो चाहै लेतो बनै, तो करि डारु निपङ्ग॥
तो करि डारु निपङ्ग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगन्दै खाय, चित्त में एक न दीजै॥

कह गिरिधर कविराय, खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय, हरी धन धरती जाकी॥ ८॥
दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारिको, ठांउ न रहत निदान॥
ठांउ न रहत निदान, जियत जगमें यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, विनय सबही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सबही के दौलत॥ ९॥
गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥ १०॥
सांई सब संसार मे, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गांठ मे, तबलग ताको यार॥
तबलग ताको यार, यार संगही संग डोलें।
पैसा रहा न पास, यार मुखसे नहिं बोलें॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई सांई॥ ११॥
रहिये लटपट काटि दिन, बरु घामे मां सोय।
छांह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा देहै।
जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जर से जैहै॥
कह गिरिधर कविराय, छांह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाया में रहिये॥ १२॥

साईं घोड़े आछतहि, गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ में, दूरि कीजिये बाज॥
दूरि कीजिये बाज, राज पुनि ऐसो आयो॥
सिंह कीजिये कैद, स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरिधर कविराय, जहां यह बूझि बधाई।
तहां न कीजै भोर, सांझ उठि चलिये साईं॥ १३॥

साईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द, करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोईं।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साईं॥ १४॥

साईं ये न विरोधिये, छोट बड़े सब भाय।
ऐसे भारी वृक्ष को, कुल्हरी देत गिराय॥
कुल्हरी देत गिराय, मारके जमीं गिराई।
टूक टूक कै काटि, समुद में देत बहाई॥
कह गिरिधर कविराय, फूट जेहि के घर आई।
हिरणाकश्यप कंस, गये बलि रावण सांईं॥ १५॥

लाठी में गुण बहुत है, सदा राखिये संग।
गहिर नदी नारा जहां, तहां बचावै अंग॥
तहां बचावै अंग, झपटि कुत्ता कहं मारै।
दुश्मन दावागीर, होयं तिनहूं को झारै॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छांड़ि, हाथ महं लीजै लाठी॥ १६॥

कमरी थोरे दाम की, बहुतै आवै काम।
खासा मलमल बाफता, उनकर राखै मान॥

उनपर राखै मान, बुन्द जहं आड़े आवै।
बकुचा बांधै मोट, राति को झारि बिछावै॥
कह गिरिधर कविराय, मिलत है थोरे दमरी।
सब दिन राखै साथ, बड़ी मर्यादा कमरी॥ १७॥

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हंसाय॥
जग मे होत हंसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान, राग रंग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय मांहि किया जो बिना बिचारे॥ १८॥

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्ज्जन हंसै न कोइ, चित्त में खता न पावै॥
कह गिरिधर कविराय, यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती॥ १९॥

साईं अपने चित्त की, भूलि न कहिये कोइ।
तब लग मन में राखिये, जबलग कारज होइ॥
जबलग कारज होइ, भूलि कबहुँ नहिं कहिये।
दुरजन हंसे न कोय, आप सियरे ह्वै रहिये॥
कहै गिरिधर कविराय, बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत, आप कहिये नहिं साईं॥ २०॥

साईं अपने भ्रात को, कबहुं न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिये, सदा राखिये पास॥
सदा राखिये पास, त्रास कबहूं न दीजे।
त्रासि दियो लंकेश, ताहि की गति सुनि लीजै॥

कह गिरिधर कविराय, रामसों मिलियो जाई।
पाय विभीषण राज, लंकपति बाज्यो साईं॥ २१॥
साईं समय न चूकिये, यथाशक्ति सन्मान।
को जाने को आइ है, तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान, समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि, अंक भरि हृदय लगावै॥
कह गिरिधर कविराय, सबै यामे सधि आई।
शीतल जल फल फूल, समय जनि चूको साईं॥ २२॥
पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥
यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज, शीश आगे धरि दीजै॥
कह गिरिधर कविराय, बड़ेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल, राखिये अपनो पानी॥ २३॥
राजा के दरबार में, जैये समया पाय।
साईं तहां न बैठिये, जहं कोउ देय उठाय॥
जहं कोउ देय उठाय, बोल अनबोले रहिये।
हंसिये नहीं हहाय, बात पूछे ते कहिये॥
कह गिरिधर कविराय, समय सों कीजे काजा।
अति आतुर नहिं होय, बहुरि अनखैहैं राजा॥ २४॥
कृतघन कबहुं न मानहीं, कोटि करै जो कोय।
सर्वस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय॥
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै, फेरि तिहि नहिं पहिचानै।
कह गिरिधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन।
मित्र शत्रु सब एक, दाम के लालच कृतघन॥ २५॥

सूदन

सूदन मथुरा निवासी माथुर ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम बसन्त था । ये भरतपुर के महाराज सूरजमल के आश्रय में रहा करते थे। इनके जन्म-मरण के ठीक ठीक समय का पता नहीं है। इन्होंने २३४ पृष्ठों के सुजान चरित्र नामक एक ग्रन्थ की रचना की है। उसे नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी ने प्रकाशित किया है । उसमें सं० १८०२ से १८१० तक सूरजमल के युद्धों का और विविध घटनाओं का वर्णन है। सूदन की कविता वीररस से पूर्ण है । प्राचीन कवियों में भूषण और लाल के पश्चात् वीररस की कविता रचने में सूदन ही सफल हुए हैं। इनका युद्ध की तैयारी का वर्णन उत्तम है। इनकी भाषा मे ब्रजभाषा और खड़ी बोली का मिश्रण है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

सेलनु धकेला तें पठान मुख मैला होत केते भट मेला है भजाये भुव भंग में। तंग के कसे ते तुरकानी सब तग कीनी दंग कीनी दिली औ दुहाई देत बंग में ।। सूदन सराहत सुजान किरवान गहि धायो धीर धारि वीरताई की उमङ्ग मे। दक्खिनी पछेला करि खेला तें अजब खेल हेला मारि गङ्ग में रुहेला मारे जङ्ग में ।।१।।

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन भारे लाज भारे स्वामिकाज प्रतिपाल के। चङ्ग लौं उड़ायो जिन दिली की वजीर भीर मारी बहु मीरन किये हैं बे हवाल के ।। सिंह बदनेस के सपूत श्री सुजानसिंह सिंह लौं झपटि नख दीन्हें करबाल के। वेई पटनेटे सेल सांगन खखेटे भूरि धूरि सौं लपेटे लेटे भेटे महाकाल के ।।२।।

बङ्गन के लाज मऊखेत की अवाज यह सुने ब्रजराज ते पठान वीर बबके। भाई अहमदखान सरन निदान जानि आयो मनसूर तौ रहै न अब दबके। चलना मुझे तौ उठ खड़ा होना देर क्या है ? बार बार कहे ते दराज सीने सब के। चंड भुजदंडवारे हयन उदंडवारे कारे कारे डीलन सवारे होत रब के ।।३।।

महल सराय से रवाने बुआ बूबू करो, मुझे अफसोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का। आलम में माजुम चकत्ता का घराना यारो जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का ॥ खने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे आफत ही जाने हुआ औल दहकानी का। रब की रजा है हमें सहना बजा है वक्त हिन्दू का गजा है आया छोर तुरकानी का ॥४॥

आप बिस चाखै भैया षटमुख राखै देखि आसन में राखै बस बास जाको अचलै। भूतन के छैया आसपास के रखैया और काली के नथैया हूं के ध्यान हूं ते न चलै ॥ बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल भांग को धतूरे को पसारि देत अंचलै। घर को हवाल यहै संकर की बाल कहै लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै ॥५॥

पूत मजबूत बानी सुनि कै सुजान मानी सोई बात जानी जासों उर मे छमा रहै। जुद्ध रीति जानौ मत भारत को मानौ जैसो होय पुठवार ताते ऊन अगमा रहै ॥ बाम और दच्छिन समान बलवान जान कहत पुरान लोकरीति मों रमा रहै। सूदन समर घर दोउन की एकै विधि घर में जमा रहै तो खातिर जमा रहै ॥६॥

सीतल

सीतल स्वामी हरिदास की टट्टी-सम्प्रदाय के महंत थे। इनका समय इस सम्प्रदाय के लोग स० १७८० के लगभग बतलाते है, मरणकाल का कुछ पता नहीं चलता। सीतल ने चार भागों में गुलजार चमन नामक ग्रंथ की रचना की थी। उसके तीन भाग मिलते हैं, जिनके नाम गुल-जार चमन, आनन्द चमन और विहार चमन है। इनके विषय में यह किम्वदन्ती सुनी जाती है कि ये शाहाबाद जिला हरदोई के समीप किसी ग्राम के निवासी थे, और लालबिहारी नाम के एक लड़के पर आसक्त थे। इनकी कविता प्रेमरस से सराबोर है। कुछ छन्दों का भाव सांसा-रिक प्रेम और भगवत्प्रेम दोनों ओर लगाया जा सकता है। लालबिहारी का नाम इनके छन्दों में प्राय: अधिक आया है। सम्भव है, इसी भ्रम में

सीतल हिन्दी के सिवा संस्कृत और फारसी भी जानते थे। इनकी कविता वर्तमान हिन्दी के ढंग की है। नीचे इनके कुछ छंद लिखे जाते हैं—

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुई नभ तारा चारु सुधाकर है।
अम्बा धारानल शक्ति स्वधा स्वाहा जल पौन दिवाकर है॥
हम अंशाअंश समझते हैं सब खाक जाल से पाक रहें।
सुन लालबिहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं॥१॥
कारन कारज ले न्याय कहै जोतिस मत रवि गुरु ससी कहा।
जाहिद ने हक्क हसन यूसुफ अरहंत जैन छबि बसी कहा॥
रतिराज रूप रस प्रेम इश्क जानी छबि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुमको वह जाना जो ब्रह्म तत्व त्वम असी कहा॥२॥
मुख सरद चन्द्र पर ठहर गया जानो के बूंद पसीने का।
या कुन्दन कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का॥
देखे से होश कहां रहवै जो पिदर बू अली सीने का।
या लाल बदख्शां पर खींचा चौका इल्मास नगीने का॥३॥
हम खूब तरह से जान गये जैसा आनन्द का कंद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन में बन्द किया॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफंद किया।
चम्पकदल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चंद किया॥४॥
मुख सरद चन्द्र पर स्रम सीकर जगमगै नखत गन जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के हैं कनके रूप उदोती से॥
हीरे की कनियां मंद लगैं हे सुधा किरन की गोती से।
आया है मदन आरती को धर कनक थार में मोती से॥५॥
बरनन करने को क्या बरनूं बरनूंगा जेती बानी हूं।
ग्रह तीन उच्च के पड़े हुये जानी यह यूसुफ सानी है॥
ससि भवन जीव सफरी में गुर कन्या बुध जोतिस ज्ञानी है।
इस लालबिहारी की सीतल क्या अर्द्ध चन्द्र पेशानी है॥६॥

चन्दन की चौकी चारु पड़ी सोता था सब गुन जटा हुआ।
चौके की चमक अधर विहंसन मानो एक दाड़िम फटा हुआ॥
ऐसे में ग्रहन समै सीतल एक ख्याल बड़ा अटपटा हुआ।
भूतल ते नभ, नभ ते अवनी, अंग उछलै नट का बटा हुआ॥७॥

ब्रजबासीदास

ब्रजबासीदास का जन्म सं० १७९० के आसपास हुआ। ये वल्लभ सम्प्रदाय के थे। इन्होंने स० १८२७, माघ शुक्ला पंचमी सोमवार को ब्रजविलास प्रारम्भ किया था। इस ग्रन्थ में कुल इतने छन्द हैं—दोहा ८८९, सोरठा ८८९, चौपाई १०६००, हरिगीतिका १०६। इस ग्रन्थ मे भगवान कृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन है। तुलसीदास के रामायण के ढंग पर यह लिखा गया है। इसकी कविता कृष्ण-भक्तों को विशेष प्रिय है। इन्होंने प्रबोध चंद्रोदय का भी विविध छन्दों में अनुवाद किया है। यहां ब्रजविलास से चन्द्रमा के लिए कृष्ण के मचलने की कथा उद्धृत की जाती है—

ठाढ़ी अजिर जसोदा रानी। गोदी लिये श्याम सुखदानी॥
उदय भयो ससि सरद सुहावन। लागी सुत को मात दिखावन॥
देखहु श्याम चंद यह आवत। अति सीतल दृग ताप नसावत॥
चितै रहे हरि इकटक ताही। करते निकट बुलावत ताही॥
मैया यह मीठो है खारो। देखत लगत मोहि यह प्यारो॥
देखि मगाय निकट मे लैहों। लागी भूख चंद मैं खैहों॥
देहि बेगि मे बहुत भुखानों। मांगत ही मांगत बिरुझानो॥
जसुमति हंसत करत पछतायो। काहे को मै चन्द दिखायो॥
रोवत है हरि बिनहीं जाने। अब धों कैसे करिके माने॥
विविध भांति करि हरिहि भुलावै। आन बतावै आन दिखावै॥
कहत जसोदा कौन विधि, समझाऊं अब कान्ह।

अनहोनी कहुं होय , तात सुनी यह बात कहुं ।
याहि बात नहिं कोय , चंद खिलौना जगत को ।।
यही देत नित माखन मोको । छिन छिन देत तात सो तोको ।।
जो तुम श्याम चन्द को खैहो । बहुरो फिरि माखन कहं पैहो ।।
देखत रहो खिलौना चन्दा । हठ नहिं कीजै बाल गोबिन्दा ।।
मधु मेवा पकवान मिठाई । जो भावै सो लेहु कन्हाई ।।
पालागों हठ अधिक न कीजै । मैं बलि रिस ही रिस तन छीजै ।।
खसि खसि कान्ह परत कनियां तें । दै ससि कहत नन्द रनियां तें ।।
जसुमति कहत कहा धौं कीजै । मांगत चन्द कहां ते दीजै ।।
तब जसुमति इक जलपुट लीनो । कर में लै तेहि ऊंचो कीनो ।।
ऐसे कहि श्यामहिं बहकावै । आव चन्द तोहि लाल बुलावै ।।
याही में तू तन धरि आवै । तोहिं देखि लालन सुख पावै ।।
हाथ लिये तोहिं खेलत रहिये । नेक नहीं धरनी पर धरिये ।।
जलपुट आनि धरनि पर राख्यो । गहि आनहु ससि जननी भाख्यो ।।
लेहु लाल यह चन्द्र मे , लीनों निकट बुलाय ।
रोवै इतने के लिए , तेरी श्याम बलाय ।।
देखहु श्याम निहारि , या भाजन में निकट ससि ।
करी इती तुम आरि , जा कारण सुन्दर सुवन ।।
ताहि देखि मुसुकाय मनोहर । बार बार डारत दोऊ कर ।।
चन्दा पकरत जल के मांही । आवत कछू हाथ में नाहीं ।।
तब जलपुट के नीचे देखे । तहं चन्दा प्रतिबिम्ब न पेखे ।।
देखत हंसी सकल ब्रजनारी । मगन बालछबि लखि महतारी ।।
तबहिं श्याम कुछ हंसि मुसुकाने । बहुरो माता सों बिरुझाने ।।
लउंगो री मा चन्दा लउंगो । वाहि आपने हाथ गहूंगो ।।
यह तो कलमलात जल माहीं । मेरे कर में आवत नाहीं ।।
बाहर निकट देखियत माहीं । कहो तो मैं गहि लावौं ताही ।।
कहत जसोमति सुनहु कन्हाई । तुव मुख लखि सकुचत उडुराई ।।

तुम तिहि पकरन चहत गुपाला । ताते ससि भजि गयो पताला ॥
अब तुमतें ससि डरपत भारी । कहत अहो हरि सरन तुम्हारी ॥
बिरुझाने सोये दै तारी । लिय लगाय छतियां महतारी ॥
लै पौढ़ाये सेज पर, हरि को जसुमति माय ।
अति बिरुझाने आज हरि, यह कहि कहि पछिताय ॥
करसों ठोंकि सुवाय, मधुरे सुर गावत कछुक ।
उठि बैठे अतुराय, चटपटाय हरि चौंकि के ॥

सहजोबाई

सहजोबाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित ढूसर कुल की स्त्री थीं । इन्होंने अपने विषय में एक स्थान पर लिखा है—

हरिप्रसाद की सुता नाम है सहजोबाई ।
ढूसर कुल में जन्म सदा गुरु चरन सहाई ॥

इनके जन्मकाल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता । परन्तु इन्होंने अपने गुरु साधु चरनदासजी का जन्म समय भादव सुदी ३, मंगलवार सं० १७६० विक्रमीय लिखा है । इससे केवल यह माना जा सकता है, कि उन्हीं दिनों के आसपास इनका भी जीवन-काल है ।

सहजोबाई की कविता से प्रकट होता है कि उनमें बड़ी गुरु-भक्ति थी । उनकी कविता बड़ी मधुर और बड़े मर्म की है । हम उनकी रचना के कुछ नमूने यहां उद्धृत करते हैं—

निसचै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार ।
चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार ॥ १ ॥
सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनन्त ।
आदि अन्त मध एक ही, सूझ पड़ै भगवन्त ॥ २ ॥
जब चेतै जब ही भला, मोह नींद सूं जाग ।
साधू की संगत मिलै, सहजो ऊंचे भाग ॥ ३ ॥
दीर्घ बुद्धि जिनकी महा, सील सदा ही नैन ।

ना सुख दारा सुख महल , ना सुख भूप भये ।
साधु सुखी सहजो कहैं , तृश्ना रोग गये ।। ५ ।।
साधु वृक्ष बानी कली , चर्चा फूले फूल ।
सहजो संगत बाग में , नाना फल रहे झूल ।। ६ ।।
बैठ बैठ बहुतक गये , जग तरवर की छांहि ।
सहज बटाऊ बाट के , मिलिमिलिबिछुड़तजाहिं ।। ७ ।।
अभिमानी नाहर बड़ो , भरमत फिरत उजार ।
सहजो नन्ही बाकरी , प्यार करै संसार ।। ८ ।।
सीस कान मुख नासिका , ऊंचे ऊंचे ठांव ।
सहजो नीचे कारने , सब कोउ पूजै पांव ।। ९ ।।
भली गरीबी नवनता , सकै न कोई मार ।
सहजो रुई कपास की , काटै ना तरवार ।। १० ।।
प्रेम दिवाने जो भये , पलट गयो सब रूप ।
सहजो दृष्टि न आवई , कहा रंक कह भूप ।। ११ ।।
मैं अखण्ड व्यापक सकल , सहज रहा भरपूर ।
ज्ञानी पावे निकट ही , मूरख जानै दूर ।। १२ ।।
जोगी पावै जोग सूं , ज्ञानी लहै विचार
सहजो पावै भक्ति सूं , जाके प्रेम अधार ।। १३ ।।
साल छिमा सन्तोष गहि , पांचो इन्द्री जीत ।
राम नाम ले सहजिया , मुक्ति होन की रीत ।। १४ ।।
जब लग चावल धान में , तब लग उपजै आय ।
जब छिलके कूं तजि निकस , मुक्ति रूप ह्वै जाय ।। १५ ।।

दयाबाई

दयाबाई भी साधु चरनदास की शिष्या और सहजोबाई की गुरु-बहन थीं। ये चरनदासजी की सजातीय अर्थात् दूसर जाति की थीं। चरन-दासजी के जन्मस्थान मेवाड़ के डेहरा नामक गांव में इनका भी जन्म

हुआ था। वहां से ये अपने गुरूजी के साथ दिल्ली आकर भक्ति कमातीं रहीं। दिल्ली ही में इन्होंने शरीर छोड़ा।

सं० १८१८ मे इन्होंने अपना पहला ग्रंथ दयाबोध रचा। सहजोबाई की तरह इन्होंने भी गुरु चरनदासजी की महिमा खूब गाई है। इनकी कविता बड़ी मधुर और प्रेम से युक्त है। हम यहां दयाबोध से कुछ दोहे उद्धृत करते हैं:—

जो पग धरत सो दृढ़ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अहङ्कार कू मार करि, राम रूप जस लेत॥ १॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूं, हरि आवे केहि ओर।
छिन उट्ठूं छिन गिरि परूं, राम दुखी मन मोर॥ २॥
प्रेम पुञ्ज प्रकटै जहां, तहां प्रकट हरि होय।
दया दया करि देत हैं, श्रीहरि दर्शन सोय॥ ३॥
"दया कुंवर" या जगत में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय॥ ४॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल में तुम चलो, दया होहु हुसयार॥ ५॥
बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूं अघाय।
राजा राना छत्रपति, सब कूं लीले जाय॥ ६॥
दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं बैकुण्ठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन॥ ७॥
साध संग में सुख बड़ो, जो करि जाने कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारे खोय॥ ८॥

ठाकुर

ठाकुर असनी के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। इनका जन्म सं० १७९२ के लगभग कहा जाता है। इनकी कविता इतनी लोकप्रिय है कि कभी-कभी उसका उपयोग कहावतों की तरह किया जाता है। ठाकुर नाम के

इनकी कविता का मुख्य गुण है। नीचे हम कुछ कविताएं उद्धृत करते हैं; उनसे ठाकुर के हृदय का बड़ा सुन्दर परिचय मिलता है।

वैर प्रीति करिबे की मन में न राखै संक राजा राव देखिकै न छाती धकधाकरी। अपनी उमंग की निबाहिबे की चाह जिन्हें एक सो दिखात तिन्हें बाघ और बाकरी॥ ठाकुर कहत मैं विचार कै विचार देखो यहै मरदानन की टेक बात आकरी। गही जौन गही जौन छोडी तौन छोड़ दई करी तौन करी बात ना करी सो ना करी॥ १॥

सामिल में पीर में सरीर में न भेद राखै हिम्मत कपट को उघारै तौ उघरि जाय। ऐसे ठान ठानै तौ बिनाहू जन्त्र मन्त्र किये सांप के जहर को उतारै तौ उतरि जाय। ठाकुर कहत कछु कठिन न जानौ अब, हिम्मत किये तें कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारिहू दिसा तें चारो कोन गहि मेरु को हिलाय कै उखारैं तौ उखरि जाय॥ २॥

अन्तर निरन्तर के कपट कपाट खोलि प्रेम को झलाझल हिये मे छाइयतु है। लटी भई आप सो भई है करतूत जौन बिरह विथा की कथा को सुनाइयतु है। ठाकुर कहत वाहि परम सनेही जानि दुख सुख आपने विधि सों गाइयतु है। कैसों उतसाह होत कहत मते की बात जब कोऊ सुघर सुनैया पाइयतु है।॥ ३॥

जौलों कोऊ पारखी सों होन नहिं पाई भेंट तब ही लों तनक गरीब लों सरीरा हैं। पारखी सों भेंट होत मोल बढ़े लाखन को, गुनन के आगर सुबुद्धि के गंभीरा है॥ ठाकुर कहत नहिं निन्दो गुनवारन को देखिबे को दीन ये सपूत सूरबीरा हैं। ईश्वर के आनस तें होत ऐसे मानस जे मानस सहूरवारे धूर भरे हीरा हैं॥ ४॥

सुकवि सिपाही हम उन रजपूतन के दान युद्ध वीरता में नेकहू न सुरके। जस के करैया है मही के महिपालन के हिये के बिशुद्ध हैं सनेही सांचे उर के॥ ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं अदेनियां ससुर के। चोजन के चोजी महा मौजिन के महाराज हम कविराज हैं पै चाकर चतुर के॥ ५॥

हिलिमिलि लीजिये प्रबीनन तें आठों जाम कीजिये अराम जासों जिय को अराम है। दीजिये दरस जाको देखिबे को हौस होय कीजिये न काम जासों नाम बदनाम है। ठाकुर कहत यह मन में विचारि देखो जस अपजस को करैया सब राम है। रूप से रतन पाय चातुरी से धन पाय नाहक गंवाइबो गंवारन को काम है।

कोमलता कंज तें गुलाब तें सुगन्ध लैके चन्द तें प्रकाश कियो उदित उजेरो है। रूप रति आनन तें चातुरी सुजानन तें नीर लै निवानन तें कौतुक निबेरो है॥ ठाकुर कहत यों मसालौ विधि कारीगर रचना निहारि जन होत चित चेरो है। कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को बसुधा को सुख लूटि कै बनायौ मुख तेरो है॥ ९॥

ग्वारन को यार है सिंगार सुखसोभन को सांचो सरदार तीन लोक रजधानी को। गाइन के संग देख आपनो बखत लेख आनन्द विशेष रूप अकह कहानी को॥ ठाकुर कहत सांचो प्रेम को प्रसंगवारो जा लख अनंग रंग दंग दधिदानी को। पुण्य नंदजू का अनुराग ब्रजवासिन को भाग जसुमति को सुहाग राधारानी को॥ ८॥

आपने बनाइबे को और को बिगारिबे को सावधान ह्वै के सीखे द्रोह से हुनर है। भूल गये करुनानिधान स्याम मेरे जान जिनको बनायो यह विश्व को बितर है॥ ठाकुर कहत पगे सबै मोह माया मध्य जानत या जीवन को अजर अमर है। हाय! इन लोगन को कौन सो उपाय जिन्हें लोक को न डर परलोक को न डर है॥ ९॥

लगी अन्तर में करै बाहिरि को बिन जाहिर कोऊ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै घर की कोउ बाहर भानतु है।
कवि ठाकुर आपनी चातुरी सों सबहीं सब भांति बखानतु है।
पर बीर मिलै बिछुरै की विथा मिलि कै बिछुरै सोई जानतु है॥१०॥
वा निरमोहिनी रूप की रासि जो ऊपर कै उर आनत ह्वै है।
बाहर बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वै है॥

ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत हैं नित मेरे लिए इतनो तो बिसेसहू जानति ह्वै है ।।११।।
यह प्रेम कथा कहिये किहि सों सो कहेसों कहा कोऊ मानत है।
पर ऊपरी धीर बंधायो चहै तन रोग न वा पहिचानत है ।।
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है।
बिन आपने पाय बेवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है ।।१२।।
ये जे कहैं ते भले कहिबो करैं मान सही सो सबै सहि लीजै।
ते बकि आपुहि ते चुप होयंगी काहे को काहुवै उत्तर दीजै ।।
ठाकुर मेरे मते की यहै धनि मान कै जोबन रूप पतीजै।
या जग में जनमें को जिये को यहै फल है हरि सों हित कीजै ।।१३।।
एक ही सों चित चाहिये और लौं बीच दगा को परै नहिं टांको।
मानिक सों चित बेंचि कै जू अब फेरि कहां परखावनो ताको ।।
ठाकुर काम नहीं सब को इक लाखन में परबीन है जाको।
प्रीति कहा करिबे में लगै करिकै इक ओर निबाहनो वाको ।।१४।।
वह कंज सो कोमल अंग गुपाल को सोऊ सबै पुनि जानती हो।
बलि नेक रुखाई धरे कुम्हलात इतोऊ नही पहिचानती हो ।।
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै बनै नहि मानती हो।
दृग बान ये भौंह कमान कहो अब कान लौं कौन पै तानती हो ।।१५।।

बोधा

बोधा का पहला नाम बुद्धिसेन था। ये सरवरिया ब्राह्मण थे। कोई कोई इनका निवास-स्थान राजापुर (जिला बांदा) और कोई कोई फिरोजाबाद (जिला आगरा) बतलाते हैं। परन्तु फीरोजाबादी बोधा एक भिन्न कवि हुए हैं। पन्ना से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके वंशज अब तक फीरोजाबाद में वर्तमान हैं। उन्होंने "बागविलास" नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी, जो अब दुष्प्राप्य हो रहा है। जान पड़ता है कि पन्ना दरबार से सम्बन्ध रखने वाले बोधा राजापुर ही के

रहने वाले थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय अभी निश्चित नहीं हो सका है। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-संवत् १८०४ लिखा है। अनुमान से यही ठीक जान पड़ता है।

पन्ना दरबार में इनके सम्बन्धियों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। बालकपन में ये उन्हीं के पास जाकर रहने लगे। ये हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी के अच्छे पंडित थे। इनके गुणों से प्रसन्न होकर पन्ना-नरेश इन्हें बहुत चाहने लगे। प्यार के कारण उन्होंने ही इनका नाम बुद्धिसेन से बोधा रख दिया। दरबार में सुभान नाम की एक वेश्या थी। बोधा ने उससे कुछ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। जब इसका समाचार राजा साहब को मालूम हुआ, तब उन्होंने बोधा को छः महीने के लिए अपने राज से निकाल दिया। इस अवसर में इन्होंने इस वेश्या के विरह में "विरह वारीश" नामक ग्रन्थ की रचना की। छः मास के उपरान्त जब ये फिर दरबार में गये, और राजा साहब को इन्होंने अपना "विरह-वारीश" सुनाया, तब राजा ने प्रसन्न होकर इनसे वर मांगने को कहा। इन्होंने कहा—"सुभान अल्लाह"। राजा ने प्रसन्न होकर सुभान वेश्या इन्हें समर्पित की। अपने "इश्कनामा" में इन्होंने सुभान की बड़ी प्रशंसा की है। पन्ना ही में इनका देहान्त हुआ।

बोधा प्रेमी कवि थे। प्रेम के उपासक थे। प्रेम के मर्मज्ञ थे। इनकी कविता-तरंगिणी में प्रेम ही की लहर लहराती है। यहां हम इनके कुछ छन्द उद्धृत करते हैं:—

✓अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दै आवनो है।
सुइ बेह ते द्वार सकी न तहां परतीति को टांडो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापे न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पन्थ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है॥ १॥

✓एक सुभान के आनन पै कुरबान जहां लगि रूप जहां को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसुकाहट ताको॥

सोक जरा गुजरा न जहा कवि बोधा जहां उजरा न तहां को ।
जान मिलै तो जहान मिलै नहिं जान मिलै तो जहान कहां को ।। २ ।।
लोक की लाज औ सोक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ ।
गांव को गेह को देह को नातो सनेह में हांतो करै पुनि सोऊ ।।
बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ ।
लोक की भीति डेरात जो मीत तौ प्रीति के पैंडे परे जनि कोऊ ।। ३ ।।
बोधा किसू सो कहा कहिये सो बिथा सुनि पूरि रहै अरगाइ कै ।
याते भले मुख मौन धरै उपचार करै कहूं औसर पाइ कै ।।
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहू जो कहै कछू रंच दया उर लाइ कै ।
आवतु है मुख लौं बढ़ि कै फिरि पीर रहै या सरीर समाइ कै ।। ४ ।।
कबहूं मिलिबो कबहू मिलिबो यह धीरज ही में धरैबो करै ।
उर ते कढ़ि आवै गरे ते फिरै मन की मनही मे सिरैबो करै ।।
कवि बोधा न चाउ सरी कबहूं नितही हरवासों हिरैबो करै ।
सहते ही बनै कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै ।। ५ ।।

बिछुरे दरद न होत, खर सूकर कूकुरन को ।
हंस मयूर कपोत, सुघर नरन बिछुरन कठिन ।।६।।
बोधा सब जग ढूढ्यो फिरि फिरि धाइ ।
जेहि मनही मन चाहत सो न लखाइ ।।७।।

हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिये । होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये ।। बोधा कवि नीति को निबेरो यही भांति अहै आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये । दाता कहा सूर कहा सुन्दर सुजान कहा आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए ।।८।।

हट प्रीति की रीति को जानत थो तब ही तौ बच्यो गिरि ढाहन ते।
गज बज चिकारि कै प्रान तज्या न जरयौ साग होलिका दाहन ते ।।
कवि बोधा कछू न अनोखी यहै का बनै नही प्रीति निबाहन तें ।
प्रहलाद की ऐसी प्रतीति करै तब क्यों न कढ़े प्रभु पाहन ते ।।९।।

पद्माकर

पदमाकर का जन्म सं० १८१० में बांदा में हुआ, और सं० १८९० में ये कानपुर में गङ्गातट पर स्वर्गवासी हुए। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। पदमाकर संस्कृत और प्राकृत के अच्छे पंडित थे। ये कुछ दिनों तक जयपुर के महाराज जगतसिंह के पास भी रहे थे, और उन्ही के नाम पर इन्होंने जगद्विनोद नामक बड़ा रोचक काव्य ग्रंथ बनाया। इनके रचे हुए जगद्विनोद, गङ्गालहरी, हिम्मत बहादुर विरदावली, पद्माभरण, आलीजाप्रकाश, भाषा हितोपदेश और प्रबोधपचासा ग्रन्थ हैं; पर सब प्रकाशित नहीं है। इन्होंने राम रसायन नाम से बाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद भी किया था। इनके प्रायः सब ग्रंथ भारत जीवन प्रेस बनारस में छप चुके है। कविता द्वारा इन्होंने बड़ा धन प्राप्त किया था। ये सदैव राजा महाराजाओं की तरह रहा करते थे। इनकी कविता में अनुप्रास का आनंद खूब मिलता है। हम यहां इनकी कविता के कुछ नमूने प्रस्तुत करते है—

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पदमाकर हीरा के हारन गङ्ग तरङ्गन सी सुखदेनी॥
पायन के रंग सों रंगि जात सी भांति सरस्वति सेनी।
पैरै जहांई जहां वह बाल तहां तहां ताल मे होत त्रिवेनी॥ १॥

ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरईसी।
ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनईसी॥
ज्यों कुच त्योंही नितम्ब चढ़े कछु ज्योंही नितम्ब त्यों चातुरईसी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि म किहि धौं कटि बीच ही लूटि लईसी॥ २॥

चौक में चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे।
छोरि परी है सुकंचुकी न्हान को अंगन तेज में ज्योति के कौंधे॥
छाइ उरोजन की छबि ज्यों पदमाकर देखत ही चकचौंधे।
भागि गई लरिकाई मनो लरिकै दुहुं दुन्दुभि औंधे॥ ३॥

जाहि न चाह कहूं रति की सु कछू पति को पतिय न लगी है ।
त्यों पदमाकर आनन में रुचि कानन भौंहैं कमान लगी है ।।
देत तिया न छुवै छतियां बतियान में तो मुसकान लगी है ।
प्रीतम पान खवाइबे को परयङ्क के पास लों जान लगी है ।। ४ ।।

आई जु चालि गुपाल घरै ब्रजबाल विशाल मृणाल सों बाहीं ।
त्यों पदमाकर मूरति में रति छू न सकै कितहूं परछाहीं ।।
शोभित शम्भु मनो उर ऊपर मौज मनोभव की मनमाही ।
लाज बिराज रही अंखियान में प्रान में कान्ह जबान में नाहीं ।। ५ ।।

सोरह श्रृंगार कै नवेली के सहेलिन हूं कीन्हीं केलि मन्दिर में कलपित केरे हैं । कहै पदमाकर सुपास ही गुलाब पास खासे खसखास खसबोईन के ढेरे हैं ।। त्यों गुलाब नीरन सों हीरन के हौज भरे दम्पति मिलाप हित आरती उजेरे है । चोखी चांदनीन पर चौरस चमेलिन के चन्दन की चौकी चारु चांदी के चंगेरे हैं ।। ६ ।।

चहचही चहल चहूंघा चारु चन्दन की चन्द्रन चमीन चौक चौकन चढ़ो है आब । कहै पदमाकर फराकत फरसबन्द फहरि फुहारन की फरस फबी है फाब ।। मोद मदमाती मनमोहन मिले के काज साजि मन मन्दिर मनोज कैसी महताब । गोल गुल गादी गुल गोल में गुलाब गुल गजक गुलाबी गुल गिन्दुक गले गुलाब ।। ७ ।।

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निशा अधराति प्रमाने ।
हौं पदमाकर भावति हौं निज भावत पै अबहीं मुहि जाने ।।
तो अलबेली अकेली डरै किन क्यों डरौं मेरी सहाय के लाने ।
है सखि संग मनोभव सो भट कान लों बान सरासन ताने ।। ८ ।।

झाकति है का झरोखा लगी लग लागिबेको यहां झेल नहीं फिर ।
त्यों पदमाकर ताखे कटाक्षन कीसर कौंसर सेल नहीं फिर ।।
नैन नहीं कि घलाघल के घन घावन को कछु तेल नहीं फिर ।
प्रीति पयोनिधि में धंसिकै हसिकै कढ़िबो हंसी खेल नहीं फिर ।। ९ ।।

बैन सुधा के सुधासी हसी बसुधा मे सुधा की सटा करती है ।
त्यों पदमाकर बारहिं बार सुबार बगारि लटा करती है ॥
बीर बिचारे बटोहिन पै इक काज ही तो यों लटा करती है ।
बिज्जु छटासी अटा पै चढ़ी सु कटाछनि घालि कटा करती है ॥१०॥

कूलन में केलि में कछारन मे कुंजन में क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है । कहै पदमाकर परागन मे पानहू में पानन में पीक में पलाशन पगंत है ॥ द्वार में दिशान में दुनी में देश देशन में देखो दीप दीपन में दीपत दिगंत है । बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरो बसंत है ॥ ११ ॥

पात बिन कीन्हें ऐसी भांति गन बेलिन के परत न चीन्हें जे ये लरजत लुञ्ज हैं । कहै पदमाकर बिसासी या बसंत के सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुञ्ज है ॥ ऊधो यह सूधो सों संदेसो कहि दीजो भलो हरि सों हमारे ह्यां न फूले वन कुंज हैं । किंशुक गुलाब कचनार औ अनारन की डारन पै डोलत अंगारन के पुंज है ॥ १२ ॥

ये ब्रजचन्द्र चलो किन वा ब्रज लूक बसंत की ऊकन लागी ।
त्यों पदमाकर पेखो पलासन पावक सी मनो फूंकन लागी ॥
वै ब्रजनारी बिचारी बधू बन बावरी लौं हिये हूकन लागी ।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी ॥१३॥

फहरै फुहारे नीर नहरैं नदी सी बहै छहरै छबीन छाम छीटिन की छाटी है । कहै पदमाकर त्यों जेठ की जलाकै तहां पावें क्यों प्रबेस बेस बेलिन की बाटी है ॥ बारहू दरीन बीच चारहू तरफ तैसी बरफ बिछाई तापै शीतल सुपाटी है । गजक अंगूर की अंगूर से उचो है कुच आसव अंगूर को अंगूर ही की टाटी है ॥ १४ ॥

मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले मंद मंद मारुत मुहीम मनसा की है । कहै पदमाकर त्यों नादत नदीन नित नागर नबेलिन की नजर निशा की है ॥ दौरत दरेरे देत दादुर सुदूदै दीह दामिनी दमंकनि दिसानि

में दशा की है। बद्दलनि बुन्दनि बिलोको बगुलानि बाग बंगलनि बेलिन बहार बरसा की है ॥ १५ ॥

तालन पें ताल पै तमालन पै मालन पै बृन्दाबन बीथिन बहार बंसीबट पै। कहै पदमाकर अखड रासमंडल पै मण्डित उमड़ि मह़ा कालिन्दी के तट पै ॥ छिति पर छान पर छाजत छतान पर ललित लतान पर लाड़िली के लट पै। आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकट पै ॥ १६ ॥

अगर की धूप मृगमद को सुगन्ध वर बसन बिशाल जाल अंग ढाकियतु हैं। कहै पदमाकर सु पौन को न गौन जहं ऐसे भौन उमंगि उमंगि छाकियतु हैं ॥ भोग औ संयोग हित सुरति हिमंत ही में एते और सुखद सहाय वाकियतु है। तान की तरंग तरुणापन तरणि तेज तेल तूल तरुणि तमाल ताकियतु है ॥ १७ ॥

गुलगुली गिल में गलीचा है गुनी जन है चांदनी है चिक है चिरागन की माला है। कहै पदमावर त्यों गजक गिजा है सजी सेज हैं सुराही है सुरा है और प्याला हैं ॥ शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हें जिनके अधीन एते उदित मसाला है। ताम तुकताला है बिनोद के रसाला हैं सुबाला है दुशाला है विशाला चित्रशाला है ॥ १८ ॥

जात हती नित गोकुल मे हरि आवै तहां लखिकै मन सूना।
तासों कहौं पदमाकर यों अरे सांवरे बावरे तै हमें छूना ॥
आजधौ कैसी भई सजनी उत वा विधि बोल कढयोई कहूं ना।
आनि लगायो हियोसों हियोभरि आयो गरो कहि आयो कछूना ॥१९॥

शोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी कौनहू सुमनवारी को नही निहारी है। कहै पदमाकर त्यों बांधनू बसनवारी वा ब्रज बसनवारी ह्यो हरन हारी है ॥ सुबरनवारी रूप सुबरनवारी सजै सुबरनवारी काम कर की संवारी है। सीकरनवारी स्वेद सीकरनवारी रति सीकरनवारी सो बसीकरनवारी है ॥२० ॥

भजि द्वारे को । कहै पदमाकर परै सी चौंक चुम्बन में छलनि छपावै कुच कुंभनि किनारे को ।। छाती के छुवे पै परी राती सी रिसाय गलबांहीं किये करै नाहिं नाहिं पै उचारे को । ही करति शीतल तमासे तुंग ती करति सी करति रति में बसीकरति प्यारे को ।। २१ ।।

फाग के भीर अभीरनि त्यों गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी ।
भाय करी मन को पदमाकर ऊपर नाय अबीर की झोरी ।।
छीन पितम्मर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसुक्याय लला फिर आइयो खेलन होरी ।।२२।।
कै रतिरंग थकी थिर ह्वै परयंक पै प्यारी परी मुख बाय कै ।
त्यों पदमाकर स्वेद के बुन्द रहे मुकताहल से तन छाय कै ।।
बिन्दु रचे मेंहदी के लसे कर तापर यों रह्यो आनन आय कै ।
इन्दु मनों अरविन्द पै राजत इन्द्रबधून से वृन्य बिछाय कै ।।२३।।
रे मन साहसी साहस राख सु साहस सों सब जेर फिरैंगे ।
त्यों पदमाकर या सुख मे दुख त्यों दुख में सुख सेर फिरैंगे ।।
वैसे ही वेणु बजावत श्याम सुनाम हमारो हू टेर फिरैंगे ।
एक दिना नहिं एक दिना कबहूं फिर वे दिन फेर फिरैंगे ।।२४।।

जैसो तैं न मोंसों कहू नेकहूं डरात हुतो तैसों अब होंहूं नेकहूं न तोसों डरिहौं । कहै पदमाकर प्रचंड जो परैगो तो उमंड करि तोसों भुजदड ठोंकि लरिहौं ।। चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही ते कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं । येरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं गंगा के कछार में पछार छार करिहौं ।। २५ ।।

जगजीवन को फल जानि परचो धनि नैननि को ठहरैयतु है ।
पदमाकर ह्यो हुलसै पुलकै तनु सिन्धु सुधा के अन्हैयतु है ।।
मन पैरत सो रस के नद में अति आनन्द में मिलि जैयतु है ।
अब ऊंचे उरोज लखे तिय के सुरराज के राज सों पैयतु है ।।२६।।

पाली पैज पन की प्रवेश करि पावक में पौन से सिताव सहगौंन की गती भई । कहै पदमाकर पताका प्रेम पूरण की प्रकट पतिव्रत की सौगुनी

रती भई ।। भूमिहू अकाशहू पतालहू सराहैं सब जाको यश गावत पवित्र मो मती भई । सुनत पयान श्री प्रताप को पुरन्दर पै धन्य पटरानी जोधपुर में सती भई ।।२७।।

चोरन गोरिन में मिलि कै इतै आई है हाल गुवाल कहांकी ।
कौन बिलोकि रह्यो पदमाकर वा तिय की अवलोकनि बांकी ।।
धीर अबीर की धूंधुरि में कछु फेर सोंकै मुख फेरिकै झांकी ।
कै गई काटि करेजनि के कतरे कतरे पतरे करिहां की ।।२८।।

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिर हू बाग ना सुहात जो खुशाल खुशबोही सों । कहै पदमाकर घनेरे धन धाम त्योंहीं चैन ना सुहात चांदनी हूं योग जोही सों ।। सांझ हूं सुहात ना सुहात दिन मांझ कछु ब्यापी यह बात सो बखानत हों तोही सों । रातिहु सुहात ना सुहात परभात आली जब मन लागि जात काहू निरमोही सों ।।२९।।

बगसि वितुण्ड दिये झुण्डन के झुण्ड रिपु मुडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को। कहै पदमाकर करोरन को कोष दये षोड़सहू दीन्हें महादान अधिकारी को ।। ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये अन्न जल दीने जगती के जीवधारी को । दाता जयसिंह दोय बातें तौ न दीनी कहूं बैरिन को पीठि और दीठि परनारी को ।।३०।।

सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना । कहै पदमाकर सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर बिचारै ना ।। दीन्हे गज बकस महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहू काहू देइ डारै ना । याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरितें गरेतें निज गोद तें उतारै ना ।।३१।।

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को । कहै पदमाकर सु गाल के बजावत ही काज करि देत जन जाचक जरूरे को ।। चन्द की छटान जुत पन्नग फटान जुत मुकुट बिराजै जटा जूटन के जूरे को । देखो त्रिपुरारिकी उदारता अपार जहां पैये फल चार फूल एक दै धतूरे को ।।३२।।

आनंद के कन्द जग ज्यावत जगतबन्द्य दसरथनन्द के निबाहेई निबहिये कहै पदमाकर पवित्र पन पालिबे को चौर चक्रपानि के चरित्रन को चहिये ।। अवधबिहारी के बिनोदन में बीधि बीधि गीधा गुह गोधे के गुनानुवाद गहिये । रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ।।३३।।

हानि अरु लाभ ज्यान जीवन अजीवनहू भोगहू वियोगहू सयोगहू अपार है । कहे पदमाकर इते पै और केते कहों तिनको लख्यो न बेदहू में निरधार है ।। जानियत याते रघुराय की कला को कहूं काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है । कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर कौन जाने कौन को कहा धों होनहार है ।।२४।।

व्याधहूं ते बिहद असाधु हौ अजामिल लौ ग्राह ते गुनाही कहौ तिनमें गिनाओगे । स्योरी हौं न सूद्र हौ न केवट कहूं को त्यों न गोतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे ।। राम सों कहत पदमाकर पुकारि तुम मेरे महापापन को पारहू न पाओगे । झूठोही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी हौं तो सांचोहूं कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे ।। ३५ ।।

लल्लूजीलाल

लल्लूजीलाल गुजराती ब्राह्मण, आगरे मे रहते थे । ये स० १८६० में वर्तमान थे । कुछ दिनों तक ये कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज मे नौकर थे । वहीं इन्होंने ब्रजभाषा मिश्रित वर्तमान बोलचाल की भाषा में भागवत दशम स्कध की कथा के आधार पर प्रेमसागर नामक एक ग्रंथ लिखा । कथा गद्य मे है । कही कही हिन्दी के कुछ दोहे, चौपाइयां भी हैं । वर्तमान गद्य के जन्मदाता ये ही कहे जाते है । प्रेमसागर के सिवा इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रथ है—लतायफ हिन्दी, भाषा हितोपदेश, सभाविलास, माधवविलास, सतसई की टीका, भाषा व्याकरण, मसादिरे भाषा, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, माधवानल और शकुंतला । इनके रचे पद्यों के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

चूक कछू बालकसों परै । साधु न कबहूं मन में धरै ॥
घट घट माहिं ज्योति ह्वै रहै । ताही सों जग निर्गुण कहै ॥
आपहि सिरजै आपहि हरै । रहै मिल्यो बांध्यो नहि परै ॥
भू आकाश वायु जल जोति । पंचतत्व ते देह जो होति ॥
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै । वेद माहि विधि ऐसे कहै ॥
सहसबाहु आहुति बली बखान्यो । परशुराम ताको बल भान्यो ॥
बेणु रूप रावण हो भयो । गर्व आपने सोऊ गयो ॥
भौमासुर बाणासुर कंस । भये गर्व ते ते बिध्वंस ॥
श्रीमद गर्व करो जिन कोय । त्यागे गर्व सो निर्भय होय ॥
सुनौ मुनीस सोई बड़ भागी । जो सुर धेनु विप्र अनुरागी ॥
जा घर चरन साधु के परै । ते नर सुख सम्पति अनुसरै ॥
याचक कहा न मांगई, दाता कहा न देय ।
गृहसुत सुन्दरि लोभ नहि, तन धन दे जस लेय ॥

जयसिंह

जयसिंह रीवां के महाराज थे । इनका जन्म स० १८२१ में हुआ । १८९१ तक इन्होंने राज्य किया । अपने जीवनकाल ही में इन्होंने राज्याधिकार अपने पुत्र विश्वनाथसिंह को सौंप दिया था । ये लगभग १०० वर्ष तक जीवित रहे ।

जयसिंह बड़े भक्त और सच्चे वैष्णव थे; यह इनकी रचना से अच्छी तरह बोध होता है । इन्होंने १८ ग्रंथों की रचना की थी । उनमें से कुछ के नाम ये हैं — कृष्णतरङ्गिणी, हरे चरितामृत, अयवेदान्त प्रकाश, निर्णय सिद्धान्त, गङ्गालहरी, हरिचरित्रचन्द्रिका । इनकी रचना सरस और अलंकारपूर्ण होती थी । इनके ग्रंथों में हरिचरित्रचन्द्रिका इस समय हमारे सामने हैं । हम उसी में से कुछ छंद उद्धृत करके पाठकों के सामने रखते हैं—

वर्षा गई सरद ऋतु आई । नवल बधू सम सुखद सोहाई ॥
कमल बदन खञ्जन चख छाजे । सुरंग सुमन बर बसन बिराजै ॥

कल मराल नव नूपुर बाजत । सुनि मुनि मानस मान विभाजत ॥
फूली कांस सु दुति धरि धाई । पतिव्रता कीरति जिमि पाई ॥
बरसर लसहिं सरोरुह फूले । सुकृती भूप प्रजागन तूले ॥
महि जल सूखो प्रगटी महि इमि । नसत पखंड लसत श्रुति पथ जिमि ॥
सरि सर जल इमि निर्मल छाजत । जिमि तजि विषय विरागी राजत ॥

ककुभ कुटज आदिक बिना, विकसे कुसुम निकाय ।
जिमि खल मद मथि नृप नगर, राख्यो सुजन बसाय ॥

जल बिन जलद सेत छवि छाजत । सब धन दै जिमि दाता राजत ॥
निर्मल भयो गगन घन फूटे । जिमि हिय विषय बासना छूटे ॥
लसत इंदु उड़गन मिलि ऐसो । नृप नय निपुन प्रजा जुत जैसो ॥
परसि चांदनी यों छिति सोही । सती सो सौति पाइ जिमि जोही ॥
जनमनरंजन खंजन कैसे । पूरब पुण्य समय फल जैसे ॥
जलचर नित जल घटत न जानहिं । आयु कमत जिमि जन नहिं मानहिं ॥
रवि संताप शरद शशि नाशत । मोह नसत जिमिज्ञान प्रकाशत ॥
छन छबि छबि नहिं गगन प्रकासै । तोषित हिय जिमि तृष्णा नासै ॥

परसि कमल कुबलय बहत, वायु ताप नसि जाइ ।
सुनत बात हरि गुननि जुत, जिमि जन पाप पराइ ॥

कहुं कहुं बंधक सुमन सुहाये । जनु अनुरागी जन मन भाये ॥
मदन मराल मिलो तजि मोरनि । अलि तजि चित्र कुसुम जनि कोलनि ॥
बाल मराल मंजु धुनि करहीं । सामवेद मुनिवर उच्चरहीं ॥
प्रफुलित उपवन जूही जातीं । मनु नभ उडु पांती दरसातीं ॥
घन समीप सुरधनु न देखाहीं । जिमि न सुजन ढिग दुर्जन जाहीं ॥
क्षुद्र नदी घटि चली बनाई । जिमि खल विभव नसे नै जाई ॥
सूखी कीच महीतल माहीं । ज्यों सत हिय कामादि सुखाहीं ॥
पूरण अन्न सहित छिति छाजै । जिमि धनयुत दाता मति राजै ॥

बन बाटिका उपवन मनोहर फूल फल तरु मूल से ।
सर सरित कमल कलाप कुबलय कुमुद बन बिकसे गंसे ॥

सुख लहत यों फल चखत मनु पीयत मधुप सो नीति सों।
मनु मगन ब्रह्मानन्द रस जोगीस मुनिगन प्रीति सों॥
कूजि रहे खग कुल मधुप, गुञ्जि रहे चहुं ओर।
तेहि बन शिशु गोगन सकल, प्रविशे नन्दकिशोर॥

रामसहाय दास

रामसहायदास के पिता का नाम भवानीदास था। इनका जन्म और मरण किस संवत् में हुआ, इसका अभी तक कुछ पता नहीं चला है। भारतजीवन प्रेस, काशी में इनका एक ग्रंथ "शृंगार सतसई" नाम से छपा है। वह प्रकाशक को सं० १८९२ का हस्तलिखित मिला था। इनका कविताकाल सं० १८७७ माना जाता है। इन्होंने अपने विषय में अपने पिता के नाम के सिवा और कुछ नहीं लिखा। शृंगारसतसई के सिवा वृत्त तरंगिनी, ककहरा, राम सप्तसतिका और वाणी भूषन नामक ग्रन्थ भी रामसहायदास के रचे हुए सुने जाते हैं।

शृंगारसतसई में सात सौ दोहे बिहारी सतसई के टक्कर के हैं। वास्तव में ये बिहारी के दोहों को लक्ष्य करके बनाये गये मालूम होते हैं।

शृंगारसतसई से यहां कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं—

सतरोहैं मुख रुख किये, कहै रुखौंहैं बैन।
रैन जगे के नैन ये, सने सनेहु दुरै न॥ १॥
खंजन कंज न सरि लहैं, बलि अलि को न बखानि।
एनी की अंखियान तें, ये नीकी अंखियानि॥ २॥
गुलुफन लौं ज्यों त्यों गयो, करि करि साहस जोर।
फिर न फिर्‌यो मुरवानि चपि, चित अति खात मरोर॥ ३॥
पोखि चन्दचूड़हि अली, रही भली विधि सेइ।
खिनखिन खोटति नखनछद, न खनहुं सूखन देइ॥ ४॥
सीस झरोखे डारि कै, झांकी घूंघट टारि।

त्रेनि कमान प्रसून सर , गहि कमनैत बसंत ।
मारि मारि बिरहीन के , प्रान करै री अन्त ॥ ६ ॥
मनरंजन तव नाम को , कहत निरजन लोग ।
जदपि अधर अंजन लगे , तदपि न नीदन जोग ॥ ७ ॥
सखि संग जात हुती सुती , भट भेरो भो जानि ।
सतरौंही भौंहन करी , बतरौंही अखियानि ॥ ८ ॥
भौंह उचै अंखिया नचै , चाहि कुचै सकुचाय ।
दरपन में मुख लखि खरी , दरप भरी मुसुकाय ॥ ९ ॥
ल्याई लाल निहारिये , यह सुकुमारि बिभाति ।
कुचके उचके भात तें , लचकि लचकि कटि जाति ॥ १० ॥

ग्वाल

ग्वाल मथुरा निवासी ब्रह्मभट्ट सेवाराम के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १८४८ में और मरण १९२८ वि० में सुना जाता है । ये जगदम्बाके उपासक थे और शिवजी की भी आराधना किया करते थे । सं० १८७१ में इन्होंने एक शिवमंदिर बनवाया था, जो मथुरा में अब तक है ।

ग्वाल बालकपन में जब अपने गुरु दयालजी के पास पढ रहे थे, तब एक बार ये गुरुजी से प्रणाम करना भूल गये । गुरुजी ने इन्हें घमंडी कहकर निकाल दिया । इन्होंने बहुत अनुनय विनय की, पर गुरुजी प्रसन्न न हुए, तब ये यमुनातट के निकट गाय चराने लगे । कहा जाता है कि बन में इन्हें एक तपस्वी मिले, जिनकी ये तन मन से सेवा करने लगे । उनके लिए ये घर से भोजन भी ले जाया करते थे । एक दिन यमुना बहुत बढी थी, तब भी उसके प्रबल प्रवाह को पार करते हुए ये भोजन लेकर तपस्वी महाराज की सेवा में जा उपस्थित हुए । इनकी भक्ति से तपस्वी बहुत प्रसन्न हुए । उनकी कृपा से इनकी बुद्धि मे अपूर्व विकास हुआ और कवित्व-शक्ति जागृत हुई । इनकी प्रतिभा यहां तक बढ़ चली थी कि एक समय में ये आठ काम कर लेते थे । जैसे ग्रन्थ रचना, कविता

बनाना, शिष्यों को पढ़ाना, जगदम्बा, जगदम्बा कहते रहना, शतरंज खेलना, अदृष्ट कथन करना, आगत पुरुषों से बात-चीत का सिलसिला कायम रखना, समस्यापूर्ति करना आदि। ये शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे।

इनके दो पुत्र थे, खेमचन्द और रूपचन्द। दोनों पिता के समान ही कविता करते थे। ग्वाल का आना जाना पंजाब में बहुत रहता था। पंजाब के सिवा अन्य प्रान्तों में भी इन्होंने भ्रमण किया होगा, इसी से प्रान्तीय भाषाओं में भी इनके छंद मिलते हैं। कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में भी इनकी पहुंच थी और महाराजा ने इनको कुछ जमीन जायदाद भी दी थी, जो इनकी मृत्यु के बाद ले ली गई। ये कभी महाराज के साथ भ्रमण में भी जाया करते थे।

इनके रचित ग्रन्थों की संख्या ६०, ७० तक कही जाती है। जिनमें से निम्नलिखित ग्रन्थ कहीं न कहीं से प्रकाशित हो चुके हैं-

१—रसरंग, २—भक्त भावन, ३—नेह निबाहन, ४—कुब्जाष्टक, ५—कृष्णाष्टक, ६—रामाष्टक, ७—गणेशाष्टक, ८—गणेशाष्टक (दूसरा), ९—राधिकाष्टक, १०—गोपी पचीसी, ११—दृगशतक, १२—श्रीकृष्ण जी का नखशिख, १३—यमुना लहरी, १४—हमीरहठ, १५—कवि हृदय विनोद।

अप्रकाशित पुस्तकों में कुछ के नाम ये हैं—रसिकानन्द, साहित्यानंद, कविदर्पण, साहित्यदर्पण, साहित्यदूषण, शृंगार दोहा, शृंगार कवित्त, कवित्त ग्रन्थ माला, वंशी बीसा।

इनकी कविता चमत्कारपूर्ण होतीं थी। यहां इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं—

गीधे गीध तारि कै सुतारि कै उतारि कै जू धारि कै हिये में निज बात जटि जायगी। तारि कै अवधि करी अवधि सुतारिबे की विपति विदारिबे की फांस कटि जायगी॥ ग्वाल कवि सहज न तारिबो हमारो गिनो कठिन परैगी पाप पांति पटि जायगी। यातें जो न तारिहौ तुम्हारी सौंह रघनाथ अधम उधारिबे की साख धटि जायगी॥ १॥

राम घनश्याम के न नाम ते उचारे कभूं कामवश ह्वै कै बाम गरे बांह ढाली है। एक एक स्वांस ये अमोल कढ़े जात हाय लोल चित यहै ढोल फोरत उताली है। ग्वाल कवि कहै तू विचारै वर्ष बढ़े मेरे एरे! घटे छिन छिन आयु की बहाली है। जैसे धार दीखत फुहारे की बढ़त आछे पाछे जल घटे हौज होत आवे खाली है ॥२॥

पूर्वी भाषा

मोरपखा सिर ऊपर सोहै अधर बसुरिया राजत बाय।
गाय बजाय नचावे अंखियन करिया कमरी साजत बाय ॥
ग्वाल लिये संग घाट बाट में छरा छूइ मोर भाजत बाय।
हाय ननदिया का करिहौं में कहत बाद जिय लाजत बाय ॥३॥

गुजराती भाषा

तुम तौ कहो छो छैया मोटो ऊधमी छै म्हारी मटकी मठानी ढुरकावा नो निदान छै। सो तो म्हने जानयूं तमे सगली जु भाषों झूंठ दीधी म्हने सीख मस्ती मोटी पहचान छै ॥ ग्वाल कवि साने एवा चरित रचो छौ तमे सगली थई छौ गेली अड़को मा आन छै। घेर मां रमे छै हवणां तौ दीकरान माहें तमते सूं दोस मोकलावा वाला जान छै ॥४॥

पंजाबी भाषा

जेड़ी थ्वांड़े चित्त बिच्च भांउदी है आंउदी है ओहो तुसां करणाधिगाणे कानू कस्स दे। साडी खुशी ये हो आप आरां दी खुशी दे बिच्च जेही चाहो तेही करो नेही कानू नस्स दे ॥ ग्वाल कवि होउ करमां दा लिख्या लेख जेड़ा साडी बल्ल नैना नू पियारे रख्यो हंस्स दे। छल्लरल्ली गल्लां थ्वांडी सोंहणी नहूं दी श्याम सिद्धी गल्ल साडु नाल क्यूं कर न दस्स दे ॥५॥

षट्ऋतु वर्णन

सरसों के खेत की बिछायत बसंती बनी तामें खड़ी चांदनी बसंती रति कंत की। साने के पलंग पर बसन बसंती साज सोनजुही मालै हालै हिय हुलसंत की ॥ ग्वाल कवि प्यारो पुखराजन को प्याला पूर

प्यावत प्रिया को करै बात बिलसंत की। राग में बसंत बाग बाग में बसंत फूल्यो लाग में बसंत क्या बहार है बसंत की ॥ ६ ॥

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम गरमी झुकी है जाम जाम अति तापिनी। भीजे खस बीजन झले हूं ना सुखात स्वेद गात ना सुहात बात दावा सी डरापिनी ॥ ग्वाल कवि कहे कोरे कुंभन तें कूपन तें लै लै जलधार बार बार मुख थापिनी। जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब पीवत हू पीवत मिटै न प्यास पापिनी ॥ ७ ॥

जेठको न त्रास जाके पास ये बिलास होंय खस के मवास पै गुलाब उछर्यो करै। बिही के मुरब्बे डब्बे चांदी के बरक भरे पेठे पाग केवरे में बरफ पर्यो करै ॥ ग्वाल कवि चन्दन चहल मै कपूर चूर चंदन अतर तर बसन खर्यो करै। कंज मुखी कंज नैनी कंज के बिछौनन पै कंजन की पंखी कर कंज तें कर्यो करै ॥ ८ ॥

तरल तिलंगन के तुङ्ग तेह तेजदार कानन कदंब को कदंब सरसायो है। सूबेदार मोर घोर दादुर हवलदार बग जमादार औ तंबूर पिक भायो है ॥ ग्वाल कवि बाढ़ै गरराट घन घट्टन की कंपनी को कंपू भला होय छवि छायो है। भूपत उमंगी कामदेव जोर जंगी जान मुजरा को पावस फिरंगी बनि आयो है ॥ ९ ॥

मोरन के सोरन की नेको न मरोर रही घोरहूं रही न धन घने या फरद की। अम्बर अमल सर सरिता विमल भल पंक को न अंक औ न उड़नि गरद की ॥ ग्वाल कवि चित्त में चकोरन के चैन भये पंथिन की दूर भई दूखन दरद की। जल पर थल पर महल अचल पर चांदी सी चमक रही चांदनी सरद की ॥ १० ॥

झर झर झांपें बड़े दर दर ढांपै नापैं तऊ कांपै थर थर बाजत बतीसी जाइ। फेर पसमीनन के चौहरे गलीचन पै सेज मखमली सौरि सोऊ सरदी सी जाइ ॥ ग्वाल कवि कहैं मृगमद के धुकाये धूम ओढ़ि ओढ़ि छार भार आगहू छपी सी जाइ। छाकै सुरा सीसीहू न सीसी पै मिटैगी कभ जौलौं उकसीसी छाती छाती सों न मीसी जाइ ॥ ११ ॥

फुटकर

ईरषा की सैन लिये कलिजुग जब आयो झूंठ के नगारे सो बजत दिन रात है। काम क्रोध लोभ मोह तेग तीर धनु नेजा अदया अखंड तोप चंड बहरात है॥ ग्वाल कवि गब्बर गसीले गोल गोला चलै टोला कूर बचनों के पूर लहरात है। हूजियो हुश्यार यार सांच के मवासे मांहि पाप की पताका आसमान फहरात है॥ १२॥

देखा कलिजू के राजनीति को तमासो यह बासो कियो आय हर एक की अकल पै। खानदानवारे पानदान लिये दौरत हैं तान गानवारे बैठे जोवत महल पै॥ ग्वाल कवि कहै चारु चतुरन को चैन है न ऐस में रहत लैस कूर चढ़े बल पै। मलमल धारे जे वै धूर रहे मलमल मल-खानबारे सोवैं सेज मखमल पै॥ १३॥

जाकी खूब खूबी खूब खूबन कै खूबी इहां ताकी खूब खूबी खूब खूबी नभ गाहना। जाकी बदजाती बदजाती इहां चारन में ताकी बदजाती बदजाती ह्वां उराहना॥ ग्वाल कवि येही परसिद्ध सिद्ध ते हैं जग वही परसिद्ध ताकी इहां ह्वां सराहना। जाकी इहां चाहना है ताकी वहां चाहना है जाको इहां चाहना है ताकी वहां चाहना॥ १४॥

चाहिये जरूर इनसानियत मानस को नौबत बजे पै फेर भेद बजनो कहा। जात औ अजात कहा हिन्दू औ मुसलमान जाते कियो नेह फेर ताते भजनो कहा॥ ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै बुराई लई लाजहू गमाई कहो फेर लजनो कहा। यातो रंग काहू के न रंगिये सुजान प्यारे रंग तो रंगेई रहै फेर तजनो कहा॥ १५॥

जिसका जितेक साल भर में खरच तिसे चाहिये तो दूना पै सवायो तो कमा रहै। हूर या परी सी नूर नाजनी सहूरवारी हाजिर हमेश होय तौ दिल थमा रहै॥ ग्वाल कवि साहब कमाल इल्म सोहबत हो याद में गुसैयां के हमेश विरमा रहै। खाने को हमा रहै न काहू की तमा रहै जो गांठ में जमा रहै तो खातिर जमा रहै॥ १६॥

गङ्गा के न गोरि के गिरीस के न गोविन्द के गोत के न जोत के न

जाये राहगीर के। काहू के न संगी रतिरंगी भैन भानजी के जी के अति खोटे सोंटे खैहें जमबीर के ।। ग्वाल कवि कहें देखो नारी को खसम जानें धर्म को पसम जानें पातक सरीर के । निमकहराम बदकाम करें ताजे-ताजे बाजे बाजे बेसहूर गुरू के न पीर के ।। १७ ।।

किये हैं करार सो बिसार दये दगादार नन्द के कुमार सङ्ग को संजोगिनी बनै । कौन मुख लैके तोहि ऊधव पठायो इहां कैसे कही बाने हाय लङ्कलोगिनी बनै ।। ग्वाल कवि यातें एक बात तू हमारी सुन सुनि कै कहा है यह तोय भोगिनी बनै । कूबरी को कूब काटि लाय दै सिताबी हमैं टोपी करि ताकी तब गोपी जोगिनी बनै ।। १८ ।।

सुन्दर सरस सूहे सोसनी गुलाबी पीरे नाफर नरङ्गा आबी तूसी सजि लायो है । मूंगिया सबज काही कासनी सुन्हेरी सेत सन्दली सरबती औ नील दरसायो है ।। अगरई किसमिसी जोजई कपूरी स्याह तीजन कूं वाम हेत कामवर छायो है । चतुर प्रवीन सखी अचरज भयो आज सावन में इन्द्र रंगरेज बनि आयो है ।। १९ ।।

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि खाव पिओ देव लेव यही रह जाना है । राजा राव उमराव केते बादशाह भये कहां तें कहां को गयो लाग्यो ना ठिकाना है ।। ऐसी जिन्दगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे देस देस घूमि-घूमि मन बहलाना है। आये परवाना पर चले ना बहाना इहां नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है ।। २० ।।

दीनदयाल गिरि

बाबा दीनदयाल गिरि काशी के पश्चिम द्वार पर विनायक देव के पास रहते थे । ये दसनामी संन्यासियों मे थे । इनके जन्मकाल का कुछ ठीक पता नहीं चलता । जाति का भी ठीक निश्चय नही । इतना अवश्य निश्चित है कि बनारस के आसपास के किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल में इनका जन्म हुआ था । ये बड़े सहृदय और उदार थे । साम्प्रदायिक दुराग्रह इनमे छू भी नहीं गया था। स्वभाव अत्यन्त सरल और विनोदप्रिय

था। ये बात बात में लोकोक्तियों का प्रयोग करके लोगों को खूब हंसाते थे। बड़े दयावान थे। दूसरे का दुःख नहीं देख सकते थे। पर स्वाभिमान की मात्रा कम नहीं थी। कितने ही दुःख में रहने पर भी किसी से कुछ मांगते न थे। काशी-नरेश तथा तत्कालीन अन्य राजा महाराजा समय-समय पर गुप्त रूप से इनकी सहायता करते थे। कवियों का आना-जाना बराबर लगे रहने से इनकी आर्थिक दशा अच्छी न रहती थी। अमेठी के राजा साहब इन्हें अपने यहां ले जाना चाहते थे, पर ये काशी छोड़कर कहीं न गये। मणिकर्णिका घाट के निकट छप्पन विनायक पर इनका देहान्त हुआ। पं० विजयानन्द त्रिपाठी ने इनका मृत्युकाल सं० १९२२ बतलाया है। अन्य जानकारों के कथन से भी यही ठीक जान पड़ता है। यह भी सुनने मे आया है कि ये बहुत वृद्ध होकर मरे।

बाबा दीनदयाल के ग्रन्थों से यह पता चलता है कि ये उच्च श्रेणी के कवि थे। इनकी कविता की भाषा और भाव दोनों सरस और स्वच्छ हैं। शिवसिंह सरोजकार ने इनके सम्बन्ध में लिखा है कि "न्ये कवि संस्कृत के बड़े महान् पंडित थे और उन्होंने भाषा साहित्य में अन्योक्ति कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर बनाया है और अनुराग बाग और बाग-बहार ये दो ग्रन्थ भी इनके बहुत विचित्र हैं।"

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इनकी एक ग्रन्थावली प्रकाशित की है। इनके जीवन की बहुत-सी बातें हमने उसी से ली हैं। ग्रन्थावली में कुल पांच ग्रन्थ हैं, अनुराग बाग, दृष्टान्त तरङ्गिणी, अन्योक्ति-माला, वैराग्य दिनेश और अन्योक्ति कल्पद्रुम। शिवसिंह सरोज मे इनके एक और ग्रन्थ बागबहार का नाम दिया हुआ है, पर अभी तक उसका पता नहीं चला है। शायद अनुराग बाग ही का दूसरा नाम बाग बहार हो। अनुराग बाग सं० १८८८ में, दृष्टान्त तरंगिणी १८७९ में, वैराग्यदिनेश १९०६ में और अन्योक्ति-कल्पद्रुम १९१२ में रचा गया। अन्योक्ति-माला का निर्माण-काल पुस्तक मे वर्णित नहीं है।

अन्योक्ति-कल्पद्रुम इसका परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण जान पड़ता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहां दिये जाते हैं—

घनाक्षरी

छोड़्यो गृहकाज कुललाज को समाज सबै एक ब्रजराज सों कियो री प्रीतिपन है। रहत सदाई सुखदाई पदपंकज में चंचरीक नाईं भाई छांड़े नाहिं छन है॥ रतिपति मूरति विमोहन को नेम धरि लिखै प्रेम रंग भरि मति के सदन है। कुअर कन्हाई की लुनाई लखि माई मेरो चेरो भयो चित औ चितेरो भयो मन है॥

दोहे

जा मन होय मलीन सो, पर संपदा सहै न।
होत दुखी चित चोर को, चितै चंद रुचि रैन॥ १॥
तूठे जाके फल नहीं, रूठे बहु भय होय।
सेव जु ऐसे नृपति को, अति दुरमति ते लोय॥ २॥
बहु छुद्रन के मिलन ते, हानि बली की नाहिं।
जूथ जम्बुकन ते नहीं, केहरि कहुं नसि जाहिं॥ ३॥
पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषे, कनक पींजरे दीन॥ ४॥
तहां नही कछु भय जहां, अपनी जाति न पास।
काठ बिना न कुठार कहुं, तरु को करत बिनास॥ ५॥
नही रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान।
अधिक पूजियत रूप ते, बिना रूप विद्वान॥ ६॥
सरल सरल तें होय हित, नहीं सरल अरु बंक।
ज्यों सर सूधहि कुटिल धनु, डारै दूर निसंक॥ ७॥
केहरि को अभिषेक कब, कीन्हों विप्र समाज।
निज भुज बल के तेज तें, विपिन भयो मृगराज॥ ८॥

इक बाहर इक भीतरें , इक मृदु दुहु दिसि पूर ।
सोहत नर जग त्रिविध ज्यों , बेर बदाम अंगूर ॥ ६ ॥
बचन तजें नहिं सतपुरुष , तजै प्रान बरु देस ।
प्रान पुत्र दुहुं परिहरयो , बचन हेत अवधेस ॥ १० ॥

कुंडलिया

जिनतरुको परिमिल परसि , लियो सुजस सब ठाम ।
तिन भञ्जन करि आपनो , कियो प्रभञ्जन नाम ॥
कियो प्रभञ्जन नाम , बड़ो कृतघन बरजोरी ।
जब जब लगी दवागि , दियो तब झोंकि झकोरी ॥
बरनै दीनदयाल , सेउ अब खल थल मरुको ।
ले सुख सीतल छांह , तासु तोरयो जिन तरुको ॥ १ ॥
केतो सोम कला करो , करो सुधा को दान ।
नहीं चन्द्रमनि जो द्रवै , यह तेलिया पखान ॥
यह तेलिया पखान , बड़ी कठिनाई जाकी ।
टूटी याके सीस , बीस बहु बांकी टांकी ॥
बरनै दीनदयाल , चंद तुमही चित चेतो ।
कूर न कोमल होंहि , कला जो कीजे केतो ॥ २ ॥
बरखै कहा पयोद इत , मानि मोद मन माहिं ।
यह तो ऊसर भूमि है , अंकुर जमिहे नाहिं ॥
अंकुर जमिहैं नाहिं , बरष शत जो जल देहै ।
गरजै तरजै कहा , बृथा तेरो श्रम जैहै ॥
बरनै दीनदयाल , न ठौर कुठौरहि परखै ।
नाहक गाहक बिना , बलाहक ह्यां तू बरखै ॥ ३ ॥
भौंरा अन्त बसन्त के , हैं गुलाब इहि रागि ।
फिरिमिलाप अति कठिन है , या बन लगे दवागि ॥
या बन लगे दवागि , नहीं यह फूल लहैगो ।
ठौरहि ठौर भ्रमात , बड़ो दुख तात सहैगो ॥

बरनै दीनदयाल, किते दिन फिरिहै दौरा।
पछतैहै कर दये, गये ऋतु पीछे भौंरा॥ ४॥

रंभा झूमत हो कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गये, अरु ह्वै हैं यहि खेत॥
अरु ह्वै हैं यहि खेत, मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै, दीठि तुम पै प्रति दीने॥
बरनै दीनदयाल, हमै लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि, कहा झुकि झूमति रम्भा॥ ५॥

नाहीं भूलि गुलाब तू, गुनि मधुकर गुञ्जार।
यह बहार दिन चार की, बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीली डार, होहिगी ग्रीषम आये।
लुवै चलेंगी संग, अंग सब जैहैं ताये॥
बरनै दीनदयाल, फूल जौंलों तो पाहीं।
रहे घेरि चहुं फेरि, फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥ ६॥

टूटे नख रद केहरी, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइ कै, यह दुख दियो बढ़ाय॥
यह दुख दियो बढ़ाय, चहूं दिसि जंबुक गाजै।
ससक लोमरी आदि, स्वतन्त्र करै सब राजै॥
बरनै दीनदयाल, हरिन बिहरै सुख लूटें।
पंगु भयो मृगराज, आज नख रद के टूटे॥ ७॥

पैहौ कीरति जगत में, पीछे धरो न पांव।
छत्री कुल के तिलक हे, महा समर या ठांव॥
महा समर या ठांव, चलै सर कुन्त कृपानैं।
रहे वीर गन गाजि, पीर उर में नहि आनैं॥
बरनै दीनदयाल, हराखि जो तेग चलैहो।
ह्वैहौ जीते जसी, मरे सुरलोकहि पैहो॥ ८॥

भारी भार भर्यो बनिक, तरिबो सिन्धु अपार ।
तरी जरजरी फंसि परी, खेवनहार गंवार ॥
खेवनहार गंवार, ताहि पर पौन झंकोरै ।
रुकी भंवर में आय, उपाय चलै न करोरै ॥
बरनै दीनदयाल, सुमिर अब तू गिरधारी ।
आरत जन के काज, कला जिन निज संभारी ॥ ९ ॥

आछो भांति सुधारि कै, खेत किसान बिजोय ।
नत पीछे पछतायगा, समै गयो जब खोय ॥
समै गयो जब खोय, नहीं फिर खेती ह्वैहै ।
लैहै हाकिम पोत, कहा तब ताको दैहै ॥
बरनै दीनदयाल, चाल तजि तू अब पाछी ।
सोउ न सालि सभालि, बिहंगन तें विधि आछी ॥ १० ॥

सोई देस बिचार कै, चलिये पथी सुचेत ।
जाके जस आनन्द की, कविवर उपमा देत ॥
कविवर उपमा देत, रङ्क भूपति सम जामें ।
आवागवन न होय, रहै मुद मङ्गल तामें ॥
बरनै दीनदयाल, जहां दुख सोक न होई ।
ए हो पथी प्रबीन, देस को जैयो सोई ॥ ११ ॥

कोई सङ्गी नहिं उतै, है इतहा को सङ्ग ।
पथी लेहु मिलि ताहि ते, सबसों सहित उमङ्ग ॥
सबसों सहित उमङ्ग, बैठि तरनी के माहीं ।
नदिया नाव संयोग, फेरि यह मिलिहै नाही ॥
बरनै दीनदयाल, पार पुनि भेंट न होई ।
अपनी अपनी गैल, पथी जैहै सब कोई ॥ १२ ॥

ग्राहै प्रबल अगाध जल, या में तीछन धार ।
पथी पार जो तू चहै, खेवनहार पुकार ॥

खेवनहार पुकार, बार नहिं कोऊ साथी।
और न चलै उपाव, नाव बिन एहो पाथी॥
बरनै दीनदयाल, नहीं अब बूड़ै थाहे।
रहे महामुख बाय, ग्रसन को भारो ग्राहें॥ १३॥
राही सोवत इत कितै, चोर लगे चहुं पास।
तो निज धनके लेन को, गिनै नींद की स्वांस॥
गिनैं नींद की स्वांस, बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत, माल ये सांझ सबेरे॥
बरनै दीनदयाल, न चीन्हत है तू ताही।
जाग जाग रे जाग, इतै कित सोवत राही॥ १४॥
हारे भूली गैल में, गे अति पांय पिराय।
सुनो पथ अब तो रह्यो, थोरो सो दिन आय॥
थोरो सो दिन आय, रहे है संग न साथी।
या बन है चहुं ओर, घोर मतवारे हाथी॥
बरनै दीनदयाल, ग्राम सामीप तिहारे।
सूधे पथ को जाहु, भूलि भरमो कित हारे॥ १५॥
चारों दिसि सूझै नहीं, यह नदधार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु, खेवनहार गंवार॥
खेवनहार गंवार, ताहि पर है मतवारो।
लिये भौंर में जाय, जहां जलजन्तु अखारो॥
बरनै दीनदयाल, पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुबीर, नाम धरि धीर उचारो॥ १६॥
देखो पथिक उघारि कै, नीके नैन बिबेक।
अचरज है बाग में, राजत है तरु एक॥
राजत है तरु एक, मूल ऊरध अध साखा।
द्वै खग तहां अचाह, एक इक बहुफल चाखा॥

बरनै दीनदयाल , खाय सो निबल बिसेखो ।
जो न खाय सो पीन , रहै अति अद्भुत देखो ।। १७ ।।

रणधीरसिंह

जौनपुर नगर से २४ मील पश्चिम सिगरामऊ एक गांव है । वह एक रियासत का मुख्य स्थान है । रियासत न तो बहुत बड़ी-ही है और न बहुत साधारण ही है । आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले वहां ठाकुर संग्रामसिंह राज करते थे । उनके पिता का नाम ठाकुर शिवबक्स-राय सिंह था, जो ठाकुर संग्रामसिंह की बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गये थे । ठाकुर संग्रामसिंह का जन्म सं० १८३५ वि० में सिङ्गरामऊ में हुआ । सं० १८९० में उन्होंने काशी में शरीर त्याग किया । वे बड़े वीर थे । उन्होने ब्रिटिश-सरकार के एक बहुत बड़े बागी को स्वयं बाहुबल से पकड़ कर सरकार के हवाले किया था । उसके उपलक्ष्य में सरकार उन्हें बारह सौ रुपया वार्षिक दिया करती थी । ठाकुर संग्रामसिंह बड़े विद्या-व्यसनी थे । वे एक अच्छे कवि थे । और गुणियों का यथोचित आदर करते थे । वेदान्त शास्त्र के वे अच्छे ज्ञाता थे । छंद लक्षण, नायका भेद, अलंकार तथा विविध विषयों का उत्तम रचनाओं से विभूषित उनका काव्यार्णव नामका काव्य-ग्रन्थ बहुत उत्तम बना है । वह स० १९२१ मे लेथों में छपा हुआ है ।

राय रणधीरसिंह ठाकुर सग्रामसिंह के पौत्र थे । इनके पिता का नाम ठाकुर गजराजसिंह था । ठाकुर गजराजसिंह जी भी कवियों का अच्छा सत्कार करते थे, परन्तु वे स्वयं भी कविता करते थे या नही, यह मुझे नही मालूम ।

राय रणधीरसिंह का जन्म सं० १८७८ वि० मे हुआ । पिता के स्वर्गवासी होने पर सं० १९१४ में उनको राज्याधिकार मिला । सन् १८५७ के विद्रोह में उन्होंने ब्रिटिश-सरकार की बड़ी सहायता की थी, उसके बदले मे उनको रायबहादुर की उपाधि मिली थी ।

राय रणधीर सिंह साहसी, उदार और बड़े प्रजाहितैषी थे । प्रजा को उन्होंने कभी नहीं सताया। उनकी सभा पंडितों और दूर दूर के कवियों से भरी रहती थी। कविता का उनको व्यसन था। उन्होंने पांच ग्रन्थों की रचना की है—१—नामार्णव, २—काव्य रत्नाकर, ३—सालिहोत्र, ४—भूषण कौमुदी, ५—रागमाला। उनके रचे हुए गीत उनकी रियासत में अब तक बड़े प्रेम से गाये जाते हैं। सं० १९५२ वि० में अयोध्याजी में उन्होंने शरीर त्याग किया। उनके विषय में शिवसिंह ने अपने सरोज में लिखा है—"ये राजा कवि कोविदों का बड़ा सम्मान करते हैं। इनके बनाये हुए भूषण-कौमुदी, काव्यरत्नाकर ये दोनों ग्रन्थ देखने योग्य हैं।" इससे प्रकट होता है कि उनकी कीर्ति कम-से-कम शिवसिंह सेंगर के कान तक तो अवश्य ही पहुंच चुकी थी।

राय रणधीरसिंह के कुटुम्बी ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह के द्वारा मुझे राय रणधीर सिंह के हस्तलिखित और लेथो में छपे हुए काव्य-ग्रंथ देखने को मिले। इसके लिए मैं ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह का बहुत कृतज्ञ हूं। राय रणधीरसिंह के कुटुम्बियों और गद्दीधरों को उनके ग्रन्थों को सुन्दरतापूर्वक और सस्ता छपवाकर उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बना देना चाहिये। हस्तलिखित पुस्तकों को छपवा देना ही उचित है। क्योंकि यदि हस्तलिखित प्रति खो गई तो लेखक के कितने दिनों का परिश्रम, जिसे उसने अपना कलेजा घुला घुलाकर किया है, सहज में नष्ट हो जायगा।

राय रणधीरसिंह की कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते हैं—

नामार्णव पिंगल—यह सं० १८९४ वि० में बना। इसमें एक-एक वस्तु के कई-कई नाम नाना छन्दों में लिखे गये हैं। साथ-ही-साथ छन्दों के लक्षण और उदाहरण भी हैं। पिंगल ग्रन्थों में जितने विषय होने चाहिएं, उतने तो हैं ही; कुछ अन्य बातें जो पद्य-रचयिताओं के लिए ज्ञातव्य हैं, इस पुस्तक में वर्णित हैं। एक उदाहरण देखिये—

अग्निनाम-कुण्डलिया छन्द

सिंहविलोकित रीति दै , दोहा पर रोलाहि ।
आदि अंतजुरि जमकयुत , कुंडलिया कहि ताहि ॥
अनल बन्हि पावक दहन , ज्वलन शिखो बृषभानु ।
शुक्र धनञ्जय, बातसख , ऊषर अग्नि कृषानु ॥
ऊषर अग्नि कृषानु आनु बुध चित्रभानु इमि ।
धूमध्वज जलजोनि , विभावसु बीतिगोत्र निमि ॥
जातवेद जुत आनि , निसाचर तूल तुल्य दल ।
काली जू अव भंग , आजु जारत क्रोधानल ॥

काव्य-रत्नाकर— सं० १८९७ वि० में बना । यह नायिकाभेद और अलंकार का ग्रन्थ है । रचना अच्छी है । ग्राम्यवधू का वर्णन देखिये—

गेह काज करति छिनक दौरि हेरै द्वार छिनक उठाय घट जाती जल लैन को । चकबक ताकती इतै उतै बिलोकि काहू मुरि मुसुकाय ललचाय जोरि नैन को ॥ मैन मदमाती अठिलाती छाती ऊंची करि खोलति छिपाती चली जाती देती सैन को । लेजरी गिराती फेरि फेरि फिरि आती लेन पथ में फिराती त्यों बढ़ाती जाती चैन को ॥

सालिहोत्र - यह सं० १९१२ वि० में लिखा गया । इसमें घोड़ों की पहिचान, उनके गुण दोष, रोग और औषधियों का वर्णन है । उत्तम अश्व का लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

तालू रसना अधर अरुन विराजत हैं उज्जल अरुन स्याम इक रंग अंग है । लोचन विसाल लम्बी ग्रीव मुख मंजुल है कच घुघुरारे बड़े स्रुति सुठि तंग है ॥ सूच्छम त्वचा है, चौड़े उर, पातरे चरन, पूंछ लघु गति लोल, लागी वासु संग है । विरले न दंत, सिर ऊंचे, बंक देखियत लच्छन ये जामें सोई उत्तम तुरंग है ॥

घोड़े के रोग की दवा

जो घोड़े को देखिये , फूल्यो उदर सिवाय ।
पटकि पटकि लोटै धरनि , ताको जतन बताय ॥

बैठे उठे घोड़ तनि आवे । हरैं राई लोन खिलावै ॥
यहि तें जो कुरकरी न छूटै । तो दूसर औषधि लै कूटै ।
हैसि मूल को तुचा मंगावै । पातर करि कै ताहि पिलावै ॥

रागमाला—यह सं० १९४६ वि० का छपा है । इसमें राय रणधीर सिंह के रचे हुए भजन और गीत, विविध राग रागिनियों में हैं । नमूने के तौर पर एक भजन हम यहां उद्धृत करते है ।

(**ध्रुपद राग, पर्ज ताल, चौताल**)

आली री अनंग अंग जनु धारे बनमाली ठाढ़ो है निकुंज मध्य प्यारी री । गल सोहै मोती माल, केसर को तिलक भाल मोर पंख सीस मानो चंद्र की पत्यारी री ॥ पीत बसन लसित अंग सरसित सुखमा सुढंग जलधर ज्यों लीन्यों विद्युत अलोल सग बंसी रवित मंजु अधर सुरस धारि रनधीर लेनो है अनन्त तान न्यारी री ॥

भूषण-कौमुदी—यह ग्रन्थ सं० १९१७ वि० में बना । इस ग्रन्थ में महाराज जसवन्तसिंह के भाषा-भूषण नामक ग्रन्थ पर टीका लिखी गई है । टीका अच्छी है । इस ग्रन्थ के प्रारम्भ का तीसरा छन्द इस प्रकार है—

मंजुल सुरंगवर शोभित अचिंत चारु फल मकरन्द कर मोदित करन हैं । प्रमित विराग ज्ञान केसर सरस देस विरद असेस जसु पांसु प्रसरन हैं ॥ सेवित नृदेव मुनि मधुप समाज ही के रनधीर ख्यात द्रुत दच्छिन भरत हैं । ईस हृदि मानस प्रकासित सहाई लसैं अमल सरोजवर स्यामा के चरन हैं ॥

विश्वनाथसिंह

रीवां-नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह महाराजा जयसिंह के पुत्र और महाराजा रघुराज सिंह के पिता थे । इनका जन्म सं० १८४६ में हुआ । ये सं० १८९१ में गद्दी पर बैठे और सं० १९११ तक राज करते रहे । ये अच्छे कवि थे और सुकवियों का अच्छा सत्कार करते थे । इन्होंने

अष्टयामका आन्हिक, आनन्द रघुनन्दन नाटक, उत्तम काव्य प्रकाश, गीता रघुनन्दन शतिका, रामायण, गीता रघुनन्दन प्रमाणिक, सर्वसंग्रह, कबीर के बीजक की टीका, विनय पत्रिका की टीका, रामचन्द्र की सवारी, भजन पदार्थ, धनुर्विद्या, परानीय तत्व प्रकाश, आनन्द रामायण, परम धर्म निर्णय, शांति शतक, वेदान्त पंच शतिका, गीतावली पूर्वार्द्ध, ध्रुवाष्टक, उत्तम नीति चन्द्रिका, अवाध नीति, पाखंड खंडिनी, आदि मंगल, बसन्त चौंतीसी, चौरासी रमैनी, ककहरा, शब्द, विश्व भाजन प्रसाद, परमतत्व, संगीत रघुनन्दन, गीता रघुनन्दन, तत्वमस्य सिद्धान्त भाषा, ध्यान मंजरी, विश्वनाथ प्रकाश । संस्कृत में—राधावल्लभी भाष्य, सर्वसिद्धान्त, आनन्द रघुनन्दन (दूसरा), दीक्षा निर्णय, भुक्ति मुक्ति सदानन्द सन्दोह, रामचन्द्रान्हिक सतिलक, राम परत्व, धनुर्विद्या, संगीत रघुनन्दन (दूसरा) ।

नमूने के रूप में इनका ध्रुवाष्टक यहां उद्धृत किया जाता है—

जो बिन कामहि चाकर राखत ऐन अनेक वृथा बनवावै ।
आमद ते अधिको करे खर्च रिनै करि ब्यौहरै ब्याज बढ़ावै ॥
बूझत लेखा नहीं कछुऐ नहिं नीति की रीति प्रजानि चलावै ।
भाखत हैं विसुनाथ ध्रुवै वहि भूपति के घर दारिद आवै ॥ १ ॥
निश्चय धर्म विचार भयो दबि भाइन भृत्यनि नाहिं चलावै ।
मंत्रिय आदि सुलच्छन हीन औ आलसी होय सलाह बतावै ॥
मानि सँकोच करै व्यवहार वृथा ही इनाम की रीति बढ़ावै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै वह भूपति ना कबहूं कल पावै ॥ २ ॥
नारिन की जु सलाह करै अरु भाइन मंत्री स्वतन्त्र बनावै ।
बर के चाकर राखे रहै और अधर्म की राह सदा मन लावै ॥
मंत्री कह्यो हित मानै नहीं अरु साह को सासन नाम न आवै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै कछु काल में भूप सुराज गंवावै ॥ ३ ॥
झूठी सुनै तहक़ीक़ करै नहिं ओछेन संगति में मन लावै ।
रीझ पचाय डरे रन को बिसना जु अठारहो खूब बढ़ावै ॥

ठट्ठा में प्रीति कुपात्र में दान कबीन हुं जान गुमान जनावै ।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै अस भूपति ना कबहूं जस पावै ।। ४ ।।
चाकर दै धन बांचे जोई अठयों तिहिं भागहि धर्म लगावै ।
साह लिये धरै सातयों भाग छठे सुता ब्याह हितै रखवावै ।।
पांचएं बित्त बढ़े धरि चौंथ्यहि तीन ते खर्च करै छ बढ़ावै ।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै तेहि भूपति भौन न दारिद आवै ।। ५ ।।
भाइन भृत्यन विष्णु सो रैयत भानु सो सत्रुन काल सो भावै ।
सत्रु बली से बचै करि बुद्धि औ अस्त्रसों धर्महि नीति चलावै ।।
जीतन को करे केते उपाय औ दीरघ दृष्टि सबै फल पावै ।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै नृप सौ कबहूं नहिं राज गंवावै ।।६।।
होय नहीं कबहूं बस काहु समै सब में निज भाव जनावै ।
राखे रहै हुकुमें सब पै कहुं मित्र बनाय न तेज गंवावै ।।
साम औ दाम औ दंड औ भेद की रीति करै जु सबै मन भावै ।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै कला षोड़सौ भूपति राज बढ़ावै ।।७।।
जो हरिआह्निक में मन लाय करै नृप आह्निकहू स्मृति भावै ।
मानै अहै प्रभु को सब है प्रभु रूप सबै निज किंकर भावै ।।
देह ते आपुहि भिन्न गनै करि सासन भक्ति प्रजान चलावै ।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै दोऊ लोक मैं भूपति सो सुख पावै ।।८।।

राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय

राय ईश्वरीप्रतापनारायणजी का जन्म सं० १८५९ में गोरखपुर जिले के पड़रौना-राजवंश में हुआ। हिन्दा, संस्कृत और फारसी में इनकी अच्छी गति थी। ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के शिष्य थे। राधाकृष्ण के बड़े प्रेमी उपासक थे। पड़रौना में इनके बनवाये हुए बहुत सुन्दर मन्दिर, बाग और तालाब हैं। ये बड़े उदार, दानी, भगवद्भक्त और सुविचार-वान् थे। २२ वर्ष की अवस्था ही से कविता-रचना का इनको चसका लग गया था। राजा होकर, राजकाज के झंझटों में फंसे रहकर भी

इन्होंने बड़े मनोयोग से सुन्दर कविता की है, यह इनकी प्रकृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है। इनका सं० १९२५ में देहान्त हुआ।

इन्होंने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में कविता की है। कहीं-कहीं पञ्जाबी की भी झलक आ गई है। इनके रचे हुए कई ग्रन्थ कहे जाते हैं। अभी केवल एक ग्रन्थ "रहस्य-काव्य-शृङ्गार" वर्तमान पड़रौना-नरेश राजा ब्रजनारायण राय जी ने प्रकाशित किया है। आशा है, शेष ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जांयगे।

इनकी कविता सरस और मनोहर है। ये गानविद्या में भी बड़े प्रवीण थे। इनकी कविता के कुछ नमूने यहां दिये जाते हैं—

मोह को जाल पसार चहुं दिस संतत खेलत काल अहेरो।
भाग तू मोह मया तजि मूरख काहू को तू न कोऊ कहुं तेरो॥
नश्वर या तन को समबन्ध प्रताप छुटै छिन साम सबेरो।
छोड़ि सबै भ्रमजाल निरंतर श्रीबन में बस हे मन मेरो॥१॥

कोई कहै आन कोई आपहि भगवान बनै कोई कहै दूरि कोई नेरेही लखाव रे। कोई कहै रूप औ अरूपवान कोई कहै कोई कहै निर्गुन कोई सगुन बताव रे॥ तामें मति भरमें औ भूलि के न बाद ठान तोहिं क्या बिरानी पड़ी अपनी सुरझाव रे। अदभुत प्रताप मूरि जीवन है रसिकन की सदा रसिक भक्तन के सदन रहु बावरे॥२॥

राग सोरठ मलार

तो बिन को यह नेह निबाहै।
ऐसा हित प्रतिपालनहारो तू ही एक सदा है॥
हंसे हंसत बोले बोलत हंसि मिले मिलन को उमा है।
जोइ जोइ चाह प्रताप करत चित सोइ राज तू चाहै॥३॥

राग धमार

बेसर थिरकि रही अधरन पै मोती थिरकत जात।
लखि प्रताप पिचकारी लाल जी के रहि गई हाथ की हाथ॥४॥

पजनेस

पजनेस का जन्म पन्ना में हुआ। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-संवत् १८७२ लिखा है। इनका रचा हुआ कोई ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इनके कुछ छन्दों का संग्रह "पजनेस प्रकाश" नाम से प्रकाशित किया था। उसके देखने से पजनेस एक प्रतिभाशाली कवि जान पड़तेहैं। ये शृंङ्गारी कवि थे। इनकी कविता में कहीं-कहीं अश्लील वर्णन भी आ गया है। इनकी कविता से जान पड़ता है कि ये संस्कृत और फारसी के भी ज्ञाता थे।

इनका रचा एक हस्तलिखित काव्य-ग्रंथ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन के पास है। उसके प्रकाशित होने पर इनकी प्रतिभा का अधिक प्रकाश प्रकट होगा।

यहां हम इनकी कविता के कुछ उदाहरण उपस्थित करते हैं—

छहरैं छबीली छटा छूटि छितिमंडल पै उमग उजेरो महा ओज उजबक सी। कवि पजनेस कंज मंजुल मुखी के गात उपमाधिकात कल कुंदन तबक सी॥ फैली दीप दीप दीप दीपति दीपति जाकी दीपमालिकी को रही दीपति दबक सी। परत न ताब लखि मुख महाताब जब निकसी सिताब आफ़ताब के भभक सी॥१॥

नवला सरूप रूप रावरे रुचिर रूप रचना बिरंचि कीनी सकुच न लागी है। भन पजनेस लोल लोयन को लौकौं गोल गुलफ गोराई लाज सकुच न लागी है॥ सुन्दर सुजान सुखदान प्रीति प्रीतम की एकौ ना परेख अब सकुचन लागी है। औचक उचन लागी कंचुकी रुचन लागी सकुचन लागी आली सकुचन लागी है॥२॥

कवि पजनेस केलि मधुप निकेत नव दर मुख दिव्य घरी घटिका लटीकी है। विधु पर बेष चक्र चक्र रविरथ चक्र गोमती के चक्रचक्रता-कृत घटीकी है॥ नीवी तट त्रिबली बली पै दुति कोसतुण्ड कुंडली कलित लामलतिका बुटीकी है। उपटीकी टीकी प्रभाटीकी बधूटी की नाभिटीकी धुर्जटी को औ कुटी संपुटीकी है॥३॥

संपुट सरोज कैधों सोभा के सरोवर में लसत सिङ्गार के निसान अधिकारी के। कवि पजनेम लोल चित्त बिच चोरिबे को चोर इक ठौर नारि ग्रीव वरकारी के ॥ मन्दिर मनोज के ललित कुंभ कंचन के कलित फलित कैधों श्रीफल बिहारी के। उरज उठौना चक्रवाकन के छौन कैधों मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के ॥४॥

मानसी पूजा भई पजनेस मलेछन हीन करी ठकुराई।
रोके उदोत सबै सुर गोत बसेरन पै सिकराली बसाई ॥
जानि परै न कला कछु आज की काहे सखी अजया इक ल्याई।
पोखे मराल कहो किहि कारन ऐरी भुजंगिनी क्यों पोसवाई ॥५॥

पजनेस तसद्दुकता बिसमिल जुलफ़े फुरक़त न क़बूल कसे।
महबूब चुनां मदमस्त सनम् अज़दस्त अलाबल जुल्फ बसे ॥
मजमूये न काफ़ सफ़ाक़ रुए सम क़्यामत चश्म से खूं बरसे।
मिज़गां सुरमा तहरीर दुतां नुक़ते बिन बे किन ते किन से ॥६॥

शिवसिंह सेंगर

शिवसिंह सेंगर जिला उन्नाव में कांथा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता जमींदार थे और उनका नाम रणजीतसिंह था। इनका जन्म सं० १८७८ में हुआ। ये पुलिस के इन्सपेक्टर थे। काव्य में अधिक रुचि होने के कारण इन्होंने हिन्दी, संस्कृत और फारसी की बहुत-सी पुस्तकें इकट्ठी की थीं।

सं० १९३४ में इन्होंने "शिवसिंह सरोज" नामक एक बड़े ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। इसमें लगभग एक हजार हिन्दी के पुराने कवियों की संक्षिप्त जीवनी और उनकी कविताओं के स्वल्प संग्रह हैं। कविता-कौमुदी लिखते समय हमें इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिली। इसके सिवा शिवसिंह ने ब्रह्मोत्तर खंड और शिवपुराण का गद्यानुवाद भी किया था। ये कविता भी करते थे। नमूने के रूप में इनके दो कवित्त यहां उद्धृत किये जाते हैं—

पियो जब सुधा तब पीबे को कहा है और लियो शिवनाथ तब लेइबो कहा रह्यो । जान्यो जिन रूप तब जानै को कहा है और त्याग्यो मन आस तब त्यागिबो कहा रह्यो ।। भनै शिवसिंह तुम मन में बिचारि देखो पायो ज्ञान धन तब पाइबो कहा रह्यो । भयो शिवभक्त तब ह्वैबे को कहा है और आयो मन हाथ तब आइबो कहा रह्यो ।।१।।

कहकही काकली कलित कल कंठन की कंजकली कालिंदी कलोल कहलन में । सेंगर सुकवि ठंड लागती ठिठुरवारी ठाठ सब ठटे लगि लेते टहलन में ।। फहरै फुहारे फबि रही सेज फूलनि सो फेन सी फटिक चौतरा के पहलन में । चांदनी चमेली चम्पा चारु फूल बाग बीच बसिये बटोही मालती के महलन में ।।२।।

रघुराजसिंह

रघुराजसिंह रीवां के महाराज थे । इनका जन्म संवत् १८८० में हुआ । सं० १९११ में अपने पिता महाराज विश्वनाथसिंह के स्वर्गवासी होने पर ये गद्दी पर बैठे । इनकी मृत्यु सं० १९३६ में हुई । इनके १२ विवाह हुए थे । कविता महाराज रघुराजसिंह की पैतृक सम्पत्ति थी । इनके पिता और पितामह भी अच्छे कवि और सत्कवियों के आश्रयदाता थे । रघुराजसिंह हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं के पंडित और कवि थे । दान ओर भक्ति में भी इनकी बड़ी प्रशसा सुनी जाती है । शिकार खेलने का इन्हें बड़ा व्यसन था । शिकार में इन्होंने ९१ शेर, एक हाथी, १६ चीते और हजारों हरिण तथा अन्य पशुओं का वध किया था । मृत्यु-काल से ५ वर्ष पूर्व ही से इन्होंने राज्यप्रबंध से सम्बन्ध छोड़ दिया था । उस समय ब्रिटिश-सरकार राज्य की देखरेख करती थी । सं० १९३३ में इनको संतान-सुख प्राप्त हुआ ।

इनके आश्रय में बहुत-से कवि रहा करते थे । उनमें से कुछ के नाम ये हैं—रसिकनारायण, रसिकबिहारी, श्री गोविन्द, बालगोविन्द और रामचन्द्र शास्त्री ।

महाराज रघुराजसिंह के रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ हैं--

सुन्दर शतक, विनयपत्रिका, रुक्मिणीपरिणय, आनन्दाम्बुनिधि, भक्तिविलास, रहस्य पंचाध्यायी, भक्तमाल, रामस्वयंवर, यदुराज-विलास, विनयमाला, रामरसिकावली, गद्यशतक, चित्रकूटमाहात्म्य, मृगयाशतक, पदावली, रघुराजविलास, विनयप्रकाश, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, राम अष्टयाम, भागवत भाषा, रघुपति शतक, गंगा शतक, धर्म विलास, शंभु शतक, राजरंजन, हनुमतचरित्र, भ्रमर गीत, परम प्रबोध और जगन्नाथ शतक। रघुराजसिंह की कविता कहीं-कहीं बड़ी मनोहर हुई हैं। ये राम भक्त थे। राम को दास भाव से भजते थे। अपनी कविता में कहीं-कहीं तुलसीदास की छाया भी इन्होंने ली है।

यहां रुक्मिणी परिणय और रघुराजविलास से इनकी कुछ कविताएं उद्धृत की जाती हैं—

केशव जन्म लै आज्ञा दई तब लै शिशु को वसुदेव सिधारे।
गोकुल में यशुदा के निकेत में राखि सुतै दुहिता लै पधारे॥
बाल ही में बिकरार सुरारिन पूतना धेनुक आदि संहारे।
शक्र के कोप ते राख्यो ब्रजै गिरिधारी सु सात दिनै गिरि धारे॥ १॥

जानि दुखी यदुवंशिन को संग दानपती मथुरा कहं आये।
कंसहि कूटिकै मातु पिता को छोड़ाय कै बन्धन मोद बढ़ाये॥
आहुक को यदुराज दियो निज बन्धुन के दुख द्वन्द मिटाये।
मागध को मद मंथन कै अब द्वारका द्वारकानाथ बसाये॥ २॥

दीनन पालिबो शत्रुन शालिबो घालिबो भक्तन के दुख को है।
दीठि दया की प्रजा पै पसारिबो धर्म सुधारिबो चित्त बसो है॥
पाप नशाइबो नीति चलाइबो कीरति बेलि बढ़ाइबो सोहै।
वृद्धन मानिबो यज्ञन ठानिबो यों जिनके गुण को सब जोहै॥ ३॥

बुद्धि लखे हिय लाजै वृहस्पति रूप लखे हिय लाजत मार है।
धीरज दासरथी सो अरीनपै कोपिबो शम्भु सों शील अगार है॥

विक्रम जासु त्रिबिक्रम के सम क्षोनीक्षमा सुखसिंधु को सार है ।
तेज कृशानु प्रताप ते भानु यशैते लजै सितभान अपार है ।। ४ ।।
कोमल बोलै कठोरे कहै किये येकहू सेवा सतै करि मानत ।
वाके सबै अपकार बिसारि निजै चित में उपकारहिं आनत ।।
जोई कहै करै सोई सदा द्विज की निज देवता सीं जिय ठानत ।
दीनन दान मुनीशन मान अरीन कृपान को देइबो जानत ।। ५ ।।
कंचन दान में मेरु डरै गजदान में गोवति गौरी गजानन ।
दान तुरंग को देखि दिवाकर दाहिन बाम ह्वै जात दिशानन ।।
दान मही के मही के महीपति त्रासित जी के बिलोकत कानन ।
हेरि कुशा हरि के कर में डर तो त्रयलोक करै चतुरानन ।। ६ ।।
माधुरी माधव की वह मूरति देखतहीं दृग देखे बनेरी ।
तीनिहूं लोक की जो रुचिराई सुहाई अहै तिनहीं के घनेरी ।।
सोभा शचीपति औ रति के पति की कछु आई न मेरे मनेरी ।
हेरि मैं हार्यो हिये उपमा छविहू छवि पाई बिराजित नैरी ।। ७ ।।
ब्रज में जेहि के मुरली ध्वनि को सुनिकै यह कौतुक होत भयो ।
परिवार बिसारि हिये हरिधारि सुगोपिका छोड़ि अवास दयो ।।
कर नूपुर कंकन पांयन में कटि किंकिणी को करि हारु लयो ।
नंदनंदन के ढिग को यों गई सरितागण सागर को ज्यों गयो ।। ८ ।।
मुख देखतही मनमोहन को अति सोहन जोहन लागी जबै ।
नहिं नैन हिलै नहिं बैन चलै नहिं धाय मिलै नहिं शीश नवै ।।
ब्रजबालन हाल लख्यो अस लाल उताल कियो उरमाल तबै ।
रसरास विलास में हास हुलास सों पूरण के दिय आश सबै ।। ९ ।।
मथुरा के मनोहर मारग में मुरली धरे मंडित ग्वालन सों ।
लखि कूबरी मोहित दै अंगराग चह्यो मिलिबो हठि लालन सों ।।
अतिरूप अनूप भयो तेहि को भई पूजित देवन बालन सों ।
रति रंभा रमा सुख दुर्लभ जो छनही में दियो तेहि ख्यालन सों ।।१०।।

दोहे

कल किशलय कोमल कमल , पदतल सम नहिं पांय ।
यक सोचत पियरात नित , यक सकुचतु झरि जांय ॥ १ ॥
विलसति यदुपति नखनितति , अनुपम द्युति दरिशाति ।
उडुपति युत उडु अवलि लखि , सकुचि सकुचि दुरिजाति ॥ २ ॥
सविता दुहिता श्यामता , सुखसरिता नख ज्योति ।
सुतल अरुणता भारती , चरण त्रिवेणी होति ॥ ३ ॥
गुलुफ गुलुफ खोलनि हृदय , हो तौ उपमा तूल ।
ज्यों इंदीवर तट असित , द्वै गुलाब के फूल ॥ ४ ॥
लाली यें ड़ी लालकी , अति अनुपम दरशाहिं ।
काम बाग की नारंगी , सम कहि कवि सकुचाहिं ॥ ५ ॥
चारु चरण की आंगुरी , मो पै वरणि न जाइ ।
कमल कोश की पाखुरी , पेखत · जिनहि लजाइ ॥ ६ ॥
अति अनुपम कहि जाति नहिं , युगल जंघ की ज्योति ।
जिनहि जोहि कलकलभ को , शुंड कुण्डलित होति ॥ ७ ॥
युगल जानु यदुराज की , जोहि सुकवि रसभीन ।
कहत मार शृङ्गार के , संपुट द्वै रचि दीन ॥ ८ ॥
उरू सलोने श्याम के , निरखत टरत न नैन ।
जैतखंभ शृङ्गार के , मानहुं विरच्यो मैन ॥ ९ ॥
यदुपति कटि की चारुता , को करि सकै बखान ।
जासु सुछवि लखि सकुचि हरि, रहत दरीन दुरान ॥ १० ॥
पद्मनाभ के नाभिकी , सुखमा सुठि सरसाय ।
निरखि भानुजा धार को , भ्रमि भ्रमि भवंर भुलाय ॥ ११ ॥
लली कान्ह रोमावली , भली बनी छवि छाय ।
मनहुं काम शृङ्गार की , दीन्हीं लीक खंचाइ ॥ १२ ॥
वर दामोदर को उदर , जेहि नहिं समता पाइ ।
नवल अमल बल दल सुदल , डोलत रहत लजाइ ॥ १३ ॥

उर अनूपम उनको लसै, सुखमा को अति ठाट।
मनहुं सुछबि हिय भरि भये, काम शृङ्गार कपाट॥ १४॥
कामकरभ कर उरग वर, रस शृङ्गार द्रुम डार।
भुजनि जोहि जदुवीर के, देव पराभव पार॥ १५॥
श्री यदुपति के भुज युगल, छाजि रहे छवि भौन।
निरखत जिनहिं भुजङ्गवर, लजि पताल किय गौन॥ १६॥
देवकिनन्दन कठ को, रच्यो न विधि उपमान।
जे जड़ दरको पटतरहिं, तिन सम जड़ न जहान॥ १७॥
ग्रीवा गिरिधरलाल की, अनुपम रही विराजि।
निरखि लाज उर दरकि दर, बस्यो उदधि महं भाजि॥ १८॥
मनमोहन के नैनवर, बरणि कौन विधि जाहिं।
कज खंज मृग मैन शर, मीनहुं जेहि सम नाहिं॥ १९॥
यदुपति नैन समान हित, विधि ह्वै बिरचै मैन।
मीन कञ्ज खञ्जन मृगहु, समता तऊ लहै न॥ २०॥
भालपटलि नगवंत की, भनति भारती नीठि।
वशीकरन जपकरन की, मनमनोज सिधि पीठि॥ २१॥
बाललाल के भाल मे, सुखमा बसी बिशाल।
सुछवि माल शशि अरध ह्वै, निरखत होत बिहाल॥ २२॥
यदुपति भौहन की सुछवि, मदन धनुष की सोभ।
जीति लसतहै तिनहिं लखि, दृग न टरत रतलोभ॥ २३॥
भौंह बरुण यदुराज की, रही अपूरुब सोंहि।
करहि लजोहें कामधनु, शरमन लवै पोंहि॥ २४॥
हरिनासा की सुभगता, अटकि रही दृग माह।
कामकीर के ठोर की, सुखमा छुवति न छांह॥ २५॥
गोल कपोल अतोल हैं, छाये सुछवि अमान।
मदन आरसी रसपसर, सम शर करत अजान॥ २६॥

श्रवण सलोने श्याम के, छहरति छटा नवीन ।
मदन महोदधि सीप की, सुखमा लीन्हीं छीन ॥२७॥
राजत पुरट किरीट शिर, प्रगटत प्रभा अखंडि ।
ज्यों मनहुं गिरि नील पर, कनुपम रबि छबि मडि ॥२८॥

गीत

भजु मनो देवकी जठर महोदधि पूर्ण मृगांकमुदारम् ।
यदुकुल कुमुद बिनोद बिकाशक बिभु बसुदेव कुमारम् ॥
नलिन नयन नलिनीरुहाननं नवनीरद तनु नीलम् ।
समय बिजय कर चारु चतुर्भुज शोभित सुन्दर शीलम् ॥
मणिमय मुकुट मनोहर मस्तक पीत बसन बनमालम् ।
कुण्डल मण्डित गण्य मण्डलं चन्दन चर्चितभालम् ॥
रुक्मिणी बिराजित बाम भाग मनु राग यागजवलभ्यम् ।
सिंहासनासीन कमनीय सभा सुबिभावित सभ्यम् ॥
सुर सुरेन्द्र बैरंच्य बिरंचि सुर्षि महर्षि समाजम् ।
दीन दया बितरण सदानि वरपावित जनरघुराजम् ॥१॥
सखि पश्य कोशल कान्त सुखद कुमारमति सुकुमारकम् ।
मैथिलनिवास बिलास बिलसित मदनमनोऽपहारकम् ॥
मणि मंडपे सीतायुतं सुषमाभरं सीतावरम् ।
सुबिवाहकर्म्म बिधान मतिकुर्वाणमद्भुत तारकम् ॥
मणिमुकुट पीताम्बर सुनव्यमुखारबिंदमनिन्दितम् ।
मेदुर सुघन मस्तकदिवामणिमिक्तडिद्गणवन्दितम् ॥
किंचित्कटाक्ष विकाश वीक्षित जानकी सुषमामुखम् ।
गुरुजन निकट लज्जावशं गतमधोभावितशशिमुखम् ॥
जनकात्मजार्प्पितदृष्टि कंकण कलितकर धृतचन्दनम् ।
रघुराज राजसमाज शोभित सानुजं रघुनन्दनम् ॥२॥

सखि लखन चलो नृप कुंवर भलो । मिथिलापति सदन सिया बनरो ॥
शिर मौर बसन तन में पियरो । हठ हेरि हरत हमरो हियरो ॥

उर सोहत मोतिन को गजरो । रतनारी अंखियन में कजरो ॥
चितये चित चोरत सखि समरो । चितये बिन जिय न जियै हमरो ॥
अलकैं अलि अजब लसैं चेहरो । झपि झूलि,रह्यो कटि लौं सिहरो ॥
युवती जन को जालिम जहरो । मन बैठत लखत मैन पहरो ॥
पुनि ऐहैं नाहिं जनक शहरो । ले रि लोचन लाहु न करु गहरो ।
यक है वहि लखत बड़ो अनरो । पुनि रुकत न रोकहु मन उन रो ॥
चित चहत अरी लगि जाऊं गरो । रघुराज त्यागि घर को झगरो॥३॥

मोहिं तो भरोसो भूरि अपनी कमाई को ।
कबहूं काहू को नहीं कियो है भलाई को ॥
कियो काम लोभ कोह मोह सों मिताई को ।
रोज रोज पाल्यो निज नारि नाति भाई को ॥
कबहूं न पूज्यो साधु लैके आगुआई को ।
पूरी प्रीति पापिन सो नारि हू पराई को ॥
बाढ्यो है घमण्ड मोह माया ठाकुराई को ।
बेस बजवायो द्वार पाप ही बधाई को ॥
रोज रुजगार कियो जीव ही सताई को ।
सपन्यो न सोच्यो नाथ भक्ति सुखदाई को ॥
धर्म कर्म कीन्ह्यो केते लोक की बड़ाई को ।
कबहूं न पायो पार विषै भोगताई को ॥
बाकी न रह्यो है रघुराज पतिताई को ।
मोहिं ना उधारे पतितपावन नाम गाई को ॥ ४ ॥

मूरुख मानत यही बड़ाई ।
राजा भयो बिभौ धन आंधर नहिं सन्तन शिर नाई ।
भोजन मैथुन ऐश करत नित दिय बय वृथा बिताई ॥
ह्वै पंडित पढ़ि न्याय व्याकरण भरे घमंड महाई ।
सन्त चरण परसत सकुचत शठ जोरत धन बहुताई ॥

मन्त्री भयो महामदमातो चलत भुजानि फुलाई।
सन्तन ओर तकत कबहूं नहिं कालभीति बिसराई॥
धनिक भयो धन धरयो गाड़ि महि जानत रही सदाई।
कबहु न हरि हर जन के हेतहिं कौड़िहु कान लगाई॥
भयो राज सामन्त जगत जो हठि परलोक भुलाई।
करत सन्त अपकार जानि अस मीच नगीच न आई॥
कलि कुचालि कहं लों मुख बरणों देखतही बनि आई।
गुरू होन सब कोउ जग चाहत शिष्य होत सकुचाई॥
सोई बड़ो गुरू सबको सोइ ताकी सत्य बड़ाई।
जो रघुराज सदा सन्तन की करत चरण सेवकाई॥ ५॥

द्विजदेव

अयोध्या नरेश महाराजा मानसिंह का उपनाम द्विजदेव था। द्विजदेव अवध के तालुकेदारों के एसोसियेशन के सभापति थे। इनका देहान्त लगभग ५० वर्ष की अवस्था में, सं० १९३० में हुआ।

ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। कवियों और विद्वानों का ये बड़ा आदर करते थे। ये स्वयं एक अच्छे प्रतिभाशाली कवि थे। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नही आया। इनके उत्तराधिकारी महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रताप नारायण सिंह के० सी० आई० ई०, उपनाम ददुआ साहब ने "रसकुसुमाकर" नामक अलङ्कार और रस सम्बन्धी हिन्दी-कविता का एक बड़ा संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसमे द्विजदेव के बहुत-से छन्द मिलते है। उसमे से और कुछ अन्य कविता-संग्रहों मे से इनके थाड़े-से छन्द चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

जावक के भार पग परत धरा पै मन्द गन्ध भार कचन परी है छूटि अलकैं। "द्विजदेव" तैसियै विचित्र बरुनी के भार आधे आधे दृगन परी हैं अध पलकैं॥ ऐसी छवि देखि अंग अग की अपार बार बार लोल लोचन सु कौन के न ललकैं। पानिप के भारन संभारित न गात लङ्क लचि लचि जात कच भारन के हलकैं॥१॥

भूले भूले भौंर बन भांवरे भरैंगे चहूं फूल फूल किंशुक जके से रहि जाय हैं। "द्विजदेव" की सौं वह कूजनि बिसारि कूर कोकिल कलंकी ठौर ठौर पछताय हैं॥ आवत बसन्त के न ऐहैं जो पै स्याम तो पै बावरी! बलाय सों हमारेऊ उपाय हैं। पीहैं पहिले ही ते हलाहल मंगाय या कलानिधि की एकौ कला चलन न पाय हैं॥२॥

बांके संक हीने राते कञ्ज छवि छीने माते झुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कछू गनै न। "द्विवदेव" की सौं ऐसी बानक बनाइ बहु भांतिन बगारे चित चाह न चहूधा चैन। पेखि परे पात जो पै गातन उछाह भरे बार बार तातें तुम्हें बूझती कछूक बैन। एहो ब्रजराज मेरे प्रेमधन लूटिबे को बीरा खाइ आये कितै आपके अनोखे नैन॥३॥

कारो नभ कारी निसि कारियै डरागी घटा झूकन बहत पौन आनन्द को कन्द री। "द्विजदेव" सांवरी सलोनी सजी स्याम जू पै कीन्हों अभिसार लखि पावस आनन्द री॥ नागरी गुनागरी सु कैसे डरै रैनि डर जाके संग सोहैं ये सहायक अमन्द री। बाहन मनोरथ उमाहैं संगवारी सखी मैन मद सुभट मसाल मुखचन्द री॥४॥

काहू काहू भांति राति लागी ती पलक तहां सपने में आनि केलि रीति उन ठानी री। आप दुरे जाय मेरे नैननि मुदाय कछु हौंहूं बज-मारी ढूंढ़िबे को अकुलानी री॥ एरी मेरी आली या निराली करता की गति "द्विजदेव" नेकऊ न परत पिछानी री। जौलौं उठि आपनो पथिक पिय ढूंढ़ौं तौलौं हाय, इन आंखिन ते नीदई हेरानी री॥५॥

घहरि घहरि घन सघन चहूंधा घेरि छहरि छहरि विष बूंद बरसा-वै ना। "द्विजदेव" की सों अब चूक मत दांव परे पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना॥ फेरि ऐसो अवसर न ऐहै तेरे हाथ परे मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना। हौं तो बिन प्रान प्रान चहत तज्योई अब कत नभ चन्द्र तू आकाश चढ़ि धावै ना॥६॥

बोलि हारे कोकिल बुलाय हारे केकी गन सिखैं हारी सखी सब जुगत नई नई। "द्विजदेव" की सों लाज बैरिन कुसंग इन अंगिनिहीं

आपने अनीती इतनी ठई ॥ हाय इन कुंजन ते पलटि पधारे स्याम देखन न पाई वह सूरति सुधामई । आवन समैं में दुखदाइनि भई री लाज चलन समैं में चल पलन दगा दई ॥७॥

चित चाह अबूझ कहै कितने छवि छीनी गयन्दन की टटकी ।
कवि केते कहै निज बुद्धि उदै यह लीनी मरालन की मटकी ॥
"द्विजदेव जू" ऐसे कुतर्कन में सब की मति योंहीं फिरै भटकी ।
वह मन्द चलै किन भोरी भटू पग लाखन की अंखियां अंटकी ॥८॥

सोधे समीरन को सरदार मलिन्दन को मनसा फलदायक ।
किंशुक जालन को कलपद्रुम मानिनी बालनहूं को मनायक ॥
कन्त अनन्त अनन्त कलीन को दीनन के मन को सुखदायक ।
सांचे मनोभव राज को साज सु आवत आज इतै ऋतुनायक ॥९॥

रामदयाल नेवटिया

सेठ रामदयाल नेवटिया का जन्म कार्तिक शुक्ल १३ सं० १८८२ में, मंडावा (शेखावाटी) में हुआ । आपके पिता का नाम सेठ मनसाराम था । जन्म के चालीस दिन पीछे आप फतहपुर, जो मंडावा से सात कोस पर है, लाये गये । फतहपुर ही आपके परिवार की निवासभूमि है ।

बालकपन ही से विद्या की ओर आपकी अधिक रुचि थी । थोड़ी ही अवस्था में आप व्यापक कामों में दक्ष होगये । संवत् १८९६ में आपके पिता का देहान्त होगया । सं० १९०७ में आप अजमेर के सेठ प्रतापमलजी मेहता के व्यापार के प्रधान संचालक होकर पूना गये । पूना में व्यापारिक काम करते हुए भी आपने बड़े परिश्रम से हिन्दी, संस्कृत, गुजराती और उर्दू में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया । साधारण अंगरेजी भी आप समझ लेते थे ।

सं० १९१४ में आप अजमेर वापस गये और वहां से कुछ दिन बाद फतहपुर चले आये । तब से वहीं रहने लगे ।

आप बड़े विद्या-व्यसनी थे । पुस्तकों से आपका बड़ा प्रेम था ।

गीता का प्रतिदिन पाठ करते थे। आपके पुस्तकालय में हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकों का बहुत अच्छा संग्रह है।

आप बड़े मिलनसार, सुशील, विनयी, सदाचारी, उदार, न्यायप्रिय और शांत पुरुष थे। अभिमान तो आपको छू भी नहीं गया था। मारवाड़ी जाति के आप रत्न थे। आपके समान विद्वान् मारवाड़ी जाति में अभीतक कोई नहीं हुआ। आप समाज-सुधार के बड़े पक्षपाती थे। गुणियों का आदर आप बड़े प्रेम से करते थे।

मुझे आपके समीप रहने का कई वर्षो तक अवसर मिला था। जब कोई शास्त्रीय चर्चा छिड़ जाती थी तब आपके अगाध पांडित्य का चमत्कार देखकर मनमें बड़ा आनन्द उमड़ आता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आप मित्रो में से थे। राजा शिवप्रसाद से भी आपका पत्र-व्यवहार था।

बालकपन में आपकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी। आपके सद्व्यवहार, कर्त्तव्यपरायणता, सत्याचरण और धर्मनिष्ठा पर लक्ष्मी भी मोहित हो गई और अपने जीवन-काल ही में आप अपने वृहत् परिवार को करोड़ों की सम्पत्ति से सुखी देखकर स्वर्गवासी हुए।

आपका स्वास्थ्य बहुत सुन्दर था। सं० १९७० में आपने गङ्गोत्री और जमनोत्री की यात्रा की थी। सं० १९७४ के अंत में आप मथुरा आये। वहीं मेरा आपसे अन्तिम साक्षात्कार हुआ। आप चार बजे प्रातःकाल उठते शौच और स्नान से निवृत्त होकर पूजा पर बैठ जाते थे। पूजा-पाठ आपने अन्तिम समय तक नहीं छोड़ा। आप महीन से महीन अक्षर भी वृद्धावस्था में बिना चश्मे की सहायता के पढ़ लेते थे। अभी थोड़े ही दिन हुए, आश्विन अमावस्या, सं० १९७५ में आपने इस असार संसार को परित्याग किया।

आप हिन्दी के अच्छे कवि थे। आपके रचे हुए तीन ग्रन्थ हैं। तीनों छप चुके हैं। उनके नाम ये हैं—१—प्रेमांकुर २—बलभद्रविजय, ३—लक्ष्मणामङ्गल। कविता में आप अपना उपनाम कृष्णदास रखते

थे। नीचे हम आपकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं—

बीत रही सब आय तदपि बीती नहिं आशा।
अजहुं चहुं सुख भोग रोग भय बडा तमाशा॥
शिथिल हो गई देह बात पित कफ ने घेरा।
श्वेत केश संदेश समन का लाया नेरा॥
शक्ति-हीन इन्द्री भई, भक्ति लेश नहिं तनक मन।
तृष्णा कों तज रे अधम, भजत क्यों न राधारमन॥ १॥

मैं कीनों बहु दोष, एक भरोसे आपके।
तुमही करिहो रोष, तो पापी की कवनि गति॥ २॥

दूजो आदर ना करै, वाको कछू न दोस।
मैं तेरो तू ना सुनै, यह भारी अफसोस॥ ३॥

सिंधु होय जल बिन्दु, इन्दु सम होय दिवाकर।
अनल कमल को फूल, तूल सम होय धराधर॥
माहुर मधुप समान, भूप आता जिमि जानै।
शत्रु होय निज दास, लोक आज्ञा सब मानै॥
पाप होय हरजाप मम, को दुराय नहिं भू परै।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र जब, करुणानिधि किरपा करै॥ ४॥

माधव तुम बिन सब जग झूठो।
रवि, ससि, अनिल, अनल, जल थल में तुमरो ही तेज अनूठो॥
नन्दकिशोर और नहिं जांचूं राजी रहो चाहे रूठो।
मैं हूं अनन्य आपको सेवक "कृष्णदास" पै तूठो॥ ५॥

जग में हरि विन कोइ न संगाती।
वाको मत बिसरो दिन राती॥
पल पल आयु घटै नर तेरी ज्यों दीपक बिच बाती।
चेत चेत नर चेत चतुर हो गइ न लौब फिर आती॥
सब अपने स्वारथ के सङ्गी सुत बनिता अरु नाती।
"कृष्णदास" की आस मिटावें जनम मरन के साथी॥

लक्ष्मणसिंह

राजा लक्ष्मणसिंह यदुवंशी क्षत्रिय थे। जन्म-भूमि आगरा, जन्म-संवत् १८८३, मृत्यु-संवत् १९५३।

राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, बंगला और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। सन् १८५७वाले सिपाही विद्रोह में इन्होंने अंग्रेजों को बड़ी मदद पहुंचाई थी, इससे सन् १८७०के प्रथम दिल्ली-दरबार में इनको गवर्नमेंट ने राजा की पदवी दी। ये २० वर्ष तक ८०० रु० मासिक पर पहले दरजे के डिप्टी कलक्टर रहे। कांग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। उन्हीं की कृपा से इनकी विशेष उन्नति हुई।

यद्यपि डिप्टी कलक्टरी के कामों से इन्हें अवकाश बहुत कम मिलता था, तो भी हिन्दी की ओर इनका ऐसा प्रेम था कि जो समय बचता उसे ये उसी की सेवा में लगाते थे। गवर्नमेंट की बहुतसी सरकारी किताबों का हिन्दी में उल्था करने के सिवा इन्होंने शकुन्तला, मेघदूत और रघुवंश का अनुवाद भी किया है। मेघदूत का अनुवाद पद्य में और रघुवंश का अनुवाद गद्य में है। ये ही पुस्तकें हिन्दी-जगत में इनको अजर-अमर बनाये रहेंगी। इन पुस्तकों के अनुवाद में इन्होंने अपने पांडित्य का जो चमत्कार दिखाया है वह किसी साहित्य-प्रेमी से छिपा नहीं है। भारतवर्ष तथा योरोप के विद्वानों ने भी इनको हिन्दी का कवि माना है। इनके अनुवाद में यह विशेषता है कि पद्य की कौन कहे, गद्य में भी उर्दू, फारसी का एक शब्द नहीं आने पाया है। फिर भी एक-एक पद सरस, सुपाठ्य और सरलता से भरा हुआ है।

शकुन्तला और मेघदूत के अनुवाद में से इनकी कविता की कुछ छटा हम दिखलाते हैं—

शकुन्तला

कैसे भ्रमर चुम्बन करत।
नागकेसरि को सुग्रङ्कन रहित रहसिहि भरत॥

सिरस फूलन कान धरि बन युवति मन को हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत ॥
रुखन तर मुनि अन्न परयो है। शुककोटर तें यह जु गिरयो है॥
कहूं धरी चिक्कन सिल दीसें। इंगुदिफल जिन पै मुनि पीसें॥
रहे हरिन हिल ये मनुषन तें। नैन न चौंकत बोल सुनन तें॥
सोहति रेख नदी तट बाटा। बनी टपकि जल बल्कल पाटा॥
पवन झकोरति है जल कूला। बिटप किये जिन उज्जल मूला॥
नव पल्लव दीखत धुधराये। होम धुम्रां जिन ऊपर छाये॥
उपवन अग्र भूमि के माहीं। कटि के दाभ रहे जहं नाहीं॥
चरत फिरत निधरक मृगछौना। जिनके मन शंका नेकौ ना।२।
अधर रुचिर पल्लव नये, भुज कोमल जिमि डार।
अंगन में यौवन सुभग, लसत कुसुम उनहार॥ ३ ॥
तो मन की जानत नहीं, अहो मीत बेपीर।
पै मो मन को करत नित, मनमथ अधिक अधीर॥ ४ ॥
भानु मन्द कर देत, केवल गन्ध कमोदिनिहिं।
पै शशि मंडल स्वेत, होत प्रात के दरस तें॥ ५ ॥
कहुं दाभन तें मुख जाको छिओ जब तू दुहिता लखि पावत ही।
अपने कर तें तिन घावन पै तुही तेल हिंगोट लगावत ही॥
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहिं मूठ खवावत ही।
मृगछौना सो क्यों पग तेरे तजैं जिहि पूत लौं लाड़ लड़ावत ही॥ ६ ॥
प्रजा काजे राजा नित सुकृति पै उद्यत रहैं।
बड़े वेद ज्ञानी हित सहित पूजें सरसुती॥
उमा स्वामी शम्भू जगतपति नील्लोहित प्रभू।
छुटावें मोहूं कों विपति अति आवागवन सों॥ ७ ॥

मेघदूत

सुर युवती जुरि मिलि तहं आवें। पकरि तोहिं जल यन्त्र बनावें॥
रघसि रघसि हीरा कंकन सों। नीर झरावें तो अंगन सों॥

इन खिलवारन तें यदि तेरो । छुटकारो नहिं होय सबेरो ॥
श्रवन कठोर घोर तब कीजो । यों डरपाय उन्हें मग लीजो ॥१॥

तेरे हू आंसू सखा, देगी अवस बहाय।
सरस हृदय जन होत हैं, बहुधा मृदुल स्वभाय ॥ २ ॥
तू बिन बोलेहू बरसि, मेटत चातक प्यास।
सज्जन जन उत्तर यही, पुजवत याचक आस ॥ ३ ॥

गिरिधरदास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द्र का उपनाम गिरिधर-दास था। कविता में वे इसी नाम का प्रयोग करते थे। कहीं कहीं गिरधारी और गिरिधारन का प्रयोग भी मिलता है। इनका जन्म सं० १८९० में और मरण सं० १९१७ में हुआ। ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। इन्होंनें चालीस ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें जरासंधबध की विशेष प्रशंसा सुनी जाती है। यह महा-काव्य कहा जाता है। कुल २६ वर्ष ४ महीने की आयु में ४० ग्रन्थों की रचना बड़ी प्रतिभा का काम है। इनके ग्रन्थ प्राय: अप्रकाशित हैं। दो एक ग्रन्थों को बाबू हरिश्चन्द्र नें छपवाया था। और कई ग्रन्थों का अब कहीं पता भी नहीं चलता। इनके रचित ३८ ग्रन्थों के नाम ये हैं—

१—वाल्मीकि रामायण—पद्यानुवाद, २—गर्ग संहिता, ३—भाषा एकादशी की चौबीसों कथा, ४—एकादशी की कथा, ५—छन्दार्णव, ६—मत्स्य कथामृत, ७—कच्छप कथामृत, ८—नृसिंह कथामृत ९—बावन कथामृत, १०—परशुराम कथामृत, ११—रामकथामृत, १२—बलराम कथामृत, १३—बुद्ध कथामृत, १४—कल्कि कथामृत, १५—भाषा व्याकरण, १६—नीति, १७—जरासंधवध महाकाव्य, १८—नहुष नाटक, १९—भारती भूषण, २०—अद्भुत रामायण, २१—लक्ष्मी नखशिख, २२—रस रत्नाकर, २३—वार्ता संस्कृत २४—ककारादि सहस्र नाम, २५—गया यात्रा, २६—गयाष्टक, २७—द्वादश दल कमल, २८—स्तुति

पञ्चाशिका, २९—संकर्षणाष्टक, ३०—दनुजारिस्तोत्र, ३१—वाराह स्तोत्र, ३२—शिवस्तोत्र, ३३—श्रीगोपालस्तोत्र, ३४—भगवत्स्तोत्र, ३५—श्री रामस्तोत्र, ३६—श्रीराधास्तोत्र, ३७—रामाष्टक, ३८—कलि कालाष्टक ।

ये अपनी रचना में श्लेष और यमक की अच्छी बहार दिखाते थे। परन्तु नीति और शांतिरस की कविता इन्होंने बहुत सरल भाषा में लिखी है। हमने इनका कोई ग्रन्थ नहीं देखा। संग्रह-ग्रन्थों में कहीं-कहीं इनके रचे छन्द उद्धृत हैं। उन्हीं में से चुनकर कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं—

सब केसव केसव केसव के हित के गज सोहते शोभा अपार हैं।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सैलहिं सीस[1] प्रहार हैं॥
गिरिधारन धारन सों पद के जल धारन लै बसुधारन फार हैं।
अरि बारन बारन बारन पै सुर बारन बारन बारन बार हैं।१।

गुरुन को शिष्यन सुपात्र भूमिदेवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों। सुत को सन्यासिन को वर जिजमानन को सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों॥ सत्रुन को मित्रन कों पित्रन को जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों। गिरिधरदास दासै स्वामी को अर्थी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों॥ २॥

बातनि क्यों समुझावति हौ मोहिं मैं तुमरो गुन जानति राधे।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंज में रीति के कारन साधे॥
घूंघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे।
नेहु न गोयो रहै सखि लाज सो कैसे रहे जल जाल के बांधे॥३॥

धिक नरेस बिनु देस, देस धिक जहं न धरम रुचि।
रुचि धिक सत्यविहीन, सत्यधिक बिनु विचार सुचि॥
धिक विचारि बिनु समय, समय धिक बिना भजन के।
भजनहु धिक बिनु लगन, लगन धिक लालच मन के॥

मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु , बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति ।
धिक ज्ञान भगति बिनु भगत धिक , नहिं गिरिधर पर प्रेम अति ।४।

जाग गया तब सोना क्या रे ।
जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे ।।
ठाकुर से कर नेह आपना इंद्रिन के सुख होना क्या रे ।
जब वैराग्य ज्ञान उर आया तब चांदी औ सोना क्या रे ।।
दारा सुवन सदन में पड़ के भार सबों का ढोना क्या रे ।
हीरा हाथ अमोलक पाया कांच भाव में खोना क्या रे ।।
दाता जो मुख मांगा देवे तब कौड़ी भर दोना क्या रे ।
गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे ।।५।।

दोहे

धनहिं राखिये विपति हित , तिय राखिय धन त्यागि ।
तजिये गिरिधरदास दोउ , आतम के हित लागि ।। १ ।।
लोभ न कबहूं कीजिये , या में बिपति अपार ।
लोभी को विश्वास नहिं , करे कोऊ संसार ।। २ ।।
लोभी सरिस अवगुन नहीं , तप नहिं सत्य समान ।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम , विद्या सम धन आन ।। ३ ।।
सकल वस्तु संग्रह करै , आवै कोउ दिन काम ।
बखत परे पर ना मिलै , माटी खरचे दाम ।। ४ ।।
कारज करिय बिचारि कै , कर्म लिखी सो होय ।
पाछे उपजै ताप नहिं , निन्दा करै न कोय ।। ५ ।।
पुन्य करिय सो नहिं कहिय , पाप करिय परकास ।
कहिबे सों दोउ घटत है , बरनत गिरिधरदास ।। ६ ।।
पावक बैरी रोग रिन , सेसहु रखिये नाहिं ।
ए थोरे हूं बढ़हिं पुनि , महा जतन सो जाहिं ।। ७ ।।
अलस प्रमादी रागरमि , नीति न देखत जौन ।
उर सद असद बिबेक नहिं , अधम अवनिपति तौन ।। ८ ।।

मिल्योरहत निजप्राप्तिहित , दगा समय पर देत।
बन्धु अधम तेहि कहत हैं , जाको मुख पर हेत ॥ ९ ॥
रूपवती लज्जावती , सीलवती मृदु बैन।
तिय कुलीन उत्तम सोई , गरिमाधर गुनऐन ॥ १० ॥
अति चंचल नितकलह रुचि , पति सों नाहिं मिलाप।
सो अधमा तिय जानिये , पाइय पूरब पाप ॥ ११ ॥
जनक बचन निदरत निडर , बसत कुसंगति मांहि।
मूरख सो सुत अधम है , तेहि जनमें सुख नाहिं ॥ १२ ॥
सुख दुख अरु विग्रह विपति , यामें तजे न संग।
गिरिधरदास बखानिये , मित्र सोइ बर ढङ्ग ॥ १३ ॥
सुख में सङ्ग मिलि सुख करै , दुख में पाछो होय।
निज स्वारथ की मित्रता , मित्र अधम है सोय ॥ १४ ॥
आप करै उपकार अति , प्रति उपकार न चाह।
हियरो कोमल सन्त सम , सुहृद सोइ नरनाह ॥ १५ ॥
मन सों जग को भल चहै , हिय छल रहै न नेक।
सो सज्जन संसार में , जाके विमल विवेक ॥ १६ ॥
उद्यम कीजै जगत में , मिलै भाग्य अनुसार।
मोती मिलै कि संख कर , सागर गोता मार ॥ १७ ॥
बिन उद्यम नहिं पाइये , कर्म लिख्यो हू जौन।
बिनु जलपान न जाय है , प्यास गङ्ग-तट मौन ॥ १८ ॥
उद्यम में निद्रा नहीं , नहि सुख दारिद मांहि।
लोभी उर संतोष नहिं , धीर अबुध में नाहिं ॥ १९ ॥
सुख दरिद्र सों दूर है , जस दुरजन सों दूर।
पथ्य चलन सों दूर रुज , दूर सीतलहि सूर ॥ २० ॥
अति सरसत परसत उरज , उर लगि करत बिहार।
चिह्न सहित तन को करत , क्यों सखि हरि? नहि हार ॥ २१ ॥

गौनो करि गौनो चहत , पिय बिदेस बस काजु ।
सासु पासु जोहत खरी , आखि आंसु उर लाजु ॥ २२ ॥
पति देवत कहि नारि कहं , और आसरो नाहिं ।
सर्ग सिढ़ी जानहु यही , वेद पुरान कहाहिं ॥ २३ ॥

लछिराम

लछिराम का जन्म पौष शुक्ल १०, सं० १८९८ को स्थान अमोढ़ा, जिला बस्ती में हुआ था । इनके गाव से लगा हुआ एक "चरथी" गांव है । अमोढ़ा-नरेश ने पुत्र-जन्म के उत्सव में इनकी कविता से प्रसन्न होकर वह गांव सदा के लिए दे दिया, और रहने के लिए एक अच्छा मकान भी बनवा दिया । उसी में ये सपरिवार आनन्दपूर्वक रहते थे ।

१० वर्ष की अवस्था में लासाचक, जिला सुलतानपुर-निवासी ईश कवि के पास इन्होंने साहित्य पढ़ना आरम्भ किया । पांच वर्ष वहां पढ़कर सं० १९१४ में अवधनरेश महाराजा मानसिंह के पास चले गये और उन्ही से साहित्य का मर्म समझने लगे । इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी । इससे थोड़े ही समय में इन्होंने साहित्य में अच्छी जानकारी प्राप्त करली ।

महाराज मानसिंह इन्हें बहुत चाहते थे । उन्होंने इन्हें "कविराज" की पदवी दी थी । उन्हीं के कारण अवध के सब राजा-रईस इनका बड़ा सम्मान करते थे । कविताद्वारा इन्हें हाथी, घोड़ा, धन, वस्त्र, गांव आदि वस्तुएं समय-समय पर उपलब्ध होती रहती थी । इन्होने राजाओं की प्रशंसा में अनेक ग्रन्थों की रचना की । इनके रचे हुए ग्रन्थों के नाम ये हैं:—प्रताप रत्नाकर, प्रेम रत्नाकर, लक्ष्मीश्वर, रत्नाकर, राणेश्वर कल्पतरु, महेश्वर विलास, मुनीश्वर कल्पतरु, महेन्द्र भूषण, रघुवीर विलास, कमलानन्द कल्पतरु, मानसिंह जङ्गाष्टक, रामचन्द्र भूषण, सरजू लहरी, हनुमत शतक, राम रत्नाकर, नायिका-भेद । इनके प्रायः सब ग्रन्थ भारतजीवन प्रेस बनारस में छपे हैं ।

कविता तो इनकी ऊंचे दरजे की नहीं है। परन्तु सुनते हैं, कविता पढ़ने की इनमें विचित्र शक्ति थी। श्रोताओं के मन में ये शीघ्र ही प्रभाव जमा लेते थे।

सं० १९६१, भाद्रपद कृष्ण ११, को इन्होंने अयोध्या जी में शरीर छोड़ा।

इनके रचे कुछ छन्द हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

भानुवंश भूषण महीप रामचन्द्र वीर रावरो सुजस फैल्यो आगर उमङ्ग में। कवि लछिराम अभिराम दूनो शेषहूं सों चौगुनो चमकदार हिमगिरि गंग में॥ जाको भट घेरे तासों अधिक परे हैं और पंचगुनो हीराहार चमक प्रसंग मे। चन्द मिलि नौगुनो नछत्रन सों सौगुनो ह्वै सहस गुनो भो छीरसागर तरङ्ग में॥१॥

रावन बान महाबली और अदेव और देवनहूं दृग जोरयो।
तीनहूं लोकन के भट भूप उठाय थके सबको बल छोरयो॥
घोर कठोर चितै सहजै लछिराम अमी जस दीपन घोरयो।
राजकुमार सरोज-से हाथन सों गहि शंभु-सरासन तोरयो॥२॥

भरम गंवावै अरबेरी संग नीचन ते कंटकित बेल केतकीन पै गिरत है। परिहरि मालती सु माधवी सभासदनि अधम अरूसन के अंग अभिरत है॥ लछिराम सोभा सरवर में विलास हेरि मूरख मलिन्द मन पल ना थिरत है। रामचन्द्र चारु चरनाम्बुज बिसारि देश बन बन बेलिन बबूर में फिरत है॥३॥

सजल रहत आप औरन को देत ताप बदलत रूप और बसन बरेजे में। ता पर मयूरन के झुंड मतवाले साले मदन मरोरैं महा झरनि मरेजे में॥ कवि लछिराम रंग सांवरो सनेही पाय अरज न मानै हिय हरष हरेजे में। गरजि गरजि बिरहीन के बिदारें उर दरद न आवै धरे दामिनी करेजे में॥४॥

बदल्यो बसन सो जगत बदलोई करै आरस में होत ऐसो यामे कहा छल है। आप है हरा की कै छाए हो हरा को छाती भीतर झगा के

छाई छवि झलाझल है ।। लछिराम हौंहूं धाय रचिहौं बनक ऐसो आंखिन खवाये पान जात क्यों अमल है । परम सुजान मनरञ्जन हमारे कहा अञ्जन अधर में लगाये कौन फल है ।। ५ ।।

गोविन्द गिल्लाभाई

गोविन्द गिल्लाभाई का जन्म सिहोर रियासत भावनगर में श्रावण सुदी ११, सोमवार सं० १९०५ में हुआ था। इनके पिता का नाम गिल्लाभाई और माता का सावित्री बाई था। ये चौहान राजपूत थे। इनके पूर्वज मारवाड़ के पीपलोद नामक स्थान में रहते थे। वहां से वे आपस के झगड़े के कारण काठियावाड़ में जाकर बस गये। गोविन्दजी उसी कुल के रत्न थे। इन्हें बालकपन में विद्यालय की शिक्षा बहुत कम मिल सकी। इन्होंने अपने उत्कट परिश्रम से साहित्य विषयक अद्भुत ज्ञान उपार्जन किया था। बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी करने के पश्चात् अंत में पेंशन पाते थे। गुजराती साहित्य के ये अच्छे मर्मज्ञ और सुकवि थे। मातृभाषा गुजराती होने पर भी इन्होंने हिन्दी में अच्छे-अच्छे काव्य-ग्रंथों की रचना की थी। सं० १९२५ से इन्होंने कविता करनी शुरू की। हिन्दी में इन्होंने ३२ ग्रंथ लिखे थे। उनके नाम ये हैं—

	ग्रन्थ	रचना-काल	छन्द-संख्या
१	विवेक विलास	१९२५-१९७९	४००
२	लच्छन बत्तीसी	१९२६	३५
३	विष्णु विनय पचीसी	१९३७	२६
४	परब्रह्म पचीसी	,,	२६
५	प्रबोध पचीसी	१९३७	२६
६	सिखनख चंद्रिका	१९४१	१५४
७	राधा-रूप-मंजरी	,,	१०१
८	भूषण-मंजरी	१९४५	११७
९	श्रृंगार-षोड़शी	,,	६९

१०	भक्ति-कल्पद्रुम	१९४५	६५
११	प्रवीण-सागर	,,	४३७
१२	श्रीराधा मुख षोड़शी	१९५०	१७
१३	पयोधर पचीसी	१९५१	२६
१४	नैन-मंजरी	१९५३	१०५
१५	छवि-सरोजिनी	१९५४	७०
१६	प्रेम-पचीसी	,,	३१
१७	वक्रोक्ति-विनोद (सटीक)	,,	११७
१८	गोविन्द-ज्ञान-बावनी	१९६०	५७
१९	पावस-पयोनिधि	१९६२	११५
२०	शृङ्गार-सरोजिनी	१९६५	७७७
२१	साहित्य-चिंतामणि (प्र० भाग)	,,	१४००
२२	षटऋतु-वर्णन	१९६६	९५
२३	प्रारब्ध-पचासा	१९६६	५३
२४	समस्या-पूर्ति-प्रदीप	१९५०-६५	२२२
२५	श्लेष-चद्रिका (सटीक)	१९६७	१९०
२६	रत्नावली-रहस्य (सटीक)	१९७१	१५
२७	बोध-बत्तीसी	१९७३	३४
२८	शब्द-विभूषण	१९७४	२००
२९	गोविन्द हजारा (संग्रह)	१९७५	११०१
३०	अन्योक्ति-गोविन्द	१९७७	६०
३१	अलंकार-अम्बुधि (अपूर्ण)		
३२	प्रेम-प्रभाकर (संग्रह, अपूर्ण)		४१५ के लगभग

हमने इनके १४ ग्रन्थों का एक संग्रह (गोविन्द-ग्रन्थमाला) देखा है। उससे साहित्य पर इनका विशेष अधिकार जान पड़ता है। खेद है कि ८ जुलाई, १९२६ को इनका देहान्त होगया।

इनके कुछ छन्द यहां उद्धृत किये जाते हैं—

कोऊ तो कहत छवि सर में सरोज भयो सुखमा सुभग ताकी नोकी निरधार है । कोऊ तो कहत गोल आरसी अमोल ताकी आभा अभिराम प्रति सोहे सुखकार है ।। कोऊ तौ कहत चन्द अवनि में उदै भयो ऐसे मुख उपमा को कहत अपार है । "गोविन्द" सुकवि पर मेरे मन जानि पर्यो कनकलता में फूल लाग्यो आबदार है ।। १ ।।

सुधा को छिनाइ धरे अपने अधर बीच ताकी मधुराई लखि मिश्री भई मन्द है । षोड़श कला को काटि रदन ललित कला बत्तिस बनाई बैठी मंजु मसनंद है ।। पोषन की शक्ति पुनि बिमल बचन परी लोनी सब सम्पति यों राखे रचि फंद है । "गोविन्द" सुकवि तवे कालिमा कलंक धरि विचरत व्योम फरियाद हित चंद है ।। २ ।।

बेनी को बिलोकि व्याल पेट को घिसत सदा, मुख को बिलोकि इन्दु हीन कला करि है । काया को बिलोकि कलधौत परे पावक में स्त्रौन को निरखि सीप सागर मे परि है ।। दसन की दुति देखि दारिम दरार खात "गोविंद" गयंद गति देखि धूरि धरि है । ताहि तें कहत तोकों पेट तेरो ढांप प्यारी पेट न दिखाव कोऊ पेट मार मरि है ।। ३ ।।

बेर बेर पावक मे कञ्चन तपाय तऊ, रंचक ना रंग निज अंग को मिटावै है । चंदन सिलान पर घिसत अमित तऊ सुन्दर सुगन्ध चारों ओर सरसावै है ।। पेरत है कोल्हू मांहि ऊख को अधिक तऊ मंजुल मधुरताई नेक न नसावै है । "गोविन्द" कहत तैसे कष्ट काय पाय तऊ सुजन सुभाव नाहिं आप बदलावै है ।। ४ ।।

दहिबो शरीर अरु लहिबो परम पद चहिबो छनिक मांहि सिन्धु पार पाइबो । गहिबो गगन अरु बहिबो बयारि सङ्ग रहिबो रिपुन सङ्ग त्रास नाहिं लाइबो ।। साहिबो चपेट सिंह लहिबो भुजंग मनि कहिबो कथन अरु चातुर रिझाइबो । "गोविन्द" कहत सोई सुगम सकल पर कठिन कराल एक नेह को निभाइबो ।।५ ।।

लोभन तें यश अरु क्रोधन ते गुन पुनि कपट ते सत्यता के वृन्द बिनसात हैं । भूखन ते मरजाद व्यसन तें बित्त पुनि आपदा तें उर निज

धीरज नसात हैं ।। ममतों से ज्ञान अरु मद तें विनय पुनि चुगली तें सर्व महाबंस बिखरात है । "गोविंद" कहत तैसे जाने जिय माँहि हमें दीनता से दुनिया में माब मिट जात हैं ।। ६ ।।

सम्पति करन और दारिद दरन सदा, कष्ट के हरन भव तारन तरन हैं । भौन के भरन चारों फल के फरन महाताप त्रै हरन असरन के सरन हैं । भक्त उद्धरन और विघन हरन सदा जनम मरन महा दुःख के दरन हैं । "गोविंद" कहत ऐसे बारिज बरन वर मोद के करन मेरे प्रभु के चरन हैं ।। ७ ।।

कौमुदी-कुञ्ज

घनाक्षरी

भोजन ज्यों घृत बिन पंथ जैसे साथी बिन हाथी बिन दल जैसे दाम बिन बान है। राव रङ्क रानी बिन कूप जैसे पानी बिन कवि जैसे बानी बिन गर बिन तान है। रसरास रीति बिन मित्र ज्यों प्रतीति बिन ब्याह काज गीत बिन मान बिन दान है। रंग जैसे केसर बिन मुख जैसे बेसर बिन प्यारी बिन रैन ज्यों सुपारी बिन पान है।। १ ।।

विद्या बिन द्विज औ बगीचा बिन आमन को पानी बिन सावन सुहावन न जानी है। राजा बिन राजकाज राजनीति सोचे बिन पुन्य की बसीठी कहो कैसे धौं बखानी है। कहैं "जयदेव" बिन हित को हितू है जैसे साधु बिन सङ्गति कलंक की निसानी है। पानी बिन सर जैसे दान बिन कर जैसे सील बिन नर जैसे मोती बिन पानी है।। २ ।।

गुन बिन कमान जैसे गुरु बिन ज्ञान जैसे मान बिन दाम जैसे जल बिन सर है। कण्ठ बिन गीत जैसे हेत बिन प्रीत जैसे वेश्या बिन रीत जैसे फल बिन तर है। तार बिन यंत्र जैसे स्याने बिन मन्त्र जैसे नर बिन नारि जैसे पुत्र बिन घर है। बानी बिन कवि जैसे मन में विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिन पर है।। ३ ।।

चन्द्र बिन रजनी सरोज बिन सरवर वेग बिन तुरंग मतंग बिना मद को। बिना सुत सदन नितंबिनी सुपति बिन बिन धन धरम नृपति बिन पद को। बिन हरि भजन जगत सोहै जन कौन नोन बिन भोजन

विटप बिन छद को। "प्राणनाथ" सरस सभा न मोहै कवि बिन विद्या बिन बात न नगर बिन नद को ॥ ४ ॥

केते भये यादव सगर सुत केते भये जातहू न जाने ज्यों तरैया परभात की। बलि बेनु अंबरीष मानधाता प्रहलाद कहां लौं गनाश्रों कथा रावन ययात की ॥ तेऊ न बचन पाये काल कौतुकी के हाथ भांति-भांति सेना रची घने दुख घात की। चार-चार दिना को चाबउ चाहै करै कोऊ अंत लुटि जैहैं जैसे पूतरी बरात की ॥ ५ ॥

गो द्विज को पालें सन्त मारग में चालें निज शत्रु दल घालै रण में तें मन मोरैं ना। सुखद सजीले बीरता में गरबीले कुल एकहन ढीले हीनताई के निहोरैं ना ॥ जाको संग धारैं ताको पार निरवारैं दान दाया को संचारैं धर्म धारैं तौन छोरैं ना। युद्धन की पत्री सुनि मोद लहैं अत्री अति ऐसे सूर छत्री समता में और जोरैं ना ॥ ६ ॥

ऐंठे ऐंठे बोलैं अधिकार निज खोलै कहे काम को न डोलैं समझाय जब हारिये। द्विज कौन होते कुल चीकने न मोते इहि भांति भाषि सोते में मसाल एक बारिये ॥ तुरत जगाय ताके मुख में लगाय दीजे जनन भगाय छन एक लौ निहारिये। जानो महा खोटा चट पकरि कै झोंटा ताको ऐसे सूद सोंटा जोहि जूतन सुधारिये ॥ ७ ॥

न्याव नित सांचे "बलदेव" रंगराचे मामिला को खूब जांचे हाल बांचे ते बिसेखा मैं। रुचत न रारी उपकारी श्रुति भारी भाव वंश धन धारी कृतकारी रीति रेखा में ॥ जागो यश वेश त्यों बड़ाई देस-देस काहू पच्छ को ना पेश औ न लेश लोभ लेखा मैं। सम रङ्क भूप झगरे को करैं कूप तेई ईश्वर के रूप हैं अनूप पंच देखा गैं ॥ ८ ॥

भांड़न को भेंटे तिमि मेटे मरजाद दुष्ट लोभ के लपेटे बेटे काके बने काजी हैं। न्यात्र मुख देखा कियो रोखन की रेखा कियो लुच्चन में लेखा कियो कैसे मूढ़ माजी हैं ॥ लोक में न माल परलोक त्यों न पाल कछू पूछते न हाल ठये चाल जालसाजी हैं। देतो ताहि राजी करैं केतो कहो ना जी करैं चेतो दगाबाजी करैं ए तो पंच पाजी हैं ॥ ९ ॥

सुन्दर सुभग तन सुखद मुदित मन आनंद के घन धन छन हित साज हैं। दाया दानधारी "बलदेव" उपकारी जग भारी भीर टारी सुचि सील के समाज हैं॥ देसकाल जानै तिमि औषधि विधानैं सब ही को सनमानैं ठानै गुण सिरताज हैं। विसद विचारै त्यों अचारै श्री संचार चारु सेई सिद्ध भेई लघु तेई वैद्यराज हैं॥ १०॥

नारी नाहिं जानत अनारी कहे गारी देत तारी दै हंसत हैं हजारन को मारा मैं। झोली बीच गोली तौन गोली-सी लगत यह तोली कई बार गई प्राणन को पारा मैं॥ करनी यही है घर घरनी रिझैबे जोग बसु बैतरनी मिले हिये में बिचारा मैं। बैठे हैं बधिक से बिसारे बकरूप बनि ऐसे वैद्यराज को बहावै बरिधारा मैं॥ ११॥

आजु जो कहैं तो आठ मास में न लागे ठीक काल्हि जो कहैं तो मास सोरह चलावहीं। पांच दिन कहे पांच बरस बिताय देहिं पांच वर्ष कहैं तो पचास पहुंचावहीं॥ भाषत "प्रधान" जो वै ताहू पै न त्यागै द्वार आपन लजात फेर वाहू को लजावहीं। ऐसे सत्यभाषी सरदार हैं देवैया जहां काहे को पवैया तहां जीवत लौं पावहीं॥ १२॥

भाँड़न को भोज कलावंतन को कर्ण जैसे विश्वन को बेनु से उरोज रस लीबे को। बेड़िन के विक्रम औ रामजनी जयचंद चुगुल को चतुरभुज भारी मौज कीबे को॥ कहे "अवसेरी" मसखरन को मग जैसे चले विप-रीत धिरकार ऐसे जीबे को। सूम के रहत दुइ बातन की तंगी एक ईश्वर निमित्त औ कवीश्वर को दीबे को॥ १३॥

जगत के कारन करन चारौं बेदन के कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै। पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के समुद में जाय सोये सेज सेस करि कै॥ मदन जरायो औ संहारयो दृष्टि ही सों सृष्टि बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरबरि कै। विधि हरि हर बढ़ इनतें न कोऊ तेऊ खाट पै न सोवैं खटमलन सों डरि कै॥ १४॥

जानै राग रागिनी कवित्त रस दोहा छंद जप तप तेग त्याग एक-सी गतन का। "महबूब" उरझि न देखि सके मित्रन की चित्त हर भांति मैं

रिझैया नुकतन का ।। जासे जी कबूलै सो न भूलै, भूलें माफ करै साफ दिल आकिल लिखैया हरफन का । नेकी से न न्यारा रहै बदी से किनारा गहै ऐसा मिलै प्यारा तो गुजारा चलै मन का ।। १५ ।।

कूर भये कुंवर मजूर भये मालदार सूर भये गुपत असूर भये जबरे। दाता भये कृपन अदाता कहैं दाता हम धनी भये निधन निधन भये गबरे ।। सांचन की बात न पत्यात कोऊ जग मांझ राजदरबारन बुलैये लोग लबरे । भनत "प्रवीन" अब छीन भई हिम्मत सो कलियुग अदलि बदलि डारे सिगरे ।। १६ ।।

बारी औ खंगार नाऊ धीमर कुम्हार काछी खटिक दसौंधी ये हुजूर को सुहात हैं । कोल गोड़ गूजर अहीर तेली नीच सबै पास के रहे ते कहा ऊंचे भये जात हैं ।। "बुद्धिसेन" राजनि के निकट हमेस बसैं ,कूकर बिलार कहा गुण अधिकात हैं । दूरहि गयंद बांधे दूर गुनवान ठाड़े गज औ गुनी के कहा मोल घटि जात हैं ।। १७ ।।

मद के भिखारी मीन मांस के अहारी रहैं सदा अनाचारी चारी लिखते लिखावते । नारी कुल धाम की न प्यारी परनारी आग विद्या पढ़ि पढ़ि हू कुविद्या मति धावते ।। आंखिन को काजर कलम से चुराय लेत ऐसे काम करै नेकु शंकहु न आवते । जो पै सिंहबाहिनी निबाहिनी न होती "चंद" कायथ कलंकी काके द्वारे गति पावते ।। १८ ।।

सखी उरबसी-सी गरे पहिरे उरबसी-सी पिया उरबसी-सी छवि देखे दुख सरकि जात । कंचुकी कसी-सी बहु उपमा लसी-सी रूप सुन्दर धसी-सी परयंक पर थिरकि जात ।। कहै "हरचरन" रही चमक बतीसी प्यारी जामें लगी मीसी हिये सौतिन दरकि जात । भुजे में कसी-सी सिन्धु गंग ज्यों धंसी-सी जाके सीसी करिबे में सुधा सीसी-सी ढरकि जात ।। १९ ।।

कुन्द की कली-सी दंत पांति कौमुदी-सी दीसी बिच-बिच मीसा रेख अमी-सी गरकि जात । बीरी त्यों रची-सी बिरची-सी लखें तिरछी-सी रीसी आंखियां वै सफरी-सी फरकि जात ।। रस की नदी-सी

"दयानिधि" की नदी-सी थाह चकित अरी-सी रति डरी-सी सरकि जात। फन्द में फसी-सी भरि भुज में कसी-सी जाकी सीसी करिबे में सुधा सीसी-सी ढरकि जात ।। २० ।।

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहे राखिहो हमे तो शोभा रावरी बढ़ावेंगे। तजिहो हरषि कै तौ बिलग न मानै कछू जहां-जहां जैहैं तहां दूनों जस गावेंगे ।। सुरन चढ़ैंगे नर सिरनि चढ़ेंगे नित सुकवि "अनीस" हाथ हाथन बिकावेंगे ।। देस मे रहेंगे, परदेस मे रहेगे, काहू भेस में रहैगे तऊ रावरे कहावेंगे ।। २१ ।।

सुमन मै बास-जैसे सुमन में आवै कैसे ना कह्यो चहत सो तो हां कह्यो चहत है। सुरसरि सूरतनया मे सुरसति-जैसे बेद के बचन बांचे सांचे निबहत है ।। परवा को इन्दु की कला ज्यों रहे अबर मे पर वाको अच्छ परतच्छ ना लहत है। बुद्धि अनुमान के प्रमान परब्रह्म-जैसे ऐसे कटि छीन कवि "मोरन" कहत है ।। २२ ।।

लट की लरक पर भौंह की फरकपर नैन की ढरक पर भरि-भरि ढारिये। "हरिकेस" अमल कपोल विहंसन पर छाती उकसन पर निसक पसारिये ।। गहरौही गति पर गहरौही नाभि पर हौं न हटकति प्यारे नैसुक निहारिये। एक प्रानप्यारी जू की कटि लचकीली पर ढीली-ढीली नजर संभारे लाल डारिये ।। २३ ।।

आये सुख पावती न आये सुख पावती है हिय की न बात कछु "सेवक" जतावती। कहूं रहो कान्ह जू सुहागिन कहावती हैं चाहती मै यही और न बात बनावती ।। जाके सुख पाये सुख पावो तुम प्यारे लाल वाहू सुख दीजिये न या में भरमावती। जामै सुख पावो तुम सोई हम करें याते हमतो तिहारे सुख पाये सुख पावती ।। २४ ।।

खात है हरामदाम करत हराम काम घर घर तिनहीं के अपजस छावेंगे। दोजख मे जैहै तब काटि-काटि कीड़े खैहै खोपरी को गूद काग टोटनि उड़ावेंगे ।। कहे "करनेस" अबै घूसनि ते बाजि तजै रोजा औ

निमाज अंत जम कढ़ि लावेंगे। कब्रिन के मामले में करें जौन खामी तौन नमकहरामी मरे कफन न पावेंगे ॥ २५ ॥

उमड़ि घुमड़ि घन आवत अटान ओट छन घन जोति छटा छटकि छटकि जात। सोर करै चातक चकोर पिक चहूं ओर मोर ग्रीव मोरि-मोरि मटकि-मटकि जात॥ सावन लौं आवन सुनो है घनश्याम जू को आंगन लौ आय पाय पटकि-पटकि जात। हिये बिरहानल की तपनि अपार उर हार गजमोतिन के चटकि-चटकि जात॥ २६ ॥

ऊंचो कर करै ताहि ऊचो करतार करै ऊनी मन आनै दूनो होती हरकति है। ज्यों-ज्यों धन धरै संचै त्यों-त्यों विधि खरो खेंचै लाख भांति धरै कोटि भांति सरकति है॥ दौलत दूनी मे थिर काहू के न रही "क्षेम" पाछे नेकनामी बदनामी खरकति है। राजा होइ राइ होइ साइ उमराइ होइ जैसी होति नेति तैसी होति बरकति है ॥ २७ ॥

तारे भये कारे तेरे नैना रतनारे भये मोती भये सीरे तू न सीरी अजहूं भई। "छीत" कहै पीतमै चकैया मिली तू न मिली गैया तरु छूटी तेरी टेक न छूटी दई॥ अरुनई नई तेरी अरुनई नई भई चहचही बोली आली तू न बोली ऐ बई। मंद छवि भये चंद फूले अरविन्द बृन्द गई री विभावरी न रिस रावरी गई॥ २८ ॥

हाथी के दांत के खिलौना बनै भांति भांति बाघन की खाल तपी शिव मन भाई है। मृगन की खालन को ओढ़त है योगी यती छेरी की खाल थोरा पानी भर लाई है॥ साभर की खालन को बांधत सिपाही लोग गैड़ा की खाल राजा रायन सुहाई है। कहै कवि "दयाराम" राम के भजन बिन मानुष की खाल कछू काम नहि आई है॥२९॥

जस को सवाद जो पै सुनो कवि आनन सों रस को सवाद जो पै और को पिआइयें। जीभ को सवाद बुरो बोलिये न काहू कहू देह को सवाद जो निरोग देह पाइये॥ घर को सवाद घरनी को मन लिये रहै धन को सवाद सीस नीचे को नवाइये। कहै "द्विजराम" नर जानि कै अजान होत खैबे को सवाद जो पै और को खवाइये॥३०॥

कौसलकुमार सुकुमार अति मारहू ते आली घिरि आई जिन्हे सोभा त्रिभुवन की। फूल फुलवाई में चुनत दोऊ भाई "प्रेम" सखी लखि आई गहे लतिका द्रुमन की ॥ चरन लुनाई दृग देखे बनि आई जिन जीती कोमलाई औ ललाई पदुमन की। चलत सुभाई मेरो हियरा डराई हाय गड़ि मति जाय पाय पाखुरी सुमन की ॥३१॥

आजु आली माथे ते सुबेंदी गिरै बार-बार मुख पर मोतिन की लरी लरकनि है। धरत ही पग कील चूरे की निकसि जात जब तब गांठि जूरे हू की सरकति है ॥ जानि ना परत "प्रहलाद" परदेस प्रिय उससि उरोजन सों आंगी दरकति है। तनी तरकति कर चूरी चरकति अंग सारी सरकति आंख बांई फरकति है ॥३२॥

म्यान सों कलमदान करतें निकारि तामें स्याही जल विष मे बुझाई बार-बार है। चारु युक्ति जौहर जगावत सनेह संग अकिल अनेक तामें सिकिल सुढार है ॥ "जुगुल किशोर" चलै कागद धरा पै धाय धारै ना दया को नेकु लागे वारपार है। पाइ कै गंवार गाइ साफ करै साइति में मुनसी कसाई की कलम तरवार है ॥३३॥

बड़े बिभिचारी कुलकानि तजि डारी निज आतम बिसारी अघ ओघ के निकेत हे। जटा सीस धारें मीठे बचन उचारें न्यारे न्यारे पंथ पारें सुभ पन्थ पीठ देत है ॥ गावत कहानी पर वेद को न मानी ऐसे उमर बिहानी होत आये बार सेत हैं। कलि ठकुराई में बिराग की बड़ाई करै माई-माई कहिकै लुगाई करि लेत हैं ॥३४॥

जोर परे जोर जात भर परे भूमि जात भूमि जात योबन अनङ्ग रंग रस है। कहै "हेमनाथ" सुख सम्पति बिपति जात जात दुःखदारिद समूह रसबस है ॥ गढ़ गिरिजात गरुआई औ गरब जात जात सुख साहिबी समूह सरबस है। बाग कटि जात कुवां ताल पटि जात नद्दीनद घटि जात पै न जात जग जस है ॥३५॥

पौर के किंवार देत घरे सबै गारि देत साधुन को दोष देत प्रीति ना चहत है। मांगने को ज्वाब देत बात कहे रोय देत लेत देत भांज देत

ऐसे निबहत हैं ।। बागे हू के बद देत बारन की गांठ देत परदन की कांछ देत काम में रहत हैं । एते पै सबेई कहैं लाला कछु देत नाही लाला जू तो आठो याम देतई रहत है ।।३६।।

अगन बचाये शुभ चारो गन नाये अरु उक्ति उपजाय के बिमारे नाम हरि का । लोभ के अजान में सयान सब भूलि गये कीबे परे ऐसई अधम ऐसे अरि का ।। कहै "कवि" लोग हम दान की कहां लौं कहौं मांगे से न दियो जाय जासों द्वैक खरिका । सूम के कबित्त करि मन मे गलानि होत परै पछिताइबो छिनारि कैसो लरिका ।।३७।।

दाता घर होती तौ कदर तेरी जानी जाती आई है भले घर बधाई बजवावरी । खाने तहखानन में आनि के बसेरो लेहु होहु न उदास चित चौगुनो बढ़ावरी । खैहौं न खवैहौं मरि जैहौं तौ सिखाय जैहौं यहि पूत नातिन को आपनो सुभावरी । दमरी न दैहौ कबौ जाने में भिखारिन को सूम कहै सम्पति सों बैठी गीत गावरी ।।३८।।

राजन की नीति गई मीत की प्रतीति गई नारिनि की प्रीति गई जार जिय भायो है । शिष्यन को भाव गयो पंचन को न्याव गयो सांच को प्रभाव गयो झूठ ही सुहायो है ।। मेघन की वृष्टि गई भूमि सो तौ नष्ट भई सृष्टि पै सकल विपरीति दरसायो है । कीजिये सहाय हे कृपाकर गोबिन्द लाल कठिन कराल कलिकाल अब आयो है ।। ३९ ।।

पन्ना के पंड़ोर गढ़ झन्ना के झवैया झरि झारूदार झांसी के भवैया भानपुर के । कहै कवि "कुन्दन" कमायूं के कुम्हार भांड़ दाउद के दरजी दामामी दानपुर के ।। तेली तिलंगान के तबोली तेजगढ़ वाले भावज के भांगड़ सोनार सानपुर के । येते मिलि मारै जूती चुगुल चबाई शीश कालपी के कूंजड़े कसाई कानपुर के ।। ४० ।।

ह्वै कै महाराज हय हाथी पै चढ़े तो कहा जोपै बाहुबल निज प्रजनि रखायो ना । पढ़ि-पढ़ि पण्डित प्रवीण हूं भये तो कहा विनय विवेक युत जोपै ज्ञान गायो ना ।। "अम्बुज" कहत धन धनिक भयो तो कहा दान

करि जोपै निज हाथ जस छायो ना। गरजि-गरजि घन घोरनि कियो तो कहा चातक के चोंच में जो रंच नीर नायो ना ॥ ४१ ॥

जामें दू अधेली चार पावली दुअन्नी आठ तामें पुनि आना खी सोरह समात हैं। बत्तिस अधन्नी जामें चौंसठ पईसा होत एक सों अठाइस अधेला गुनमात हे। युग शत छप्पन छदाम तामे देखियत दमरी सु पांच शत बारह लखात हे। कठिन समैया कलिकाल को कुटिल दैया सलग रुपैया भैया कापै दियो जात हे ॥ ४२ ॥

दानी कोउ नाहि न गुलाबदानी पीकदानी गोंददानी धनी सोभा इन ही में लहे हैं। मानत गुनी को गुनही मे प्रकटत देखो याते गुनी जन मन सावधानी गहे हे। हयदान हेमदान राजदान भूमिदान सुकवि सुनाये औ पुरानन मे कहे हैं। अब तो कलमदान जुजदान जामदान खानदान पान-दान कहिबे को रहे हे ॥ ४३ ॥

चन्द्रमा पे दावा जिमि करत चकोरगन घनन पै दावा कै मयूर हरषात हे। भानु पर दावा कर विकसत कंजपुञ्ज स्वाति बुन्द दावा कर चातक चचात हे ॥ सुकवि "निहाल" जैसे करी के कपोलन पै अलिन अवलि करि नित मड़रात हे। ऐसे महराजन पै दावा कबिराजन को धूतन के द्वारे कहूं भूतन न जात है ॥ ४४ ॥

साह भाये सूमड़ा सु बादसाह हीन हद्द खग्गे खगरेटन दुसाला बेच खाई है। भोले भये भूपति कनौड़े धनवन्त सब मूरख महन्थ अन्ध देत ना दिखाई है। कायथ कपूत भये कूर रजपूत धूत बनिया बरूथ पेखि पुञ्ज पछिताई है। काके ढिग जाई काहि कबित सुनाई भाई अब कवि-ताई रही फजिहति ताई है ॥ ४५ ॥

सासु के बिलोके सिंहिनी-सी जमुहाई लेइ ससुर के देखे बाघिनी सी मुंह बावती। ननंद के देखे नागिनी-सी फुफकारे बैठि देवर के देखे डांकिनी-सी डरपावती ॥ भनत "प्रधान" मोछे जारती परोसिन की खसम के देखे खांव खांव करि धावती। करकसा कसाइनि कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती ॥ ४६ ॥

गृहिनि बियोग गृह त्यागिन विभूति दीन्हीं योगिन प्रमोद पुनर्वतन छलो गयो। ग्रहनि ग्रहेश कियो शनि को सुचित्त लघु व्यालनि स्वतंत्र सेस भारतें दलो गयो॥ "फेरन" फिरावत गुनीन गृह नीच द्वार गुनन-बिहीन घर बैठे ही भलो भयो। कौन-कौन बातें तेरी कहे एक आनन ते नाम चतुरानन पै चूकतै चलो गयो॥ ४७॥

बार-बार बैल को निपट ऊंचो नाद सुनि हुंकरत बाघ बिरझानो रस रेला में। "भूधर" भनत ताकी बास पाइ सोर करि कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में॥ फुंकरत मूषक को दूषक भुजङ्ग तासों जङ्ग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला में। आपस में पारषद कहत पुकारि कछु रारि-सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में॥ ४८॥

कंज वन मानि "मून" हंस गन आइ फिरे गंध बन भृङ्ग भीर भंग करि डारे तें। पाके फल जानि सुक पुञ्ज पछिताने आइ पाइ कै बसंत बात वृथा पात डारे तें॥ दूरि ते बिलोकि अरुनाई अति फूलन की अमिष अकार गीध बायस बिडारे ते। एरे तरु सेमर के सिफल तिहारे कहा आस दिये पञ्छिन निरास करि डारे तें॥४९॥

समै को न जानै सीख काहू की न मानै रारि कठिन को ठानै सो अजानै भई जाति है। पीछे पछितैहै घात ऐसी नहिं पैहै टेक तेरी रहि जैहै कहा टेढ़ी भई जाति है॥ "संगम" मनावै तोहिं हित की सिखावै सीखजा बिन न भावै भौन ताहीं सों रिसाति है। मोसों अठिलाति बिन काम को हठाति प्यारी तू तो इतराति उत राति बीती जाति है॥ ५०॥

काके गये बसन पलटि आये बसन सू मेरो कछु बस न रसन उर लागे हो। भौंहैं तिरछी है कवि "सुन्दर" सुजान सोहैं कछु अलसोहैं गोहें जाके रस पागे हो॥ परसौं में पांयहुते परसों मे पाय गहि परसौं मै पाय निसि जाके अनुरागे हो। कौन बनिता के हो जू कौन बनिताके हो सु कौन बनि ताकी बनिता के संग जागे हो॥ ५१॥

चोंथते चकोर चहुंओर जानि चन्दमुखी जौ न होती डरनि दसन दुति दम्पा की। लीलि जाते बरही बिलोकि बेनी बनिता की जौ न होती

गूथनि कुसुम सर कम्पा की ।। "पूखी" कवि कहै ढिग भौंहैं ना धनुष होती कीर कैसे छोड़ते अधर बिंब झम्पा की । दाख कैसो भौंरा झलकति जोति जोबन की चाटि जाते भौंरा जो न होती रङ्ग चम्पा की ।। ५२ ।।

सोये लोग घर के बगर के केवार खोलि जानि मन मांहि निज गई जुग जामिनी । चुप चाप चोरा चोरी चौंकति चकित चली पीतम के पास चित चाह भरी भामिनी । पहुंची सकेत के निकेत "संभु" सोभा देत ऐसी बन बीथिन बिराजि रहो कामिनी । चामीकर चोर जान्यो चपलता भौंर जान्यो चन्द्रमा चकोर जान्यो मोर जान्यो दामिनी ।। ५३ ।।

तन पर भार तीन तन पर भार तीन तन पर भारतीन तन पर भार है । पूजें देवदार तीन पूजें देवदार तीन पूजें देवदार तीन पूजें देवदार है । नीलकण्ठ दारुन दलेल खां तिहारा धाक नाकती न द्वार ते वै नाकती पहार है । आंधरै न कर गहे बहिरे न सङ्ग रहे बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार है ।। ५४ ।।

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूगी मैं । देवपूजा ठानी मै निवाज हू भुलानी तजे कलमा कुरान माडे गुनन कहूंगी मै । स्यामला सलोना मिरताज सिर कुल्ले दिये तेरे नेह दाग मै निदाग हो दहूंगी मैं । नन्द के कुमार कुरबान तांड़ी सूरत पै तांड नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूंगी मै ।। ५५ ।।

कोऊ कहै है कलंक कोऊ कहै सिन्धु पंक कोऊ कहै छाया है तमोगुन के भास की । कोऊ कहै मृगमद कोऊ कहै राहु रद कोऊ कहैं नीलगिरि आभा आसपास की ।। "भंजन" जू मेरे जान चन्द्रमा को छीलि विधि राधे को बनायो मुख सोभा के बिलास की । तादिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के वारपार दीखत है नीलिमा अकास की ।। ५६ ।।

मलयज गारा करें अंगर सिंगारा करें गहि कर डारा करें माल मुकतान की । आरती उतारा करें पंखा चौर ढारा करें छांहे बिसतारा करें बिसद बितान की ।। मुख सो निहारा करें दुख को बिसारा करें मनसा इसारा करें सारा अखियान की । मानिक प्रदीपन सों थारा

सजि ताराजू की आरती उतारा करैं दारा देवतान की ।। ५७ ।।

कैधौं दृग सागर के ग्रासपास स्यामताई ताही के ये ग्रंकुर उलहि दुति बाढ़े हैं ।। कैधों प्रेमक्यारी जुग ताके ये चहूधा रची नीलमनि सरनि की बारि दुख डाढ़े हैं ।। "मूरति" सुकवि तरुनी की बरुनी न होवै मेरे मन ग्रावै ये बिचार चित गाढ़े हैं । जेई जे निहारे मन तिनके पकरिबे को देखो इन नैनन हजार हाथ काढ़े हैं ।। ५८ ।।

एरे गुनी गुन पाइ चातुरी निपुन पाइ कीजिये न मैलो मन काहू जो कछू करी । बीरन बिराने द्वार गये को सुभाव यही मान अपमान काहू रे करी कि जू करी ।। कूर ग्रौ कविन्द चले जात हैं सभा के बीच तोसों तो हटकि "देवीदास पलटू" करी । दरवाजे गज ठाढ़े कूकरी सभा के मध्य कूकरी सो कूकरी ग्रौ तू करी सो तू करी ।। ५९ ।।

भोरहिं भुखात ह्वै हैं कन्द मूल खात ह्वै हैं दुति कुम्हलात ह्वै हैं मुख जलजात को । प्यादे पग जात ह्वै हैं मग मुरझात ह्वै हैं थकि जै हैं घाम लागे स्याम कृसगात को ।। "पंडित प्रवीन" कहै धर्म के धुरीन ऐसे मन में न माख्यो पीन राख्यो प्रन तात को । मात कहैं, कोमल कुमार सुकुमार मेरे छौना कहूं सोवत बिछौना करि पात को ।। ६० ।।

ग्राजु हौं गई ती संभु न्योते नन्दगांव तहां सांसति परी है रूपवती बनितान की । घेरि लियो तियनि तमासो करि मोहि लखै गहि-गहि गुलफ लुनाई तरवान की ।। एकै कल बोलि-बोलि ग्रौरन देखावैं रीझि रीझि कोमलाई ग्रौ ललाई मेरे पान की । घूंघुट उघारि एकै मुख देखि-देखि रहैं एकै लगी नापन बड़ाई ग्रंखियान की ।। ६१ ।।

नट को न धाम नपुंसक को काम नाहिं ऋणी को ग्रराम वाम वेश्या न सहेलरी । ज्वारी को न सोच मांसहारी को न दया होत कामी को न नातो गोत छाया ना सहेलरी ।। "देवीदास" बसुधा में बनिक न सुना साधु कूकर को धीरज न माया है सहेलरी । चोर को न यार बटमार को न प्रीति होत लाबर ना मीत होत सौत न सहेलरी ।। ६२ ।।

जैसी तेरी कटि है तू तैसा मान करि प्यारी जैसी गति तैसी मति

हिय तें बिसारिये। जैसी तेरी भौंह तैसे पंथ पै न दीजै पांव जैसे नैन तैसिये बड़ाई उर धारिये॥ जैसे तेरे ओठ तैसे नैन कीजिये न जैसे कुच तैसे बैन नाहिं मुखतें उचारिये। एरी पिक बैनी सुन, प्यारे मनमोहन सों जैसे तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिये॥ ६३॥

गिरि कीजे गोधन मयूर नवकुंजन को पसु कीजै महाराज नन्द के बगर को। नर कीजै तौन जौन राधे राधे नाम रटै, तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर को॥ इतने पै जोई कछु कीजिये कुंवर कान्ह, राखिये न आन फेर हठी के झगर को। गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज, तृण कीजै रावरेई गोकुल नगर को॥ ६४॥

बबुर बहर को बनाय बाग राखियत रूंधिबे को सोऊ सुतरु काटियत है। गारी देत नीच हरिचंदहू दधीचहू को आपने चना चबाय हाथ चाटियत है॥ आप महा पातकी हंसत हरिहरहु को आप है अभागी भूरि भागी डाटियत है। कलि की कलुष मन मलिन किये महत मसक की पांखुरी पयोधि पाटियत है॥ ६५॥

डुबकी लै उझकी परचो है केस आनन पै मानो ससिमंडल पै स्याम-घन घिरिगो। करन संवारि कै उघारि दीनों "मोतीराम" लोचन लोनाई वैसी पाई है न मिरगो॥ विप्र को बुलाइ मुसकाइ अधरानन में देन लगी दच्छिना तनिक चीर चिरिगो। गात की गोराई देखि भूली सुधि प्रोहित की लगी टकटकी टका गोमती में गिरिगो॥ ६६॥

सिंधु के सपूत सिंधुतनया के बंधु अरे बिरहीजरे हैं रे अमंद तेरे ताप तें। तू तो दोषी दोष हूं तें कालिमा कलंकी भयो धारे उर छाप रिषी गौतम के साप तें॥ "लाल" कहे हाल तेरो जाहिर जहान बीच बारुनि को बासी त्रासी राहु के प्रताप तें। बांधो गयो मथो गयो पीयो गयो खार भयो बापुरो समुद्र तो-से पूत ही के पाप तें॥ ६७॥

मूसे पर सांप राखे सांप पर मोर राखे बैल पर सिंह राखे वाके कहा भीति है। पूतनि को भूत राखे भूत को विभूत राखे छमुख को गजमुख यह बड़ी रीति है॥ काम पर बाम राखे विष को अमृत राखे आग पर

पानी राखे सोई जग जीति है । "देवीदास" देखो ज्ञानी संकर को सावधानी सब विधि लायक पै राखे राजनीति है ॥ ६८ ॥

कीरति को मूल एक रैन दिन दान देबो धरम को मूल एक सांच पहिचानिबो । बढ़िबे को मूल एक ऊंचो मन राखिबो है जानिबे को मूल एक भली बात मानिबो ॥ व्याधि मूल भोजन उपाधि मूल हांसी "देवा" दारिद को मूल एक आलस बखानिबो । हारिबे को मूल एक आतुरी है रन मांझ चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो ॥ ६९ ॥

कौन यह देस कौन काल कौन बैरी मेरो कौन मेरे हितू ताहि ढिग ते न टारिबो । केती निज आमद खरच केतो केतो बल तेहि उनमान बैन मुंह तें निकारिबो ॥ संपति के आवन को कौन मेरो साधन है ताहू को उपाव अरु दाव उर धारिबो । राजनीति राजन को प्रतिदिन "देवीदास" चारि घरी राति रहे इतनो बिचारिबो ॥ ७० ॥

पहले विवाद व्यवहार धन को न कीजै जांचिये न तापै आय मांगे ताहि दीजिये । मित्र के घरे में घरनी सों मिलि बैठिये न हंसिये न दूरि बैठि बात छोरि लीजिये ॥ कोऊ भेद पारें तो न भूलें "देवीदास" कहें मन की दुराइये न तातें भये खीजिये । प्रीति खोयो चाहिये तो कीजिये परे सों प्रीति प्रीति राख्यो चाहिये तो इतनो न कीजिये ॥ ७१ ॥

फूस नहीं फांस नहीं छप्पर पै घास न बंड़ेरी नहीं बांस तहां झींगुर झरा करैं । दिवार आरपार है सुराख लाख चार हैं त्यों कोटिन प्रमाण भूत भौन मां फिरा करैं ॥ मकरी के मेल है बिछौती तहां रेलपेल गिर-गिट के खेल देखि जियरा डरा करैं । गोजर गिरो है सांप बिच्छू सिगरो है नाथ ऐसे-ऐसे भौन हैं तो डेरा लै कहा करैं ॥ ७२ ॥

चंद की मरीचिकान तोरि बिथराय दीन्ह्यो कैधों हीरा फोरि कै कनूका धरि-धरि गये । कैधों काम-मंदिर की झांझरी बनाइ विधि, कैधों सोनजुही के पुहुप झरि-झरि गये ॥ कामिनि मनोरथ के आलवाल "सिवनाथ" मैन के मतंग माते बेलि चरि-चरि गये । अमल कपोलन पै दागि नहिं सीतला के डीठि गड़ि-गड़ि गई गाड़ परि-परि गये ॥ ७३ ॥

हेरी लाल तेरे ? सखी, ऐसी निधि पाई कहां ? हेरी खगयान ? कह्यो, हौं तो नहिं पाले हें । हेरी गिरधारी ? ह्वै हैं रामदल मांहि कहूं हेरी **घनश्याम** ? ह्वै हैं सीत सरसाले हे ।। हेरी सखी कृष्णचद्र ? चंद्र कहू कृष्ण होत ? **तब हंसि** राधे कही, मोर पच्छवारे हे । श्याम को दुराय चन्द्रावलि बहराय **बोली** मेरे कैसे आय हे जो तेरे पच्छवारे हे ? ।। ७४ ।।

सवैया

फूलन दे अब टेसू कदम्बन अम्बन मौरन **छावन** दे री ।
री मधुमत्त मधूपन पुजन कुंजन सोर मचावन दे री ।।
क्यों सहि है सुकुमारि "किशोर" अली कलकोकिल गावन दे री ।
आवत ही बनि है घर कन्तहिं बीर बसन्तहिं आवन दे री ।।१।।
कानन लौं अखियां ये तुम्हारी हथेरी हमारी कहां लगि फैलिहैं ।
मूंदे तऊ तुम देखति हो यह कोरै तिहारी कहां धौं सकेलिहैं ।।
कान्हर हू को सुभाव यहै उनको हम हाथन ही पर मेलिहैं ।
राधे जू मानो भलो कि बुरो अंखमूदनो साथ तिहारे न खेलिहै ।।२।।
अंबुज कंज से सोहत है अरु कंचन कुंभ थपे से धये हें ।
बारे खरे गदकारे महा बटपारे लसे अरु मैन छये हें ।।
ऊंचे उजागर नागर हे अरु पीय के चित्त के मित्त भये है ।
हे तो नये कुच ये सजनी पर जौलौं नए नहि तो लौं नये हें ।।३।।
खाय कै पान बिदोरत ओंठ हें बैठि सभा में बने अलबेला ।
धोती किनारी की सारी सी ओढ़त पेट बढ़ाय कियों जस थैला ।।
"वंशगोपाल" बखानत है सुनो भूप कहाय बने फिरे छैला !
सान करें बड़ी साहिबी की पर दान में देत न एक अधेला ।।४।।
होत ही प्रात जो घात करै नित पार परोसिन सों कल गाढ़ी ।
हाथ नचावत मूड़ खुजावति पौंरि खड़ी रिसि कोटिक बाढ़ी ।।
ऐसी बनी नखते सिखलौं "ब्रजचन्द" ज्यों क्रोध समुद्र तें काढ़ी ।
ईंट लिये बतराति भतार सों भामिनि भौन में भूत-सी ठाढ़ी ।।५।।

लोहे की जेहरि लोहे की तेहरि लोहे की पांव पयेजनि गाढ़ी।
नाक में कौड़ी औ कान में कौड़ी त्यों कौड़िन की गजरा गति बाढ़ी॥
रूप में वाको कहां लौं कहौं मनो नील के माठ में बोरि कै काढ़ी।
ईट लिये बतराति भतार सों भामिनि भौन में भूत-सी ठाढ़ी॥६॥
"भूप" कहै सुनियो सिगरे मिलि भिच्छुक बीच परौ जिन कोई।
कोई परौ तो निकोई करौ न निकोई करौ तौ रहौ चुप सोई॥
जानत हो बलि ब्राह्मन की गति भूलि कुपंथ भलो नहिं होई।
लेइ कोऊ अरु देइ कोऊ पर शुक्र ने आंखि अकारथ खोई॥७॥
राधिका माधव एक ही सेज पै धाइ लै सोई सुभाय सलोने।
पारे "महाकवि" कान्ह के मध्य में राधे कहै यह बात न होने॥
साँवरे सों मिलि ह्वै है न सांवरी बावरी बात सिखाई है कोने।
सोने को रंग कसौटी लगै पै कसौटी को रंग लगै नहिं सोने॥८॥
बात चली चलिबे की जहां फिर बात सुहानी न गात सुहानो।
भूषण साज सकै कहि को "महाराज" गयो छुटि लाज को बानो॥
दो कर मीड़ति है वनिता सुनि प्रीतम को परभात पयानो।
आपने जीवन को लखि अन्त सुआयु की रेख मिटावति मानो॥९॥
कोऊ न आयो उहां ते सखीरी जहां "मुरलीधर" प्राणपियारे।
याही अंदेसे में बैठी हुती उहि देस के धावन पौरि पुकारे॥
पाती दई धरि छाती लई दरकी अंगिया उर आनन्द भारे।
पूछन को पिय की कुसलात मनो हिय द्वार किवार उघारे॥१०॥
मंगल होत कहै "शिवराज" कहो केहि के दुख होत बिसेखो।
कौन सभा महं बैठि न सोहत को नहिं जानत चित्त परेखो॥
कौन निसा ससि को न उदोत भो का लखि कै बिरही दुख पेखो।
बांझक पूत बिना अंखियान कुहू निसि में ससि पूरण देखो॥११॥
जोग अजोग बिचारे बिना सिर सौंपत भार महा अति तापै।
गाड़र ऊंट किसान करै यह बात कहा कहि जात है कापै॥

"सिंह" जू काग सुहावन होइ तौ काहे को कोऊ मरालहिं थापै।
काम परे पछितांहिंगे वे जे गयंद को भार धरैं गदहा पै ॥१२॥
सासु रिसाति भकै ननदी सखि तू सिखवै सिख सीख के बैना।
दै ब्रजवास चबाव महा चहुँओर चलै उपहास की सैना॥
देखत सुन्दरी सांवरी मूरति लोक अलोक की लीक लखै ना।
कैसी करौं हटके न रहैं चलि जात तऊ लखि लालची नैना ॥१३॥
आके लगै गृह-काज तजै अरु मात-पिता हित तात न राखै।
"सागर" लीन ह्वै चाकर चाहकै धीरज हीन अधीन ह्वै भाखै॥
व्याकुल मीन ज्यों नेह नवीन में मानो दई बरछीन की साखै।
तीर लगै तरवारि लगै पै लगै जनि काहू से काहू की आंखै ॥१४॥
जाके लगै सोइ जानै व्यथा पर पीर में कोइ उपहास करै ना।
"सागर" जो चुभि जात है चित्त तौ कोटि उपाय करै पै टरै ना॥
नेकसी कंकरी जाके परै वह पीर के मारे सु धीर धरै ना।
कैसे परै कल ऐरी भटू जब आंखि में आंखि परै निकरै ना ॥१५॥
पेट पिराय तौ पीठहिं टोवत पीठ पिराय तौ पाय निहारै।
दै पुरिया पहले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग बिचारै॥
बीस रुपैया करैं कर फ़ीस न देत जवाब न त्यागत द्वारै।
भाखै "प्रधान" ये वैद्य कसाई ह्वै दैव न मारैं तो आपही मारैं ॥१६॥
सूल सुजाक छई लकवा ज्वर पीनस पील को घाव घनेरे।
और जलंदर हू परमेह कहै कवि "राम" कहां लगि हेरे॥
जाके बिलोकत ही ततकाल चहूंदिसि तें दुख आवत घेरे।
जापै दया करि हाथ गहै तिहि माथ गहैं जमराज सबेरे ॥१७॥
साल छः-सात की दाल दराय कै साहु कह्यो यह लेहु नई है।
फूंक दई लकड़ी बहुतेरिक सांझ ते आधिक रात लई है॥
खाय लियो अकुताय कै काचही चाकरी चूल्हे निहारि गई है।
खोय दियो मुजरा दरबार की दाल दधीच की हाड़ भई है ॥१८॥

घोड़ गिरयो घर बाहरहो महाराज कछू उठवावन पाऊं।
ऐंड़ो परो बिच पेंडोई मांझ चलै पग एक ना कैसे चलाऊं॥
होय कहांरन को जुपै आयसु डोली चढ़ाय यहां तक लाऊं।
जीन धरौं कि धरौं तुलसी मुख देउं लगाम कि राम कहाऊं॥१९॥
अर्थ है मूल भली तुक डार सु अच्छर पत्र को देखिकै जीजे।
छंद है फूल नवो रस हैं फल दान के बारिसों सींचिबो कीजे॥
"दान" कहै यों प्रवीनन सों कवि की कविता रस राखि कै पीजै।
कीरति के बिरवा कवि हैं इनको कबहूं कुम्हिलान न दीजे॥२०॥
ज्ञान घटै ठग चोर की संगति मान घटै परगेह के जाये।
पाप घटै कछु पुन्य किये अरु रोग घटै कछु औषध खाये॥
प्रीति घटै कछु मांगन तें अरु नीर घटै रितु ग्रीषम आये।
नारि-प्रसंग ते जोर घटै जम-त्रास घटै हरि के गुन गाये॥२१॥
ईट को बन्दन, नीम को चन्दन, नीच को नन्दन, बाम को घूंसा।
माते की गान, डफाली की तान, औ गूंगा को गान, कपूत को रूसा॥
रङ्क की रीझ, जुआरी की खीझ, अजान की प्रीत, जुवार को चूसा।
राजा को दूसरो, छेरी को तीसरो, रेंड को मूसरो, खासर खूसा॥२२॥
सांप सुशील, दयायुत नाहर, काक पवित्र औ सांचो जुआरी।
पावक सीतल, पाहन कोमल, रैन अमावस की उजियारी॥
कायर धीर सती गनिका, मतवारो कहा मतवारो अनारी।
"मोतियराम" बिचारि कहैं नहिं देखो सुनी नरनाह की यारी॥२३॥
व्याकुल काम सतावत मोहिं पिया बिन नीक न लागत कोई।
प्रीतम से सपने भई भेंट भलीबिधि सों लपटाय कै सोई॥
नैन उघारि पसारि कै देखौं तो चौंकि परी कतहूं नहिं कोई।
एरी सखी दुख कासों कहों मुसकाय हंसी हंसि कै फिरि रोई॥२४॥
पौढ़ी हुती पलंगा पर मैं निरि ज्ञानरु ध्यान पिया मन लाये।
लागि गई पलकें पल सों पल लागत ही पल में पिय आये॥

ज्योंही उठी उनके मिलिबे कहुं जागि परी पिय पास न पाये।
"मीरन" और तो सोय कै खोवत में सखि प्रीतम जागि गंवाये ॥२५॥

भात में लोन पहीति में पाथर डारि करैं सब छूति ही छूकर।
मांगेहूं सों परसें न कछू खल मैले महा मल को मनो सूकर॥
ब्यंजन या विधि के हैं रचे मुख सौंह किये मन आवत थूकर।
ये कबहूं नहिं दूबर होत रसोई के विप्र कसाई के कूकर ॥२६॥

दाम की दाल छदाम के चाउर घी अंगुरीन लै दूरि दिखायो।
टोनों सो नोन धर्यो कछु आनि सबै तरकारी को नाम गनायो॥
विप्र बुलाय पुरोहित को अपनी बिपती सब भांति सुनायो।
साहसी आज सराध कियो सो भलीविधि सों पुरखा फुसलायो ॥२७॥

बंधु विरोध करें सिगरो झगरो नित होत सुधारस चाटत।
मित्र करै करनी रिपु की धरनीधर देखि न न्याउ निपाटत॥
"राम" कहै विष होत सुधा घर नारि सती पति सों चित फाटत।
भा विधिना प्रतिकूल जबै तब ऊंट चढ़ै पर कूकर काटत ॥२८॥

माल भरे पर पथ्य लियो षटमास उपास कियो फिर ऐंठ्यो।
"माधो" कहै नित मैल छुड़ावत दांतन दीन्हे तुराय धौं कंठ्यो॥
कोऊ कहूंक जो देइ खवाइ तौ कै कर डारत सोच में पैठ्यो।
मूड़ घुटाय औ मूछ मुड़ाय त्यों फस्त खुलाय तुला चढ़ि बैठ्यो ॥२९॥

चींटि न चाटत मूसे न सूंघत बास ते माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में तब ते रहै हैजा परोसिन घेरे॥
माटिहू में कछु स्वाद मिलै इन्हें खाय सो ढूंढ़त हर्रे-बहेरे।
चौंकि पर्‍यो पितुलोक में बाप सो पूत के देखि सराधके पेरे ॥३०॥

आपु को बाहन बैल बली बनिताहू को बाहन सिंहहिं पेखि कै।
मूसे को बाहन है सुत एक सु दूजो मयूर के पच्छ बिसेखिकै॥
भूषन है कवि "चैन" फनिंद के बैर परे सब ते सब लेखिकै।
तीनहुं लोक के ईश गिरीश सुयोगी भये घर की गति देखिकै ॥३०॥

सूरज के रथ लागे रह्यो याके आगे भयो कई बार कन्हैया।
लोमस के लरिकाई के खेल के भूलि गयो जग को उपजैया॥
ऐसो तुरंग मंगाय के भूपति दान को काढ़्यो दरिद्र को छैया।
झुण्डन काक लगे फिरैं सग मनो यह काकभुशुंडि को भैया॥३२॥
गंग नहीं मुकता भरी मांग है चन्द्र नहीं यह उद्यत भाल है।
नील नहीं मखतूल को पुंज है शेष नहीं शिर बेनी विसाल है॥
भूति नहीं मलयागिरि है बिजया है नहीं बिरहा से बेहाल है।
एरे मनोज संभारि के मारियो ईश नहीं यह कोमल बाल है॥३३॥
पीनसवारो प्रबीन मिलै तौ कहां लौं सुगन्धी सुगन्ध सुंघावै।
कायर कोपि चढ़ै रन में तौ कहां लगि चारन चाव बढ़ावै॥
जैसे गुनी को मिलै निगुनी तो "पुखी" कहै क्योंकर ताहि रिझावै।
जैसे नपुंसक नाह मिलै तो कहां लगि नारि शृंगार बनावै॥३४॥
जौ सहजै सब काम करैं सहमैं त्यहि हेरि हिये कहलाकर।
ना तौ जवान की नोकैं बसै निरखे परैं औगुन के अति आकर॥
लागैं नहीं संग जागैं न नौकरी भागैं कहूं नृप को लखि सांकर।
चोर चटोर ये चूल्हे परैं यहि भांति चमार से चूतिया चाकर॥३५॥
सीस कहै परि पाय रहौं भुज यों कहै अङ्क तै जान न दीजै।
जीह कहै बतियाई कियौ क'गैं स्रोन कहै उनहीं की सुनीजै॥
नैन कहै छवि सिन्धु सुधारस को निसिबासर पान करीजै।
पायहुं प्रीतम चित्त न चैन यों भावतो एक कहा कहा कीजै॥३६॥
अम्बर बीच पयोधर देखि कै कौन को धीरज सो न गयो है।
"भंजन" जू नदिया यहि रूप की नाव नहीं रवि हू अथयो है॥
पंथिक रात बसो यहि देस भलो तुमको उपदेस दयो है।
या मग बीच लगै वह नीच जु पावक में जरि प्रेत भयो है॥३७॥
तुम नाम लिखावती ही हम नाम कहा कहो लीजिये जू।
अब नाव चले सिगरे जल में थल में न चले कहा कीजिये जू॥

कवि "किंचित" औसर जो अकनी सकती नहीं हां पर कीजिये जू।
हम ता अपनो बर पूजती हैं सपने नहि पीपर पूजिये जू ॥३८॥
खाने का भंग नहाने को गंग चढ़ै को तुरंग ओढ़ै को दुसाला।
धर्म धुरन्धर औ महिषी पति द्वार झुले गज यूथक हाला॥
पान पुरान सोहागिनि सुन्दरि गोद बिराजत सुन्दर बाला।
दो महं एक तो देहु कृपानिधि दो मृगनैनी कि दो मृगछाला ॥३९॥

छप्पय

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुजस न लीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू परकाज न कीनो॥
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू परपीर न जानी।
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी॥
मुच्छ नाहिं वे पुच्छ सम कवि "भरमी" उर आनिये।
नहि बचन लाज नहि दानगति तिहि मुख मुच्छ न जानिये ॥१॥
तिमिरलंग लई मोल चली बाबर के हलके।
रही हुमाऊं साथ गई अकबर के बलके॥
जहांगीर जस लियो पीठ को भार मिटायो।
साहजहां करि न्याव ताहि को मांड़ चटायो॥
बलरहित भई पौरुष थक्यो भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करिनी सोई लै दीन्हीं कविराज कर ॥२॥
मरै बैल गरियार मरै वह कट्टर टट्टू।
मरै हठीली नार मरै वह पुरुष निखट्टू॥
सेवक मरै सु तौन जौन कछु सर्म न सुज्झै।
स्वामी मर जु कौन जौन सेवा नहि बुज्झै॥
जजमान सूम मरि जाहि तो काहि सुमिरि दुख रोइये।
कवि "गड्डु" कहै मरि जाय सो जाहि सुने सुख सोइये ॥३॥
ससिकलंक रावन विरोध हनुमत्त सो बनचर।
कामधेनु ते पसू जाय चिन्तामनि पत्थर॥

अति रूपा तिय बांझ गुनी को निरधन कहिये।
अति समुद्र सो खार कमल बिच कण्टक लहिये॥
जाये जु व्यास खेवट्टिनी दुर्वासा आसन डिग्यो।
कवि "गीध" कहै सुनु रे गुनी कोउ न कृष्ण निर्मल गढ्यो॥४॥
हंसहिं गज चढि चल्यो करी पर सिंह बिरज्जै।
सिंहहिं सागर धर्यो सिंधु पर गिरि द्वै सज्जै॥
गिरिवर पर इक कमल कमल पर कोयल बोलै।
कोयल पर इक कीर कीर पर मृगहू डोलै॥
ता ऊपर सिसु नाग के निसुदिन फनिय धरे रहैं।
"कवि गड्डु" कहै गुनिजनन सों इस भार केतो सहै॥५॥
तिलक भाल बनमाल अधिक राजत रसाल छवि।
मोर मुकुट की लटक छुटक बरनत अटकत कवि॥
पीताम्बर फहराय मधुर मुसुकान कपोलन।
रच्यो रुचिर मुख पान तान गावत मृदु बोलन॥
रति कोटि काम अभिराम अति दुष्ट निकन्दन गिरिधरन।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द प्रभु जय जय जय असरन सरन॥६॥
चातुरानन सम बुद्धि बिदित जौं होय कोटि धर।
एक एक धर प्रतिन सीस जौं होय कोटि वर॥
सीस सीस प्रति बदन कोटि करतार बनावै।
एक एक मुख माहिं रसन फिर कोटि लगावै॥
रसन रसन प्रति सारदा कोटि बैठि बानी कहहिं।
महिजन अनाथ के नाथ की महिमा तबहुं न कहि सकहिं॥७॥
गई भूमि फिर मिलै बेलि फिर जमे जरे तें।
फल फूलन ते फले फूल फूलन्त झरे तें॥
"केसव" विद्या निकट निकट बिसरी फिर आवै।
बहुरि होय धन धर्म गई सम्पति फिर पावै॥

होइ जो सील सुसील मति जगत हेतु इमि गाइये।
प्रान गयो फिर मिलत पै पत न गई फिर पाइये ॥८॥

दोहे

प्रीतम नहीं बजार में, वहै बजार उजार।
प्रीतम मिले उजार में, वहै उजार बजार ॥ १ ॥
कहा करौं बैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छांह।
"अहमद" ढांक सुहावने, जहं पीतम गलबांह ॥ २ ॥
गमन समै पटुका गह्यो, छाड़न कह्यो सुजान।
प्रानपियारे प्रथम हीं, पटुका तजों कि प्रान ॥ ३ ॥
सरस कविन ये हृदय को, बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन ॥ ४ ॥
पिता नीर परसै नहीं, दूर रहै रवि यार।
ता अम्बुज में मूढ़ अलि, अरुझि परै अविचार ॥ ५ ॥
"व्यास" बड़ाई जगत की, कूकर की पहिचान।
प्यार करे मुख चाटई, बैर करे तन हानि ॥ ६ ॥
"व्यास" कनक औ कामिनी, ये है करुई बेलि।
बैरी मारै दांव दै, ये मारै हंसि खेलि ॥ ७ ॥
तन ताजी असवार मन, नयन पियादे साथ।
जोबन चलो सिकार को, बिरह बाज लै हाथ ॥ ८ ॥
तन कंचन को महल है, तामें राजा प्रान।
नयन झरोखा पलक चिक, देखै सकल जहान ॥ ९ ॥
डीठि डोरि सों मन कलस, काम कुआं में डारि।
ये नयना तुव नागरी, भरत प्रेमरस बारि ॥ १० ॥
"रज्जब" जाकी चाल सों, दिल न दुखाया जाय।
यहां खलक खिजमति करै, उत हैं खुसी खुदाय ॥ ११ ॥
वह बृन्दाबन सुखसदन, कुंज कदम की छांहि।
कनकमयी यह द्वारिका, ताकी रज सम नांहि ॥ १२ ॥

जस जाग्यो सब जगत में, भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दऊं, ततकाले सुधि होय ॥ १३ ॥
तब के नरपति वे रहे, रीझें तो कछु देयं।
अब के नरपति ये भये, रीझे औ लिखि लेयं ॥ १४ ॥
जो मेढ़ा पीछे हटै, केहरिया छपकन्त।
जो दुर्जन हंसि के मिलै, तबै बचैयो कन्त ॥ १५ ॥
दगाबाज की प्रीति यों, बोलत ही मुसकात।
जैसे मेंहदी पात मे, लाली लखी न जात ॥ १६ ॥
खेतीबारी बीनती, औ घोड़े की तंग।
अपने हाथ संवारिये, लाख होय कोउ संग ॥ १७ ॥
तन तलवारां तिलछियो, तिल-तिल ऊपर सीव।
आलां घावा ऊठसी, मत कर साज नकीव ॥ १८ ॥
ना हंस करके कर गहे, ना रिस करके केस।
जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेस ॥ १९ ॥
निकट रहे आदर घटै, दूरि रहे दुख होय।
"सम्मन" या संसार में, प्रीति करौ जनि कोय ॥ २० ॥
"सम्मन" चहु सुख देह की, तौ छोड़ो ये चारि।
चोरी चुगुली जामिनी, और पराई नारि ॥ २१ ॥
"सम्मन" मीठी बात सों, होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिबों, तेहि सीखो सब धूर ॥ २२ ॥
गोरे मुख पै तिल लसत, मैं जान्यो यह हेत।
रूप खजाने के मनो, हबसी चौकी देत ॥ २३ ॥
दन्तकथा वा दन्त की, और कही नहिं जात।
फूलझरी सी छुटत जब, हंसि-हंसि बोलत बात ॥ २४ ॥
लाल मांग पटिया नहीं, मार जगत को मार।
असित फरीं पै लै धरी, रकत भरी तरवार ॥ २५ ॥

करनी पार उतारिहै, "धरनी" कियो पुकार।
साकित बाह्मन नहिं भला, भक्ता भला चमार॥ २६॥
मांस अहारी जीयरा, सो पुनि कथै गियान।
नांगी ह्वै घूंघट करै, "धरनी" देखि लजान॥ २७॥
"पलटू" ऐना सन्त है, सब देखै तेहि मांहि।
टेढ़ सोझ मुंह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं॥ २८॥
"पलटू" ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग॥ २९॥
"पलटू" बाजी लाइहों, दोऊ विधि से राम।
जो मैं हारों राम को, जो जीतौं तो राम॥ ३०॥
जैसे काठ में अगिनि है, फूल में है ज्यों बास।
हरिजन मे हरि रहत है, ऐसे "पलटूदास"॥ ३१॥
दुष्ट मित्र सब एक है, ज्यों कंचन त्यों कांच।
"पलटू" ऐसे दास को, सपने लगै न आच॥ ३२॥
काम क्रोध जिनके नहीं, लगै न भूख पियास।
'पलटू' तिनके दरस सो, होत पाप को नास॥ ३३॥
खोजत-खोजत मरि गये, तीरथ वेद पुरान।
'पलटू' सूझत है नही, भेस में हैं भगवान॥ ३४॥
जिन देखा सो बावला, को अब कहै संदेस।
दीन दुनी दोउ भूलिया, 'पलटू' सो दरवेस॥ ३५॥
सुनि लो 'पलटू' भेद यह, हंसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान॥ ३६॥
मरते - मरते सब मरे, मरै न जाना कोय।
'पलटू' जो जियतै मरै, सहज परायन होय॥ ३७॥
'पलटू' पलक न भूलिये, इतना काम जरूर।
खाविंद कब गोहरावई, चाकर रहै हजूर॥ ३८॥

'पलटू' भेद न दीजिये , यह जग बुरी बलाय ।
लिहे कतरनी कांख में , करै मित्रता धाय ॥ ३९ ॥
'दरिया' सोता सकल जग , जानत नाहीं कोय ।
जागे में फिर जागना , जागा कहिये सोय ॥ ४० ॥
'बुल्ला' चल्ल सुनार दे , जित्थे गहना गढ़िये लाख ।
सूरत आपो आपनी , तू इको रूप ये आख ॥ ४१ ॥
धन जननी धन भूमि धन , धन नगरी धन देस ।
धन करनी धन सुकुल धन , जहां साधु परबेस ॥ ४२ ॥
स्वर्ग सात असमान पर , भटकत है मन मूढ़ ।
खालिक तो खोया नहीं , उसी महल में ढूंढ़ ॥ ४३ ॥
ज्ञान ध्यान तहवां नहीं , सहज सरूप अपार ।
जन 'गुलाल'दिल सों मिलो , सोई कंत हमार ॥ ४४ ॥
'भीखा' केवल एक है , किरतिम भयो अनन्त ।
एकै आतम सकल घट , यह गति जानहिं सन्त ॥ ४५ ॥
प्रीतम प्रीति लगाइकै , दूर देस मत जाव ।
बसो हमारी नागरी , हम मांगैं तुम खाव ॥ ४६ ॥
जो जन जाकी सरन है , सरन गहे को लाज ।
मीन धार सन्मुख चलै , बहे जात गजराज ॥ ४७ ॥
आप छके नैना छके , और छके सब गात ।
जा तन चितवत नैन भरि , रोम रोम छकि जात ॥ ४८ ॥
सांझ भई दिन अथवा , चकई दीन्हा रोय ।
चलो पिया उस देस को , जहां सांझ नहिं होय ॥ ४९ ॥
ब्रज समुद्र मथुरा कमल , वृन्दाबन मकरन्द ।
ब्रज-बनिता सब पुष्प हैं , मधुकर गोकुलचन्द ॥ ५० ॥
कदम कुंज ह्वै हौं कबै , श्री वृन्दाबन मांह ।
'ललित किसोरी' लाड़िले , बिहरेंगे तिहि छांह ॥ ५१ ॥

प्रीतम तुव गुन बेलरी , पसरी मो उर मांहि ।
नेह नीर सों नित बढ़ै , क्यों हूं सूखत नांहि ॥ ५२ ॥
कागद भीजत नयन जल , कर काँपत मसि लेत ।
पापी बिरहा मन बसत , बिथा लिखन नहिं देत ॥ ५३ ॥
बायस राहु भुजंग हर , लिखत तिया तत्काल ।
लिख-लिखपोंछतिफिरलिखति , कारन कौन जमाल ॥ ५४ ॥
पालक मेथी धानिया , सोवा चाहत यार ।
सकुची मुरी पियाज संग , गाजर अस व्यवहार ॥ ५५ ॥
कच्चौरी पिय ऐ सखी , पक्कौरी पिय नांहि ।
बराबरी कैसे करौं , पूरी परती नांहि ॥ ५६ ॥
अमिली बरसों हो रही , पीपर पास न जांउ ।
जामुनी भेद न पावही , तासों मै हठ लाउं ॥ ५७ ॥
नारंगी हौं पिय सों , यह अनारपन मोंहि ।
जो मै पीवै सेवती , सदा सदाफल होंहि ॥ ५८ ॥
तोता कत निसदिन रटौं , तूती निपट अजान ।
लाल कहै सो कीजिये , तज मैना की बान ॥ ५९ ॥
सूख छुहारा तन भयो , गिरी परै सब देह ।
किसमिस लिखूं संदेसरा , नौज लग्यो यह नेह ॥ ६० ॥
कर छुई बरटोई नही , तवा टोकनी नांहि ।
चौके गरुवे थारियां , रस न रसोई मांहि ॥ ६१ ॥
पान झरंते इमि कहे , सुन तरवर बनराय ।
अब के बिछुरे कब मिलें , दूर परेंगे जाय ॥ ६२ ॥
अलकावलि में देखिये , गोरे मुख की लोय ।
ज्यों रूखन में चांदनी , झिलमिल-झिलमिल होय ॥ ६३ ॥
गुंजा ऐसे हो रहे , मुकता बेसर बाल ।
नैन ओर के स्याम सब , अधर ओर के लाल ॥ ६४ ॥

आजु सखी हम इमि सुन्यो , पहु फाटक पिय गौन ।
पहु अरु हियरे होड़ है , पहले फाटै कौन ॥ ६५ ॥
आजु दुइज परदेस पिय , ससि निकस्यो इहि ओर ।
मम नयना अरु पीय के , आइ भये इक ठौर ॥ ६६ ॥
मख ग्रीषम पावस नयन , जिय महियां जड़काल ।
पिय बिन तन में तीन ऋतु , कबहुं न मिटति जमाल ॥ ६७ ॥
जब लगि हिय में धर सकी , तब लगि धरी जु धीर ।
"मीरन" अब कैसी बनी , अधिक पिरानी पीर ॥ ६८ ॥
तेरे बिरह समुद्र में , हौं जहाज भई कन्त ।
तन मन जोबन डूबियो , प्रेम ध्वजा फहरन्त ॥ ६९ ॥
बिरह दही पनघट गई , तपन न तऊ सिराय ।
भरै धरै सिर गागरी , रीती ह्वै ह्वै जाय ॥ ७० ॥
तुम बिन एती को करै , कृपा जु मेरे नाथ ।
मोहिं अकेली जानि कै , दुख राख्यो है साथ ॥ ७१ ॥
"मीरन" प्यारे इमि कह्यो , सपने देखौ मोहिं ।
तुम बिन नींद न आवई , कैसे देखौं तोहिं ॥ ७२ ॥
कीकर पाकर तार , जामन फलसा आमिला ।
सेव कदम कचनार , पीपल रत्ती तू न तज ॥ ७३ ॥
सारंग लै सारंग चली , सारंग पै गई दीठ ।
सारंग लै सारंग धरी , सारंग गई पईठ ॥ ७४ ॥
सारंग ने सारंग गह्यो , सारंग बोल्यो आय ।
जो सारंग सारंग कहै , सारंग मुख ते जाय ॥ ७५ ॥
बसे बनज बिकसे बनज , निकसे बनज निसङ्क ।
बनज माल बिन लगति है , वन जमाल हरि अङ्क ॥ ७६ ॥
का नहिं अबला करि सकै , का न समुद्र समाय ।
काह न पावक जरि सकै , काल काहि नहिं खाय ॥ ७७ ॥

सुत नहिं अबला करि सकै , मन न समुद्र समाय ।
धर्म न पावक में जरै , नाम काल नहिं खाय ॥ ७८ ॥
पान पुराना घी नया , औ कुलवन्ती नारि ।
चौथी पीठ तुरग की , सरग निसानि चारि ॥ ७९ ॥

बरवै

अधम उधारन नमवा सनि कर तोर ।
अधम काम की बटियां गहि मन मोर ॥ १ ॥
मन बच कायक निसिदिन अधमी काज ।
करत-करत मन भरिगा हो महाराज ॥ २ ॥
बिलगराम का बासी मीर जलील ।
तुम्हरि सरन गहि गाहे ये निधिशील ॥ ३ ॥
बालम हेरि हियरवा उपजै लाज ।
पाख मास मो जानि न परिहै गाज ॥ ४ ॥
पिय से अस मन मिलयू जस पय पानि ।
हसनि भई सवतिया लै बिलगानि ॥ ५ ॥
पीतम तुम कचलोहिया हम गज बेलि ।
सारस कै अस जोरिया फिरहुं अकेलि ॥ ६ ॥
पात-पात करि ढूढ्यो सब बन बीनि ।
किहि बन बस मो बालम पर्यो न चीनि ॥ ७ ॥
बालम सुरति बिसरिगै कहत संदेस ।
एकहू पथिक न बहुरा कस वह देस ॥ ८ ॥
पात-पात करि लूटिसि बिपिन समाज ।
राजनीति यह कसिकसि कस ऋतुराज ॥ ९ ॥
भावै चन्द न चन्दन सुरभि समीर ।
भावै सेज सुहावनि बालम तीर ॥१०॥
ऋतु कुसुमाकर आकर बिरह बिसेखि ।
ललित लतान मितान बितानिनि देखि ॥११॥

जेठ मास सखि सीतल बर कै छांह ।
करुई नींद सिहंनवां पिय के बांह ॥१२॥
पिय कर परस सरस अति चन्दन पंक ।
भावक रजनि सुहावन दरस मयंक ॥१३॥
यदि च भवति बुध मिलनं किं त्रिदिवेन ।
यदि च भवति शठ मिलनं किं निरयेन ॥१४॥
अहिरिन मन की गहिरिनि उतरु न देइ ।
नैना करै मथनिया मन मथि लेइ ॥१५॥
तपन तपै ऋतु ग्रीषम तीषन घाम ।
ताकि तरुनि तन सीतल सोवै काम ॥१६॥
छांह सघन तरु भावै बालम साथ ।
की प्रिय परम सरोवर सीतल पाथ ॥१७॥
हरिपद रुचिर तरनियां चढ़ मन मोर ।
तर भवसागर अबहीं दिन रहे थोर ॥१८॥
हलुवा अस हलुवनियां गलवा लाल ।
लाल-लाल द्वै जोबना नैन रसाल ॥१९॥
खेल फाग धन बहुरीं धूरि उड़ानि ।
गावौं बालम बरवा ऋतु नियरानि ॥२०॥
निसिदिन बसै हिरदवा मिलन न होय ।
जिमि पानी के चन्दहिं छुवै न कोय ॥२१॥
पात-पात करि ढूंढ्यो सब बन बीन ।
घटहि हुते मोरे बालम परे न चीन ॥२२॥
सूरज पै सिर ऊपर कतहुं न छांह ।
ठाढ़ी पथहिं निहारौं कत मेरो नाह ॥२३॥
बालम की सुधि आवत यह गति मोर ।
निकसि-निकसि जिय पैसत ज्यों चकडोर ॥२४॥

बिरहिन ढूंढन बन गई बाघ भिटान।
बघवा सूंघि न खायसि बिरहिन जान ॥२५॥
नित उठि जाहुं पनघटवा आवहुं रोय।
बालम की अनुहरवा दिखहुं न कोय ॥२६॥
बोली आनि कोइलिया मधुरी बानि।
महुवा रोवै ठाढ़ आम बौरान ॥२७॥
हरद बरन मोरी देहिआ पियहि बियोग।
कौन बिथा मोहिं बूझहु बाउर लोग ॥२८॥
भंइ न भेंट बालम सन भटकिहु आइ।
धाइ-धाइ बन खाय देखि नहिं जाइ ॥२९॥

पद

प्राणी तू हरि सों डर रे।
तूं क्यों रहा निडर रे॥

गाफिल मन रह चेत सबेरा, मन मे राख फिकर रे।
जो कुछ करे बेग तू कर ले, सिर पर काल जबर रे॥
काले-गोरे तन पर भूला, तन जायेगा जर रे।
यम के दूत पकरकर घीसे, काढ़े बहुत कसर रे॥
"ब्रजधूले" प्रभु-पद नौका चढ़ि, भौसागर को तर रे।
हर भज हर भज हर भज प्राणी, हरि को भजन तू कर रे॥१॥

हुआ है मस्त मन्सूरा चढ़ा सूली न छोड़ा हक़।
पुकारा इश्कबाजों को अहै मरना यही बरहक॥
जो बोले आशिकां यारां हमारे दिल में है जी शक।
अहै यह काम शूरों का लगाये पीर से अब तक॥
शमस तबरेज की सीफत जहां में जाहिरा अब तक।
निजामुद्दीन सुलताना सभी मेटे दुनी मे धक॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहे जीते रहे जब तक।
हुआ हाफिज दिवाना भी भये ऐसे नहीं हर एक॥

सुना है इश्क मजनूं का लगी लैला की रहती जक।
जलाकर खाक तन कीन्हा हुये वह भी उसी माफिक ॥
"दुलन" जन को दिया मुरशिद पियाला नाम का छकछक।
वही है शाह जगजीवन चमकता देखिये लकलक ॥२॥

गांठि परी पिय बोलै न हम से।
निसिदिन जागौं मै पिया की सेजियां, नैना अलसाने निकरिगै घर से।
जो मैं जनतिउं पिय रिसिअइहैं, काहेक प्रीति लगउतिउं अस ठग से॥
अपने पिया को मै बेगि मनैहौं, सौ तकसीर होत प्रभु जन से।
सुनि मृदु बचन पिया मुसुकाने, "पलटुदास" पिय मिले बड़े तप से ॥३॥

समझ-बूझ रन चढ़ना साधो खूब लड़ाई लड़ना है।
दम-दम कदम परै आगे को पीछे नाहिं पछरना है॥
तिल-तिल घाव लगै जो तन में खेती सेती क्या टरना है।
सबद खैंचि समसेर जेर करि उन पांचों को धरना है॥
काम क्रोध मद लोभ कैद करि मन कर ठौरै मरना है।
खड़ा रहै मैदान के ऊपर उनकी चोट सभारना है॥
आठ पहर असवार सुरत पर गाफिल नाहीं परना है।
सीस दिहा साहिब के ऊपर किसकी डर अब डरना है॥
"पलटू" बाना रुण्ड के ऊपर अब क्या दूसर करना है ॥४॥

कोइ सफा न देखा दिल का।
सांचा बना झिलमिल का॥
कोइ बिल्ली कोइ बगुला देखा पहिरे फकीरी खिलका।
बाहर मुख से ज्ञान छांटते भीतर कोरा छिलका॥
भजन करन में गजब आलसी जैसे थका मंजिल का।
औरन के पीसन में सुरमा जैसे बट्टा सिल का॥
पढ़े-लिखे कुछ ऐसेहि वैसे बड़ा घमंड अकिल का।
जहरी बचन यों मुंह से निकलें सांप निकलता बिल का॥

भजन बिना सब जप-तप झूठा झूठ तवक्का फजल का ।
क्या कहिये गुरु "देव" न पाया मरहम आंख के तिलका ॥ ५ ॥
काष्ठजिह्वा स्वामी (देव) ।

समझ-बूझ जिय में बन्दे क्या करना है क्या करता है ।
गुन का मालिक आपै बनता दोष राम पर धरता है ॥
अपना धरम छोड़ि औरों के ओछे धरम पकरता है ।
अजब नशे की ग़फ़लत आई साहिब को नहिं डरता है ॥
जिनके खातिर जान-माल से बहि-बहि के तू मरता है ।
वे क्या तेरे काम पड़ेंगे उनका लहना भरता है ॥
"देव" धरम चाहे सो करि ले आवागमन न टरता है ।
प्यारे केवल राम से तेरा मतलब सरता है ॥ ६ ॥
काष्ठजिह्वा स्वामी (देव) ।

हरि-जन हरि के हाथ बिकाने ।
भावै कहो जग धृग जीवन है भावै कहो बौराने ॥
जाति गंवाय अजाति कहाये साधु संगति ठहराने ।
मेटो दुख दारिद्र परानो जूठन खाय अघाने ॥
पांच जने परबल परपञ्ची उलटि परे बंदिखाने ।
छुटी मजूरी भये हजूरी साहिब के मनमाने ॥
निरमता निरबैर सभन तें निरसङ्का निरवाने ।
"धरनी" काम राम तें अपने चरन कमल लपटाने ॥ ७ ॥

अबके बार बकस मोरे साहिब तुम लायक सब जोग हे ।
गुनह बकसिहौ सब भ्रम नसिहौ रखिहौ अपने पास हे ॥
अछै बिरिछ तर लै बैठैहौ तहवां धूप न छांह हे ।
चांद न सुरुज दिवस नहिं तहवा नहिं निसु होत बिहान हे ॥
अमृतफल मुख चाखन दैहौ इतनी अरज हमार हे ।
भवसागर दुख दारुन मिटिहै छुटि जैहै कुल परिवार हे ॥
कहु "दरिया" यह मंगल मूला अनूप फूलै जहां फूल हे ॥ ८ ॥

रासरस गोविंद करत बिहार।
सूर-सुता के पुलिन रम्य महं फूले कुन्द मदार॥
अद्भुत सतदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार।
मलय पवन बह सारद पूरन चंद मधुप झंकार॥
सुघर राय संगीत कलानिधि मोहन नन्दकुमार।
ब्रज-भामिनि संग प्रमुदित नाचत तन चरचित घनसार॥
उभय स्वरूप सुभगता सीवां कोक कला सुखसार।
'कृष्णदास'' स्वामी गिरिधर पिय पहिरे रसमें हार॥ ९ ॥

कहा करौं बैकुण्ठहिं जाय।
जहं नहिं नंद जहं नहीं जसोदा जहं नहि गोपी ग्वाल न गाय॥
जहं नहिं जल जमुना को निरमल और नही कदमन की छाय।
"परमानन्द" प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय॥१०॥

संतन का सिकरी सन काम।
आवत-जात पनहियां टूटी बिसरि गयो हरि नाम॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम।
''कुम्भन दास'' लाल गिरिधर बिन और सबै बेकाम॥ ११ ॥

जसोदा कहा कहौं हौं बात।
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहिं जात॥
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस लै माखन दधि खात।
जो बरजौं तौं आंखि देखावै रंचहुं नाहिं सकात॥
और अटपटी कहं लौं बरनौं छुवत पानि सों गात।
"दास चतुर्भुज" गिरिधर गुन हौं कहत-कहत सकुचात॥ १२ ॥

भोर भये नव कुंज सदन ते आवत लाल गोवर्द्धनधारी।
लटपट पाग मरगजी माला सिथिल अंग डगमग गति न्यारी॥
बिन गुन माल बिराजत मुख पर नख छत द्वैज चंद अनुहारी।
"छीत स्वामि"जब चितये मों तन तब हौं निरखि गई बलिहारी॥१३॥

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबट न्हवावति ।
करि शृंगार बसन-भूषन सजि फूलन रचि पचि पाग बनावति ॥
छूटे बंद बागे अति सोभित बिच-बिच चोव अरगजा लावति ।
सूथन लाल फूंदना सोभित आजु कि छवि कछु कहति न आवति ॥
विविध कुसुम की माला उर धरि श्री कर मुरली बेत गहावति ।
लै दरपम देखें श्रीमुख को "गोविंद" प्रभु चरनन सिर नावति ॥१४॥

हम भक्तन के भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह ब्रत टरत न टारे ॥
भक्तन काज लाज हिय धरि के पांय पियादे धाये ।
जहं-जह भीर परी भक्तन को तहं-तहं होत सहाये ॥
जो भक्तन सों बैर करत है सो निज बैरी मेरो ।
देख विचार भक्तहित कारन हांकत हों रथ तेरो ॥
जीते जीत भक्त अपने की हारे हार बिचारों ।
"सूरस्याम" जो भक्त-विरोधी चक्र सुदर्सन मारों ॥ १५ ॥

सब सों न्यारे सब के प्यारे ऐसी रहनी रहिये ।
स्तुति अरु निन्दा छोड़ पराई जुगल जीभ जस गहिये ॥
दुख-सुख हानि-लाभ सम बर्तन आनि परे सो सहिये ।
"भगवतचरन" सरन गहि गोविंद मनवांछित सुख लहिये ॥ १६ ॥

सखी मेरे मन की को जानै ।
कासों कहू सुनै जो चित दै हित की बात बखानै ॥
ऐसो को है अन्तर्यामी तुरत पीर पहचानै ।
"नारायण" जो बीत रही है कब कोई सच मानै ॥ १७ ॥

पाछे ललिता आगे स्यामा प्यारी
ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात ।
कठिन कली बीन-बीन न्यारी करत
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुचत जिय गड़िबेऊ डरात ॥

दीरघ लता करसों निरुवारत पाछे
गहे डारि सीस नाहिं परसत पल्लव पात।
"सूरदास मदन मोहन" पिय की आधीनताई
देखत मेरे री नैन सिरात ॥१८॥

गौर श्याम बदनारविंद पर जिसको नीर मचलते देखा।
नैन बान मुसकान संग फंस फिर नहिं नेक संभलते देखा॥
"ललितकिशोरी" जुगल इश्क मे बहुतों का घर घलते देखा।
डूबा प्रेमसिंधु का कोई हमने नहीं उछलते देखा॥१९॥

अवधू रहिया हाटे-बाटे रूख-बिरखि की छाया।
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया॥२०॥

गोरखनाथ।

खुसरो की कविता

पहेलियां

श्याम बरन और दात अनेक, लचकत जैसी नारी।
दोनों हाथ से खुसरो खींचे, और केहू तू आरी॥

आरी।

पौन चलत वह देह बढ़ावे। जल पीवत वह जीव गंवावे।
है वह प्यारी सुन्दर नार। नार नहीं पर है वह नार॥

आग।

फारसी बोली आई ना। तुर्की ढूंढ़ी पाई ना॥
हिन्दी बोली आरसी आए। खुसरो कहे कोइ न बताए॥

आरसी।

बाला था जब सब को भाया। बढ़ा हुआ कछु काम न आया॥
खुसरा कह दिया इसका नांव। अर्थ करो या छोड़ो गांव॥

दिया।

नारी से तू नर भई औ श्याम बरन भइ सोय।
गली-गली कूकत फिरे कोइलो-कोइलो लोय॥

कोयला।

सावन-भादों बहुत चलत है माघ-पूस में थोरी।
अमीर खुसरो यों कहे तू बूझ पहेली मोरी॥

मोरी।

एक नार तरवर से उतरी सर पर वाके पांव।
ऐसी नार कुनार को मैं ना देखन जांव॥

मैना।

हाड़ की देही उज्जल रंग। लिपटा रहे नार के संग॥
चोरी की ना खून किया। वाका सिर क्यों काट लिया॥

नाखून।

बीसों का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया।

नाखून।

एक नार तरवर से उतरी मां सो जनम न पायो।
बाप को नांव जो वासो पूछ्यो आधो नांव बतायो॥
आधो नांव बतायो खुसरो कौन देस की बोली।
वाको नांव जो पूछ्यो मैंने अपने नांव न बोली॥

निबोली।

झिलमिल का कुंआ रतन की क्यारी।
बताओ तो बताओ नहिं दूंगी गारी॥

दर्पण।

आना-जाना उसका भाए। जिस घर जाये लकड़ी खाये।

आरी।

आवे तो अंधेरी लावे। जावे तो सब सुख ले जावे॥
क्या जानूं वह कैसा है। जैसा देखो वैसा है॥

आंख।

हाथ में लीजे। देखा कीजे। दर्पण।

एक राजा की अनोखी रानी। नीचे से वह पीवे पानी॥

दिया की बत्ती।

एक नार ने अचरज किया। सांप मार पिंजरे में दिया ॥
जों-जों सांप ताल को खाए। ताल सूख सांप मर जाए ॥

दिया की बत्ती।

एक अचम्भा देखो चल। सूखी लकड़ी लागे फल ॥
जो कोई इस फल को खावे। पेड़ छोड़ कहिं और न जावे ॥

बर्छी।

उज्जल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है, पर निपट पाप की खान ॥

बन्दूक।

एक तरुवर का फल है तर। पहले नारी पीछे नर ॥
वा फल की यह देखो चाल। बाहर खाल और भीतर बाल ॥

भुट्टा।

आगे-आगे बहिना आई पीछे-पीछे भइया।
दांत निकाले बाबा आए बुरका ओढ़े मइया ॥

भुट्टा।

श्यामबरन पीताम्बर कांधे मुरलीधर नहिं होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझे कोय ॥

भौंरा।

अचरज बंगला एक बनाया। ऊपर नींव तले घर छाया।
बांस न बल्ली बन्धन घने। कह खुसरो घर कैसे बने ॥

बए का घोंसला।

एक नार करतार बनाई। सूहा जोड़ा पहिन के आई ॥
हाथ लगाये वह शर्माय। या नारी को चतुर बनाय ॥

बीर बहूटी।

धूपों से वह पैदा होवे छांव देख मुर्झाये।
एरी सखी मैं तुझसे पूछूं हवा लगे मर जाये ॥

पसीना।

खेत में उपजे सब कोई खाय। घर में होवे घर खा जाय।

फूट।

एक नार कूए में रहे। वाका नीर खेत में बहे ॥
जो कोई वाके नीर को चाखे। फिर जीवन की आस न राखे ॥

तलवार।

डाला था सबके मन भाया। टांग उठाकर खेल बनाया।
कमर पकड़ के दिया ढकेल। अब होवे वह पूरा खेल ॥

झूला।

एक पुरुष बहुत गुन भरा। लेटा जागै सोवे खड़ा ॥
उलटा होकर डाले बेल। यह देखो करतार का खेल ॥

चरखा।

नई की ढीली पुरानी की तङ्ग।
बूझो तो बूझो नहीं चलो मेरे सङ्ग ॥

चिलम।

चालीस मन की नार रखावे, सूखी जैसे तीली।
कहने को पर्दे की बीबी,पर वह रंग रंगीली ॥

चिलम।

मिला रहे तो नर रहे, अलग होय तो नार।
सोने का-सा रङ्ग है,कोइ चतुरा करे विचार ॥

चना।

दानाई से दांत उस पै लगाता नहीं कोई।
सब उसको भुनाते हैं पै खाता नहीं कोई ॥

रुपया।

जब काटो तब ही बढ़े, बिन काटे कुम्हिलाय।
ऐसी अद्‌भुत नार का, अन्त न पायो जाय ॥

दीपशिखा।

एक पुरुष का अचरज लेखा। मोती फलती आंखों देखा ॥

जहां से उपजे वहाँ समाय। जो फल गिरे सो जल-जल जाय॥

फुआरा।

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गांठ औरत ने खोली॥

ताला।

आदि कटे से सबको पारे। मध्य कटे से सबको मारे॥
अन्त कटे से सबको मीठा। खुसरू वाको आंखों दीठा॥

काजल।

जल कर उपजे जल में रहे। आंखों देखा खुसरू कहे॥

काजल।

चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग-अलग पक जाय इकट्ठा॥

चाक।

पानी में निसदिन रहे, जाके हाड़ न मास।
काम करे तरवार का, फिर पानी में बास॥

कुम्हार का डोर।

एक कहानी में कहूं, तू सुन ले मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया, बांध गले में सूत॥

गुड्डी।

सर पर जाली पेट से खाली। पसली देख एक-एक निराली॥

मोढ़ा।

मुकरियां

बरस-बरस वह देस में आवे। मुंह से मुंह लगा रस प्यावे॥
वा खातिर में खरचे दाम। ऐ सखी साजन ना सखी आम॥
कस के छाती पकड़े रहे। मुंह से बोले बात न कहे॥
ऐसा है कामिन का रंगिया। ऐ सखी साजन ना सखी अंगिया॥
पड़ी थी मैं अचानक चढ़ आयो। जब उतरयो तो पसीनो आयो॥

सहम गई नहिं सकी पुकार । ऐ सखी साजन ना सखी बुखार ॥
रात समय वह मेरे आवे । भोर भए वह घर उठ जावे ॥
यह अचरज है सब से न्यारा । ऐ सखी साजन ना सखी तारा ॥
मद भर जोर हमें दिखलावे । मुफत मरे छाती चढ़ आवे ॥
छूट गया सब पूजा-जप । ऐ सखी साजन ना सखी तप ॥
नंगे पांव फिरन नहिं देत । पांव से मिट्टी लगन नहिं देत ॥
पाव का चूमा लेत निपूता । ऐ सखी साजन ना सखि जूता ॥
न्हाय धोय सेज मेरी आयो । ले चूमा मुंह मुंहहिं लगायो ॥
इतनि बात पै थुक्कम थुक्का । ऐ सखी साजन ना सखि हुक्का ॥
सारी रैन मोरे संग जागा । भोर भये तब बिछुड़न लागा ॥
वाके बिछुड़त फाटे हिया । ऐ सखी साजन ना सखि दिया ॥
वह आवे तब शादी होय । उस बिन दूजा और न कोय ॥
मीठे लागें वाके बोल । ऐ सखी साजन ना सखि ढोल ॥
जब मांगूं तब जल भर लावे । मेरे मन की तपन बुझावे ॥
मन का भारा तन का छोटा । ऐ सखी साजन ना सखी लोटा ॥
जब मेरे मन्दिर में आवे । सोते मुझको आन जगावे ॥
पढ़त फिरत वह बिरह के अच्छर । ऐ सखी साजन ना सखी मच्छर ॥
बेर बेर सोवतहिं जगावे । ना जागूं तो काटे खावे ॥
ब्याकुल हुई में हक्की-बक्की । ऐ सखी साजन ना सखी मक्खी ॥

दो सखुना हिन्दी

प्रश्न	उत्तर
रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों	फेरा न था
अनार क्यों न चक्खा, वजीर क्यों न रक्खा	दाना न था
गोस्त क्यों न खाया ? डोम क्यों न गाया ?	गला न था
राजा प्यासा क्यों ? गदहा उदासा क्यों ?	लोटा न था
ढोलकी क्यों न बाजी ? दही क्यों न जमी ?	मढ़ी न थी

प्रश्न	उत्तर
सितार क्यों न बजा ? औरत क्यों न नहाई ?	परदा न था
घर क्यों अंधियारा ? फकीर क्यों बिगड़ा ?	दिया न था

ढकोसले

भादो पक्की पीपली, झड़-झड़ पड़े कपास ।
बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नंगा ही सो रहूं ॥ १ ॥
कोठी भरी कुल्हाड़ियां, तू हरीरा करके पी ।
बहुत ताउल है तो छप्पर से मुंह पोंछ ॥ २ ॥
पीपल पकी पपोलियां, झड़-झड़ परे हैं बेर ।
सर में लगा खटाक से, वाह बे तेरी मिठास ॥ ३ ॥
भैंस चढ़ी बबूल पर, और लप-लप गूलर खाय ।
दुम उठाकर देखा तो पूरनमासी के तीन दिन ॥ ४ ॥
गोरी के नैना ऐसे बड़े जैसे बैल के सींग ॥ ५ ॥
खीर पकाई जतन से, और चरखा दिया जला ।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा ॥
लापानी पिला ॥ ६ ॥

दूसरों की पहेलियां

हाथी हाथ हथिनियां कांधे । चले जात हैं बकुचा बांधे ॥
गज और गजी ।

आधा नर आधा मृगराज । जुद्ध बिआहे आवै काज ॥
आधा टूटि पेट मां रहै । बासू केरि खगिनियां कहै ॥
नरसिंहा ।

लम्बी-चौड़ी आंगुरि चारि । दुहू ओर तें डारेनि फारि ।
जीव न होय जीविका गहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
कंघी ।

भीतर गूदर ऊपर नांगि । पानी पियै परारा मांगि ॥
तिहि की लिखी करारी रहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
दवात ।

अगहन पैठ चइत के प्याट । तेहि पर पंडित करैं झप्याट ॥
है नेरे पइहौ ना हेरे । पंडित कहैं बिगहपुर केरे ॥

कचौरी ।

जल मे रहै झूठ नहि भाखै, बसै सु नगर मंझार ।
मच्छ कच्छ दादुर नहीं, पडित करौ विचार ॥

घड़ी ।

स्याम बरन पर हरि नहीं, जटा धरे नहि ईस ।
ना जानू पिया कौन है, पंक लगाये सीस ॥

कसेरू ।

सीस जटा पोथी गहे, सेत बसन गल माँहि ।
जोगी जंगम है नहीं, ब्राह्मन पंडित नाहि ॥

लहसुन ।

स्याम बरन पीताम्बर कांधे, मुरलीधर नहि होय ।
बिन मुरली बहु नाद करत है, बिरला बूझे कोय ॥

भौंरा ।

सिर पर सोहै गंगजल, मुण्डमाल गल माहि ।
बाहन वाको बृषभ है, शिव कहिये कै नाहि ॥

रहंट ।

देखो एक अनोखी नारी । गुन उसमे एक सबसे भारी ।
पढ़ी नहीं अरु अचरज आवै । मरना जीना तुरत बतावै ॥

नाड़ी ।

फाटचो पेट दरिद्री नाम, उत्तम घर में वाको ठाम ।
श्री को अनुज विष्णु को सारो, पंडित होय सो अर्थ विचारो ॥

शङ्ख ।

नर के पेट जो नारी बसै । पकड़ हिलाये खिल-खिल हंसै ।
पेट फाड़ जो नारी गिरी । मोको लागी प्यारी खरी ॥

गिरी ।

चहूं ओर फिर आई । जिन देखी तिन खाई ॥
खाई ।

एक नारि वह है बहुरङ्गी । घर से बाहर निकसे नंगी ॥
उस नारी का यही सिंगार । सिर पर नथुनी मुह पर बार ॥
तलवार ।

आधा भक्तन मुख बसै । आधा गुनियन साथ ।
वाहि पसारी देत हैं । पुड़ी बांधि कै हाथ ॥
हरताल ।

पहेली

सुनरी सहेली ! मेरी पहेली , बाबल घर में रही अलबेली ।
माता पिता ने लाड़ से पाला . समझा मुझे उस घरका उजाला ॥
एक बहन थी एक बहनेली ॥१॥
योंही बहुत दिन गुड़िया खेली , कभी अकेली दुकेली ।
जिससे कहा चल तमाशा दिखला, उसने उठाकर गोदी मे लेली ॥२॥
कुछ-कुछ मोहे समझ जो आई , एक जा ठहरी मोरी सगाई ।
आवन लागे बाम्हन नाई , कोई ले रुपया कोई ले धेली ॥३॥
ब्याह का मेरे समां जब आया , तेल चढ़ाया मढ़ा छवाया ।
सालू सूहा सभी पिन्हाया , मेहदी से रंग दिये हाथ हथेली ॥४॥
सासरे के लोग आये जो मेरे , ढोल दमामे बजे घनेरे ।
सुभ घड़ी सुभ दिन हुए जो फेरे , सैयां ने मोहे हाथ मे ले ली ॥५॥
आये बराती सब रस रंग के , लोग कुटुम के सब हंस-हसके ।
चावत ये यही घर से निकसे , और के घर मे जाय धकेली ॥६॥
ले के चली थी साथ जब अपने , रोवन लागे फिर सब अपने ।
कहा कि तू नहिं बस की अपने , जा बच्ची! तेरा दाताही बेली ॥७॥
सखी ! पिया के साथ गई मैं , ऐसे गई फिर वहीं रही मै ।
किससे कहूं दुख हाय ! दई मैं , सैयां ने मोरी बाहे गहेली ॥८॥

सास जो चाहे सोही सुनावे , ननंद भी बैठी बातें बनावे ।
क्या है! करूं कुछ बन नहिं आवे , जैसी पड़ी में वैसी ही झेली ॥ ९ ॥
जिया बियाकुल रोवत अखियां , कहां गईं सब संग की सखियां ।
शौक रंग गुड़िया ताक पै रखियां , न वो घर है न वो हवेली ॥१०॥
बहादुर शाह "ज़फ़र" (दिल्ली के अन्तिम बादशाह)

खेती की कहावतें

१ अग्निकोन जब बहै समीरा । पड़े काल दुख सहै शरीरा ।
२ उत्तर से जल फूहीं पड़ें । मूस सांप दोनों अवतरें ॥
पच्छिम समया नीको जानो । आगे बहै तुषार प्रमानो ॥
जो कहुं बहै ईसान को कोना । आवै विस्वा दो-दो दूना ॥
जो कहु हवा अकाशै जाय । पड़े न बंद काल पड़ जाय ॥
३ सावन सूखे धान, भादौं सूखे गेहूं ।
४ अद्रा बरसे पुनर्वस जाय । दीन अान कोऊ न खाय ॥
५ पानी बरसे आधा पूस । आधा गेहूं आधा भूस ॥
६ सावन सूखा स्यारी । भादों सूखा उन्हारी ॥
७ सावन पहिली चौथ में , जो मेघा बरसाय ।
तो भाखें यों भड्डुरी , साख सवाई जाय ॥
८ हथिया पूंछ डोलावे । घर बैठे गेहूं आवे ॥
९ हथिया बरसे चित्रा मड़राय । घर बैठ किसान रिरियाय ॥
१० कर्क बुवावे काकरी , सिंह अबोनो जाय ।
ऐसा बोले भड्डुरी , कीड़ा फिर-फिर खाय ॥
११ जो कहुं मघा में बरसै जल । सब नाजों में होगा फल ॥
१२ चित्रा गेहूं स्वाती भूसा । अनुराधा मे नाज न भूसा ॥
१३ जो कहुं बरसै पूस । आधा गेहूं आधा भूस ॥
१४ अद्रा रेंट पुनरबस पाती । लगै चिरैया दिया न बाती ॥
१५ चटका मघा न चटका उत्तर । दूध भात में परगा मूसर ॥

१६ मघा, भुम्मि अघा।

१७ मघा न मारे पूर्वा सवारे। उत्तर भर खेत निहारे॥

१८ जब जेठ चले पुरवाई। तब सावन धूल उड़ाई॥

१९ आये मेख, हरी न देख। आये मेघ, हरी-हरी देख॥

२० चैत में हुई फसल तैयार। काट दांय घर लाओ यार॥
बेर किये होवे नुकसान। बेर में नाहीं भला किसान॥

२१ गेहूं जौ सब पछिवा पावे। तब जल्दी से दावा जावे॥

२२ दो दिन पछिवां छ: पुरवाई। गेहूं जौ को लेव दंवाई॥
ताके बाद ओसावे सोई। भूसा दाना अलगे होई॥

२३ चना अधपका जौ पका काटे। गेहूं बाली लटका काटे॥

२४ सात स्वाती धान उपाट।

२५ लगी बसन्त, ऊख पकन्त।

२६ भादों मास तीज अंधियारी। मेह न बरसे खेत बहारी॥
न बरसे न गरजे, न चमके अधरात।
तुम पिय जावो मालवा, हम जायें गुजरात॥

२७ काहे पंडित पढ़-पढ़ मरो। पूस अमावस की सुधि करो॥
मूल बिसाखा पूरबाखाड़। झूरा जान लो बहरे ठाड़॥

२८ ढोकी बोले जाय अकास। देशी ठहरें उड़े अकास॥

२९ लालपियर जब होय अकास। तब नाहीं बरसा की आस॥

३० चमकै पश्चिम उत्तर ओर। नित जानो पानी है जोर॥

३१ चीत के बरसे तीन जाय। मोथ मास उखार॥

३२ न होय करम लिख पूरा। पर न टरै खेत का घूरा॥

३३ छिन पुरवैया छिन पछियाव। छिन-छिन बहै बबूला बाव॥
बादल ऊपर बादल धावै। तब भड्डर पानी बरसावै॥

३४ पूरबा बादल पच्छिम जाय। वासे वृष्टि अधिक बरसाय॥
जो पच्छिम से पूरब जाय। वर्षा बहुत न्यून हो जाय॥

३५ जब निकले लंका का राय। धेनु दूध न बेलो जाय॥

३६ हस्त के बरसे तीन होय, शाली शक्कर मास।
हस्त के बरसे तीन जांय, तिल कोदो कपास॥

३७ जो बरसे स्वाति। चरखा चलै न बोले तांत॥

३८ माघ महावट पूस बिनौरा। फागुन बरसे न खोरा॥

३९ शशि ऊगत और मंगल, पूस अमावस होय।
दुगुना तिगुना चौगुना, नाज महँगो होय॥

४० वायु चलेगी पच्छिमा। मांड कहां से चखना॥
वायु चलै जो उत्तरा। मांड पिवेंगे कुत्तरा॥
वायु चलेगी दखिना। डोला पानी लखना॥
वायु चलेगी पुरवा। पियो मांड का कुरवा॥

४१ बुद्ध वृहस्पति दो भले, शुक्र न भले बखान।
रवि मंगल बौनी करै, द्वार न आवै धान॥

४२ नैऋत भूम बूंद ना परै। राजा परजा भूखों मरै॥

४३ पछिवां आई बादली, रांड कुसुम्बी जाव।
वह बरसै यह घर करै, उन को यही स्वभाव॥

४४ पुरवाई कहर चले, रांड मूंड से न्हाय।
वह लै आवै बादली, यह कोऊ लै जाय॥

४५ बिन भादों के बरसे। बिन माता के परसे॥

४६ ढेले पर जब चील बोलै। गली-गली में पानी डोलै॥

४७ माघमास जो पड़े न शीत। महंगा नाज जानियो मीत॥

४८ धनुष पड़ै बांगली। मेह सांझ या साकली॥

४९ रात में बोले काकुला, दिन में बोले स्याल।
तो यों भाखे भड्डरी, निश्चय पड़ै अकाल॥

५० दूर गुड़सा दूर पानी, नियर गुड़सा नियर पानी।

५१ कातिक अमावस देखै जोसी। मंगल शनी भौम को होसी॥
स्वाती नक्षत्र और पुष्पयोग। काल पड़े और नासैं लोग॥

५२ सावन बदी एकादशी, बादल ऊगे सूर।
तो बतावै भड्डली, घर पर बाजै तूर॥
५३ सर्व तपै जो रोहिनी, सर्व तपै जो मूल।
पड़वा तपै जो जेठ की, उपजै सातो फूल॥
५४ सोम शुक्र शनीचरी, पूस अमावस होग।
घर-घर होय बधावरी, बुरा न माने कोय॥
५५ पूस उजेली सप्तमी, अष्टमी नौमी गाज।
मेघ होय तो जान लो, अब शुभ होइ है काज॥
५६ पुष्य पुनरबस ना भरे ताल। सो फिर भरिहै अगली साल॥
५७ वायु चले ईशान। तो खाना खाय किसान॥
५८ पवन चले पुरवाई। बादल काट लगाई॥
५९ पूस मासकी सप्तमी, जो पानी नहिं देव।
आरद्रा बरष सही, जल थल एक करेव॥
६० पूस अंधेरी सप्तमी, भिन-भिन बादल होय।
सावन सुदी पूनो, बरषा अच्छी होय॥
६१ पूस बदी दशमी दिवस, बादल चमके बीज।
तो बरषे भरे भादौं, साधो खेलो तीज॥
६२ पांच मंगल होवे फागुनो, पूस पांच शनि होय।
काल पड़े कह भड्डरी, बीज बोओ मति कोय॥
६३ पुरवाई बहुतै बहै, विधवा पान चबाय।
वे ले आवें नीर को, वे काहू संग जांय॥
६४ सावन शुक्ला सप्तमी, चन्दा छिटिक करै।
के जल देखे कूप में, कि कामिनि शीश धरै॥
सावन शुक्ला सप्तमी, उगत जो देखे भान।
या जल मिलि है कूप में, या गङ्गा अस्नान॥
६५ प्रथम बयार पूरब की लीजै। ऊंचे आन महाजर कीजै।
पच्छिम ब्यार चलै मरदाना। सींचो खेती आय किसाना॥

६६ सावन पहिली पंचमी, जोर की चलै बयार।
तुम जाना पिय मालवा, हम जावें पितुसार॥

६७ सावन शुक्ला सत्तमी, उभरे निकले भान।
हम जायें पिति माइके, तुम कर लो गुजरान॥

६८ अद्रा भरना रोहणी, मघा उत्तरा तीन।
आन मंगल आंधी चले, तब लों बरसा छीन॥

६९ अद्रा तो बरसे नही, मृगशिरा पौन न जोय।
भाषै एसा भड्डुरी, बरसा बूंद न होय॥

७० कृष्ण असाढ़ी प्रतिपदा, जो उत्तर गरजन्त।
शास्त्री शास्त्री यों भखें, निश्चय काल पड़न्त॥

७१ धूर असाढ़ो बिज्जुली चमक निरन्तर जोय।
सोम सुक्र और गुरु परै, भारी बरसा होय॥

७२ धुर असाढ़ की अष्टमी, शशि निर्मल जो दीख।
पीव जाय के मालवा, मांगत फिरि हैं भीख॥

७३ नवीं असाढ़ी बादली, जो गरजै घनघोर।
कहें भड्डुरी ज्योतिषी, काल पड़ै अहुं ओर॥

७४ दशी असाढ़ी कृष्ण को, मङ्गल रोहिनी होय।
सस्ता धान बिकायगो, हाथ न छुइ है कोय॥

७५ असाढ़ी पूनो के दिना, गाज बीज बरसन्त।
भाषै लक्षण कालिका, आनन्द मानो सन्त॥

७६ दिवस बादरा रात को तारे। चलो कन्त जहं जीवें वारे॥

७७ दिन को बादर रातमें चंदर। बहै रवी भद्दर भद्दर।
कहैं भड्डुरी बरषा नाहीं। सिगरी जिन्सें जाहिं सुखाहिं॥

७८ तीतर पंखी बादरी, विधवा कज्जल रेख।
ये बरषै वह घर करे, या में मीन न मेख॥

७९ दिन को बादल रात तरैयां। ये नारायण कहा करैयां॥

८० काले बादल डरावने, धौले बरसनहार॥

८१ दिन सात चले जो बांदा । सूखे जल सातों खांडा ॥
८२ खेती करै खाद से भरै । सौ मन कोठला में लै धरै ॥
८३ वही किसानी में है पूरा । जो छोड़े हड्डी का चूरा ॥
८४ जेकर खेते पड़ा न गोबर । उहि किसान का जानो दूबर ॥
८५ जोत न माने अरसी चना । कहा न माने हरामी जना ॥
८६ मैदै गेहूं, ढेलै चना ।
८७ गेहूं बाहे, धान बिदाहे ।
८८ गेहूं गवा काहे । कातिक के चौबाहे ॥
८९ जोते खेत घास न टूटै । ताकर भाग सांझ ही फूटै ॥
९० एक बात तुम सुनो हमारी । एक बैल ते भली कुदारी ॥
९१ कच्चा खेत न जोतै कोई । नाहीं बीज न अंकुरे होई ॥
९२ गेहूं भवा काहे । सोलह दांय बांहे ॥
९३ दखिनी कुलाविनी । माघ पूस सुलाविनी ॥
माघ पूस में दखिना । भले मेंह को लखना ॥
९४ माघ उजाली तीज को, बादल बिजली देख ।
गेहूं जो संयम करो, मंहगो होवे पेख ॥
९५ चैत मास उजाले पाख, अठवें दिवस बरसता राख ॥
नवें दिवस जब बिजली होवे, ता देश काल हलाहल होवे ॥
९६ चित्रा स्वाती बिसेखरी, जो बरखे आसाढ़ ।
चलो पिया परदेश अब, भारी परिहै काल ॥
९७ आसाढ़मास पूनो दिवस, बादल घेरैं चन्द ।
तो भड्डर जोसी कहैं, होवे परम अनन्द ॥
९८ चढ़ते बरसे आद्रा, उतरत बरसे हस्त ।
कितनो राजा डांड़ले, आनन्द रहे गृहस्त ॥
९९ मंगल पड़े तबाही, बुद्धे पड़े अकाल ॥
जो अन्त होवे शनीचरी, निश्चय परिहै काल ॥
१०० भूलो बावल फिरै गंवारा, कातिक मांगे मेह ।

१०१ पुरबा पूनो गरजै । दिना बहत्तर बरसै ॥

१०२ सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखै भान ।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान ॥

१०३ माघ मास में बेचो बोई । फिर बैसाख मे तमसो धोई ॥
जेठ मास जो तपै निरासा । तो जानो बरषा की आसा ॥

१०४ सावन पहिली पंचमी, चन्दा छिटिक करै ।
की जल देखे कूप में, कि सुन्दरि नीर भरै ॥

१०५ चना चित्रा चौगुना, स्वाती गेहूं होय ।

१०६ कोठी चढ़े पुकारे जई । खिचड़ी खाकर क्यों न बई ॥
जो कहुं बोते बीघा चार । तो मैं डरती कुठिला फार ॥

१०७ अगहन बवा । कहुं मन कहुं सवा ॥

१०८ पूस न बोये, पीस खाये ।

१०९ अगाई, सो सवाई ।

११० कातिक बोये अगहन भरे । ताको हाकिम फिर का करे ॥

१११ रोहिनी मृगसिरा जो बोये मका । उर्द मडुआ नहिं आवे टका ॥
मिरगसीर में बोये चैना । जमीदार को कुछ नहिं दैना ॥
बोये बाजरा आये पुक्ख । फिर मन कैसे भोगे सुक्ख ॥

११२ बुध बोनी, सुल लावनी ।

११३ हथिया में हाथकुड़ चित्रा में फूल । चढ़त सवातीझप्पा झूल ॥

११४ जब बर्र बरोठे आई । तब रबी की होय बोवाई ॥

११५ जौ छिछी गेहूं सांस लो, मेढक छप्पे ज्वार ।
जिन के छिछी ऊख है, वे फिरते घर बार ॥

११६ दिवाली को बोवे दिवालिया ।

११७ आगे गेहूं पीछे धान । उसको कहिये बड़ा किसान ॥

११८ भुंइ भई काली काहे । जीव अंश अधिकाहे ॥

११९ पुक्ख पुनर्बस बोवे धान । मघा श्लेखा खेती आन ॥

१२० आधी हथिया मूर मुराई । आधी हथिया सरसों राई ॥

१२१ अगहन बोवे जौवा । होय तो होय नहीं खाय कौआ ॥
१२२ पहले कांकड़ पीछे धान । उन को कहिये पूर किसान ॥
१२३ सावन सांवा अगहन जौ । जितना बोवे उतना लौ ॥
१२४ मका जोंधरी औ बजरी । उनको बोवे कुछ बिररी ॥
१२५ गाजर गजी और मूरी । इन को बोवे कुछ दूरी ॥
१२६ घनी-घनी जो सनई बोवे । तो सुनरी की आसा होवे ॥
१२७ गेहूं गिरुई चरका धान । बिना आन के मरा किसान ॥
१२८ माघ में बादर लाल धरै । तब जानो सच पाथर परै ॥
१२९ ऊंख कवाई काहे से । स्वाती पानी पाये से ॥
१३० जब बरषा चित्रा में होय । सिगरी खेती जाये खोय ॥
१३१ खादी कूड़ा ना टरै, कर्म लिखा टर जाय ॥
"रहिमन" कहे बुझाय के, खेत पासै पर जाय ॥
१३२ फागुन माहिं बहै पुरवाई । तब गेहू में गिरुई धाई ॥
१३३ चित्रा गेहूं अद्रा धान । इनके गेरुई न उनके घाम ॥
१३४ अद्रा धान पुनर्बसु पतिया । गये किसान जब बई चिरैया ॥
१३५ मघ्ना मकड़ी पुरवा डांस । उत्तरा में है सब की नास ॥
१३६ हरिन फलागन काकरी, पैग-पैग कपसार ।
कहियो जाय किसान से, बोवे घनी उखार ॥
१३७ पुक्ख पुनर्बस बोवे धान । अश्लेखा जुंधरी परमान ॥
मघा मसीना बोवे रेल । तब दीजे परहल में ठेल ॥
१३८ पुक्ख पुनर्बस बोवे धान । अश्लेखा जोंधरी परमान ॥
मघा मसीनो बरसे झार । हल दीजै कोठल में डार ॥
१३९ कोठिला बैठे बोले जई । आधे अगहन काहे न बई ॥
१४० नरसी गेहू सरसी जौ । अति के बरसे चना बो ॥
१४१ कदम-कदम पर बाजरा, मेढक कूदे ज्वार ।
ऐसे जो बोवे कोई, घर-घर भरे कोठार ॥

१४२ आलू बोवे अंधेरे पाख। खेत में डारे कूड़ा राख॥
समय-समय पर करै सिंचाई। दूना आलू घर में आई॥

१४३ छछी भली जौ चना, छछी भली कपास।
जिनकी छछी ऊखड़ा, उनकी छोड़ो आस॥

१४४ जो तेरे कुनबा घना। तो क्यों न बोये चना॥

१४५ दो तोई, घर खोई।

१४६ मकड़ा घासा पूरा जाला। बीज चने का भर-भर डाला॥

१४७ छीछा सालिम सालटा, छिछी भली कपास।
जिनकी छीछी ऊख है, उनकी छोड़ो आस॥

१४८ सन घना बन बेगरा, मेढ़क फन्दे ज्वार।
पैर-पैर पर बाजरा, करै दरिद्रै पार॥

१४९ जौ गेहूं बौवै पांच पसेर। मटर की बीघा तीन सेर॥
बौवै चना पसेरी तीन। सेर तीन की जुधरी कीन्ह॥
दो सेर मोथी अरहर मास। डेढ़ सेर बीघा बीज कपास॥
पांच पसेरी बीघा धान। तीन पसेरी जड़हन मान॥
डेढ़ सेर बजरा बजरी सवा। कोदों काकुन सवैया बवा॥
सवासेर बीघा सावां जान। तिल्ली सरसों अंजुरी मान॥
बिर्रे कोदों सेर बोआव। डेढ़ सेर बीघा तीसी नाव॥
यहि विधि से जब बवै किसान, दूना लाभ खेत में जान॥

१५० गेहूं भवा काहें। असाढ़ के दो बाहें॥

१५१ तेरह कातिक, तीन असाढ़।

१५२ नौ नसी एक कसी। नौ आहन, एक बाहन॥

१५३ बाली मोटी भई काहे। असाढ़ के दो बाहे॥

१५४ बीज पड़े फल अच्छा देत। जितना गहरा जोते खेत॥

१५५ जोंधरी जोते तोड़ मगोर। तो वह डारे कोठला फोर॥

१५६ बाहे क्यों न असाढ़ एकबार। अब क्यों बाहे बारम्बार॥

१५७ दस बाहों का मांड़ा। बीस बाहों का गांड़ा॥

१५९ जो ढेले दे तोर मरोर । ताको कोठिला दूंगी फोर ।।

१६० मेंड़ बांध दस जोतन दे । दस मन बीघा मोसे ले ।।

१६१ सावन न मारे लीटक बेटा । अब देखें क्या खाओ बेटा ।।

१६२ असाढ़ जोते लड़के बारे, सावन भादों हरवाहे ।
क्वार जोते घर का बेटा, तब ऊंचे उनहारे ।।

१६३ भैंसा बरद की खेती करे, करजा काढ़ि बिरानो खाय ।
बधिया ऐंचत है येहरी को, भैंसा ओहरी को ले जाय ।।

१६४ थोड़ा जोतै बहुतै गावै, ऊंची बांधे आड़ ।
ऊंचे पर खेती करै, पैदा होवै भाड़ ।।

१६५ खाद पड़े तो खेत । नहीं तो कूड़ा रेत ।।

१६६ खाद देय तो होवै खेती । नहीं तो रहे नदी की रेती ।।

१६७ असाढ़ में खाद खेत में जावे । तब भर मूठी दाना पावे ।।

१६८ गोबर मैला नीब की खली । यह से खेती दूना फली ।।

१६९ गोबर राखी पानी सड़े । तब खेती में दाना पड़े ।।

१७० जेह कर उखड़े लगी लवाह । तेह पर आवे बड़ी तवाह ।।

१७१ करमहीन खेती करै । बधिया मरै कि सूखा परै ।।
करमहीन खेती करें । पाला पड़े कि ओला गिरें ।।
चना में सर्दी अधिक समाई । ताको जान गदहिला खाई ।।
धान गिरे सौभागे का । गेहूं गिरे अभागे का ।।

१७२ माघै पूस बहै पुरवाई । तब सरसों को माहूं खाई ।।

१७३ बैल बगोदा निरघिन जोय । वह घर उरहन कबहुं न होय ।।
बैल मरखना चमकुल जोय । वा घर उरहन नित उठि होय ।।

१७४ बरद मुसहरा जो कोई ले । राज भङ्ग पल में कर दे ।।
तिरिया बाल सबकुछ छूटिजाय । भीख मांग के घर-घर खाय ।।

१७५ मतकोई लीजे मसुरिहा बाहन । खसम मार के डाले पावन ।।

१७६ बड़सिगा जनि लीजो मोल । कुएं में डालो रुपया खोल ।।

१७७ ताका भैंसा निठरा बैल । नार कुलक्षण बालक छैल ॥
इनसे बाचें चतुरा लोग । राज छोड़ के साधे जोग ॥

१७८ ना मोंहि नाधो उलिया कुलिया, ना मोंहि नाधो दायें ।
बीस बरस तक करौ बरदई, जो ना मिलिहै गायें ॥

१७९ सन्थर जोते पूत चरावे । लगते जेठ भुसौला छावे ॥
भादों मास उठे जो गरदा । बीस बरस तक जोतो बरदा ॥

१८० है उत्तम खेती वाकी । होय मेवाती गोई जाकी ॥

१८१ पतली पिण्डुरी मोटी रान । पूंछ होय भुई में तरियान ॥
जाके होवें ऐसो गोई । वाको तकै और सब कोई ॥

१८२ करिया काछी धारा बान । इन्हें छांडि जनि बेसहो आन ॥
कार कछौंली सुनरे बान । इन्हें छोड़ि जनि बिसह्यो आन ॥

१८३ जोते का पुरबी , लादे क दमोय ।
हेंगा को काम दे , जो देवहा होय ॥

१८४ सींग मुड़े माथा उठा , मुंह का होवे गोल ।
रोम नरम चंचल करण , तेज बैल अनमोल ॥

१८५ एक हल हत्या , दो हल काज ।
तीन हल खेती , चार हल राज ॥

१८६ मुंह का मोट माथ का महुआ । इनही का कुछ कहिये रहुआ ॥
धरती नहीं हराई जोतै । बैठ मेंड़ पर पागुर करै ॥

१८७ मुंह का मोट मायका महुआ । इन्हें देखि जनि भूल्यो रहुआ ॥
चरक भरौती माथे में महुआ ।
दाम परे तो आधे तरे । नहीं रुपया पानी में परे ॥

१८८ जहां परे फुलवा की लार । झाड़ू लेके बुहारो सार ॥

१८९ कान कछाटा झबरे कान । इन्हें छांड़ि जनि लीजो आन ॥

१९० निटिया बरद छोकरा हारी । दूब कहै मोर काहि उखारी ॥

१९१ बैल लीजे कजरा । दाम दीजै अगरा ॥

१९२ बैल बिसाहन जाओ कन्ता । भूरे का मत देखो दन्ता ॥

१९३ लम्बे-लम्बे कान, औ ढोला मुतान।
छोड़ो-छोड़ो किसान, न तो जात हैं प्रान॥
१९४ बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार॥
१९५ सात दांत उदन्ता को, रङ्ग जो कालो होय।
इन्हें कबहुं न लीजिये, दाम चहें जो होय॥
१९६ हिरन मुतान और पतली पूंछ, बैल बेसाही कन्त बे पूंछ।
१९७ बांधा बछड़ा जाय मठाय, बैठा ज्वान जाय तुंदियाय॥
१९८ फेट बंधीला देह गठीला, आंखों का चमकीला।
भाषै नानकचन्द मर्द है, बर्ध कन्ध का नीला॥
१९९ बरद बिसाहन जाओ कन्ता। कुबरा का मत देखो दन्ता॥
२०० घोंची देखे वहि पार। थैली खोले यहि पार॥
२०१ छद्दर कहै मैं आऊं जाऊं। सद्दर कहै गुसैयें खाऊं॥
नौदर कहै नौ दिशि धाऊं। हित कुटुम्ब उपरोहित खाऊं॥
२०२ स्वेत रङ्ग और पीठ बरारी। ताहि देखि जनि भूल्यो लारी॥
२०३ सौंख कहे देख मोर कला। बे मेहरी का करूं घरा॥
२०४ छोट सींग और छोटी पूंछ। ऐसे को ले लो बे पूंछ॥
२०५ उदन्त बरदे उदन्त ब्याये। आप जांय न खसमें खाये॥
२०६ दांत गिरे और खुर घिसे, पीठ बोझ नहिं लेय।
ऐसे बूढ़े बैल को, कौन बांध भुस देय॥
२०७ भैंस कन्देलिया पिय लाये। मांगे दूध कहां से आये॥
२०८ बांमड़ और मुंह धौरा। उन्हे देख चरवाहा रौरा॥
२०९ बूढ़ा बैल बिसाहे, झिन्ना कपड़ा लेय।
आपुन करै नसौनो, दैवै दूषण देय॥
२१० नीले कन्धा बैंगन खुरा। कबहुं न निकले कन्था बुरा॥
२११ छोटा मुंह ऐंठा कान। यही बैल की है पहिचान॥
२१२ मियनी बैल बड़ो बलवान। तनिक में करे ठाढ़े कान॥

२१३ सींग गिरेला बरद के, औ मनई का कोढ़।
यह नीके न होंयगे, चाहे बद लो होड़॥

२१४ बैल तरकना टूटी नाव, ये काहू दिन देहै दांव॥

२१५ बैल चौकना जोत में, औ चमकोली नार।
ये बैरी हैं जान के, लाज रखें करतार॥

२१६ पूंछ छिया छोटे कान। ऐसे बरद मिहनती जान॥

२१७ उजर बरौनी मुंह का महुआ। बाका देख हरवाह रोवा॥

२१८ जब देखो पिय सम्पति थोड़ी। बिसहो गाय बिआउर घोड़ी॥

२१९ वह किसान है पातर। जो बरदा राखै गादर॥

२२० बरद बगौदा मरकहा होय। वह घर उरहन नित-नित होय॥

२२१ बरद बिसाहन जाओ कन्ता। खीरे का जनि देखो दन्ता॥
जहां परे खीरे की खुरी। तो कर डारे चपरा पुरी॥
जहां परे खीरे की लार। बढ़नी लेके बुहारो सार॥
जहां देखो पटवा की डोर। तहां दीजो थैली छोर॥

२२२ दो हर खेती एक हर वारी। एक बैल से भलो कुदारी॥

२२३ दस हल राव आठ हल राना। चार हलों का बड़ा किसाना॥

२२४ पांच शनीचर पांय रवि, पांच मंगल जो होय।
छत्तर टूट धरनी पड़े, की अन्न महंगो होय।

२२५ या तो बोये कपास अरु ईख। नाहीं मांग के खाये भीख॥

२२६ जो हल जोने खेती वाकी। और नहीं तो जाकी ताकी॥

२२७ जो तू भूखा माल का। तो ईख कर लो नाल का॥

२२८ बहु बोना बहु कटियान, और बहुतै बोया चना।
कहै मनोहर जंगली, जावेंगे ये तीनों जना॥

२२९ चना, चैत घना।

२३० गेहूं बाहा, धान गाहा। ईख गुड़ाई से है आहा॥

२३१ मंगल बारी पड़े दिवारी। रहै किसान रोये व्योपारी॥

२३२ साठी पके साठवें दिन। जो पानी पावे आठवें दिन॥

२३३ सबी किसानी हेठी । अगहनियां पानी जेठी ॥

२३४ अगहन में सरवा भर । फिर करवा भर ॥

२३५ कदम-कदम पीपल मुकदम , गेहूं ठाकुर जौ दीवान ।
अरहर चेरी चना गुलाम , सरसों ठाढ़े करे सलाम ॥

२३६ अहिर मिताई बादर की छाई । होवे-होवे नाहीं नाई ॥

२३७ गेहूं बाहे से, चना दलाये से । धान गाहे से, मक्की निराये से—
ईख कमाये से ॥

२३८ दो पत्ती क्यों न निराये । अब बीनत क्यों पछितावे ॥

२३९ नित्तै खेती दुसरे गाय । नहिं देखै ते कर जाय ॥

२४० मीन शनीचर कर्क गुरु , जो अव्वल मंगल होय ।
गेहूं गोरस गुडारी , बिरलै बिलसे कोय ॥

२४१ ठाढ़ी खेती गाभिन गाय । तब जानों जब मुंह में जाय ॥

२४२ बबूल का पाटा सिरस का हल , हरयानी का बैल ।
छूछे हाथे लेय के , बैठे चौसर खेल ॥

२४३ ईख करै सब कोई । जो बीच में जेठ न होई ॥

२४४ प्रीति तो कीजै ईख सी , जामें रस की खानि ।
जहां गांठ तंह रस नहीं , यही प्रीति की बानि ॥

२४५ ईख तक खेती , हाथी तक बनिज ।

२४६ आसपास रबी , बीच में खरीफ ।
नोन मिरच डाल के , खा गया हरीफ ॥

२४७ परहथ बनिज सन्देसे खेती । बे बर देखे ब्याहे बेटी ॥
द्वार पराये गाड़े खाती । ये चारों मिल पीटें छाती ॥

२४८ अगहन में न दी थी कोर । तेरे बैल क्या ले गये चोर ॥

२४९ तीन कियारी तेरह गोड़ । तब बाढ़े ऊख की पोर ॥

२५० उठ के बजरा यों हंस बोले । खाये बूढ़ युवा हो जावे ॥

२५१ इतवार करे धनवन्तर होय । सोम करे सेवा फल होय ॥
बुध बीफ शुक्रै भरै बखार । शनि मंगल बीज न आवे द्वार ॥

२५२ ऊंचे चढ़ के बोला मडुवा । सब नाजों का मैं हूं भडुआ ॥
आठ दिना मुझको जो खाय । भले मर्द से उठा न जाय ॥

२५३ साढ़ी में साढ़ी बोवे, बाढ़ी में बाड़ी ।
ईख म जो धान बोवे, फूंकों वाकी डाढ़ी ॥

२५४ कमती फरै गाजा बाजा । जौनै लागै तौनै राजा ॥

२५५ भली जाति कुरमिन की, खुरपी हाथ ।
अपना खेत निराये, पिय के साथ ॥

२५६ जिसका ऊंचा बैठना, जिसका खेत निचान ।
उनका बैरी का करे, जिनके मीत दिवान ॥

२५७ बाढ़े पुत्र पिता के धर्मा । खेती उपजे अपने कर्मा ॥

२५८ घर की खुन्स ज्वर की भूख, छोट दमाद बराहे ऊख ।
पातर खेती भकुआ भाई, घाघ कहैं दुख कहां समाई ॥

२५९ धान पान उखेरा । ये पानी का चेरा ॥

२६० रूंध बांधके फाग दिखाये । सो किसान मेरे मन भाये ॥

२६१ खेती करै ऊख कपास । घर करै व्योहरिया पास ॥

२६२ उर्द मोथी की खेती करियो । कुरिया तोड़ ऊसरमेंधरियो ॥

२६३ खेती करे अधिया । न बैल मरै न बधिया ॥

२६४ अगसर खेती अगसर मार । घाघ कहें ये कबहूं न हार ॥

२६५ ऊख सरौती दिवला धान । इन्हें छांड़ जनि बोओ आन ॥

२६६ असाढ़ मास जो घूमा कीन । ताकी खेती होवै हीन ॥

२६७ एक वायु जो वह है ऊता । मेढ़े बांध पियाओ पोता ॥

२६८ एक मास ऋतु आगे धावै । आधा जेठ असाढ़ कहावै ॥

२६९ साठी होवे साठ दिना । जब पानी बरसे रात दिना ॥

२७० ईख तो कर ले रांड़ । और पेरे उसे सांड़ ॥

२७१ कांटा बुरा करील का, औ बदरी का घाम ।
सौत बुरी है चून की, औ साझे का काम ।

२७२ रड़ है गेहूं कुस है धान । गड़रा की जड़ जड़हन जान ॥
फूली घास रो देंय किसान । उसमें होय आन का तान ॥

२७३ गेहूं गिरे अभागे का । धान गिरे सौभागे का ॥

२७४ जब सैल खटाखट बाजे । तब चना खूब ही गाजे ॥

२७५ सरसे अरसी, निरसे चना ।

२७६ चार छावँ छः निरावे । तीन खाट दो बांट ॥

२७७ बाह न जाने मसुरी चना । हित न जाने हरामी जना ॥

२७८ बिररै जोत पुराने बिया । ताकी खेती कुछ न हुआ ॥

२७९ छांड़ै खाद जोत गहराई । तब खेती का मजा दिखाई ॥

२८० खूब जोतै औ नावै खाद । तब देखे गेहूं का स्वाद ॥

२८१ माघ मास की बादरी , और क्वार को घाम ।
यह दोनों जो कोउ सहे , करे पराया काम ॥

२८२ मर्द निकौनी बरदै दांय । दुबरी चलने में दुख पाय ॥

२८३ ऊख गोड़ के तुरतै गावै । तो फिर ऊख बहुत सुख पावै ॥

२८४ सावन भादों खेत निरावे । तब गृहस्थ बहुतै सुख पावै ॥

२८५ पानी बरसे बहन न पावे । तब खेती को मजा दिखावे ॥

२८६ जब बरसे तब बांधो क्यारी । पूरा किसान जो हाथ कुदारी ॥

२८७ खेती करे सांझ घर सोवै । काटै चोर हाथ धर रोवै ॥

२८८ खेत बे पनिया जोतो तब । ऊपर कुआं खुदाओ जब ॥

२८९ खेत बे पानी बुड्ढा बैल । सो गृहस्थ सांझै गहै गैल ॥

२९० बांध कुदारी खुरपी हाथ । लाठी हंसिया राखै साथ ॥
काटै घास निरावै खेत । पूरा किसान वही कहि देत ॥

२९१ चना सींच पर जब हो आवै । ताको पहिले तुरत खुटावै ॥

२९२ कुड़हन भदई बोओ यार । तब चिउरा की होय बहार ॥

२९३ पहिले छाओ तीन घरा । सार भुसौला औ बड़हरा ॥

२९४ अति ऊंचे भुइं धरन पै , भुजगन के अस्थान ।
तुलसी अति नीचे सुखद , ऊख अन्न अरु पान ॥

२९५ कामिन गरभ औ खेती पकी । ये दोनों है दुर्बल बड़ी ॥
२९६ जो तुम देव नील का जूठी । सब खादों में रही अनूठी ॥
२९७ सन के डण्ठल खेत छिटावें । तिनते लाख चोगुनो पावें ॥
२९८ जो कपास न गोड़ी । उसके हाथ न लागै कौड़ी ॥
२९९ कपास चुनै, खेत खनै ।
३०० हल लगा पताल । तो टूट गया काल ॥
३०१ बाहन कीन्हों मोटा । बीज बनाव खोटा ॥
३०२ गेहूं आये वाल । खेत बनाओ ताल ॥
३०३ बोओ गेहूं काट कपास । फिर होवे ना ढेला घास ॥
३०४ काले फूल न आया पानी । धान मरा अधबीच जवानी ॥
३०५ दक्खिन घेरे पुरबा बरसै । पछुवा चलते किसान तरसै ॥
३०६ तरकारी है तरकारी । यामें पानी की अधिकारी ॥
३०७ छोटी नसी , धरती हंसी ।
३०८ तोड़ दीन क्यारी । खेत गा उजारी ॥

लोकोक्तियां

१ अपनी करनी पार उतरनी ।
२ औसर चूकी डोमनी गावे ताल बेताल ।
३ अरहर की टट्टी गुजराती ताला ।
४ अपनी नींद सोना अपनी नींद उठना ।
५ अति का भला न बरसना , अति की भली न धुप्प ।
अति का भला न बोलना , अति की भली न चुप्प ॥
६ अपनी-अपनी ढापुली अपना-अपना राग ।
७ अनमांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख ।
८ अमानत में खयानत ।
९ अयाना जाने हीया सयाना जाने किया ।
१० अस्सी की आमद चौरासी का खर्च । अधजल गगरी छलकत जाय । आप काज महा काज ।

१६ आगे नाथ न पीछे पगा।

१२ आधी छोड़ पूरी को धावे। ऐसा डूबे थाह न पावे।

१३ आग फूंस में बैर।

१४ आप मरे जग परलय।

१५ आंखों के अन्धे नाम नैनसुख।

१६ आप डूबा तो जग डूबा।

१७ आदमी का आदमी ही शैतान है।

१८ आती बहू जनमता पूत सब को अच्छा लगता है।

१९ आग लगते झोंपड़ा जो निकले सो लाभ।

२० आम के आम गुठलियों के दाम।

२१ इस हाथ दे उस हाथ ले।

२२ उल्लू की दुम फाख्ता।

२३ उधार का खाना, फूंस का तापना।

२४ उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान॥

२५ उलटा चोर कोतवाल को डांड़े।

२६ उघरे अन्त न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥

२७ ऊंट के मुह में जीरा।

२८ ऊधौ का लैन माधौ का देन।

२९ ऊंची दुकान फीका पकवान।

३० ऊंट की चोरी निहुरे-निहुरे।

३१ ऊंट के गले बिल्ली।

३२ ऊंट बिलाई ले गई तब हांजी-हांजी करना।

३३ एक नारी, सदा ब्रह्मचारी।

३४ एक पंथ दो काज।

३५ एक तो गिलोय कड़ुवी दूसरे नीम चढ़ी।

३६ एक तवे की रोटी, क्या मोटी क्या छोटी।

३७ एक अनार सौ बीमार।

३८ ओछे की प्रीति बालू की भीति ।

३९ ओखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर ।

४० अन्धेर नगरी अनबूझ राजा ।

४१ अन्धी पीसे कुत्ते खांय ।

४२ अन्धा क्या चाहे दो आंख ।

४३ अन्धे के हाथ बटेर ।

४४ अन्धा बांटे रेवड़ी अपनों ही को दे ।

४५ अन्ते मता सो गता ।

४६ कतहुं सुधाइहुं ते बड़ दोषू ।

४७ करले सो काम और भजले सो राम ।

४८ कभी नाव लढ़े पर कभी लढ़ा नाव पर ।

४९ करघा छोड़ तमासे जाय, नाहक चोट जुलाहा खाय ।

५० करे तो डर न करे तो भी डर ।

५१ कहां राजा भोज कहां गंगा तेली ।

५२ कारज धीरे होत है काहे होत अधीर ।

५३ काला अक्षर भैंस बराबर ।

५४ काम परे ही जानिये जो नर जैसो होय ।

५५ काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी फेर करोगे कब्ब ॥

५६ कागा चलै हंस की चाल ।

५७ काल के हाथ कमान, बूढ़ा बचे न ज्वान ।

५८ काजर की कोठरी में धब्बे का डर ।

५९ काम जो आवै कामरी का लै करे कमाच ।

६० काबुल गये मुगल बनि आये बोलन लागे बानी । आब-आब करि मरि गये सिरहाने धरयो रहो पानी ॥

६१ काजी जी क्यों लटे, शहर के अंदेशे ।

६२ किस बित्ते पर तत्ता पानी ।

१७० नया नौ दिन पुराना सौ दिन ।

१७१ नक्कारखाने में तूती की आवाज ।

१७२ न नाम लेवा न पानी देवा ।

१७३ नजर चूकी माल दोस्तों का ।

१७४ नाई बाल कितने ? जिजमान आगे आ जायगे ।

१७५ नाच न जाने आंगन टेढ़ा ।

१७६ नाम बड़े दर्शन थोड़े ।

१७७ नाना के आगे ननिहार की बातें ।

१७८ नाम भानमती औ झोली में सिर ।

१७९ नानी तो क्वारी मर गई नन्ना के नौ-नौ ब्याह ।

१८० नौ नगद न तेरह उधार ।

१८१ नौ दिन चले अढाई कोस ।

१८२ नीम हकीम खतरे जान । नीम मुल्ला खतरे ईमान ॥

१८३ नौ सौ चूहे खाय बिलाई हज को चली ।

१८४ पढ न लिखे और नाम विद्यासागर ।

१८५ पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।

१८६ पढे तो हैं पर गुने नहीं ।

१८७ परदेशी की प्रीति फूस का तापना ।

१८८ पांचों घी में ।

१८९ पौबारह है ।

१९० पानी पी घर पूछना नाहीं भलो बिचार ।

१९१ प्रीति का निबाहना खांडे की धार है ।

१९२ पांसा पड़े सो दांव, राजा करे सो न्यांव ।

१९३ पांच पंच जहां परमेश्वर ।

१९४ पैसे की हांड़ी गई तो कुत्ते की जाति तो जानी ।

१९५ पंच कहें बिल्ली सो बिल्ली ।

१९६ बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद ।

१९७ बन्दर के गले में मोतियों की माला ।
१९८ धनी के सब साथी ।
१९९ बगल मे तोशा किसका भरोसा ।
२०० बार-बार चोर की तो एक बार साहू की ।
२०१ बद अच्छा बदनाम बुरा ।
२०२ बाहर वाले खा गये घर के गावें गीत ।
२०३ बाप ने मारी पोदनी बेटा तीरन्दाज ।
२०४ बावन तोले पाव रत्ती ।
२०५ बारह वर्ष दिल्ली मे रहे क्या भाड़ झोंका ?
२०६ बारे की मां न मरे और बूढ़े की जोरू ।
२०७ बावरे गांव मे ऊट आया ।
२०८ बाजार किसका ? जो लेकर दे उसका ।
२०९ बांह गहे की लाज ।
२१० बिच्छू का काटा रोवे, सांप का काटा सोवे ।
२११ बांझ क्या जाने प्रसूत की पीड़ा ?
२१२ बूर का लड्डू खायगा सो पछतायगा न खायगा वह भी पछतायगा ।
२१३ वे ही मियां दरबार को, वे ही चूल्हा फूंकने को ।
२१४ बैठे से बेगार भली ।
२१५ बैल दीजे जायफल क्या बोले क्या खाय ?
२१६ बैलन कूदा कूदी गौन ।
२१७ भरी जवानी मंझा ढीला ।
२१८ भरभूजे की लड़की केसर का तिलक ।
२१९ भीख के टुकड़े बाजार में डकार ।
२२० भूले बनियां भेड़ खाई । अब खाऊं तो राम दोहाई ।।
२२१ भूख में किवाड़ ही पापड़ ।
२२२ भूख में गूलर ही पकवान ।
२२३ भखा बंगाली भात-भात ।

२२४ भूलि गई राव रङ्ग भूलि गई जिकड़ी, तीन चीज याद रहीं नून तेल लकड़ी ।

२२५ भेंड़ की लात घोंटू तक ।

२२६ मन में राम बगल मे ईटें ।

२२७ मरना बिचारा तो डरना कैसा ?

२२८ मरता क्या न करता ।

२२९ मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा ।

२३० मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।

२३१ मन उमराव करम दरिद्री ।

२३२ मक्खी बैठी शहद पर रही पङ्ख लपटाय ।
हाथ मलै और शिर धुनै लालच बुरी बलाय ।।

२३३ माह नंगे बैसाख भूखे ।

२३४ मार मार तो किये जा नामर्दी तो ईश्वर ने दी ।

२३५ मान का बीड़ा हीरा के समान ।

२३६ मान न मान मैं तेरा महमान ।,

२३७ मानो तो देव नहीं तो पत्थर ।

२३८ मान का पान बहुत है ।

२३९ मीठा और भर कठौता ।

२४० मीठा-मीठा लप-लप, कडुवा-कडुवा थू-थू ।

२४१ मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक ।

२४२ मुड़ा जोगी पिसी दवा ।

२४३ मूरख की सारी रैन, छैल की एक घड़ी ।

२४४ मूल से ब्याज प्यारा होता है ।

२४५ मेंड़की को जुकाम ।

२४६ यथा राजा तथा प्रजा ।

२४७ यथा नाम तथा गुण ।

२४८ रसोई का विप्र कसाई का कूकर ।

२४९ रख पत रखा पत ।

२५० राजा किसके पाहुने, जोगी किसके मीत ।

२५१ राम-राम जपना । पराया माल अपना ।।

२५२ राम भरोसे जे रहें परबत पर हरियांय ।

२५३ राई से पर्वत करै पर्वत राई मांहि ।

२५४ राग का घर खाँसी । लड़ाई का घर हांसी ।।

२५५ रांड़ सांड़ सीढ़ी सन्यासी । इनसे बचे जो सेवै काशी ।

२५६ लकीर के फकीर ।

२५७ कमजोर की जोरू सब की सरहज ।

२५८ लड़का बगल में, ढंढोरा नगर में ।

२५९ लातों के देव बातों से नहीं मानते ।

२६० लीक-लीक गाड़ी चलै , लीक हि चले कपूत ।
लीक छांड़ि तीनों चलें , सायर, सिंह, सपूत ।।

२६१ देश चोरी परदेश भीख ।

२६२ देह धरे का दण्ड है सब काहू को होय ।

२६३ देखी तेरी कालपी बामनपुरा उजार ।

२६४ दोनों दीन से गये पांड़े , हलुवा मिला न मांड़े ।

२६५ दाल भात में मूसरचन्द ।

२६६ दुबिधा मे दोऊ गये माया मिली न राम ।

२६७ देखा देखी साधे जोग । छीजी काया बाढ़्यो रोग ।

२६८ धोबी का कुत्ता घर का न घाट का ।

२६९ नये चिकनियां अंडी का फुलेल ।

२७० नदी में रहकर मगर से बैर ।

२७१ लिखें मूसा पढ़ें ईसा ।

२७२ लूट के मूसर भी भले हैं ।

२७३ लोहू लगाकर शहीदों में दाखिल ।

२७४ शाम के मरे को कब तक रोवें ।

२७५ शिकार के समय कुतिया हगासी ।

२७७ सत मति छोडे सूरमा सत छोड़े पति जाय ।
२७८ सेत-सेत सब एक से कर्ं कपूर कपास ।
२७९ सखी से सूम भला जो तुरत देय जवाब ।
२८० सखी के माल पर पड़े सूम की जान पर ।
२८१ सब दिन जात न एक समान ।
२८२ सभी बात खोटी मुख्य दाल रोटी ।
२८३ सदा दिवाली साधु की जो घर गेहूं होय ।
२८४ सांप मरै न लाठी टूटै ।
२८५ सांच को ग्रांच नहीं ।
२८६ सावन सूखे न भादों हरे ।
२८७ सावन के ग्रन्धे को हरा ही हरा दीखता है ।
२८८ सिर पर पड़ी बजाये सिद्धि ।
२८९ सूरदास कारी कामरि पै चढ़ै न दूजो रङ्ग ।
२९० सुन खगेश अस को जग माहीं । प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं ।।
२९१ सौकीन बुढ़िया चटाई का लहंगा ।
२९२ सो घर सत्यानाश जहां हैं ग्रति बल नारी ।
२९३ हर्रा लगै न फिटकरी रंग चोखा ही ग्रावै ।
२९४ हम तुम राजी, तो क्या करैगा काजी ।
२९५ हानि लाभ जीवन मरन, यश ग्रपयश विधि हाथ ।
२९६ हाथ पांव की काहिली मुंह में मूंछें जांय ।
२९७ हाथकंगन को ग्रारसी क्या ।
२९८ हाथी के दांत दिखाने के ग्रौर होते हैं ग्रौर खाने के ग्रौर ।
२९९ हिमायत की गधी ऐराकी के लात मारती है ।
३०० हिसाब जौ-जौ का दान सौ-सौ का ।
३०१ हुक्के की मारी ग्राग बाकी का मारा गांव ।
३०२ हाथी के पैर में सब का पैर ।
३०३ होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।
३०४ ग्रांत भक्ति चोर के लक्षण ।

३०५ अटका बनिया दे उधार ।

३०६ अपना वही जो आवै काम ।

३०७ अपनी फूटी न देखे दूसरे की फूली निहारे ।

३०८ अन्नदान महादान ।

३०९ आदमी में नउआ, जानवर में कउआ ।

३१० आदमी जानिये बसे, सोना जानिये कसे ।

३११ आशा का मरे निराशा का जिये ।

३१२ आंत भारी तो माथ भारी ।

३१३ आमों की कमाई, नीबुओं में गमाई ।

३१४ आंख का अन्धा गांठ का पूरा ।

३१५ आंख हुई चार, तो दिल में आया प्यार ।

३१६ आंख हुई ओट, तो दिल में हुआ खोट ।

३१७ आसमान से गिरा खजूर में अटका ।

३१८ इक लख पूत सवालख नाती । ता रावण घर दिया न बाती ।।

३१९ उतावला सो बावला, धीरा सो गम्भीरा ।

३२० उखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर ।

३२१ ऊजड खेडा, नाम निबेड़ा ।

३२२ ऊंट बहे गदहा थाह ले ।

३२३ ऊंची दुकान का फीका पकवान ।

३२४ एकान्त बासा, झगड़ा न झांसा ।

३२५ टाट का लंगोटा नवाब से यारी ।

३२६ तिल गुड़ भोजन नीच मिताई । आगे मीठ पाछे कड़ुआई ।

३२७ तेल्ली जोरे परी-परी महमान लुटावे कुप्पा ।

३२८ दमड़ी की बुलबुल टका हलाली ।

३२९ दिया तले अंधेरा ।

३३० दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम ।

३३१ नामी बनियाँ कमाया खाय । नामी चोर मारा जाय ।।

३३२ नाक कटी पर हठ न हटी ।

३३३ नौकरी की पत्थर पर जड़ है।
३३४ नौ की लकड़ी, नब्बे खर्च।
३३५ पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
३३६ पराये पीर को मलीदा, घर के देव को धतूरा।
३३७ पराये धन पर लक्ष्मीनरायन।
३३८ पढ़े फारसी बेचें तेल। ये देखो कर्ता के खेल।
३३९ पर धन राखे मूरखचंद।
३४० संतोषी सदा सुखी।
३४१ पराई हंसी गुड़ से मीठी।
३४२ पैसा करे काम बीबी करे सलाम।
३४३ फिर पछताये क्या हुआ जब चिड़ियां चुग गईं खेत।
३४४ बहती गङ्गा हाथ पखार लो।
३४५ बड़े मियां सो बड़े मियां छोटे मियां सुभान अल्ला।
३४६ बात गये कुछ हाथ नही।
३४७ बाप मरा घर बेटा हुआ, इसका टोटा उसमें गया।
३४८ बिच्छू का मन्तर न जाने सांप के बिल में हाथ डाले।
३४९ बीती ताहि बिसारदे आगे की सुधि लेहु।
३५० मरी बछिया ब्राह्मण के नाम।
३५१ मच्छड़ मार के ऐंठा सिंह।
३५२ मन में बसे सो सुपना देखे।
३५३ मरद की बात और गाड़ी का पहिया आग को चलता है
३५४ मांगे आवे न भीख, तो सुर्ती खाना सीख।
३५५ मारे सिपाही, नाम सरदार का।
३५६ मिजाज क्या है तमाशा, घड़ी में तोला घड़ी में माशा।
३५७ मिस्सों से पेट भरता है किस्सों से नहीं।
३५८ मियां रोते क्यों हो! सूरत ही ऐसी।
३५९ मियां के मियां गये, बुरे-बुरे सुपने आये।
३६० रहै न बांस न बजे बांसुरी।

३६१ रांड सांड और नकटा भैंसा। ये बिगड़े तो होवे कैसा ।।
३६२ लड़ना दे पर बिछुड़ना न दे ।
३६३ लेना देना कुछ नहीं लड़ने को मौजूद ।
३६४ वक्त पड़े बांका, लोग गधे को कहें काका ।
३६५ बेस्या बरस घटावहीं, योगी बरस बढ़ाव ।
३६६ सुख कहना जन से, दुख कहना मन से ।
३६७ हाथ कंगन को आरसी क्या ।
३६८ आधा तजे पंडित सरबस तजै गंवार ।
३६९ आधे गांव दिवाली आधे गांव फाग ।
३७० अधेला न दे अधेली दे ।
३७१ आधे माघे कमरी कांधे ।
३७२ आदमी-आदमी अंतर, कोई हीरा कोई कंकर ।
३७३ इधर न उधर, ये बला किधर ।
३७४ उधार देना, झगड़ा लेना ।
३७५ उधार दीजै दुश्मन कीजे। उधार दिया गाहक खोया ।
३७६ एक दिन का पाहुना दूसरे दिन का अनखावना ।
३७७ करनी खाक की, बात लाख की ।
३७८ करनी न करतूत, चलियो मेरे पूत ।
३७९ करनी न करतूत, लड़ने को मौजूद ।
३८० कड़ुआ स्वभाव, डूबती नाव ।
३८१ कलाल की बेटी डूबने चली, लोगों ने कहा मतवाली है ।
३८२ काली घटा डरावनी और धौली बरसनहार ।
३८३ खाय तो घी से, नहीं जाय जी से ।
३८४ खाली बनियां क्या करै, इस कोठी के धान उस कोठी में धरै ।
३८५ खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग पकड़ता है ।
३८६ खावै बकरी की तरह और सूखे लकड़ी की तरह ।
३८७ गधा गिरा पहाड़ से और मुर्गी के टूटे कान ।
३८८ गाल वाला जीतै, और माल वाला हारे ।
३८९ ऐसा काम हमेशा कर, जिसमे कभी न होवे डर ।

३९० ऐसी कहो न बात, कि सबका हिले हाथ।
३९१ अन्धे के आगे रोये, अपने दीदा खोये।
३९२ काम प्यारा कि चाम ?
३९३ काम रहे तक काजी, न रहे तो पाजी।
३९४ किसी का मुंह चले किसी का हाथ।
३९५ कफन सिर से बांधे फिरता है।
३९६ खर गुड़ एक ही भाव बिकाय।
३९७ खाली चना, बाजे घना।
३९८ गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।
३९९ गगरी दाना, सूत उताना।
४०० गाडर राखी ऊन को बैठी चरे कपास।
४०१ गों निकली, आंख बदली।
४०२ घर में मड़ुआ की रोटी, बाहर लम्बी धोती।
४०३ घड़ी भर की बेसरमी सब दिन का आराम।
४०४ घी खाना शक्कर से, दुनिया ठगिये मक्कर से।
४०५ घर बैठे गंगा आई।
४०६ जहां न पहुंचे रवि, तहां पहुंचे कवि।
४०७ जबान शीरी, मुल्क गीरी।
४०८ जगन्नाथ के भात, जगत पसारे हाथ।
४०९ जाका कोड़ा ताका घोड़ा।
४१० जागे सो पावे, सोवे सो खोवे।
४११ जाके घर में नौसे गाय, सो क्या छाछ पराई खाय।
४१२ जाके घर में माई, ताकी राम बनाई।
४१३ जोगी काके मीत, कलंदर किसके भाई।
४१४ जब आया देही का अन्त, जैसा गधा वैसा सन्त।
४१५ जब भये सो, तब भाग गया भो।
४१६ झरबेरी के जंगल में बिल्ली शेर।
४१७ टके की मुर्गी छै टके महसूल।